'एक बेहद पठनीय संस्मरण'
-हिंदुस्तान टाइम्स

सत्य, प्रेम

और थोड़ी सी शरारत

एक आत्मकथा

खुशवंत सिंह

Penguin

खुशवंत सिंह

सत्य, प्रेम और थोड़ी सी शरारत : एक आत्मकथा

पेंगुइन बुक्स, रवि दयाल पब्लिशर के सहयोग से।

अंतर्वस्तु

लेखक के बारे में

प्रकाशकों का नोट

प्रस्तावना: आत्मकथा लिखने के लिए क्षमा याचना

1 रेगिस्तान में बसा गाँव

2. शैशवावस्था से किशोरावस्था तक: स्कूली वर्ष

दिल्ली और लाहौर में कॉलेज के 3 वर्ष

4 इंग्लैंड की खोज

5. लाहौर, विभाजन और स्वतंत्रता

6. मेनन के साथ लंदन में, मलिक के साथ कनाडा में

7. अतीत को मिटाकर भारत लौटना

8 पेरिसियन इंटरल्यूड

9 भारत की खोज

10 सिख धर्म और इतिहास

11 बॉम्बे, द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया, 1969-79 और उसके बाद के घटनाक्रम

12 गांधी और आनंद परिवार के साथ

13 1980-86, संसद और द हिंदुस्तान टाइम्स

14 पाकिस्तान

15 विचित्र और सनकी लोग

16 सर्वशक्तिमान से कुश्ती

17 लेखन और लेखकों पर

18 अंतिम से एक पहले का अध्याय

परिशिष्ट: नवंबर 2001: फसल कटाई के वर्ष

कॉपीराइट पृष्ठ

पेंगुइन बुक्स

सत्य, प्रेम और थोड़ी सी शरारत

खुशवंत सिंह का जन्म 1915 में पंजाब के हदाली में हुआ था। उन्होंने लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज और लंदन के किंग्स कॉलेज और इनर टेंपल से शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने कई वर्षों तक लाहौर उच्च न्यायालय में वकालत की और 1947 में भारतीय विदेश मंत्रालय में शामिल हो गए। उन्हें कनाडा और लंदन में राजनयिक पदों पर भेजा गया और बाद में वे यूनेस्को के साथ पेरिस गए। उन्होंने 1951 में ऑल इंडिया रेडियो में एक पत्रकार के रूप में अपने शानदार करियर की शुरुआत की। तब से वे योजना पत्रिका के संस्थापक-संपादक और इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया, नेशनल हेराल्ड और हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक रहे हैं। आज वे भारत के सबसे प्रसिद्ध स्तंभकार और पत्रकार हैं।

खुशवंत सिंह का लेखन करियर भी बेहद सफल रहा है। उनकी प्रकाशित रचनाओं में दो खंडों में लिखी गई क्लासिक कृति 'हिस्ट्री ऑफ द सिख्स', कई उपन्यास शामिल हैं, जिनमें 'ट्रेन टू पाकिस्तान' (1954 में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए ग्रोव प्रेस पुरस्कार विजेता), 'आई शैल नॉट हियर द नाइटिंगेल', 'दिल्ली' और 'द कंपनी ऑफ वुमेन' जैसे उपन्यास और दिल्ली, प्रकृति और समसामयिक विषयों पर कई अनुवादित रचनाएँ और गैर-कथा पुस्तकें शामिल हैं।

खुशवंत सिंह 1980 से 1986 तक संसद सदस्य रहे। अन्य सम्मानों के अलावा, उन्हें 1974 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था (उन्होंने अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की केंद्र सरकार की घेराबंदी के विरोध में 1984 में यह सम्मान लौटा दिया था)।

प्रकाशकों का नोट

यह पुस्तक जनवरी 1996 में प्रकाशित होनी थी, लेकिन परिशिष्ट में संक्षेप में बताए गए कारणों से ऐसा नहीं हो सका। नवंबर 2001 में लेखक द्वारा जोड़े गए परिशिष्ट को छोड़कर, सत्य, प्रेम और थोड़ी सी दुर्भावना: आत्मकथा का मूल पाठ 1995 में पूरा होने के समय जैसा था, लगभग वैसा ही बना हुआ है।

प्रस्तावना: आत्मकथा लिखने के लिए क्षमा याचना

मैंने इस आत्मकथा को कुछ झिझक के साथ लिखना शुरू किया था। यह मेरी आखिरी किताब होगी, मेरे जीवन के अंतिम पड़ाव में लिखा गया मेरा अंतिम गीत। मेरी लेखन क्षमता तेज़ी से खत्म हो रही है। मुझमें एक और उपन्यास लिखने की हिम्मत नहीं बची है; कई छोटी-छोटी रचनाएँ अधूरी पड़ी हैं और उन्हें पूरा करने की ऊर्जा नहीं है। मैं सत्तासी वर्ष का हूँ। बुढ़ापा मुझ पर हावी होता जा रहा है, यह मुझे प्रतिदिन महसूस होता है। मेरी याददाश्त, जिस पर मुझे कभी बहुत गर्व था, अब धुंधली पड़ रही है। एक समय था जब मैं दिल्ली, लंदन, पेरिस और न्यूयॉर्क में अपने पुराने दोस्तों को टेलीफोन डायरेक्टरी से उनके नंबर दोबारा चेक किए बिना ही फोन कर देता था। अब मैं अक्सर अपना ही नंबर भूल जाता हूँ। शायद जल्द ही मैं बुढ़ापे की चपेट में आ जाऊँ और खुद को ही फोन करने की कोशिश करूँ। मेरी दोनों आँखों में मोतियाबिंद विकसित हो रहा है, मुझे साइनस का सिरदर्द रहता है, मुझे हल्का मधुमेह है और रक्तचाप की समस्या भी है। मेरा प्रोस्टेट भी बढ़ा हुआ है; कभी-कभी सुबह के समय यह मुझे युवावस्था का भ्रम देता है, जैसे कि ज़बरदस्त इरेक्शन। कभी-कभी तो मुझे पेशाब करने के लिए पैंट की ज़िप खोलने का भी समय नहीं मिलता। मुझे जल्द ही प्रोस्टेट ग्रंथि निकलवानी पड़ेगी; इसके साथ ही नकली इरेक्शन और जवानी की कल्पनाएँ भी चली जाएँगी। मैं लगभग दो दशकों से आतंकवादी संगठनों की हिट लिस्ट में हूँ। हाल तक मेरे घर की सुरक्षा सैनिक करते थे और तीन सशस्त्र गार्ड बारी-बारी से मेरे साथ हर जगह जाते थे —टेनिस खेलने, तैरने, सैर करने और पार्टियों में जाने के लिए। मुझे नहीं लगता कि आतंकवादी मुझे पकड़ पाएँगे। लेकिन अगर वे पकड़ भी लेते हैं, तो मैं उन्हें बुढ़ापे की तकलीफों और बिस्तर पर शौच करने और नर्सों द्वारा मेरी पीठ पोंछने की बेइज्जती से बचाने के लिए धन्यवाद दूँगा। मेरे माता-पिता दोनों लंबी आयु तक जीवित रहे। मेरे पिता 90 वर्ष की आयु में चल बसे—स्कॉच का आखिरी घूंट पीने के कुछ ही मिनट बाद। मेरी माँ आठ साल बाद 94 वर्ष की आयु में उनका अनुसरण कर गईं। उनकी अंतिम इच्छा, जो उन्होंने कमजोर, मुश्किल से सुनाई देने वाली आवाज़ में की थी, 'विस्की' थी। उन्हें वह दी गई। उन्होंने उसे उल्टी कर दिया और फिर कुछ नहीं बोलीं। मुझे उम्मीद है कि जब मेरा समय आएगा, तो मैं भी अपने जीवन के लंबे सफर के लिए एक जाम उठाकर जश्न मना सकूंगा।

जब मैंने अपने संस्मरण लिखना शुरू किया, तो मैंने खुद को रचनात्मक गतिविधियों के लिए चार-पाँच साल और दिए। मैंने तय किया कि मैं इन सालों को अपने अतीत की यादों को लिखने में लगाऊँगा। मैंने अपना अतीत कभी किसी को नहीं बताया। जैसा कि उर्दू कवि हकीम मखमूर ने लिखा है:

मैंने अपनी जिंदगी की कहानी किसी को नहीं बताई।

यह वह रकम थी जो मुझे खर्च करनी ही थी;
मैंने इसे खर्च कर दिया।

मैं बिना किसी शर्म या पछतावे के स्वयं को प्रकट करता हूँ। बेंजामिन फ्रैंकलिन ने लिखा:

अगर आप भुलाए नहीं जाना चाहते
जैसे ही तुम मर जाओगे और सड़ जाओगे
या तो पढ़ने लायक चीजें लिखें
या फिर कुछ ऐसा करो जो लिखने लायक हो।

मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है जिसे कोई और दर्ज करने लायक समझे। मरने के बाद जब मेरा शरीर सड़ जाएगा, तब मुझे भुलाए न जाने का मेरा एकमात्र उपाय यही है कि मैं पढ़ने लायक विषयों पर लिखूँ। मैं कई ऐतिहासिक घटनाओं का साक्षी रहा हूँ, और एक पत्रकार के रूप में मैंने कई ऐसे लोगों का साक्षात्कार लिया है जिन्होंने इन घटनाओं को आकार देने में निर्णायक भूमिका निभाई। मैं महान लोगों का प्रशंसक नहीं हूँ। जिन कुछ महान लोगों को मैं करीब से जान पाया, वे खोखले निकले: वे दिखावटी, निकम्मे, झूठे और बिल्कुल साधारण थे।
मैं साहित्य का कोई धुरंधर होने का दावा नहीं करता। पिछले पाँच दशकों से समयसीमाओं का पालन करते-करते, मुझे प्रेरणा की प्रतीक्षा करने, चतुराई भरे शब्दों का प्रयोग करने या अपने लेखन को निखारने का समय नहीं मिला। अच्छी गद्य रचना का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे था, वह भी खो गया है। कुल मिलाकर, यह आत्मकथा बढ़ती उम्र की उपज है। इससे बहुत अधिक अपेक्षा न रखें: थोड़ी गपशप, थोड़ा रोमांच, कुछ मानहानि, थोड़ा मनोरंजन - बस इतना ही मैं दे सकता हूँ।
मेरी बेटी माला दयाल, जिसे यह पुस्तक समर्पित है, ने मुझे इसे लिखने के लिए बहुत ज़ोर दिया। उसे शायद इस बात का पछतावा हो रहा होगा कि उसने मुझे इसे पूरा करने के लिए बार-बार याद दिलाया। मेरी भतीजी गीतांजलि चंदा का विशेष धन्यवाद, जिसने पांडुलिपि को कई बार टाइप किया, पाठ में त्रुटियाँ बताईं और अक्सर उन्हें स्वयं सुधारा।

1 रेगिस्तान में बसा गाँव

शुरुआत से शुरू करना ही सबसे सुरक्षित है।

मेरे जन्मस्थान के बारे में मुझे उन लोगों ने बताया है जो मेरे जन्म के समय उपस्थित थे। मेरा जन्म कब हुआ, यह एक रहस्य बना हुआ है। मुझे बताया जाता है कि मेरा जन्म थार रेगिस्तान के रेतीले टीलों में बसे एक छोटे से गाँव हडाली में हुआ था, जो झेलम नदी से लगभग तीस किलोमीटर पश्चिम में और खेवरा नमक पर्वतमाला से लगभग उतनी ही दूरी पर दक्षिण में स्थित है। हडाली अब पाकिस्तान के भीतरी हिस्से में है। मेरे जन्म के समय मेरे पिता, शोभा सिंह, अपने पिता सुजान सिंह के साथ दिल्ली में थे। जब उन्हें यह खबर मिली, तो उन्होंने इसे अपनी डायरी में लिखने की जहमत नहीं उठाई। मैं उनका दूसरा पुत्र था। उस समय हमारे गाँवों में जन्म और मृत्यु का रिकॉर्ड नहीं रखा जाता था। हिंदुओं के विपरीत, जो अपने बच्चों की जन्मतिथि लिखते थे ताकि उनकी कुंडली बनाई जा सके, हम सिखों का ज्योतिष में कोई विश्वास नहीं था, इसलिए हम जन्मस्थान और समय को कोई महत्व नहीं देते थे। कई साल बाद, जब उन्हें दिल्ली के मॉडर्न स्कूल में हमारे प्रवेश के लिए फॉर्म भरना पड़ा, तो मेरे पिता ने मेरे बड़े भाई और मेरी जन्मतिथि अपनी कल्पना से लिख दी। मेरी जन्मतिथि 2 फरवरी 1915 दर्ज की गई थी। कई साल बाद, मेरी दादी ने मुझे बताया कि मेरा जन्म बदरू में अगस्त के महीने में हुआ था। मैंने इसे महीने के मध्य में, 15 अगस्त 1915 तय कर लिया और खुद को सिंह राशि का घोषित कर लिया। बत्तीस साल बाद, 1947 में, 15 अगस्त स्वतंत्र भारत का जन्मदिन बन गया।

मेरे दूध छुड़ाने के कुछ समय बाद, मेरे पिता मेरी माँ और बड़े भाई को दिल्ली ले जाने के लिए हदाली आए, जहाँ उन्हें और उनके पिता को कुछ निर्माण कार्य के ठेके मिले थे। मुझे मेरी नानी के पास छोड़ दिया गया। मेरे जीवन के पहले कुछ वर्षों तक वही मेरी इकलौती साथी और दोस्त थीं। बाद में मुझे पता चला कि उनका नाम लक्ष्मीबाई था। हम उन्हें भाबीजी कहते थे। उनकी तरह मेरी माँ का भी हिंदू - महाराष्ट्रीयन - नाम वीरन बाई था। बच्चे उन्हें बायबायजी कहकर बुलाते थे।

हाडली में बिताए अपने बचपन की यादें धुंधली सी हैं। गाँव में लगभग तीन सौ परिवार रहते थे, जिनमें से अधिकतर बलूच मूल के मुसलमान थे। वे कद-काठी के पुरुष थे, जिनमें से अधिकतर ब्रिटिश भारतीय सेना में सेवारत थे या सेवानिवृत्त हो चुके थे। वायसराय के अंगरक्षकों का एक बड़ा हिस्सा हाडली से ही था। हाल ही तक, रेलवे स्टेशन मास्टर के कार्यालय के बगल वाली दीवार पर लगी एक संगमरमर की पट्टिका में लिखा था कि प्रथम विश्व युद्ध में हाडली ने भारत के किसी भी अन्य गाँव की तुलना में अपनी जनसंख्या से आनुपातिक रूप से अधिक सैनिक दिए थे। लगभग पचास हिंदू और सिख परिवार व्यापार, दुकानदारी और साहूकारी के काम में लगे हुए थे। मेरे पूर्वज - मैं केवल अपने परदादा, इंदर सिंह, और उनके पिता, प्यारे लाल, जिन्होंने सिख धर्म अपना लिया और सोहेल सिंह बन गए - तक ही उनका पता लगा सकता हूँ - व्यापारी थे।

उनके पास ऊँटों के काफिले थे जो खेवरा की खानों से सेंधा नमक और खजूर, जो हमारे रेगिस्तानी वतन का एकमात्र फल है, लाहौर और अमृतसर ले जाते थे। वे कपड़े, केरोसिन तेल, चाय, चीनी, मसाले और अन्य सामान लाकर आस-पास के कस्बों और गाँवों में बेचते थे। बाद में, मेरे दादा और पिताजी निर्माण व्यवसाय में आ गए। उन्होंने कालका-शिमला रेलवे पर छोटे गेज की रेल पटरी और सुरंगों का एक हिस्सा बिछाया।

हम हदाली के सबसे समृद्ध परिवार थे। हम ईंट और मिट्टी से बने एक बड़े घर में रहते थे, जिसके चारों ओर एक विशाल आंगन था जिसमें भैंसों का बाड़ा था और हमारा अपना एक कुआँ भी था। प्रवेश द्वार एक विशाल लकड़ी का दरवाजा था जो शायद ही कभी खुलता था। उसमें लोगों के आने-जाने के लिए एक छोटा सा छेद था। कई हिंदू और सिख हमारे यहाँ क्लर्क के रूप में काम करते थे, और किराए पर रखे गए मुस्लिम ऊँट चालक हमारा सामान बाज़ारों तक पहुँचाते थे। कई मुस्लिम परिवार हमारे ऋणी थे।

हमारे परिवार की समृद्धि एक किंवदंती से जुड़ी थी। कहा जाता है कि एक साल जब साल्ट रेंज में भारी बारिश हुई, तो बाढ़ का पानी चट्टानी पहाड़ी से नीचे बह आया और अपने साथ शैदा पीर नाम के एक मुस्लिम संत को बहा ले गया, जो अपनी झोपड़ी की छप्पर वाली छत पर चढ़ गए थे। जब तक वे हाडाली पहुंचे, उनके पास केवल एक धोती ही बची थी। मेरे दादा, सुजान सिंह ने उन्हें कपड़े दिए, मुस्लिम कब्रिस्तान के पास उनके लिए एक झोपड़ी बनवाई और उन्हें भोजन भेजा। शैदा पीर ने उन्हें आशीर्वाद दिया: 'मैं तुम्हारे दोनों बेटों को दिल्ली और लाहौर की चाबियां दूंगा। वे समृद्ध होंगे।' और वे वास्तव में समृद्ध हुए - मेरे पिता दिल्ली में एक भवन निर्माण ठेकेदार के रूप में; और उनके छोटे भाई उज्ज्वल सिंह विभाजन-पूर्व पंजाब के सबसे बड़े जमींदारों में से एक बने। बाद में वे विधानसभा सदस्य बने और स्वतंत्रता के बाद पंजाब के वित्त मंत्री और फिर राज्यपाल बने। उन्होंने तमिलनाडु के राज्यपाल के रूप में अपना करियर समाप्त किया।

हम हदाली के सिख और हिंदू मुसलमानों के साथ एक असहज लेकिन शांतिपूर्ण संबंध में रहते थे। हालांकि हम उनके बड़ों को चाचा या चाची कहकर संबोधित करते थे, जैसे वे हमारे बड़ों को करते थे, लेकिन हम शादियों और मृत्यु के अवसरों को छोड़कर शायद ही कभी एक-दूसरे के घर जाते थे। हम मुसलमानों से थोड़ा आदर रखते थे क्योंकि वे हमसे संख्या में अधिक और कद-काठी में भी बहुत बड़े थे। सौभाग्य से, वे विभिन्न कुलों में बंटे हुए थे - वद्दहल, मस्तियाल, अवन, जंजुआ, नून और तिवाना - और अक्सर जमीन को लेकर आपस में मुकदमेबाजी करते रहते थे, जिसमें अक्सर एक-दूसरे की हत्या भी हो जाती थी। हम उनसे सुरक्षित दूरी बनाए रखते थे।

मुझे याद है, मैं उनके आदमियों को गाँव की गलियों में इतराते हुए देखता था। उनमें से ज़्यादातर छह फ़ीट से भी लंबे थे और मानो कोड़े की रस्सी से बने हों। उनके तेल लगे बाल कानों के पीछे घुंघराले होते थे, जिनमें छोटी लकड़ी या हाथीदांत की कंघियाँ लगी होती थीं। वे आम तौर पर भेड़ों या ऊँटों की ऊन से सूत बनाने के लिए चरखे चलाते थे, या अपने ढँकदार बाज़ों

को सैर के लिए बाहर ले जाते थे। उनकी औरतें भी लंबी, पतली और सुडौल थीं। वे अपने सिर पर पानी से भरे दो घड़े संतुलित करके उठा सकती थीं, और एक घड़ा दाहिनी बांह और कमर के बीच दबाकर रखती थीं। पानी उनकी मलमल की कमीज़ों और टखनों तक लंबी लुंगी पर गिरता था, जिससे उनके सुडौल, आकर्षक, काले निप्पल वाले स्तनों के साथ-साथ उनके मांसल, गड्ढों वाले नितंबों की आकृतियाँ भी दिखाई देती थीं। वे ज़मीन से नज़रें नहीं उठाती थीं, क्योंकि उन्हें पता था कि आदमी उन्हें घूर रहे हैं। हालाँकि मैं मुश्किल से चार साल का था, मैं एक पक्का ताक-झाँक करने वाला बन गया था।
हदाली में कुछ भी खास रोमांचक नहीं हुआ। जीवन नीरस दिनचर्या में बीतता था। मेरी दादी भोर से बहुत पहले उठकर भैंसों का दूध दुहती थीं और उसे मिट्टी के बर्तन में भरकर भैंस के गोबर के सुलगते अंगारों पर रखती थीं। फिर वे पड़ोस की महिलाओं के साथ शौच के लिए बाहर जाती थीं। वे कुएँ से दो बाल्टी पानी भरकर लाती थीं और तारों की रोशनी में सुबह की प्रार्थना, जपजी, बुदबुदाते हुए स्नान करती थीं। अगले आधे घंटे तक वे मक्खन और छाछ मथती रहीं और साथ-साथ प्रार्थनाएँ भी करती रहीं। फिर वे मुझे जगाती थीं। मुझे छत पर शौच करने की अनुमति थी, जहाँ तेज़ धूप में सब कुछ झुलस जाता था। मैंने स्नान किया। उन्होंने मेरे लंबे बालों में कंघी की और चोटी बनाई: सिख होने के नाते हम बाल नहीं कटवाते थे। मैंने अपनी पीली गाचनी से सनी लकड़ी की तख्ती, सरकंडे की कलम और मिट्टी की स्याही की दवात निकाली। उसने पिछली शाम के खाने से बची हुई बासी चपातियों का एक बंडल उठाया और उन्हें अपने दुपट्टे में लपेट लिया। हम साथ में धर्मशाला-सह-विद्यालय के लिए निकल पड़े। हमारे दरवाजे पर आवारा कुत्ते हमारा इंतज़ार कर रहे थे। हम बारी-बारी से चपाती के टुकड़े तोड़कर कुत्तों को फेंकने लगे। वापसी के लिए हमने कुछ चपातियाँ बचाकर रख लीं।
धर्मशाला हमारे घर से थोड़ी ही दूरी पर थी। मुझे भाई हरि सिंह के हवाले कर दिया गया, जो ग्रंथी और शिक्षक दोनों थे। मैं अन्य हिंदू और सिख लड़कों के साथ ज़मीन पर बैठ गया और लयबद्ध तरीके से पहाड़े जपने लगा। मेरी दादी बड़े हॉल में गईं, जहाँ एक छोटी मेज़ पर ग्रंथ साहिब की तीन प्रतियाँ अगल-बगल रखी थीं। मेज़ के नीचे उपासकों द्वारा छोड़े गए तरह-तरह के चश्मे रखे थे, जिन्हें वे अपने हिसाब से इस्तेमाल कर सकते थे। पहाड़े जपने के बाद, भाई हरि सिंह ने हमें नकल करने के लिए एक तख्ते पर गुरुमुखी वर्णमाला के अक्षर लिखे। उम्र के कारण झुके होने के बावजूद, उनका स्वभाव बहुत गुस्सैल था। लकड़ी की पट्टियों पर कोई भी गलती देखते ही वे हमारी पीठ पर ज़ोरदार लातों से मारते थे। शुक्र है, पाठ एक घंटे से ज़्यादा नहीं चला। मैं और मेरी दादी वापस पैदल चल दिए, और गाँव के कुत्तों को बची हुई सारी चपातियाँ दे दीं। जब वह फर्श साफ करने, बिस्तर समेटने और दोपहर का खाना पकाने में व्यस्त थी, तब मैं अपनी उम्र के लड़कों के साथ हॉप-स्कॉच या टिप-कैट (गल्ली-डुंडा) खेलने के लिए बाहर चला जाता था।
दोपहर में हम क्या करते थे, यह साल के समय पर निर्भर करता था। रेगिस्तानी सर्दियाँ बहुत ठंडी और दिन बहुत छोटे होते थे। करने को बहुत कुछ होता था और समय बहुत कम। लेकिन असली सर्दी मुश्किल से चालीस दिन ही चलती थी। एक

छोटी सी बसंत ऋतु के बाद, लंबी गर्मी आ जाती थी। दिन-ब-दिन गर्मी बढ़ती जाती थी और तापमान 125°F तक पहुँच जाता था। बारिश लगभग कभी नहीं होती थी। हमारे तोबा (तालाब) साल्ट रेंज से आने वाले खारे बारिश के पानी से भरे रहते थे। कुछ पानी कुओं में रिस जाता था। ईंट और सीमेंट से बने इन कुओं में से केवल कुछ ही पीने योग्य पानी देते थे जो इंसानों के पीने लायक होता था। किसी कारण से खारे पानी वाले कुओं को पुरुष 'खारा खू' कहते थे; मीठे पानी वाले कुओं को स्त्रीलिंग 'मिट्टी खूई' कहते थे। हममें से ज्यादातर लोगों के दाँत हल्के पीले रंग के थे और ऊपरी दाँतों पर एक भूरी रेखा क्षैतिज रूप से बनी हुई थी। इसका कारण हमारे द्वारा पिया जाने वाला अशुद्ध पानी माना जाता था। साल का कोई भी मौसम हो, मेरी दादी दोपहर में चरखा चलाते हुए गुरु अर्जुन की सुखमनी (शांति का भजन) का जाप करती रहती थीं। मेरी दादी की यादें चरखे की गूंज और प्रार्थनाओं की गुनगुनाहट से गहराई से जुड़ी हुई हैं।

गर्मी के लंबे महीने किसी परीक्षा से कम नहीं थे। गर्म रेत पैरों के तलवों को जला देती थी: एक घर से दूसरे घर जाते समय हमें दीवारों से सटकर चलना पड़ता था ताकि उनकी छाया में चल सकें, और उन बच्चों द्वारा छोड़े गए मल के धब्बों से बड़ी चतुराई से बचना पड़ता था जिन्होंने छाया को शौच करने के लिए सबसे ठंडी जगह माना था। हम दिन का अधिकांश समय घर के अंदर गपशप करते हुए या ऊंघते हुए मक्खियों को भगाते हुए बिताते थे। दोपहर ढलने के बाद ही ऊंटों और भैंसों को पानी पिलाने के लिए टोबा में ले जाया जाता था। भैंसें रुके हुए पानी के तालाबों में लोटपोट होकर सबसे खुश होती थीं। लड़के उन्हें कूदने के लिए इस्तेमाल करते थे। सूर्यास्त के समय मवेशियों को वापस लाया जाता था, भैंसों का दूध निकाला जाता था और चूल्हे जलाए जाते थे। पूरा गाँव ऊँट के कांटे की घास जलाने और रोटी पकाने की खुशबू से महक उठता था। लड़के समूह बनाकर रेत के टीलों में शौच करने जाते थे। जब हम ऐसा कर रहे होते थे, तो गोबर के कीड़े हमारे मल को छोटी-छोटी गोलियों में इकट्ठा करके रेत में बने अपने बिलों में लुढ़का देते थे। हमारे पास खुद को साफ करने का एक अनोखा तरीका था। हम एक कतार में बैठे थे। एक संकेत मिलते ही हम अपने पैर उठाते और हाथों से धक्का देकर जीत की ओर बढ़ते। घीसी नाम की इस दौड़ के अंत तक, हमारे नितंब साफ तो हो जाते थे, लेकिन रेत से भर जाते थे। बाद में, रात में और चांद के शुरुआती चरणों में, हम कोटला चापाकी खेलते थे, जो अंधे आदमी के खेल का हमारा अपना संस्करण था। रेत के टीलों पर पूर्णिमा की रातें मेरी यादों में बसी हुई हैं। हम एक-दूसरे का पीछा करते हुए तब तक दौड़ते रहते थे जब तक हमें रात के खाने के लिए घर नहीं बुलाया जाता था। एक ही धमकी काम करती थी कि कहीं डाकू हमें अगवा न कर लें। हम तोरा और सुल्ताना जैसे कुख्यात अपराधियों के नाम जानते थे, जिन्होंने अपने द्वारा किए गए हत्याओं और अपहरणों की संख्या के कारण ग्रामीण इलाकों में आतंक फैला रखा था।

डाकुओं के बाद हमें सबसे ज्यादा डर रेत के तूफानों से लगता था। हम धूल उड़ाने वाली हवाओं और उठते धूल के बवंडरों के आदी थे, लेकिन ये रेतीले तूफान या झक्खर कुछ और ही थे। ये इतने भयंकर रूप से आते थे कि हमारे पास जमीन पर सिर

घुटनों के बीच रखकर बैठने के अलावा कोई चारा नहीं होता था ताकि रेत हमारी नाक, आंखों और कानों में न जाए। कई बार इतनी ज्यादा रेत उड़ती थी कि रेल पटरी उसके नीचे दब जाती थी और जब तक उसे साफ नहीं किया जाता था, कोई ट्रेन नहीं चलती थी। लेकिन इससे हवा में मौजूद मक्खियां और कीड़े-मकोड़े साफ हो जाते थे और अगले एक-दो दिन तक हवा साफ और ठंडी रहती थी।

शाम का खाना खाने के बाद हम सोने के लिए छत पर चले गए। मेरी दादी, जो पहले ही अपनी शाम की नमाज़, रेहरास पढ़ चुकी थीं, ने दिन की आखिरी नमाज़, कीर्तन सोहिला पढ़ी। उन्होंने मेरी पीठ पर मलाई लगाई। अगर उनकी कोमल मालिश से मुझे नींद नहीं आती, तो वे मुझे हमारे गुरुओं के जीवन से जुड़ी कहानियाँ सुनातीं। अगर मैं तब भी पूरी तरह जागा रहता, तो वे तारों की ओर इशारा करते हुए मुझे डांटतीं: 'देखते नहीं क्या समय हो गया है? अब चुप हो जाओ।'

गर्मी के मौसम का सबसे सुहावना समय सुबह का होता था। रेगिस्तान पर ठंडी हवा चलती थी, जो हमारे आंगनों में उगे गुलाब और चमेली की खुशबू बिखेरती थी। यह आधा सोने और कल्पनाओं में खो जाने का समय था। लेकिन यह पल बहुत ही कम समय के लिए होता था। सूरज तेज धूप के साथ निकलता था, और अपने साथ मक्खियाँ और कौवों की कर्कश कांव-कांव लेकर आता था। उर्दू कवि जिस सुखद आधे घंटे को 'बाद-ए-नसीम' कहते हैं, वह पल अचानक ही समाप्त हो जाता था।

हदाली में रोज़मर्रा की नीरस दिनचर्या से राहत देने वाली कोई खास घटना नहीं होती थी। हर दूसरे साल एक-दो हत्याएँ हो जाती थीं। लेकिन चूंकि हत्याएँ केवल मुसलमानों तक ही सीमित थीं, इसलिए हम कभी भी उनसे ज़्यादा परेशान नहीं होते थे। साल में एक बार रेलवे स्टेशन के पास खुले मैदान में टेंट गाड़ने की प्रतियोगिता होती थी। प्रतियोगी अपने घोड़ों पर कतार में खड़े होते और एक संकेत मिलते ही भाले लहराते हुए और 'अल्लाह बेली हो' (हे अल्लाह, मेरा सबसे अच्छा दोस्त) चिल्लाते हुए खंभों की ओर सरपट दौड़ पड़ते। खंभों को भेदने के बाद वे जीत का जश्न मनाते हुए अपने भाले लहराते थे। वे अक्सर गुजरती हुई रेलगाड़ियों के साथ दौड़ लगाते और तब तक उनके साथ-साथ चलते रहते जब तक उनके घोड़े हाँफने न लगें। मुझे याद है जब पहली बार एक सिख साइकिल लेकर हदाली आया था। उसने शेखी मारी कि वह किसी भी घोड़े को पछाड़ देगा। इससे पहले कि कोई घुड़सवार उसकी चुनौती स्वीकार कर पाता, हम लड़कों ने उससे मुकाबला करने का फैसला किया। हदाली में कोई पक्की सड़क नहीं थी और साइकिल सवार अभी भी पहियों पर ठीक से चल नहीं पा रहा था। उसका बहुत बुरा हाल हुआ क्योंकि उसकी साइकिल रेत में फंस गई। वह पूरे गांव में हंसी का पात्र बन गया और उसके बाद उसे 'साइकल बहादुर' - साइकिल का बहादुर आदमी - की उपाधि से चिढ़ने लगा।

दिल्ली आने के बाद मैं तीन बार हदाली लौटा। पहली बार, ग्रंथ साहिब पढ़ने की दीक्षा लेने के लिए। मुझे, मेरे बड़े भाई और एक चचेरे भाई को सभा के सामने जपजी जोर से पढ़ने के लिए कहा गया और शपथ दिलाई गई कि हम प्रतिदिन कम से

कम एक भजन पढ़ेंगे। हममें से कोई भी अपना वादा लंबे समय तक नहीं निभा सका। अगली बार मैं लाहौर में वकालत करते समय वहाँ गया। मैं अपने एक मित्र के साथ हदाली गया, जिसका चचेरा भाई नमक की खानों का प्रबंधक था। रेलवे स्टेशन के पास पहुँचते ही मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैंने घुटने टेककर धरती चूमने की इच्छा को दबाया। मैं धर्मशाला और अपने जन्मस्थान वाले घर तक गया। वायसराय के अंगरक्षकों में एक रिसालदार ने मुझे पहचान लिया और गाँव में यह खबर फैला दी। जब मैं वहाँ से निकला, तो मुझे विदाई देने के लिए भीड़ जमा थी।

हदाली की मेरी आखिरी यात्रा 1987 की सर्दियों में हुई थी। 1947 में भारत के विभाजन ने वहाँ की आबादी को पूरी तरह बदल दिया था। एक भी सिख या हिंदू नहीं बचा था। हमारे घरों में हरियाणा से आए मुस्लिम शरणार्थी बस गए थे। हमारी पारिवारिक हवेली तीन बराबर हिस्सों में बँट गई थी, जिनमें से प्रत्येक में रोहतक से आए मुस्लिम शरणार्थी रहते थे। हदाली की एक नई पीढ़ी, जिसने कभी किसी सिख को नहीं देखा था, उस समय लगभग चालीस वर्ष की आयु के थे। मुझे इस बात का यकीन नहीं था कि वे मेरा कैसा स्वागत करेंगे। इस पीढ़ी से मेरा एकमात्र संपर्क ढाका के युद्धबंदी शिविर में 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में बंदी बनाए गए कुछ युवा सैनिकों से हुआ था। मैंने उनसे संपर्क किया था और उनके माता-पिता को पत्र लिखकर बताया था कि वे सुरक्षित और स्वस्थ हैं।

मैं लाहौर से गाड़ी चलाकर दोपहर के शुरुआती समय में हदाली पहुँचा। सड़क किनारे गाँव के बड़े-बुजुर्ग चाँदी और सोने की मालाएँ लिए मेरा इंतज़ार कर रहे थे, जिन पर उर्दू में 'खुश आमदीद' लिखा था। मैंने जिन लोगों से हाथ मिलाया, उनमें से किसी को भी मैं नहीं पहचानता था। मुझे हाई स्कूल के मैदान तक ले जाया गया, जहाँ एक मंच बनाया गया था जिस पर पाकिस्तान का झंडा लहरा रहा था। 2,000 से अधिक हदालीवासी कुर्सियों और ज़मीन पर पंक्तियों में बैठे थे। टूटी-फूटी, अलंकृत उर्दू में भाषण दिए गए, जिनमें मुझे हदाली का बेटा बताया गया। मेरा दिल कृतज्ञता से भर गया। मुझे लगा कि मैं खुद को मूर्ख साबित करूँगा। और मैंने किया भी। मैंने अच्छी शुरुआत की। मैंने उनसे गाँव की बोली में बात की। मैंने कहा कि जिस तरह वे मक्का और मदीना की तीर्थयात्रा के लिए उत्सुक रहते हैं, उसी तरह मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण मग़रिब (शाम की नमाज़) के समय हदाली लौटना ही मेरा हज (बड़ा तीर्थयात्रा) और उमरा (छोटा तीर्थयात्रा) है। और जिस प्रकार पैगंबर मुहम्मद ने मक्का में विजय प्राप्त करने के बाद अपनी पहली रात गलियों में घूमते हुए और अपनी पहली पत्नी की कब्र के पास प्रार्थना करते हुए बिताई थी, उसी प्रकार मैं भी हदाली की गलियों में अकेले घूमने और अपने जन्मस्थान के घर की दहलीज पर सिर रखकर विश्राम करने से ज्यादा कुछ नहीं चाहता था। फिर मैं भावनाओं से अभिभूत हो गया और फूट-फूट कर रोने लगा। वे समझ गए और मुझे क्षमा कर दिया। पूरा गाँव मेरे पीछे-पीछे आया और मुझे मेरे पुराने घर तक पहुँचाया गया। आतिशबाजी की गई; छतों पर खड़ी महिलाओं ने मुझ पर गुलाब की पंखुड़ियाँ बरसाईं। यह कपटपूर्ण झूठ किसने फैलाया था कि मुसलमान और सिख कट्टर दुश्मन हैं? हदाली के मुसलमानों, हिंदुओं और सिखों के बीच किसी प्रकार

की शत्रुता नहीं थी। मुसलमानों ने सिख-हिंदू धर्मशाला को अछूता छोड़ दिया था क्योंकि वह उनके दिवंगत रिश्तेदारों का पूजा स्थल था।

रोहतक के जिन परिवारों ने कभी हमारे घर रहे उस हवेली को रंग-बिरंगे गुब्बारों और कागज़ की झालरों से सजाया था। गाँव के उन बुजुर्गों ने, जो कभी मेरे पिता को जानते थे, मेरे सम्मान में एक भव्य भोज का आयोजन किया था। हदाली में मुझे जो कुछ भी दिखाई दिया, उसमें से बहुत कम ही ऐसा था जिसे मैं पहचान सकूँ। रेत के टीले, जो मेरे बचपन के खेल के मैदान हुआ करते थे, गायब हो चुके थे। एक नहर ने रेगिस्तान को हरा-भरा कर दिया था। तोबे सरकंडों से भरे दलदल में बदल गए थे। प्रथम विश्व युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों की सेवा को याद करने वाली संगमरमर की पट्टिका हटा दी गई थी। मैं सूर्यास्त से कुछ देर पहले हदाली से निकल गया, यह जानते हुए कि मैं अब कभी वापस नहीं लौटूँगा।

2. शैशवावस्था से किशोरावस्था तक: स्कूली वर्ष

पांच से पंद्रह वर्ष की आयु के बीच के दस वर्ष संभवतः किसी व्यक्ति के मन और शरीर के विकास में सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। परिवार के सदस्य जो कभी भावनात्मक सहारा देते थे, धीरे-धीरे उनकी जगह बाहरी लोग ले लेते हैं जो व्यक्तित्व को आकार देने में अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यौन इच्छा दिन-प्रतिदिन प्रबल होती जाती है। आप उसे व्यक्त करने के लिए संघर्ष करते हैं। आप असमंजस में होते हैं और यह नहीं जानते कि ऐसा कैसे करें। सहपाठी, शिक्षक, घरेलू नौकर, चचेरे भाई-बहन और बड़े रिश्तेदार आपको सही या गलत दिशा देते हैं। आप समलैंगिक और सगोत्रीय इच्छाओं से गुज़रते हैं। आप चिंता से जननांगों के आसपास बाल उगते हुए देखते हैं। और अचानक एक दिन, जब आप मनोरंजन कर रहे होते हैं, आपके शरीर में एक अजीब सी सिहरन उत्पन्न होती है। यह आनंदमय भी होती है और पीड़ादायक भी। यदि आप पुरुष हैं, तो वीर्य आपके लिंग से बाहर निकलता है और आपका पूरा शरीर कांप उठता है। आप पुरुष बन चुके होते हैं, महिलाओं को गर्भवती करने और पिता बनने में सक्षम।

इस अध्याय में मैं इन्हीं प्रारंभिक वर्षों के बारे में लिखूंगा।

मुझे ठीक से याद नहीं कि मेरी नानी और मैं कब अपने माता-पिता, भाइयों और बहन के साथ दिल्ली आए थे। तब तक मेरी माँ एक और बेटे और बेटी को जन्म दे चुकी थीं। प्रथम विश्व युद्ध ने हमारे परिवार को व्यापार, ज़मींदारी और ठेकेदारी से हटाकर उद्योग में हाथ आज़माने के लिए प्रेरित किया था। सैनिकों की भर्ती और युद्ध कोष के लिए चंदा जुटाने के प्रयासों के लिए, परिवार को नहरों से सिंचित ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़े दिए गए थे। मियां चन्नू और खानेवाल (अब पाकिस्तान के मुल्तान जिले में) के बीच एक बड़ा टुकड़ा था। इन दोनों के बीच स्थित कोट सुजान सिंह नाम का एक छोटा रेलवे स्टेशन आज भी परिवार की मौजूदगी का प्रतीक है। लायलपुर जिले (अब फैसलाबाद, पाकिस्तान) में जरनवाला के पास उन्हें ज़मीन का एक और टुकड़ा दिया गया था। मेरे दादा और उनके दोनों बेटों ने इन कस्बों में कपास की ओटाई और कताई मिलें और तेल प्रेस स्थापित किए। मेरे चाचा उज्ज्वल सिंह, जो परिवार में कॉलेज जाने वाले और स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त करने वाले पहले व्यक्ति थे, को पंजाब में ज़मीनों और मिलों का प्रभार सौंपा गया था। मेरे पिता भवन निर्माण ठेकेदार बन गए। मानो इतना ही काफी नहीं था, उन्होंने कपड़ा व्यवसाय में भी कदम रखा। उन्होंने दिल्ली की सब्जी मंडी के पास एक सूती मिल खरीदी। मूल रूप से इसका नाम जमुना मिल्स था, जिसे बाद में एक विशिष्ट सिख नाम दिया गया: खालसा कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स। हम प्रवेश द्वार के ऊपर एक अपार्टमेंट में रहने लगे। मिल अपने पिछले मालिकों के अधीन अच्छा प्रदर्शन नहीं कर रही थी; मेरे दादा और पिता के प्रबंधन में तो हालत और भी खराब हो गई। उन्हें एक बड़ी मिल चलाने का कोई अनुभव नहीं था और उनके पास पुरानी मशीनरी को नई मशीनरी से बदलने के लिए पर्याप्त नकदी भी नहीं

थी। मिल अक्सर बंद रहती थी। ठेकेदारी के व्यवसाय से होने वाली उनकी सारी कमाई इस मिल के नुकसान में खर्च हो जाती थी। इससे परिवार दिवालिया होने की कगार पर आ गया। 1919 में एक आग ने मिल के अधिकांश हिस्से को राख कर दिया। यह पूरी तरह संभव है कि बीमा राशि प्राप्त करने के लिए आग जानबूझकर लगाई गई थी।

कपड़ा उद्योग के बंद होने के साथ ही पुराने शहर से हमारा नाता भी टूट गया। हम उस जगह के पास रहने लगे जहाँ मेरे पिता ने नई दिल्ली बनने वाले क्षेत्र में इमारतें बनवाने का काम शुरू किया था। हालाँकि, जब मैंने स्कूल जाना शुरू किया, तब भी हम मिल के प्रवेश द्वार के ऊपर ही रह रहे थे।

मुझे नहीं पता कि मेरे पिता ने हमारे लिए वह खास स्कूल क्यों चुना। दिल्ली के कुछ पुराने और संपन्न निवासियों से उनकी जान-पहचान हो गई थी। उनमें राय बहादुर लाला सुल्तान सिंह और उनके बेटे रघुबीर सिंह का जैन परिवार भी शामिल था। शहर में उनकी काफी संपत्ति थी। रघुबीर सिंह को व्यापार में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने सेंट स्टीफंस कॉलेज से कला की डिग्री ली थी और वहां के ईसाई प्रिंसिपल एस.के. रुद्र के कट्टर प्रशंसक बन गए थे। कॉलेज में पढ़ते समय, उन्हें एक निजी शिक्षक ने पढ़ाया था जिसके आतंकवादियों से संबंध थे। बाद में, इस शिक्षक को 1912 में वायसराय लॉर्ड हार्डिंग की हत्या की साजिश रचने के आरोप में दोषी ठहराया गया और फांसी दे दी गई। युवा रघुबीर सिंह राष्ट्रवादी बन गए और उन्होंने अपना जीवन ऐसे भारतीयों की नई पीढ़ी तैयार करने के लिए समर्पित करने का फैसला किया जो देशभक्त होने के साथ-साथ पश्चिमी सभ्यता से भी परिपूर्ण हों। उन्होंने अपने पिता को राजी कर लिया कि वे उन्हें मुगलकालीन किले की पुरानी दीवार के पास स्थित दरियागंज में स्थित उनकी विशाल हवेली को स्कूल में बदलने की अनुमति दे दें। लगभग उसी समय, उनकी मुलाकात बंगाली ईसाई महिला कमला बोस से हुई, जो कलकत्ता से आकर स्कूल की प्रिंसिपल बनने के लिए तैयार हो गई। जल्द ही उनका कमला बोस से गहरा भावनात्मक लगाव हो गया। उनकी पत्नी, जिनसे उन्हें दो बेटे और एक बेटी हुई थी, कद में छोटी और कम पढ़ी-लिखी थीं और उन्हें कोई साथ नहीं देती थीं। हालांकि कमला बोस खूबसूरत नहीं थीं, उनकी पत्नी की तरह कद में छोटी और सांवली थीं, लेकिन वे उनसे कहीं अधिक पढ़ी-लिखी थीं। उन्होंने उन्हें वह सब दिया जो वे एक महिला में खोज रहे थे - बौद्धिक प्रेरणा और सार्थक मित्रता। दोनों ने मिलकर एक ऐसे स्कूल की स्थापना की जो भारत के सर्वश्रेष्ठ स्कूलों में शुमार होने वाला था: यह अंग्रेजों द्वारा कुलीन वर्ग के बेटों के लिए स्थापित किए गए नकली सरकारी स्कूलों की तुलना में कहीं अधिक भारतीय था और अन्य शिक्षण संस्थानों की तुलना में कहीं अधिक उदार था।

इस विद्यालय में महात्मा गांधी, कवि रवींद्रनाथ टैगोर, डॉ. अंसारी, मौलाना आजाद, सरोजिनी नायडू और पंडित नेहरू जैसे राष्ट्रवादी आए थे। कमांडर-इन-चीफ लॉर्ड चेटवुड, रेवरेंड सी.एफ. एंड्रयूज और कई अन्य प्रतिष्ठित अंग्रेज भी इस विद्यालय में आए थे। विद्यालय के स्टाफ में कुछ अंग्रेज महिलाएं भी थीं। यह दिल्ली का पहला सहशिक्षा विद्यालय था। हालांकि शिक्षा

का माध्यम अंग्रेजी था, संस्कृत, हिंदी और उर्दू जैसी भारतीय भाषाएं भी पढ़ाई जाती थीं। नियमित पाठ्यक्रम के अलावा, विद्यालय में संगीत, चित्रकला, बढ़ईगिरी, घुड़सवारी, स्काउटिंग, एक ब्रिटिश सार्जेंट की देखरेख में सैन्य अभ्यास और हॉकी और फुटबॉल जैसे टीम खेलों की सुविधा भी उपलब्ध थी। रघुबीर सिंह और कमला बोस ने अपने बच्चे को कोई भव्य नाम देने के बजाय, इसे एक ऐसा नाम दिया जो इसके समय से आगे होने का अधिक सटीक वर्णन करता था - आधुनिक। मेरे दादाजी, जो लड़कों को महिलाओं द्वारा पढ़ाए जाने के सख्त खिलाफ थे, उनकी इच्छा के विरुद्ध मेरे पिता ने अपने दोनों बड़े बेटों का दाखिला इसी विद्यालय में कराया था। मेरे दादाजी केवल एक बार वार्षिक समारोह के लिए विद्यालय आए थे। जब उन्होंने अपने पोतों को सितार और एसराज बजाते देखा तो वे घृणा से चले गए। उन्होंने क्रोधित होकर पूछा, 'क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे बेटे मिरासी (लोक गायक) बनें?' इसके बाद वे हमेशा हमें रणमुरीद कहकर पुकारते थे—यानी नीच स्त्रियों के शिष्य।

हमें स्कूल की वर्दी पहनाई गई। यह उस समय के भारत में एक अनोखी बात थी। हमने गहरे नीले रंग की जैकेट और शॉर्ट्स पहनीं। जैकेट पर स्कूल का प्रतीक चिन्ह बना हुआ था - एक बरगद का पेड़ पानी के तालाब के ऊपर फैला हुआ था और उसके बगल में एक हंस खिले हुए कमल के फूल के पास तैर रहा था। उसके नीचे संस्कृत में स्कूल का आदर्श वाक्य लिखा था - 'नैं आत्मा बल हीनय न लभ्य' - यानी डरपोक मन कभी सत्य को नहीं जान सकता।
स्कूल और शहर के जीवन में ढलने में मुझे काफी समय लगा। इससे दादी के साथ मेरा करीबी रिश्ता और उन पर मेरी निर्भरता कमज़ोर हो गई। हालांकि मैं अब भी उनके साथ एक ही कमरे में रहता था, लेकिन नौकर-चाकर मुझे जल्दी-जल्दी तैयार करते, नहलाते, कपड़े पहनाते और नाश्ता कराते थे। फिर, एक नौकर के साथ हम दोनों भाई सब्जी मंडी टर्मिनल से ट्राम लेते और भीड़भाड़ वाले बाज़ारों से होते हुए जामा मस्जिद तक जाते। वहाँ हमें तांगे में बिठाया जाता जो हमें दरियागंज स्थित हमारे स्कूल तक ले जाता। हम देर शाम घर लौटते। रात का खाना खाते समय दादी मेरे पास बैठतीं और पूछतीं कि मैंने क्या सीखा। लेकिन वे मेरे होमवर्क में मेरी मदद नहीं कर पातीं और न ही मुझे नमाज़ पढ़ने के लिए मना पातीं।
मॉडर्न स्कूल की शुरुआत मात्र तीस विद्यार्थियों के साथ हुई थी, जिनमें सत्ताईस लड़के और तीन लड़कियाँ थीं। लड़कियों में सबसे बड़ी एक सिख इंजीनियर की बेटी थी। उसका बड़ा भाई और दो चचेरे भाई उसके साथ आए थे। यही लड़की, कावल मलिक, दो दशक बाद इंग्लैंड में मेरे जीवन में फिर से आई और मेरी मंगेतर बनी, और फिर दिल्ली लौटने पर मेरी पत्नी बनी। दूसरी लड़की, रीता, रघुबीर सिंह की बेटी थी। वह अपने दो बड़े भाइयों के साथ स्कूल में दाखिला लिया। सबसे बड़ा भाई, प्रताप सिंह, मेरी कक्षा में था। तीसरी लड़की के बारे में मुझे उसके नाम, कौशल्या के अलावा कुछ भी याद नहीं है। इस

स्कूल में मेरे दस वर्षों के दौरान कुछ अन्य लड़कियाँ अपने भाइयों के साथ आईं और कुछ महीनों बाद चली गईं। मॉडर्न स्कूल नाममात्र का सहशिक्षा संस्थान था।

आम तौर पर यह माना जाता है कि स्कूल के साल जीवन के सबसे निश्चिंत और खुशहाल साल होते हैं। लेकिन मॉडर्न स्कूल में मेरा समय ऐसा नहीं था। मैं कमला बोस के डर, बार-बार होने वाली परीक्षाओं और स्कूल के उन गुंडों के डर में जीती थी जो मुझे आसान निशाना समझते थे। मेरी शुरुआत ही खराब रही। ज्यादातर लड़के बड़े शहरों से थे और उन्हें थोड़ी-बहुत अंग्रेजी आती थी। मैं एक छोटे से गांव से आई थी और सिर्फ अपने गांव की बोली बोल सकती थी। लड़कों को मेरा नाम हदाली बहुत मजेदार लगता था और वे मुझे बार-बार याद दिलाते रहते थे: 'तुमने कहा था कि तुम्हारा जन्म कहां हुआ था? हमें फिर से बताओ।' फिर मेरी दादी का दिया हुआ नाम खुशाल सिंह था। मुझे यह नाम पसंद नहीं था और मैंने इसे बदलकर खुशवंत रख लिया, ताकि यह मेरे भाई भगवंत के नाम से मिलता-जुलता हो। लड़कों को मेरे पहले नाम के बारे में पता चल गया - साथ ही उसके छोटे रूप, शाली के बारे में भी, जिसे मेरे माता-पिता मेरा उपनाम बनाकर रखते थे। उन्होंने इसका मजाक उड़ाना शुरू कर दिया। 'शाली शूली बाग दी मूली' — शाली या शूली नाम का लड़का किसी बगीचे में उगी मूली जैसा होता है। या फिर उन्होंने इसे बदलकर खुश, खुसरो या इससे भी बुरा, खुसरा कर दिया, जिसका मतलब हिजड़ा होता है। उन्हें यह भी पता चल गया था कि मेरी दादी मेरे बाल दही से धोती थीं और सुगंधित तेल की जगह मक्खन लगाती थीं। धूप में रखने के बाद मेरे बालों से बासी घी जैसी बदबू आती थी और मक्खियों का झुंड जमा हो जाता था। वे बारी-बारी से मेरे सिर को सूंघतीं, नाक बंद करतीं और चिल्लाते हुए भाग जातीं, 'उफ़! कितनी बदबू आ रही है! उसके सिर में तो जूँ भरी होंगी।' उनकी बात को सच साबित करने के लिए, एक दिन मिस बोस ने मेरी गर्दन पर एक जूँ रेंगती हुई देखी। मुझे एक चिट्ठी के साथ घर भेज दिया गया जिसमें लिखा था कि जब तक मेरे सिर से जूँ पूरी तरह साफ नहीं हो जातीं, तब तक मुझे स्कूल नहीं लौटना है और मेरी दादी से कहा गया था कि वे मेरे बाल दही से धोना और मक्खन लगाना बंद कर दें।

मेरे बड़े भाई के दिल्ली पहले आ जाने के कारण उन्हें इन अपमानों से मुक्ति मिल गई थी। कभी-कभी मुझे अपनी माँ और दादी से नफरत होती थी क्योंकि वे मुझे हंसी का पात्र बना देती थीं। मेरी परेशानियों में एक और बात जुड़ गई थी कि मैं पढ़ाई और खेल दोनों में ही अच्छा नहीं था। जिन विषयों में मैं अच्छा था, वे थे अंग्रेजी और भूगोल। विज्ञान, बीजगणित और ज्यामिति में तो मैं जैसे-तैसे पास हो गया। गणित तो मेरी कमजोरी ही थी। टर्म परीक्षाओं में मुझे कई बार शून्य अंक मिले। मैं जितना हो सके स्कूल से बंक मारता था। मनगढ़ंत बीमारियों का बहाना बनाकर मैं लालकुआं में एक दोस्त डॉक्टर द्वारा चलाए जा रहे औषधालय में दवाइयाँ खाने जाता और सुबह की कक्षाएँ छोड़ देता था। जब इसका पता चला तो मुझे कड़ी डांट पड़ी।

मॉडर्न स्कूल ने दावा किया था कि उसने शारीरिक दंड समाप्त कर दिया है। लेकिन मिस बोस दंड देने में कोई कसर नहीं छोड़ती थीं। वह शरारती लड़कों को हथेलियाँ आगे करने को कहतीं और अपने पैर से चलने वाले स्केल से उन पर ज़ोर से मारतीं—कभी-कभी वह हमें हाथ घुमाकर स्केल के नुकीले किनारे से हथेलियों के पिछले हिस्से पर मारने को कहतीं। उनके उदाहरण का अनुसरण अन्य शिक्षकों ने भी किया। कुछ थप्पड़ मारने में विश्वास रखते थे, तो कुछ कान खींचने में। हमारे ड्रिल मास्टर जैसे ज़्यादा रूढ़िवादी शिक्षक हमें झुकाकर बेंत से हमारे नितंबों पर मारते थे। मुझे शारीरिक दंड का काफ़ी अनुभव हुआ। मेरे मन पर इसका कोई गहरा निशान नहीं रहा, सिवाय उस एक बार के जब मुझे एक ऐसे अपराध के लिए सज़ा मिली जो मैंने किया ही नहीं था। एक शौचालय में कुछ अश्लील लिखा हुआ मिला। उस दोपहर शौचालय गए लड़कों से पूछताछ की गई और उन्हें ब्लैकबोर्ड पर एक वाक्य लिखने को कहा गया। हम जानते थे कि अपराधी मेरी कक्षा का अमरजीत सिंह था। वह इतना चालाक था कि उसने वाक्य को बड़े अक्षरों में लिखा था। मैंने उसे अपनी सामान्य लिखावट में लिखा। शिक्षकों के पैनल ने फैसला किया कि मेरी लिखावट शौचालय में मिली लिखावट से सबसे ज़्यादा मिलती-जुलती थी। मुझे पूरे स्कूल के सामने बेंत से पीटा गया। अमरजीत सिंह कुछ महीनों बाद स्कूल छोड़कर चला गया। वह सेंट स्टीफंस कॉलेज में मेरी ज़िंदगी में फिर आया, जहाँ उसे एक टर्म परीक्षा में नकल करते हुए पकड़ा गया और एक साल के लिए कॉलेज से निकाल दिया गया। फिर भी, उसने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया और एक अच्छी नौकरी पा ली। उसकी बहन ने उस लड़की के सबसे बड़े भाई से शादी की जो बाद में मेरी पत्नी बनी।

विद्यार्थियों को उनकी उम्र के अनुसार अलग-अलग कक्षाओं में बाँटने में तीन-चार साल लग गए। मेरा बड़ा भाई तीन बच्चों के पहले बैच में था। अगले बैच में चार बच्चे थे। मैं पाँच बच्चों के तीसरे बैच में था, जिसमें रघुबीर सिंह का बड़ा बेटा प्रताप और दिल्ली विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार का बेटा अशोक सेन भी शामिल थे। फिर आनंद नाथ थे, जो दंत चिकित्सक बने, सतिंदर थे, जिन्होंने बाद में चिकित्सा की पढ़ाई की, जब मैं लंदन में था, और एम____, जो कमला बोस के एक दोस्त का बेटा और उनका चहेता भी था। वह स्कूल का गुंडा था। हमारी कक्षा में एकमात्र अच्छा छात्र आनंद नाथ था। बाकी सब पढ़ाई या खेल में मुझसे बेहतर नहीं थे। प्रताप रेलगाड़ियों की समय सारिणी याद करने में माहिर था, बाकी किसी चीज़ में नहीं। अशोक को गणित में हमेशा शून्य अंक मिलते थे और बाकी विषयों में वह मुझसे थोड़ा ही कमज़ोर था। एम____ को पढ़ाई या खेल से कोई मतलब नहीं था और वह बस मौज-मस्ती में विश्वास रखता था। वह बहुत अकड़ू था - हम उसे मोटा कहते थे और उससे डरते थे। वह हम सब से यौन रूप से ज़्यादा विकसित था। हालांकि उसका लिंग छोटा था, फिर भी वह उत्तेजित होने पर उसे अपनी शॉर्ट्स से बाहर निकालने और दिखाने में ज़रा भी संकोच नहीं करता था। कई बार कमला बोस की भतीजी (जो उस समय लगभग बीस वर्ष की थी) द्वारा ली जा रही हमारी अंग्रेजी की कक्षा के दौरान, वह अपना हाथ अपनी शॉर्ट्स के अंदर डालता और अपनी भतीजी को घूरता हुआ अपने लिंग को सहलाता था। उस समय हममें से कोई भी

यह नहीं समझ पाता था कि वह क्या कर रहा है, लेकिन उसने हमारी महिला शिक्षिका को बहुत परेशान कर दिया था। मोटा का अपना ही नैतिक नियम था। अगर कोई गुदा मैथुन करवाना चाहता था, तो वह उसे गुदा मैथुन करवाता था। अगर कोई उसे गुदा मैथुन करवाना चाहता था, तो वह भी उतनी ही सहजता से करता था। जिन लोगों के साथ उसने ऐसा किया, उनमें हमारा स्काउट मास्टर भी था, जो सेंट स्टीफंस में पढ़ने वाला एक युवा पारसी था। कुछ अन्य लड़कों को बहकाने के बाद स्काउट मास्टर के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की गई। उसके खिलाफ गवाही देने वाले लड़कों में मोटा भी शामिल था। हालांकि मोटा हर तरह के कामों में शामिल था, लेकिन वह झूठ नहीं बोलता था।

मोटा का मुख्य निशाना अशोक सेन था, जिस पर वह पादने का आरोप लगाता था। वह स्कूल के पूरे समय उसे परेशान करता रहता था। वह उसे धक्का देता, गिरा देता और चिल्लाता, 'माफ़ करना, बूढ़े पादने वाले! तुम्हें देखा नहीं।' वह अशोक की कमीज़ को उसकी पैंट से बाहर खींचता, बिना किसी उकसावे के उसे घूंसा मारता और कहता, 'कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता था, बूढ़े!' बेचारा अशोक इतना कमज़ोर था कि पलटवार नहीं कर पाता था। कुछ बार 'बस करो!' चिल्लाने के बाद वह मदद के लिए शिक्षकों के पास भाग जाता।

कुछ साल बाद मोटा के कर्मों का हिसाब चुकाने का दिन आ गया। एक गर्मी की छुट्टियों में, हम छह लड़के, जिनमें मोटा भी शामिल था, शिमला जाने वाले रास्ते पर स्थित पहाड़ी रिसॉर्ट कसौली में एक हफ्ते की छुट्टी मनाने गए। हम लाला रघुबीर सिंह के घर 'शांतिकुंज' में ठहरे। चूंकि अशोक समझदारी से घर पर ही रुक गया था, इसलिए मोटा को अपना दूसरा शिकार ढूंढना था। उसने मुझे चुना। हालांकि वह मुझसे कहीं ज्यादा ताकतवर था, लेकिन मैं उससे तेज दौड़ सकता था। जब उसने मुझे मारा, तो मैंने भी उसे मारा और उसे दौड़ा-दौड़ाकर थका दिया। उसने बाकी लड़कों पर ध्यान देना शुरू कर दिया, जब तक कि हम और बर्दाश्त नहीं कर पाए। हमने तय किया कि अगर उसने हममें से किसी को भी छुआ, तो हम सब मिलकर उससे निपटेंगे। हमें ज्यादा देर इंतजार नहीं करना पड़ा, क्योंकि मोटा एक सनकी बदमाश था। कसौली में हमारी आखिरी सुबह उसने मुझे लॉन पर गिरा दिया। मैंने मदद के लिए चिल्लाया। चार लड़कों ने उस पर झपट्टा मारा और उसे जमीन पर गिरा दिया। एक उसकी टांगों पर बैठ गया, एक उसके पेट पर, और बाकी दो ने उसकी बांहें पकड़ लीं। फिर हमने उसे तब तक थप्पड़ और घूंसे मारे जब तक हमारे हाथ और उसके गाल दुखने लगे। उसने हमें गालियां दीं और अपने पेट के बल बैठे लड़के पर थूक दिया। हम सबने बारी-बारी से उसके चेहरे पर थूका। वह रोने लगा। हमने उसे चेतावनी देकर छोड़ दिया कि अगर उसने हममें से किसी को भी छूने की हिम्मत की तो उसे फिर से यही सलूक झेलना पड़ेगा।

वह कसौली से रोते-रोते और बदला लेने की कसम खाते हुए निकला। उसी शाम हम दिल्ली जाने वाली ट्रेन पकड़ने के लिए कालका के लिए बस में सवार हुए। मोटा हमसे पहले टैक्सी से वहाँ पहुँच गया था और प्लेटफार्म पर इधर-उधर घूम रहा था। उसने हमें पहचानने से इनकार कर दिया। हम तृतीय श्रेणी के डिब्बे में चढ़ गए; उसने अपने लिए द्वितीय श्रेणी का टिकट

खरीदा। हमने उसे दिल्ली रेलवे स्टेशन पर नहीं देखा। उसने कमला बोस से शिकायत की। हमने उन्हें घटना का अपना पक्ष बताया। हालाँकि वह उनकी पसंदीदा थीं, फिर भी वह हम सबको कड़ी फटकार लगाने के अलावा कुछ नहीं कर सकीं: चार के मुकाबले एक था। इस फटकार से मोटा की बदमाशी की आदत छूट गई। कसौली में जो हुआ था, वह पूरे स्कूल में फैल गया और यह बात चारों ओर फैल गई कि मोटा द्वारा छेड़छाड़ की गई कोई भी लड़की मदद के लिए हमारे पास आए। उसके बाद, वह बस मन ही मन हमें गालियाँ देता और उसके खिलाफ एकजुट होने के लिए हमें कायर कहता रहता। इंग्लैंड से लौटने के बाद हम दोस्त बन गए और हमने कई अनुभव साझा किए, जिनमें एक वेश्यालय की यात्रा भी शामिल थी। उस रोमांच के बारे में उचित स्थान पर चर्चा करेंगे।

स्कूल के दिन बहुत लंबे होते थे। हमें सुबह अंधेरा रहते ही जगा दिया जाता था, जल्दी-जल्दी नाश्ता कराया जाता था और जैसे-जैसे हम बड़े होते गए, हमें ट्रेन, तांगा, फाएटन या साइकिल से स्कूल भेज दिया जाता था। स्कूल में हमारी शुरुआत सुबह की प्रार्थना से होती थी, आमतौर पर जन गण मन, जो बाद में भारत का राष्ट्रगान बना। फिर संतों के कुछ अंश पढ़े जाते थे: रवींद्रनाथ टैगोर की कविता 'जहाँ मन भयमुक्त हो' अक्सर दोहराई जाती थी। इसके बाद पाँच मिनट का मौन ध्यान होता था। सुबह के समय गणित, अंग्रेजी, इतिहास और विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण विषय पढ़ाए जाते थे। शारीरिक शिक्षा के लिए एक छोटा सा अवकाश होता था। फिर हम दोपहर का भोजन एक विशाल हॉल में करते थे जिसका उपयोग भोजनालय के रूप में किया जाता था। दलिया और बैंगन के प्रति मेरी अरुचि इन्हीं भोजनों से शुरू हुई, जहाँ आपको परोसा गया सब कुछ खाना पड़ता था। हमें एक घंटे का आराम मिलता था। दोपहर में झपकी लेने की आदत स्कूल में ही बनी। दोपहर में हम आमतौर पर चित्रकारी, संगीत और बढ़ईगिरी करते थे। अंत में हॉकी या फुटबॉल जैसे टीम खेल होते थे। हम अंधेरा होने से पहले शायद ही कभी घर पहुँच पाते थे। हमें बहुत सारा होमवर्क दिया जाता था और घर पर खेलने या आराम करने के लिए बहुत कम समय मिलता था।

कुछ मामूली घटनाएँ मेरी याद में बस गई हैं। एक घटना प्रार्थना के बाद पाँच मिनट के ध्यान के दौरान घटी। अल्मोड़ा के दो लड़के हाल ही में स्कूल में दाखिल हुए थे। हमने अभी उनके नाम भी ठीक से नहीं जाने थे कि एक सुबह बड़े लड़के ने ज़ोरदार पाद मारकर मौन भंग कर दिया। दुनिया में कोई भी बच्चा ऐसी बात को हल्के में नहीं ले सकता। कुछ बच्चे हँसे, कुछ अपनी हँसी रोकने की कोशिश में खाँसने लगे। यहाँ तक कि कमला बोस की 'चुप रहो!' की कड़ी फटकार भी हँसी में तब्दील हो गई। उस लड़के को तुरंत 'पड्डू' यानी 'बड़ा पादने वाला' नाम दे दिया गया। गर्मी की छुट्टियों के बाद वह वापस नहीं आया।

हालाँकि मैं पढ़ाई या खेल-कूद में अच्छा नहीं था, फिर भी शरारतें करने में मैं काफी चतुर था। मेरी पसंदीदा शरारतों में से एक थी आधे खुले दरवाजों पर पानी से भरा बेसिन या जूतों की जोड़ी रख देना। जो भी उन्हें धक्का देकर खोलता, उसे जूतों से मार पड़ती या पानी की बौछार। गर्मियों के महीनों में हम घर पर खुले में सोते थे, आमतौर पर नई दिल्ली में हमारे नए घर के प्रवेश और निकास द्वारों को जोड़ने वाली सड़क पर। एक बार हदाली से एक दूर का रिश्तेदार हमारे साथ रहने आया और उसकी चारपाई मेरी चारपाई के बगल में थी। वह रात भर ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे लेता था और सुबह तड़के उठ जाता था। उसे फ्लश टॉयलेट की आदत नहीं थी और वह बगीचे में झाड़ियों के पीछे शौच करना पसंद करता था। रात को सोने से पहले वह सुबह अपनी पीठ धोने के लिए अपने बिस्तर के नीचे पानी से भरा पीतल का लोटा रखता था। एक रात जब वह सो रहा था, मैंने उसके लोटे में गोंद डाल दिया। अगली सुबह वह अस्वस्थ लग रहा था। उसने शिकायत की कि उसके पेट से चिपचिपा पदार्थ निकल रहा है जिससे उसका मल उसके नितंबों से चिपक रहा है। मैंने अगली दो रातों तक वही शरारत दोहराई। वह डॉक्टर के पास गया और उसने अपने मल की जाँच करवाई। तब तक मैं अपना राज़ छुपा नहीं पा रहा था। मेरे माता-पिता ने मुझे डाँटा, लेकिन दूसरों को अपनी हरकत के बारे में बताते समय वे हँसी रोक नहीं पाए।

एक बार हम भाइयों ने अपने बगीचे में एक कोबरा देखा। उसे बुरी तरह पीटने के बाद, हमने उसका सिर नहीं छुआ, उसे एक बिस्कुट के डिब्बे में रखा, ढक्कन को रस्सी से बांधा और उसे अपने रसायन शास्त्र के शिक्षक, डॉ. चौबे के लिए उपहार के रूप में स्कूल ले गए। उनकी प्रयोगशाला में मिथाइलेटेड स्पिरिट से भरे जारों में साँपों का अच्छा-खासा संग्रह था: विषैले साँप, वाइपर, बैंडेड क्रेट, घास के साँप और अन्य कई किस्में। लेकिन कोई कोबरा नहीं था। वे स्पिरिट का एक जार लाए और उसे बिस्कुट के डिब्बे के बगल में मेज पर रख दिया। जैसे ही उन्होंने रस्सी खोली, ढक्कन हवा में उड़ गया और एक बेहद गुस्से में भरा कोबरा अपना फन फैलाए उन पर झपटा, उनका चेहरा बाल-बाल बच गया। कई साल बाद मैंने इस घटना को एक लघु कहानी, 'विष्णु का चिह्न' में रूपांतरित किया, जो न्यूयॉर्क की हार्पर्स पत्रिका द्वारा स्वीकार की जाने वाली मेरी पहली कहानी थी।

उन दिनों दिल्ली में सांपों का होना आम बात थी। नदी और पुराने मुगल किलों के पास होने के कारण, गर्मियों के महीनों में मॉडर्न स्कूल के आसपास काफी सांप दिखाई देते थे। मानसून के दौरान शायद ही कोई ऐसा दिन होता था जब कुछ सांप अपने बिलों से बाहर न निकल आते और उन्हें पीट-पीटकर मार न डाला जाता। वहां बिच्छू, मधुमक्खी के छत्ते और ततैया के घोंसले भी थे। एक बार श्री राम (जो भारत के सबसे बड़े उद्योगपतियों में से एक बने) के तीसरे पुत्र चरत राम को टखने में किसी चीज ने काट लिया, जिसे उन्होंने तुरंत एक जहरीला सांप बताया। आंखों में आंसू लिए उन्होंने अपने बड़े भाई भरत और दोस्तों को अलविदा कहा। डॉक्टर के सांप के काटने के असर को कम करने वाली दवा लेकर आने से पहले खूब रोना-

धोना हुआ। चरत चिल्लाया, 'बहुत देर हो चुकी है, मैं मरने वाला हूं।' डॉक्टर ने डंक वाली जगह की जांच की और एक छोटा सा काला टुकड़ा निकाला। चरत को सिर्फ एक ततैया ने काटा था, जो बहुत घातक था।

स्कूल के दिनों में ही मुझे भूतों का भयानक डर सताने लगा था। नौकर हमें भूतों की कहानियां सुनाते रहते थे। शिमला में छुट्टियां मनाते समय उन्होंने हमें मुमियाई वालों के गिरोहों के बारे में बताया, जो शिकार की तलाश में घूमते थे और उन्हें धीमी आंच पर उल्टा लटकाकर मानव तेल (राम तेल) निकालते थे, जिससे कटे हुए अंगों को जोड़ा जा सकता था। कहा जाता था कि वे अंग्रेजों के एजेंट थे, जिन्हें अपनी सेना के लिए इस कीमती तेल की जरूरत थी। मुमियाई वाले को पहचानने का एकमात्र तरीका उसके पैरों को देखना था: उसके पैर उल्टे मुड़े होते थे - एड़ियां आगे और उंगलियां पीछे। आज तक किसी ने किसी को पकड़ा तो नहीं, लेकिन समय-समय पर जब उनके होने का डर फैलता था, तो लोग अंधेरा होने के बाद घर से बाहर नहीं निकलते थे।

भूतों के प्रति मेरा डर काफी ठोस था। बचपन में ही मैंने मृत्यु को करीब से देखा था। मैं मियां चन्नू में था जब मेरे दादाजी, सुजान सिंह, जो उस समय साठ वर्ष के थे, बीमार पड़ गए। गाँव के डॉक्टरों को बुलाया गया। वे हर पाँच मिनट में हांफते और दवा मांगते रहे। फिर उन्होंने जम्हाई लेने के लिए मुँह चौड़ा खोला, हांफते हुए तकिये पर गिर पड़े। मेरी दादी जोर-जोर से रोने लगीं और मृत्यु का गीत गाने लगीं: 'दीया मेरा एक नाम दुख विच पाया तेल' - मेरे दीपक में दुख का तेल भरा है। उन्होंने अपने माथे पर दोनों हाथों से थप्पड़ मारे और अपनी बाहों में पहनी हुई कांच की चूड़ियाँ तोड़ दीं। मैं अपने माता-पिता, चाचाओं और रिश्तेदारों को बच्चों की तरह रोते देखकर डर गया था। नौकरों ने मुझे बताया कि उन्होंने मेरे दादाजी की आत्मा को कमरे से धुएं के गुबार की तरह उड़ते हुए और आकाश में गायब होते हुए देखा था।

इससे भी ज़्यादा भयानक था मेरी चाची, जो मेरे चाचा उज्ज्वल सिंह की पहली पत्नी थीं, की मृत्यु देखना। यह घटना भी मियां चन्नू में ही घटी थी। वह अपने दूसरे बच्चे की उम्मीद कर रही थीं। मैं अपनी माँ के साथ गई थी, जिन्हें प्रसव के दौरान उनकी देखभाल के लिए भेजा गया था। गर्भ में ही भ्रूण की मृत्यु हो गई और उसके शरीर में ज़हर फैल गया। हर शाम जब उनका पलंग आँगन में लाया जाता, तो उन्हें मतिभ्रम होने लगता। वह अपने पैरों की ओर इशारा करते हुए चीखतीं, 'देखो! वह रही, डायन।' मेरी दादी और माँ उन्हें विश्वास दिलातीं कि वहाँ कोई नहीं है और बुरी आत्माओं को भगाने के लिए ज़ोर-ज़ोर से प्रार्थना करतीं। चारों ओर फुसफुसाहट थी कि उन्होंने सूर्यास्त के बाद बगीचे के पेड़ से नींबू तोड़कर खुद पर विपत्ति बुला ली है। यह आम धारणा थी कि ऐसा करने वाला कोई भी व्यक्ति डायन के वश में आ जाता है, जिससे केवल झाड़-फूंक से ही छुटकारा पाया जा सकता है। उनके तकिए के नीचे एक प्रार्थना पुस्तक और एक कृपाण रखा गया। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। डायन का साया उन पर बना रहा। एक दोपहर उन्हें भयानक दौरे पड़े। उसकी आँखें इतनी सिकुड़ गईं कि केवल सफेद भाग ही दिखाई देने लगा। उसने अपनी जीभ इतनी जोर से काटी कि मुँह से खून बहने लगा। वह बड़ी पीड़ा में

तड़प रही थी। एक बार फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने और माथे पीटने की आवाज़ गूंजी। जैसे ही यह खबर कस्बे में पहुँची, औरतें झुंड में आईं, एक साथ अपने सीने पीटते हुए और 'हाय! हाय!' चिल्लाते हुए। वे शव के चारों ओर बैठ गईं और उस मृत महिला की प्रशंसा में गीत गाने लगीं जिसे वे कभी जानती भी नहीं थीं। दिवंगत आत्मा की प्रशंसा में गाए गए ये गीत हृदयविदारक थे। चूंकि उसका अपना बेटा नरिंदर दूर था, इसलिए मुझे उसकी चिता को अग्नि देनी पड़ी। मुझे कभी समझ नहीं आया कि मेरी उम्र के बच्चों को ऐसे भयानक दृश्य क्यों दिखाए जाते थे।

शिमला में एक बार, शाम को घर लौटते समय, मेरी बहन और मैंने एक सड़क रोलर को खाई में पलटते देखा। ड्राइवर और उसके सहायक दोनों के सिर और हाथ-पैर धड़ से अलग हो गए थे। हम उस भयावह दृश्य से अपनी नज़रें नहीं हटा पाए और उनके अंगों को इकट्ठा करके जोड़ते हुए और उनके खून से लथपथ शवों को स्ट्रेचरों पर ले जाते हुए देखते रहे। उस रात हम एक ही बिस्तर पर सोए क्योंकि हम अकेले रहने से बहुत डरे हुए थे।

भूतों का डर मुझे आज तक नहीं छोड़ पाया है। मरने वालों की ओर मैं वैसे ही खिंचा चला जाता हूँ जैसे लोहे के टुकड़े चुंबक की ओर। इस भय से मुक्ति पाने के लिए मैं श्मशान घाट और कब्रिस्तान जाता हूँ। लेकिन अंधेरा होते ही मैं मृतकों की आत्माओं के रहमो-करम पर पहुँच जाता हूँ। बचपन में मुझे उन लोगों से ईर्ष्या होती थी जो भीड़-भाड़ वाले बाज़ारों में रहते थे और फुटपाथ पर एक साथ सोते थे। भूत भीड़-भाड़ वाली जगहों पर नहीं रहते। घर में अकेले होने पर मुझे आज भी चैन की नींद नहीं आती।

मेरे स्कूल के साधारण से वर्षों में कुछ सकारात्मक बातें भी हुईं। मुझे अंग्रेज़ी भाषा से प्यार हो गया। और कविता से भी, अंग्रेज़ी और उर्दू दोनों में। मेरी आँखें भी सुंदरता को पहचानने में अधिक सक्षम हो गईं। मैंने अंग्रेज़ी बहुत तेज़ी से खुद ही सीख ली। घर पर कोई मार्गदर्शन करने वाला नहीं था, इसलिए मैंने अंग्रेज़ी बच्चों के साप्ताहिक पत्रिका 'पुक' में छपने वाले कार्टूनों को बार-बार पढ़कर, प्रथम विश्व युद्ध के चित्रों को देखकर, बाइबिल की सचित्र कहानियों और 'ज्ञान की पुस्तक' के ग्रंथों को पढ़कर इसे सीखा। मैंने खुद ही एडगर राइस बरोज़ की 'टार्ज़न द एप मैन' श्रृंखला और राइडर हैगार्ड के अफ्रीका पर लिखे उपन्यासों को भी पढ़ा। अक्सर मैं शब्दों के अर्थ गलत समझ लेता था और उनका उच्चारण भी गलत करता था। मैंने गलत उच्चारणों पर कविताएँ भी बनाई।

मेरी एक रचना मियां चन्नू फिल्म के हमारे ड्राइवर द्वारा बोले गए एक शुरुआती वाक्य पर आधारित थी। उसने हमें बताया कि भारतीय वेश्याएं पुरुषों को कैसे लुभाती हैं: 'ओ साहब! ओ साहब! आओ हायूर।' फिर मेरे चचेरे भाई ने 'यूथ' को 'यथ' और 'पुट' को 'पुट्ट' बोल दिया। एक भाई टेनिस कोर्ट में गेंद मांगते हुए 'सुत गोली गुल' चिल्लाया, जबकि उसे सिर्फ 'गोली' मांगनी चाहिए थी। उसने 'टायर' को 'तैय्यर' भी बोल दिया। इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं था, लेकिन इनसे हमारी निजी तुकबंदी का जन्म हुआ।

हे साहब! हे साहब! हेय्यूर आओ,
Yath, patt, gul, taiyyar.

अंग्रेजी में मेरी रुचि तब और भी व्यवस्थित हो गई जब एक युवा अंग्रेज महिला, मिस बडेन ने अंग्रेजी की कक्षाएं संभालीं। उबाऊ पाठ्यपुस्तकों को पढ़ाने के बजाय, उन्होंने हमें इवानहो, लास्ट ऑफ द बैरन्स और टेस पढ़कर सुनाए। उन्होंने हमें ऑस्कर वाइल्ड की बच्चों की कहानियाँ और शेक्सपियर की छोटी कविताएँ भी पढ़कर सुनाईं। एक दिन उन्होंने 'अंडर द ग्रीनवुड ट्री...' कविता सुनाई। उस पंक्ति ने मेरे दिल को छू लिया। मैंने उसे और वर्ड्सवर्थ, टेनीसन और अन्य कवियों की कई अन्य कविताएँ जो उन्होंने हमें पढ़कर सुनाई, याद कर लीं। शनिवार को हम उनके द्वारा तैयार किया गया एक शब्द खेल खेलते थे। हमें छोटी-छोटी शब्दकोश दी जाती थीं। वह एक शब्द बोलती थीं; जो सबसे पहले उसे शब्दकोश में ढूंढ लेता था, उसे विजेता घोषित किया जाता था। इससे मुझे किसी भी शब्द के सही अर्थ के बारे में संदेह होने पर शब्दकोश देखने की आदत पड़ गई।

उर्दू कविता के प्रति प्रेम मुझे मौलवी शफीउद्दीन नैयर ने सिखाया। मैं उनका इकलौता छात्र था। उन्हें मुझे चार साल में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करानी थी। मुझे अक्सर उनके घर जाकर सीखना पड़ता था। मुझे उर्दू गद्य बहुत नीरस लगता था, लेकिन उसकी कविता में अंग्रेजी कविता की तुलना में कुछ ही शब्दों में अधिक संगीत और संदेश समाहित होता था। मौलवी साहब स्वयं एक कवि थे और बच्चों के लिए बहुत सी कविताएँ लिखते थे। पाठ समाप्त होने पर वे ग़ालिब, ज़ौक़, ज़फ़र और अकबर इलाहाबादी जैसे कवियों की कविताएँ पढ़कर सुनाते थे। उन्होंने मुझे उनमें से कई कविताएँ याद करवाईं। वे आज तक मेरे मन में बसी हुई हैं।

महीने में एक बार हमें दिल्ली के पुराने स्मारकों की सैर के लिए पिकनिक पर ले जाया जाता था। हमें उनके इतिहास के बारे में बताया जाता था और फिर हमें मकबरों, मस्जिदों और महलों में घूमने के लिए छोड़ दिया जाता था। साल में दो बार हम भारत के विभिन्न हिस्सों की यात्रा पर जाते थे। कुछ अनुभव मेरे मन में बसे हुए हैं। उनमें से एक है समुद्र को पहली बार देखना। यह बॉम्बे में एक स्काउट जंबोरी के दौरान हुआ था। पानी के अथाह विस्तार को देखकर मैं अचंभित और स्तब्ध रह गया था। मैं आती हुई लहर की ओर दौड़ा और स्वाद जानने के लिए एक हथेली भर पानी पिया। और तुरंत उसे थूक दिया। राजस्थान की हमारी यात्रा और भी शानदार थी। जिन जगहों पर हमें ले जाया गया उनमें से एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित विशाल राजपूत किला चित्तौड़ भी था। महलों और मंदिरों के खंडहरों का भ्रमण करने के बाद हम अपनी बस का इंतजार करने के लिए पहाड़ी से नीचे उतरे। जैसे ही सूरज डूबने वाला था, सैकड़ों मोर किले की प्राचीर पर कतार में खड़े हो गए। फिर, मानो अपने नेता के इशारे पर, पूरा झुंड 'पाँ पाँ' की आवाज़ करते हुए नीचे उतर आया, उनकी लंबी सुनहरी, हरी और

नीली पूंछें डूबते सूरज की आखिरी किरणों में चमक रही थीं। भला ऐसा नज़ारा भला कौन भूल सकता है! उसी यात्रा के दौरान हमें अजमेर और उदयपुर ले जाया गया। हमने किले, महल और झीलें देखीं। एक शाम कोई रेवरा कैक्टस का एक भुट्टा लाया और उसे कमरे के दीपक पर लटका दिया। देखते ही देखते, पूरा कमरा उसकी तीखी, मीठी खुशबू से भर गया। केवड़ा और खस, जिनकी महक बारिश की पहली बूंदों के बाद सूखी धरती जैसी होती है, आज भी मेरी पसंदीदा खुशबू हैं। और मुझे स्मारकों को देखने और उनके बारे में लिखने में कभी थकान नहीं होती।

इन यात्राओं में सबसे यादगार फतेहपुर सिकरी और आगरा की यात्रा थी। सिकरी में लाल बलुआ पत्थर के महलों और मस्जिदों में घंटों घूमने के बाद हमें आगरा किले ले जाया गया। यह भी लाल, बेज और सफेद संगमरमर से बनी इमारतों का ही एक सिलसिला था। मैं थक चुकी थी और ऊब रही थी। फिर हमें ताजमहल के प्रवेश द्वार के सामने कतार में खड़ा किया गया। और एक और भाषण: 'अब बच्चों, तुम दुनिया के सात अजूबों में से एक देखोगे। इसे सम्राट शाहजहाँ ने अपनी महारानी मुमताज महल के अंतिम विश्राम स्थल के रूप में बनवाया था।' उस उबाऊ क्षण में मुझे दुनिया के किसी भी अजूबे या किसी सम्राट के अपनी पत्नी के प्रति प्रेम की कोई परवाह नहीं थी। भाषण समाप्त होने पर, हमें एक पंक्ति में चलने का आदेश दिया गया। ताजमहल अचानक सामने आ गया। मैं इसकी विशाल भव्यता को देखकर दंग रह गई और मुँह खुला रखकर इसे देखती रह गई। मैं और आगे नहीं जाना चाहती थी। मैं बस द्वार की सीढ़ियों पर बैठ गई और सब कुछ निहारने लगी।

हालांकि मैंने मॉडर्न स्कूल में दस साल बिताए और कई साल बाद उस लड़की से शादी की जिससे मुझे पांच साल की उम्र में पहली बार देखते ही प्यार हो गया था, लेकिन स्कूल में मेरी कोई पक्की दोस्ती नहीं बन पाई। मौलवी शफीउद्दीन नैयर जैसे कुछ शिक्षक मुझसे संपर्क में रहे। युवा महिला शिक्षकों में से एक, रोमा बिस्वास, लाहौर में कॉलेज के दौरान और जब मैं पहली बार इंग्लैंड गया था, तब कुछ समय के लिए मेरे जीवन में वापस आई। लंदन में मेरी सतिंदर से अक्सर मुलाकात होती थी और हम पेरिस में छुट्टियां साथ बिताते थे। जब वह कनाडा चले गए तो उनसे मेरा संपर्क टूट गया। मोटा ही एकमात्र सहपाठी था जिससे बाद के वर्षों में कभी-कभार मुलाकात होती रही।

योग्य शिक्षकों और छोटी कक्षाओं के बावजूद, मॉडर्न स्कूल के छात्र मैट्रिक परीक्षा में शीर्ष अंक प्राप्त नहीं कर सके। कोई भी छात्र अनुत्तीर्ण नहीं हुआ, लेकिन कोई भी 'टॉपर' नहीं था। यह स्कूल अधिकारियों के लिए बहुत निराशाजनक था। भारतीय परीक्षा प्रणाली में (और आज भी) संभावित प्रश्नों के उत्तर रटने पर जोर दिया जाता है। मॉडर्न स्कूल में इस पर उचित ही आपत्ति जताई जाती थी और यद्यपि परीक्षा में उनका प्रदर्शन औसत दर्जे का था, फिर भी अधिकांश छात्रों ने आगे चलकर अच्छा प्रदर्शन किया। 'चरित्र और विद्वता' में उत्कृष्ट छात्र के लिए सेंट स्टीफंस कॉलेज के प्रधानाचार्य एस.के. रुद्र

के नाम पर स्थापित वार्षिक पुरस्कार पहले वर्ष में मेरे बड़े भाई भगवंत सिंह को मिला। 1930 में जब हमने मैट्रिक परीक्षा दी, तब हमारी कक्षा में पाँच छात्र थे। इन पाँचों में से, पढ़ाई में सबसे औसत दर्जे का छात्र प्रताप सिंह था, जो अपनी कमजोर दृष्टि के कारण खेलों में भी भाग नहीं लेता था। वास्तव में, उसकी विद्वता अन्य चार छात्रों से कम थी। हमें पता नहीं था, लेकिन वह निश्चित रूप से एक उत्कृष्ट चरित्रवान व्यक्ति रहा होगा। शिक्षकों ने सर्वसम्मति से उन्हें रुद्र पुरस्कार के लिए चुना। उनके पिता विद्यालय के संस्थापक थे।

जैसा कि उम्मीद थी, मैंने मैट्रिक परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। स्कूल की सबसे बड़ी चिंता अशोक सेन थे, जिन्होंने अंकगणित में लगातार शून्य अंक प्राप्त किए थे। अंकगणित एक अनिवार्य विषय था जिसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य था, अन्यथा परीक्षा में असफल माना जाता था। अशोक ने भी मैट्रिक परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। उनके पिता उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे। मॉडर्न स्कूल ने मुझे दुनियादारी से अवगत कराया।

मॉडर्न स्कूल में बिताए वर्षों (लगभग 1920-30) में हमारे परिवार की आर्थिक स्थिति और मेरे व्यक्तित्व में कई बदलाव आए। कपड़ा उद्योग में बड़े व्यवसायी बनने का असफल प्रयास छोड़ने के बाद, मेरे पिता ने भवन निर्माण पर ध्यान केंद्रित करने का निर्णय लिया। हम खालसा मिल्स के प्रवेश द्वार के ऊपर स्थित अपने कमरों से निकलकर रायसीना में आ गए, जो आगे चलकर नई दिल्ली बना। पहले एक-दो साल हम ओल्ड मिल रोड (अब रफी मार्ग) पर स्थित एक बड़े से झोपड़ीनुमा मकान में रहे, क्योंकि वहाँ एक आटा चक्की हुआ करती थी। यह झोपड़ी आज के संसद मार्ग के सामने थी, जो उस स्थान के निकट था जहाँ उत्तर और दक्षिण ब्लॉक, दो सचिवालय भवन बनने थे। मेरे पिता को दक्षिण ब्लॉक के निर्माण का ठेका मिला; उनके सबसे करीबी मित्र बसाखा सिंह को उत्तर ब्लॉक का ठेका मिला। हमारी झोपड़ी के सामने से दिल्ली से लगभग बारह मील दक्षिण में स्थित बदरपुर गाँव से आज के कनॉट सर्कस तक एक संकरी गेज की रेलवे पटरी गुजरती थी। बदरपुर से पत्थर, बजरी और मलबा निर्माण स्थलों तक लाने के लिए यह रेल बिछाई गई थी। हमारे नए घर के ठीक सामने पत्थर काटने की मशीनों और पत्थरों को दिए गए सांचों में तराशने के लिए नियुक्त राजमिस्त्रियों के लिए विशाल शेड बनाए गए थे। सुबह हम पत्थर काटने की मशीनों की गर्जना और बलुआ पत्थर पर छेनी से हथौड़ा मारते राजमिस्त्रियों की खट-खट की आवाज से जाग जाते थे। यह सिलसिला सुबह से शाम तक चलता रहता था। छुट्टियों में हम छोटी सी इंपीरियल दिल्ली रेलवे के आने का इंतजार करते थे ताकि वह पत्थर और मलबे का अपना माल उतार सके और हम कनॉट सर्कस तक मुफ्त सवारी कर सकें और वापस आ सकें।

अपने ठेकेदारी व्यवसाय के चरम पर मेरे पिता के पास 6,000 से अधिक मजदूर और दर्जनों पर्यवेक्षक, क्लर्क और लेखाकार थे। ये मजदूर राजस्थान के बागड़ी समुदाय से थे। पुरुषों को प्रतिदिन 8 आना (आधा रुपया) और महिलाओं को ईंट, सीमेंट और गारा सिर पर ढोने के लिए 6 आना मिलते थे। उन्हें पत्थर के भारी-भारी टुकड़े खींचकर उनकी सही जगह

पर ले जाने पड़ते थे: खींचते समय वे एक साथ गाते थे: 'हे सह! हे सह! राम भरोसे, हे सह! जोड़ लगा दे, हे सह!' यह कठिन परिश्रम था। उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। उनके अधिकारों के लिए लड़ने वाले कोई मजदूर संघ नहीं थे। उनकी कमाई पेट भरने के लिए भी मुश्किल से ही पर्याप्त होती थी। लेकिन हर शाम जब मेरे पिता और उनके क्लर्क अपनी कमाई का हिसाब लगा रहे होते थे और आपस में झगड़ रहे होते थे, तब बागड़ी समुदाय के लोग जोश से गाते और नाचते हुए अपने झोपड़ियों की ओर घर जाते थे।
उन दिनों सड़कों पर बत्तियाँ नहीं होती थीं। गर्मियों के महीनों में खुले में सोने के कारण हम घड़ी के समय से ज़्यादा चाँद के चरणों और तारों की चाल पर ध्यान देते थे। चाँदनी रातों में अक्सर पिकनिक मनाते थे या फिर रात के खाने के बाद पार्कों और नए बने गोल चक्करों में टहलते थे। हर रात जंगल में सियार दहाड़ते थे; हमें चिड़ियों की आवाज़ और उल्लुओं की चहचहाहट सुनाई देती थी। हम चौकीदारों की एक-दूसरे को पुकारती हुई तसल्ली भरी आवाज़ों के साथ सोते थे, 'खबरदार हो!'

ठेकेदारों के पास सरकारी सामग्री का भरपूर भंडार था, जिसका इस्तेमाल वे अपनी निजी संपत्तियों में कर सकते थे। उन्होंने जंतर-मंतर रोड पर तीन-तीन एकड़ के दो भूखंड खरीद लिए, जिन पर उन्होंने अपने घर बनाए। वे सभी सिख थे। हालांकि वे पंजाब के अलग-अलग हिस्सों से आए थे और दिल्ली आने से पहले एक-दूसरे को नहीं जानते थे, फिर भी वे एक परिवार के सदस्यों की तरह बन गए। अवसरों की कोई कमी नहीं थी और न ही एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोई जरूरत थी। जंतर-मंतर रोड अमीर सिख ठेकेदारों की बस्ती बन गई। मेरे पिता ने अपने लिए एक दो मंजिला मकान बनवाया। पीछे की तरफ क्लर्कों और नौकरों के क्वार्टर, गाय-भैंस के शेड और घोड़ों के अस्तबल थे, जिनसे वे अपना ठेला खींचते थे, साथ ही दो गैरेज भी थे। घर के निकास द्वार के पास उन्होंने एक कमरा कार्यालय के रूप में बनवाया था, जिसमें मेहमानों के लिए दो कमरे थे। सामने एक बड़ा बगीचा था जिसमें संगमरमर का फव्वारा लगा था; एक तरफ टेनिस कोर्ट था और दूसरी तरफ फलों और सब्जियों का बगीचा। उन्हें फूलों का शौक था और वे कलकत्ता और बंबई से बीज मंगवाते थे। उन्हें गुलाबों से विशेष लगाव था और उन्होंने प्रवेश द्वार से बरामदे होते हुए निकास द्वार तक जाने वाली सड़क के किनारे क्यारियों में कई विदेशी किस्मों के गुलाब उगाए थे। अन्य ठेकेदारों ने भी उतने ही बड़े घर बनाए। धौलपुर की खदानों से संगमरमर, ग्रेनाइट और बलुआ पत्थर की आपूर्ति का एकाधिकार रखने वाले धर्म सिंह सेठी ने यहाँ का सबसे बड़ा घर पत्थर और संगमरमर से बनवाया। आज यह घर कांग्रेस समेत कई राजनीतिक दलों के कार्यालयों के लिए साझा किया जाता है। निःसंदेह, हमारा घर नए शहर में सबसे बेहतरीन डिज़ाइन वाला और सबसे आकर्षक ढंग से सजाया गया बगीचा था। मेरे पिता ने गर्व से इसका नाम बैकुंठ रखा था। वर्षों बाद, उन्होंने जनपथ और अल्बुकर्क रोड (अब तीस जनवरी मार्ग) के चौराहे पर एक और भी बड़ा

और आकर्षक घर बनवाया। उन्होंने इसका नाम भी बैकुंठ रख दिया। वह मूल स्वर्ग, जहाँ मैंने अपने स्कूली जीवन का अधिकांश समय बिताया, त्रावणकोर के महाराजा को बेच दिया गया। जब महाराजा ने अपना राज्य खो दिया, तो यह केरल राज्य सरकार का अतिथि गृह बन गया।

परिवार की आर्थिक स्थिति में आए बदलावों से कहीं ज़्यादा बदलाव मेरे शरीर और मन में आए। मैं दादी से प्यार करने वाले बच्चे से यौन-उन्मादी किशोर बन गया। रसोई में काम करने वाले लड़कों (मुंडू) ने इस विकास को और तेज़ कर दिया। वे लगभग मेरी ही उम्र के थे और उन्हीं शारीरिक परिवर्तनों से गुज़र रहे थे। हमने एक-दूसरे से अपने जननांगों से आनंद लेना सीखा। जब मेरी एक चचेरी बहन सर्दियों की छुट्टियाँ बिताने हमारे साथ रहने आई, तो उसे मेरे साथ सोने की इजाज़त मिल गई क्योंकि हम छोटे बच्चे थे और भाई-बहन जैसे थे। मैं सोने का नाटक करता और उसके पायजामे नीचे करता; वह भी मेरी हरकतों के दौरान सोने का नाटक करती। हम दोनों को ज़रा भी अंदाज़ा नहीं था कि बड़े मर्द और औरतें साथ सोते समय क्या करते हैं, लेकिन हमें एक-दूसरे से सटना काफी सुखद लगता था। मेरे अंदर नग्न महिलाओं को देखने की तीव्र इच्छा जागृत हुई। अक्सर बागड़ी औरतें एक क्लर्क के आँगन में नहाने आती थीं जहाँ एक हैंडपंप लगा होता था। मैं एक नीम के पेड़ पर चढ़ जाता और वहाँ से उन्हें अपने स्तनों पर साबुन लगाते देखता; उन्होंने कभी भी पूरी तरह से अपने कपड़े नहीं उतारे। जब भी रिश्तेदारों को दिल्ली रेलवे स्टेशन से शाम की ट्रेन पकड़नी होती, मैं उन्हें छोड़ने जाता था। चौरी बाज़ार और अजमेरी गेट से होकर फैटन में वापसी की यात्रा के दौरान मुझे बाज़ार के दोनों ओर बालकनियों पर सजी वेश्याओं को ताकने का मौका मिल जाता था। एक बार एक महिला ने मुझे आँख मारी और हाथ से इशारा किया। मैंने कई रातों तक उसके बारे में कल्पना की। बारह साल की उम्र तक मुझे पता ही नहीं था कि एक पुरुष और एक महिला के बीच यौन क्रिया कैसे होती है। एक चांदनी रात में जब हमारे चारपाइयाँ आँगन में एक-दूसरे के बगल में बिछी थीं, मैंने अपने पिता को क्लब से घर आते, अपने कपड़े बदलते और माँ के बिस्तर पर जाते देखा। मैंने उन्हें दबी आवाज़ में कहते सुना: 'बच्चे जाग रहे होंगे!' ज़ाहिर है, वे नशे में थे और उन्होंने उनकी चेतावनी को अनसुना कर दिया। मैंने उसे अपना तेहमाद उतारकर उसके ऊपर लेटते देखा, वह कुछ देर तक करवटें बदलता रहा और फिर ढेर हो गया, उसके बाद अपने बिस्तर पर जाकर अपना तेहमाद दोबारा बांधने लगा। मुझे समझ नहीं आया कि वह क्या कर रहा था, बस इतना पता था कि कुछ अच्छा नहीं हुआ। मेरा मन कई दिनों तक परेशान रहा और मैं उससे बात नहीं कर पाई।

मियां चन्नू में हमारी गर्मियों की छुट्टियों के दौरान, हमसे कुछ साल बड़े एक लड़के ने हमें अपने स्कूल में होने वाले गुदा मैथुन की कहानियाँ सुनाईं। वह लड़का हमेशा से ही सुंदर और सुडौल था। ऐसा लगता था मानो सेक्स का मतलब सिर्फ़ स्त्रैण लड़कों का गुदा मैथुन करना हो। औरतें किस काम की? उसने हमें बताया कि फ़र्क़ बस इतना है कि अगर किसी औरत का गुदा मैथुन किया जाए तो वह गर्भवती हो जाती है। चौदह साल की उम्र तक मुझे पता ही नहीं था कि एक वयस्क औरत के

जननांग कैसे दिखते हैं। पहली बार मैंने उन्हें वाराणसी में एक प्रोफ़ेसर के बगीचे के लॉन में आधुनिक छात्रों के लिए आयोजित एक खुले भोज में देखा। मैं संयोग से एक पंक्ति के सामने बैठा था जिसके बीच में हमारी एक वरिष्ठ शिक्षिका बैठी थीं। जैसे ही वह घास पर बैठीं, उनकी साड़ी ऊपर उठ गई और उनकी जांघों के बीच का एक घना, बालों वाला हिस्सा दिखाई दिया। मैं दंग रह गया।

मैट्रिक की परीक्षा पास करने और मॉडर्न स्कूल छोड़ने के बाद ही मेरा मन लड़कों से लड़कियों की ओर मुड़ गया। मुझे टाइफाइड हो गया। मुझे दो बार यह बीमारी फिर से हुई जिससे मेरी बोलने और चलने की शक्ति चली गई। मेरी देखभाल के लिए एक युवा नर्स को रखा गया। मुझे बस इतना याद है कि वह बहुत सांवली, दुबली-पतली, छोटे स्तनों वाली और चमकती आँखों वाली थी। हर कुछ घंटों में मेरा तापमान लेने और दवा देने के अलावा, वह सुबह मुझे स्पंज से साफ भी करती थी। इन्हीं स्पंजिंग सेशन के दौरान वह प्यार से मेरे लिंग को अपने हाथ में लेकर चूमती थी। 'तुम्हारे छोटे से लिंग के आसपास बाल आने लगे हैं। जल्द ही तुम मर्द बन जाओगे और यह बड़ा और मजबूत हो जाएगा।' मैंने उसकी बात सुनी लेकिन जवाब नहीं दे सका। वह मेरे बेजान हाथों को भी अपने स्तनों से रगड़ती थी। मुझे यह एहसास अच्छा लगता था लेकिन उन्हें छूने की ताकत नहीं थी। जब तक मैं उसकी देखभाल पर प्रतिक्रिया देने और कुछ शब्द बुदबुदाने लायक हुआ, तब तक उसकी सेवाएं समाप्त हो चुकी थीं। वह युवा नर्स, जिसका नाम मुझे कभी पता नहीं चला, उसी ने मेरे मन में महिलाओं को प्रेम और वासना की वस्तु के रूप में देखने का विचार जगाया। तब तक मुझे यह विश्वास नहीं था कि महिलाएं पुरुषों की तरह यौन इच्छा रखती हैं, बल्कि मैं यही सोचता था कि वे केवल अपने पुरुषों को खुश रखने के लिए ही ऐसा करती हैं। मेरी स्कूली शिक्षा समाप्त हो चुकी थी।

दिल्ली और लाहौर में कॉलेज के 3 वर्ष

मेरे मैट्रिक के नतीजे घोषित होने के कुछ समय बाद मैंने सेंट स्टीफंस कॉलेज में दाखिले के लिए आवेदन किया। तब भी और आज भी यह दिल्ली का सबसे प्रतिष्ठित कॉलेज है। उस समय दाखिले उतने मुश्किल नहीं थे जितने कुछ साल बाद हो गए। मॉडर्न स्कूल के लड़के, जो अमीर परिवारों से आते थे और जिनकी अंग्रेज़ी पर दूसरों से बेहतर पकड़ थी, आसानी से दाखिला पा लेते थे। मेरा भी दाखिला हो गया। मुझे जिस बात का डर था, वह थी नए दाखिलों के साथ होने वाली रैगिंग। कहा जाता था कि यह ब्रिटिश विश्वविद्यालयों की बेहतरीन परंपरा का हिस्सा है और इसका मकसद उन लड़कों को सबक सिखाना है जो खुद को बहुत बड़ा समझते हैं। कुछ रैगिंग हानिरहित होती थी, लेकिन बेहद बेवकूफी भरी होती थी: नए छात्रों को नाचने या गाने के लिए कहना, या ऐसे पोस्टर लेकर चलने के लिए कहना जिन पर लिखा हो, 'मैं प्रथम वर्ष का मूर्ख हूँ'। अगर नए छात्र विरोध करते, तो मामला हिंसक हो जाता था। छात्रावासों में नए लड़कों को अक्सर अपमानित किया जाता था, जैसे उन्हें कपड़े उतारने और हस्तमैथुन करने के लिए मजबूर करना। ऐसे मामले भी सामने आए थे जब स्त्री जैसे व्यवहार वाले लड़कों के साथ अप्राकृतिक यौन संबंध बनाए गए थे। लंबी बीमारी के कारण पहले सत्र में अनुपस्थित रहने से मैं रैगिंग से बच गया।

उन दिनों टाइफाइड के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। बुखार के प्रकार का पता लगाने के लिए न तो खून, न बलगम, न ही कोई और जाँच होती थी। दी जाने वाली एकमात्र दवा एक बदबूदार, कड़वी दवा होती थी। ठोस भोजन वर्जित था। यह कई प्रकार के मियादी (आवर्ती) बुखारों में से एक माना जाता था, जो ग्यारह या बाईस दिनों तक रहता था। अगर एक बार फिर से हो जाए, तो ग्यारह या बाईस दिनों का एक और दौर आ सकता था। मुझे दो बार टाइफाइड हुआ। दूसरी बार जब यह शुरू हुआ, तो डॉक्टरों ने सिर हिलाकर कहा कि मेरा भाग्य महान गुरु के हाथों में है। मैं कोमा में चला गया। मेरे माता-पिता ने मुझे भिखारियों को देने के लिए चावल, आटा, घी और चीनी से भरी थालियों को छूने के लिए कहा। उन्होंने मेरी देखभाल के लिए एक दिन और एक रात की नर्स रखी। जब मुझे जीवित रखने की लड़ाई हारती हुई प्रतीत हुई, तो उन्होंने मेरी दादी को बुलवाया, जो उस समय मियां चन्नू में मेरे चाचा के साथ रह रही थीं।

जब वह आई तो मुझे उसकी उपस्थिति का हल्का-फुल्का एहसास हुआ। उसने मेरा इलाज अपने हाथ में ले लिया। उसने मेरे बाएं पैर के अंगूठे पर एक रंगीन धागा बांध दिया। फिर उसने गुरु अर्जुन का भजन सुखमनी का जाप शुरू किया। यह दिन भर और देर रात तक चलता रहा। वह उसी कमरे में सोई और अगली सुबह फिर से जाप शुरू किया। दोपहर तक मैं कोमा से बाहर आ गया था। शाम तक मेरा बुखार रहस्यमय तरीके से उतर गया। या शायद यह एक संयोग था: दूसरे बाईस दिनों का मियाद समाप्त हो गया था।

ज़मीन पर पैर रखने से पहले ही मैं फिर से शरारतों में लग गया। जब थर्मामीटर मेरे मुंह में डाला गया और डॉक्टर ने मेरी कलाई पकड़कर मेरी नब्ज़ जाँची, तो मैंने सोने का नाटक किया। मैंने अपने बाएं हाथ से चुपके से अपनी कोहनी के अंदरूनी हिस्से पर नाड़ी दबा दी ताकि वह बांह से नीचे न बहने लगे। डॉक्टर ने घबराकर मेरी नाड़ी ढूंढी, फिर मेरी पलकें उठाकर देखा कि मेरी आंखों में कोई जान है या नहीं। मैंने उन्हें तसल्ली भरी मुस्कान दी। तीन महीने बिस्तर पर पड़े रहने के दौरान मेरी लंबाई लगभग दो इंच बढ़ गई, लेकिन मेरा लिवर हमेशा के लिए खराब हो गया। तब से सोते समय मेरे मुंह में लार टपकती रहती है और मुझे पेट साफ करने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ती है। जुलाब, दस्त और एनीमा मेरी दिनचर्या का हिस्सा बन गए हैं।

मैंने पहाड़ियों में लंबे समय तक आराम किया। लोगों का मेरे प्रति स्नेह और मेरी हर इच्छा पूरी करने की तत्परता मुझे बहुत सुखद लगी। मैंने शिमला में अपने चाचा और उनकी दूसरी पत्नी के साथ दो महीने बिताए। उनकी पत्नी एक सुंदर, कमल जैसी आंखों वाली और बेहद खूबसूरत महिला थीं, जो देखने में बेहद आकर्षक थीं। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। मैंने जैको हिल के चारों ओर लंबी सैर शुरू की, जो मॉल पर जाकर समाप्त होती थी। तब यह दो उच्च श्रेणी के रेस्तरां, एक छोर पर डेविको और दूसरे छोर पर वेंगर्स, के बीच रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगाती दुकानों की खिड़कियों से घिरा हुआ आधा मील का बेहद मनमोहक रास्ता था। केंद्र में, जहां चार सड़कें मिलती थीं, स्कैंडल पॉइंट था, जो मिलने-जुलने का अड्डा था। यहां हर कोई, जो भी महत्वपूर्ण व्यक्ति होता था, गपशप करने, सुंदर महिलाओं को निहारने और उनके द्वारा छोड़ी गई सुगंधित हवा में सांस लेने के लिए कुछ समय बिताता था। आप वरिष्ठ अंग्रेज अधिकारियों, पंजाब के गवर्नर, कमांडर-इन-चीफ और अन्य लोगों को टहलते हुए या गेयटी थिएटर जाते हुए देख सकते थे। हर शाम पंजाब के लंबे, आकर्षक मुख्यमंत्री सर खिजर हयात तिवाना को पंखों वाली पगड़ी पहने, वर्दीधारी सहायकों द्वारा खींचे जा रहे अपने रिक्शे के आगे-आगे चलते देखा जा सकता था। मॉल से घर जाने के लिए खुद को खींचना मुश्किल होता था।

शिमला में बिताई उन गर्मियों के महीनों ने मुझे हिमालय की सुंदरता से अवगत कराया। मैंने कविताएँ लिखना शुरू किया—बेहद खराब कविताएँ। मैंने सितार बजाना सीखा। मैं किसी से प्यार करने के लिए बेताब था, चाहे वह कोई भी हो या किसी भी उम्र की हो, बस वह एक महिला होनी चाहिए। चूंकि मेरी चाहतों का जवाब देने वाला कोई नहीं मिला, इसलिए मैंने अमृतसर की एक लड़की को गुमनाम प्रेम पत्र लिखे, जिसके माता-पिता ने पड़ोस का बंगला किराए पर लिया था।

मैं दिल्ली लौट आया और दूसरे सत्र की शुरुआत में सेंट स्टीफंस कॉलेज में दाखिला लिया। रैगिंग का दौर खत्म हो चुका था। मैंने अंग्रेजी साहित्य, इतिहास, दर्शनशास्त्र और अर्थशास्त्र की निर्धारित पाठ्यपुस्तकें प्राप्त कीं। ये विषय सबसे लोकप्रिय थे क्योंकि परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए ये सबसे आसान थे। मैंने बाइबल की कक्षाओं में भी भाग लिया, जहाँ उपस्थिति अनिवार्य नहीं थी: मैं अपने ईसाई प्रोफेसरों, विशेष रूप से के.एम. सरकार, जो हमें अंग्रेजी साहित्य भी पढ़ाते थे,

का दिल जीतने के लिए जाता था। उनका जोर नए नियम पर था। मुझे पुराने नियम के शब्द अधिक रुचिकर लगते थे क्योंकि उनकी ध्वनि मधुर थी। मैंने सुलैमान के गीतों और भजन संहिता के अंश याद कर लिए। अय्यूब की पुस्तक मेरी पसंदीदा पुस्तक बन गई। मुझे एहसास हुआ कि अच्छी अंग्रेजी लिखने के लिए बाइबल के साथ-साथ यूरोपीय लोककथाओं, बाल कविताओं और एडवर्ड लीयर की तुकबंदी जैसी निरर्थक कविताओं से भी परिचित होना आवश्यक है। मैंने उन्हें मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि साहित्य की बुनियादी बातों के रूप में पढ़ा।

मेरी तुलनात्मक समृद्धि, जेब खर्च के उदार भत्ते और इस तथ्य के कारण कि मेरे बड़े भाई की तरह मेरे पास कॉलेज जाने के लिए मोटरसाइकिल थी, मैं अपने सहपाठियों के बीच लोकप्रिय हो गया था, जो मुफ्त नींबू पानी और चिकन पैटीज़ का आनंद लेने और मेरी मोटरसाइकिल पर सवारी करने के लिए उत्सुक रहते थे। उनमें से एक ई.एन. मंगत राय थे, जिन्होंने बाद में मेरे जीवन में बहुत दखलंदाजी वाली भूमिका निभाई।

उनका पूरा नाम एडवर्ड निर्मल मंगत राय था। वे एक पंजाबी हिंदू पिता (जिन्होंने ईसाई धर्म अपना लिया था) और एक बंगाली ईसाई माता के तीसरे बच्चे और दूसरे पुत्र थे। पिता सरकारी सेवा में थे और आयकर आयुक्त के पद से अपना करियर समाप्त किया। मंगत राय परिवार के चारों बच्चे सुंदर और पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित थे। सबसे बड़ी, प्रियोबाला, कॉलेज प्रोफेसर बनीं और लाहौर के किन्नैर्ड कॉलेज की प्रिंसिपल के पद से सेवानिवृत्त हुईं। उन्होंने अविवाहित रहना चुना और सेवानिवृत्ति के बाद के वर्ष एडिनबर्ग में बिताए। दूसरे, चार्ल्स, सेना में भर्ती हुए, एक अमेरिकी महिला से विवाह किया और ब्रिगेडियर के पद से सेवानिवृत्त हुए। वे कनाडा में बस गए, योग शिक्षक बने और अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अपने से काफी छोटी एक कनाडाई लड़की से विवाह किया। एडवर्ड निर्मल तीसरे थे। चौथी, शीला, एक छोटी कद-काठी की खूबसूरत महिला थीं, जिनका आईसीएस के आर्थर एस. लाल से विवाह असफल रहा। उनकी एक बेटी, टूकी, हुई, जिसकी कैलिफोर्निया में तीस वर्ष की आयु में कैंसर से मृत्यु हो गई। आर्थर से तलाक के बाद, शीला शराब और ड्रग्स की आदी हो गईं। कुल्लू में अपने सेब के बाग की देखभाल करने के लिए भारत लौटने से पहले वह कई प्रेमियों के साथ रहीं। उनकी हत्या उनके ही नौकरों ने कर दी। मैं मंगत राय और लल्ल परिवार का जिक्र इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि ये सभी अलग-अलग समय पर मेरे जीवन में फिर से आए।

ई.एन., जैसा कि मैं उसे बुलाता था, और मेरी पहली मुलाकात में ही गहरी दोस्ती हो गई। लंबा होने के बावजूद, वह कुछ हद तक स्त्री जैसा था। स्त्री जैसे लड़के मेरी ओर आकर्षित होते थे, शायद मेरे असभ्य, सख्त बाहरी रूप के कारण। ई.एन. की ओर मुझे सबसे पहले उसकी शैक्षणिक उपलब्धियों और रूढ़ियों को तोड़ने वाले उसके विचारों ने आकर्षित किया। वह कक्षा का सबसे होनहार छात्र था और आमतौर पर सत्र परीक्षाओं में सभी विषयों में शीर्ष स्थान प्राप्त करता था। वार्षिक पुरस्कार वितरण दिवस पर उसके द्वारा प्राप्त पुस्तकों और प्यालों का ढेर प्रभावशाली होता था। वह एक अच्छा वार्ताकार भी था। वह

धर्म और सामाजिक आचरण की हर मान्यता और स्वीकृत नियम पर सवाल उठाता था। उसने पारंपरिक विचारों में पले-बढ़े लड़कों के दिमाग से कई रूढ़ियों को दूर किया और कई प्रशंसक बनाए, जिनमें मैं भी एक था। हम उसकी तरह बहस करने लगे और उसके बोलने के तरीके की नकल करने लगे। यह कि वह दूसरों की तुलना में मेरी दोस्ती को प्राथमिकता देता था, मेरे अहंकार को संतुष्ट करता था। हम कक्षा में और खेल के मैदानों में हमेशा साथ रहते थे। वह अक्सर सप्ताहांत मेरे घर पर बिताता था। यह गलत धारणा थी कि हमारा रिश्ता अप्राकृतिक था। हालाँकि, प्रधानाचार्य एस.एन. मुखर्जी गपशपों पर ध्यान देते थे और राय को छुट्टियों में हॉस्टल छोड़ने से मना करते थे।

सेंट स्टीफंस में बिताए मेरे दो वर्षों ने मुझे भारत का एक ऐसा रूप दिखाया जिसे मैं मॉडर्न स्कूल के बंद वातावरण में रहते हुए नहीं जान पाया था। वहाँ सरकार जैसे अजीब नामों वाले लोग थे, जिसका अर्थ था सरकार। हालाँकि मैंने अपने जीवन के शुरुआती कुछ वर्ष एक ऐसे गाँव में बिताए थे जहाँ ज़्यादातर मुस्लिम आबादी थी, और अपने उर्दू शिक्षक मौलवी शफीउद्दीन नैयर के प्रति मेरे आदर को देखते हुए, मुझे यह जानकर दुख हुआ कि कॉलेज में अधिकांश मुस्लिम खुद को अन्य भारतीयों से अलग एक समुदाय मानते थे। उस समय राष्ट्रवादी आंदोलन अपने चरम पर था। गांधी महात्मा बन चुके थे और अधिकांश मुसलमानों और कुछ ईसाइयों को छोड़कर सभी उन्हें भारत का नेता मानते थे। सेंट स्टीफंस में मेरे दूसरे वर्ष के दौरान ही तीन क्रांतिकारियों, भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दी गई थी। पूरे भारत में, फाँसी के विरोध में स्कूल और कॉलेज बंद रहे। लेकिन सेंट स्टीफंस बंद नहीं हुआ। सुबह की सभा के बाद, मैं और एक अन्य छात्र ने 'भगत सिंह, जिंदाबाद' का नारा लगाया। हमने सेंट स्टीफन कॉलेज के ध्वज स्तंभ पर भारतीय तिरंगा फहराया, जिस पर लाल क्रॉस और कॉलेज का आदर्श वाक्य, 'एड डेई ग्लोरियम' (ईश्वर की महिमा के लिए) अंकित था। कार्यवाहक प्रधानाचार्य, मोंक नामक एक अंग्रेज ने हमें अपने कार्यालय में बुलाया। उन्होंने हमें फटकारा और चेतावनी दी कि यदि हमने दोबारा ऐसा किया तो हमें कॉलेज से निकाल दिया जाएगा। मैंने अच्छा व्यवहार करने का वादा किया और मोंक से विनती की कि वे मेरे पिता को मेरी शिकायत न करें।

शिमला में अपने चाचा-चाची के साथ छुट्टियां मनाते समय घटी एक घटना मेरे मन में कई वर्षों तक खटकती रही। वे पंजाब विधानसभा के सदस्य थे और मंत्री या उपमंत्री बनने के लिए बेहद उत्सुक थे। वे राज्यपाल, मुख्यमंत्री और पंजाब मंत्रिमंडल के सदस्यों से मिलकर अपनी बात रखते थे। वे निस्संदेह अपने समय के सबसे सक्षम सिख राजनीतिज्ञ थे, लेकिन वे आगे नहीं बढ़ सके क्योंकि बड़े जमींदार होने के बावजूद उन्हें जाट किसान के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। उस समय पंजाब की राजनीति जाट-केंद्रित थी। एकमात्र गैर-जाट मंत्री एक हिंदू थे; सिख मंत्री सर सुंदर सिंह मजीठिया थे - एक कुलीन होने का दिखावा करने वाले जाट। मेरे चाचा ने मॉल और लक्कड़ बाजार के बीच एक सिनेमाघर के ऊपर स्थित डेविको के नए परिसर में एक बड़ी चाय पार्टी का आयोजन किया। शिमला के समाज के तीन से चार सौ से अधिक प्रतिष्ठित लोग, जिनमें

पंजाब सरकार के मंत्री भी शामिल थे, उपस्थित थे। मैं उस समय ऑटोग्राफ इकट्ठा करने का शौकीन था और मेरे एल्बम में जवाहरलाल नेहरू और सरोजिनी नायडू सहित कई लोगों के हस्ताक्षर थे। मुझे भगत सिंह के हस्ताक्षर नहीं मिल सके, इसलिए मैंने बस उस युवक की एक तस्वीर एल्बम के एक पन्ने पर चिपका दी। मैं चाय पार्टी में घूम-घूमकर मशहूर हस्तियों से उनके हस्ताक्षर माँगने लगा। उन्होंने बिना कुछ कहे हस्ताक्षर कर दिए। आखिर में मैं सर सुंदर सिंह मजीठिया के पास पहुँचा। उन्होंने मेरे एल्बम के पन्ने पलटने शुरू किए यह देखने के लिए कि मेरे पास किसके हस्ताक्षर हैं और उन्हें भगत सिंह की तस्वीर दिखी। उन्होंने गुस्से से पूछा, 'यहाँ इस आदमी की तस्वीर क्यों है?' मैंने बिना हिचकिचाए जवाब दिया, 'क्योंकि वह मेरा हीरो है।' 'हीरो!' उस शूरवीर ने उपहास उड़ाते हुए कहा। 'वह तो गद्दार है।' (भगत सिंह, जो एक सिख थे, ने अपने लंबे बाल कटवा लिए थे और दाढ़ी मुंडवा ली थी।) उन्होंने चिल्लाते हुए कहा, 'मैं अपना नाम किसी गद्दार की तस्वीर वाले एल्बम में नहीं डालूँगा।' फिर उन्होंने मेरा एल्बम हॉल में फेंक दिया। मैं हिल गया और फूट-फूट कर रोने लगा। मेरे पिता के करीबी दोस्त सेवा सिंह और उनकी पत्नी ने मजीठिया पर चिल्लाते हुए कहा, 'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई इस लड़के के साथ ऐसा बर्ताव करने की?' भगत सिंह की प्रशंसा करने का उन्हें पूरा अधिकार है। हम सभी को है।' मजीठिया गुस्से में कमरे से बाहर चले गए। पार्टी पूरी तरह से विफल रही। मेरे चाचा और चाची का नाराज़ होना स्वाभाविक था। मैं सर सुंदर सिंह मजीठिया के असभ्य व्यवहार के लिए उन्हें कभी माफ नहीं कर पाया—और न ही उनके बेटों और पोतों द्वारा दिखाई गई दोस्ती की पेशकश का जवाब दे पाया।

जहां तक मुसलमानों की बात है, गांधी टोपी पहने और खादी के कपड़े पहने एक लड़के को छोड़कर, बाकी सभी ने लाल फेज़ टोपी पहनी हुई थी और विशिष्ट मुस्लिम पोशाक में थे। वे राष्ट्रवाद की भाषा नहीं बोलते थे। स्टाफ में इतिहास के प्रोफेसर डॉ. इश्तियाक हुसैन कुरैशी भी थे, जो लगातार अपनी इस्लामी विरासत का बखान करते थे और मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों का समर्थन करते थे। वे पाकिस्तान में प्रवास करने वाले पहले लोगों में से थे और बाद में वहां के शिक्षा मंत्री बने। मुसलमानों की इस अलगाव की भावना ने मुझे दुखी कर दिया। मैंने उनसे दोस्ती करने की पूरी कोशिश की, लेकिन मुझे बहुत कम सफलता मिली।

यह कहना पूरी तरह सही नहीं होगा कि मेरी कोई मुस्लिम दोस्त नहीं बनी। एक बेहद सुखद और बिल्कुल अप्रत्याशित घटना मेरी बहन के माध्यम से हुई, जो उस समय लेडी इरविन महिला कॉलेज में पढ़ रही थी। उसकी हैदराबाद की एक मुस्लिम लड़की, ग़यूरुनिस्सा हाफ़िज़ से दोस्ती हो गई। उसे रविवार को चाय पर बुलाया जाता था। पहली बार जब वह आई तो उसने बुर्का पहना हुआ था और मेरी बहन को उसे हमारे घर में बुर्का उतारने के लिए मनाना पड़ा। वह दुबली-पतली, सांवली रंगत वाली, घुंघराले, हल्के भूरे बालों वाली लड़की थी। पर्दा प्रथा में रहने के बावजूद, वह हमारे घर में मिलने वाले लड़कों के साथ बातचीत और व्यवहार में काफी बेबाक थी। मैं उस पर बुरी तरह मोहित हो गई। मुझे यह भी एहसास हुआ कि धर्म द्वारा हमारे

बीच खड़ी की गई दूरी के कारण उसके करीब आने की कोई उम्मीद नहीं थी, और मैं सिर्फ एक मुस्लिम लड़की को दोस्त के रूप में पाकर ही बहुत खुश थी। वह मुझसे ज्यादा साहसी थी। एक शाम मेरी बहन और मैं उसे सिनेमा ले गए। उसने बुर्का तब तक पहने रखा जब तक लाइटें धीमी नहीं हो गईं। मैं दोनों लड़कियों के बीच बैठी थी। जैसे ही फिल्म शुरू हुई, मैंने महसूस किया कि उसका हाथ धीरे से मेरे हाथ पर आ गया है। कुछ पल के लिए मुझे समझ नहीं आया कि उसका हाथ कहाँ चला गया है या उसने जानबूझकर रखा है। मेरे संदेह दूर करने के लिए उसने धीरे से मेरा हाथ दबाया और अपनी उंगलियाँ मेरी उंगलियों में फंसा लीं। मैं उत्साह से पागल हो गया और फिल्म में मेरी सारी दिलचस्पी खत्म हो गई। अंतराल में, जब मेरी बहन का ध्यान कहीं और था, मैंने उससे पूछा कि क्या मैं उसे पत्र लिख सकता हूँ और उसे बाहर ले जा सकता हूँ। उसने सिर हिलाकर हाँ कहा। उसने कहा, 'मुझे तुम्हारी बहन के साथ जाने की अनुमति है, तुम मुझे लेने आ सकते हो और वापस छोड़ सकते हो।'

मेरी बहन को बिना बताए, मैं हर रविवार दोपहर उसकी सहेली को लेने जाने लगा और उसे लंबी ड्राइव पर ले जाने लगा। उस समय मेरे पिता के पास दो कारें थीं: एक नई जिसे वे खुद चलाते थे और एक पुरानी फिएट जो परिवार के इस्तेमाल के लिए थी। इस फिएट में क्लच के पास एक छोटा सा लीवर था जिसे बंद करने पर कार्बोरेटर में पेट्रोल का प्रवाह रुक जाता था। मैं अपने बाएं हाथ से उसका हाथ पकड़ता था, जबकि दायां हाथ स्टीयरिंग व्हील पर होता था। वह मुझे और कोई छूट नहीं लेने देती थी। एक शाम मैंने रिज पर एक सुनसान जगह पर पेट्रोल का लीवर बंद कर दिया, इस उम्मीद में कि मैं उसे अपनी बाहों में खींच लूंगा। वह मेरी ऐसी चालों से वाकिफ थी और उसने लीवर चालू कर दिया। 'अगर तुम ठीक से पेश नहीं आए, तो मैं तुमसे दोबारा नहीं मिलूंगी,' उसने मुझे चेतावनी दी। मैं ग़यूर के और करीब नहीं आ पाया, बस लाहौर और इंग्लैंड के कॉलेज से उसे प्रेम पत्र लिखता रहा। मैं दूसरी लड़कियों को भी ऐसे ही पत्र लिखता था।

तीस साल से भी ज़्यादा समय बाद घयूर मेरी ज़िंदगी में फिर लौटी, और वो भी मेरी बहन के ज़रिए, जिसे अब तक इस बात का पता नहीं था कि हमारे बीच उसकी पीठ पीछे क्या चल रहा था। तब तक घयूर अपने दो पतियों को खो चुकी थी और अठारह साल की प्यारी बेटी फरीसा की माँ बन चुकी थी, जो अपनी माँ के ही कॉलेज, लेडी इरविन में पढ़ती थी। घयूर ने मुझे उसका स्थानीय अभिभावक नियुक्त कर दिया। फरीसा अपनी माँ जैसी ही निकली। कई बार वो स्थानीय अभिभावक से मिलने के बहाने कॉलेज से निकल जाती, लेकिन मेरे घर आने के बजाय पार्टी करने चली जाती। उसे मुझसे चिट्ठी निकलवाने में कोई झिझक नहीं होती थी, जिसमें लिखा होता था कि उसने पूरा दिन हमारे साथ बिताया।

घयूर अस्सी साल की उम्र तक मेरी दोस्त रहीं। जब भी मैं हैदराबाद जाता, अपना खाली समय उनके साथ बिताता था। घयूर के स्नेह ने ही मुझे मुसलमानों का सच्चा प्रेमी बना दिया। मेरे लिए एक भारतीय मुसलमान कभी गलत नहीं हो सकता था। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी एक व्यक्ति से प्रेम करने पर ही आप उसके समुदाय से प्रेम करने लगते हैं।

मैंने भारतीय ईसाईयों के स्वतंत्रता आंदोलन से अलग रहने को ज़्यादा गंभीरता से नहीं लिया। मेरे पूर्वाग्रही मन में, उनमें से अधिकतर निचली जातियों से धर्म परिवर्तन करके आए थे। हम उनके अपनाए हुए अंग्रेज़ी-भारतीय नामों, जैसे रॉबर्ट मसीह, ह्यूबर्ट मार या एडवर्ड निर्मल, का मज़ाक उड़ाते थे। अपने अंग्रेज़ शासकों से खुद को जोड़ने की उनकी कोशिशें हास्यास्पद हो सकती थीं। एक बार, जब मैंने राजा के जन्मदिन पर कॉलेज भवन पर लहराते यूनियन जैक के बारे में कोई अपमानजनक टिप्पणी की, तो बटाला के एक पंजाबी ईसाई ह्यूबर्ट मार ने विरोध करते हुए कहा: 'हमें आपके झंडे फहराने से कोई आपत्ति नहीं है; आपको साल में एक दिन हमारे झंडे के होने पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए।' मंगत राय की इस विषय पर कोई स्पष्ट राय नहीं थी। एक सरकारी अधिकारी के पुत्र और अपनी महत्वाकांक्षाओं के कारण, उन्होंने कभी भी 'स्वराज के पक्ष या विपक्ष' की बहस में हिस्सा नहीं लिया।

सेंट स्टीफंस में अपने दो साल के दौरान मैंने कुछ खास हासिल नहीं किया। जैसे-तैसे परीक्षा पास कर ली। पढ़ाई से ज्यादा समय टेनिस खेलने में बिताया। लेकिन टेनिस में भी मैं कॉलेज की बी टीम में जगह नहीं बना पाया। सिख होने के नाते, मुझे लगा कि मुझे सैनिक जीवन के बारे में कुछ तो जानना चाहिए। मैंने यू.टी.सी. (विश्वविद्यालय प्रशिक्षण कोर) में भर्ती हो गया, जिसमें लाल किले में हर दो सप्ताह में अभ्यास करना होता था। गर्मी के मौसम में हमें चुभने वाली भूरे रंग की ऊनी कमीजें, पैरों में मोटी पट्टियाँ और कील वाले जूते पहनने पड़ते थे। मैं जल्द ही अभ्यास से ऊब गया और छोड़ना चाहता था। नियमों के अनुसार भर्ती होने के बाद किसी को भी छोड़ने की अनुमति नहीं थी: यह भगोड़ापन माना जाता था और इसके लिए कारावास की सजा हो सकती थी। कोई रास्ता नहीं था। हमें हर साल एक सप्ताह शिविर में भी बिताना पड़ता था, जहाँ उपस्थिति अनिवार्य थी। हमारे तंबू उस जगह पर लगाए गए थे जिसे आज किंग्सवे कैंप के नाम से जाना जाता है, जहां राजा जॉर्ज पंचम और रानी मैरी ने 1911 में नई दिल्ली की नींव रखी थी। 1930 के दशक में किंग्सवे कैंप कंटीली झाड़ियों का एक बीहड़ इलाका था जो सांपों और बिच्छुओं से भरा हुआ था।

यूटीसी शिविर में टेंट उपनामों के अनुसार वर्णमाला क्रम में आवंटित किए गए थे और मैंने खुद को पांच अन्य सिंहों के साथ पाया, सभी सिख थे और विभिन्न कॉलेजों से आए थे। दो लांस-कॉर्पोरल, दो कॉर्पोरल और एक सार्जेंट थे। मैं उनमें अकेला सिपाही और इकलौता स्टीफनियन था। वे बड़े ही मजबूत और जोशीले थे, और शिविर में सप्ताह भर चलने वाली खेल प्रतियोगिताओं में जीत हासिल करने के लिए दृढ़ संकल्पित थे। सार्जेंट ने मुझे आश्वासन दिया कि अगर मैंने खेलों में अच्छा प्रदर्शन किया, तो वह मुझे लांस-कॉर्पोरल बनाने की सिफारिश करेंगे।

मुझे अपने साथी सिखों के साथ एक ही कमरे में रहना बहुत मुश्किल लगा। वे ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे लेते थे और मेरी दोपहर की नींद और रात की नींद में खलल डालते थे। वे देहाती थे और अपनी गाँव की बोली में अश्लील चुटकुले सुनाते थे। खेलों में मेरे खराब प्रदर्शन ने उन्हें मेरे प्रति और भी तिरस्कारपूर्ण बना दिया - क्योंकि उन सभी ने किसी न किसी खेल में जीत हासिल की थी। वे मुझे ताना मारते थे, 'क्या तुम सिख हो या बनिया?' जब मैं उनसे तंग आ गया, तो मैंने उन्हें सबक सिखाने का फैसला किया: मैंने नसवार का एक पैकेट खरीदा। एक दोपहर, जब वे दोपहर की नींद ले रहे थे, मैंने उसे उनकी मूंछों पर, नाक के पास गिरा दिया और दूसरे तंबू की ओर भागा जहाँ सेंट स्टीफंस के कुछ लड़के ठहरे हुए थे। मैंने उनसे कहा, 'देखो मज़ा!' कुछ मिनट बाद वे पाँचों ज़ोर-ज़ोर से छींकते हुए तंबू से बाहर आए। उन्हें समझ नहीं आया कि कैसे उन्हें एक साथ छींक आने लगी। उन्होंने देखा कि यू.टी.सी. की पूरी टुकड़ी ज़ोर-ज़ोर से हंस रही थी। शरारत के स्रोत का पता चलने पर उन्होंने मुझसे बदला लेने की कसम खाई।

दो दिन बाद मैंने मूर्खतापूर्वक वही शरारत दोहराने की कोशिश की, लेकिन मेरे साथी तो सोने का नाटक कर रहे थे। वे मुझ पर टूट पड़े, मेरे सारे कपड़े उतार दिए और मुझे तम्बू से बाहर फेंक दिया। फिर उन्होंने पूरे शिविर को तमाशा देखने के लिए ज़ोर-ज़ोर से निमंत्रण दिया। हिसाब बराबर हो गया। मैंने उनसे सुलह कर ली। और मुझे यह बहुत फ़ायदेमंद लगा।

स्टेफेनियन लोगों में Z____ नाम का एक पहलवान था, जो गुदा मैथुन में भी लिप्त था। जब हम सुबह और दोपहर को तंबू में स्नान करते थे, तो Z____ अपने संभावित शिकारों पर नज़र रखता था। उसने केरल के एक युवक इटियारा और मुझे निशाना बनाया। उसने हमसे कहा, 'या तो एक को मरना होगा या दूसरे को। तुम तय करो कि तुममें से कौन मरेगा, वरना मैं तुम दोनों का गुदा मैथुन कर दूंगा।' केरल के युवक और मैंने पहलवान से मिलकर लड़ने का फैसला किया। मैंने अपने तंबू के साथियों से मदद की गुहार लगाई। सिख सार्जेंट, जो Z____ से भी ज़्यादा ताकतवर था, ने उस गुदा मैथुन करने वाले को अपनी सेवाएं देने की पेशकश की। 'मैं लेन-देन में विश्वास करता हूँ - वारी वट्टा। पहले मैं तुम्हें ले जाता हूँ, फिर तुम मुझे ले सकते हो। लेकिन अगर तुमने इस सिख लड़के पर हाथ उठाया, तो मैं तुम्हारा जान ले लूंगा।' इससे Z____ का दिमाग ठीक हो गया।

एक तपती दोपहर जब हम सो रहे थे, एक बड़ा कोबरा एक लड़के की गर्दन पर रेंगता हुआ दूसरी तरफ चला गया। लड़का डर के मारे चीख उठा और उसने सांप को अपने शरीर से दूर फेंक दिया। सांप दूसरे लड़के की छाती पर गिरा और गुस्से से फुफकारने और थूकने लगा। हम तंबू से बाहर भागने की कोशिश करने लगे। घबराहट में हमने बीच का खंभा गिरा दिया और तंबू हमारे सिर पर आ गिरा, कोबरा और हम दोनों उसके नीचे दब गए। हम किसी तरह बाहर निकलने में कामयाब हो गए, लेकिन सांप भी निकल गया। यू.टी.सी. के लड़के राइफलों से लैस थे, लेकिन उनके पास गोलियां नहीं थीं, उन्होंने सांप का पीछा किया। सांप पेट के बल दौड़ते हुए हमसे ज्यादा तेज साबित हुआ। कोबरा वाली घटना मेरे लिए आखिरी झटका थी।

मैंने एक मेडिकल सर्टिफिकेट दिया जिसमें लिखा था कि पिछले साल की लंबी बीमारी के कारण मुझे ड्रिल और परेड में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। इससे सैनिक बनने का मेरा किशोरावस्था का सपना टूट गया।

मैंने 1932 में इंटरमीडिएट आर्ट्स की परीक्षा दी। जैसा कि उम्मीद थी, मैं मुश्किल से द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। और, जैसा कि अनुमान था, मंगत राय ने कई विषयों में विश्वविद्यालय में शीर्ष स्थान प्राप्त किया।

मुझे ठीक से याद नहीं कि मैंने सेंट स्टीफंस स्कूल छोड़कर लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में स्नातक की पढ़ाई करने का फैसला क्यों किया। मेरे भविष्य को तय करने में मेरे पिता की अहम भूमिका थी। एक बार, जब मैं स्कूल में ही थी, प्रिंसिपल कमला बोस ने मेरी अंग्रेजी शिक्षिका मिस बडेन के कहने पर उन्हें सुझाव दिया कि मैं लेखन में अपना करियर बना सकती हूँ। उन्होंने कई दिनों तक इस सुझाव पर विचार किया, लेकिन अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लेखन से कोई जीविका नहीं चला सकता। ज़्यादा से ज़्यादा, यह एक शौक हो सकता है जिसे किसी पेशे के साथ-साथ करना पड़ेगा। चूंकि मैं बहुत ज़्यादा बोलती थी—मेरी माँ अक्सर मुझे गलाधर कहती थीं—और हमेशा बहस में पड़ जाती थी, इसलिए मेरे माता-पिता ने फैसला किया कि मेरे लिए कानून सबसे उपयुक्त रहेगा। हमारे परिवार में कोई वकील नहीं था और मेरे पिता को पारिवारिक व्यवसाय और संपत्ति से जुड़े मुकदमों के लिए वकीलों को मोटी फीस देनी पड़ती थी। शायद इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने मुझे मॉडर्न स्कूल में हिंदी से उर्दू में दाखिला दिलाया, क्योंकि अदालती रिकॉर्ड उर्दू में रखे जाते थे। दिल्ली की अदालतें लाहौर उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में थीं। मेरे पिता को शायद यही लगा होगा कि लाहौर में वकालत शुरू करने से पहले मुझे वहां के माहौल से अच्छी तरह वाकिफ हो जाना चाहिए। मेरे मन में जीवन के बारे में कोई पक्की राय नहीं थी। मैंने कुछ अनिश्चित कारणों से लाहौर जाने का फैसला किया। मैं जगहों और लोगों से जल्दी ऊब जाता था, जैसा कि आज भी होता है, और हमेशा नई जगहों की तलाश में रहता था और नए लोगों से मिलना चाहता था। तब भी और अब भी, मैं स्थायी दोस्ती बनाने में असमर्थ हूं।

सरकारी महाविद्यालय उत्तरी भारत का सबसे प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान था, खेल और अध्ययन दोनों क्षेत्रों में अपनी उपलब्धियों के कारण। उस समय, भारत की ओलंपिक हॉकी टीम के चार खिलाड़ी, जिनमें कप्तान भी शामिल थे, इसी महाविद्यालय से थे। भारतीय क्रिकेट और एथलेटिक्स टीमों के भी कई खिलाड़ी इसी महाविद्यालय से चुने गए थे। महाविद्यालय के अध्यक्ष सेवानिवृत्त अंग्रेज कर्नल एच.एल.ओ. गैरेट थे, जो लंबे और गंभीर स्वभाव के थे और संस्थान को एक सैन्य केंद्र की तरह चलाते थे। स्टाफ में अन्य अंग्रेज भी थे। कई भारतीय व्याख्याताओं के पास ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज की डिग्रियां थीं - उनमें दो प्रतिष्ठित वैज्ञानिक, बीरबल साहनी और डॉ. कश्यप भी शामिल थे। महाविद्यालय में प्रवेश सीमित था। योग्यता से अधिक धन, वंश और राजनीतिक प्रभाव को महत्व दिया जाता था। एचिसन चीफ कॉलेज से आने वाले जमींदार अभिजात वर्ग के पुत्रों को बिना किसी परेशानी के प्रवेश मिल जाता था, चाहे स्कूल में उनका प्रदर्शन कितना भी

खराब क्यों न रहा हो। अन्य छात्रों का उनके पिता या अभिभावकों के साथ साक्षात्कार लिया जाता था। मुझे मेरे चाचा उज्ज्वल सिंह के साथ बोर्ड के सामने पेश किया गया। उज्ज्वल सिंह अपने समय में कॉलेज की हॉकी टीम के कप्तान रह चुके थे, वहीं से उन्होंने स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की थी और अब पंजाब विधानसभा के सदस्य थे। बोर्ड के किसी भी सदस्य ने मुझसे कोई सवाल पूछने की जहमत नहीं उठाई। मेरे चाचा ही सरकारी कॉलेज में प्रवेश के लिए मेरे पासपोर्ट और वीजा थे।

सेंट स्टीफंस छोड़ने पर मंगत राय बहुत दुखी थे। नए सत्र की शुरुआत से पहले की छुट्टियों में उन्होंने मुझे लंबे-लंबे पत्र लिखे और जब मैंने उन्हें बताया कि मैं लाहौर जाने के लिए दृढ़ संकल्पित हूँ, तो उनकी आँखों में लगभग आँसू आ गए। मैं अपनी ए.जे.एस. मोटरसाइकिल से लाहौर गया और दिल्ली से लाहौर तक ग्रैंड ट्रंक रोड पर 300 मील की दूरी आठ घंटे में तय की। उन दिनों इस राजमार्ग पर यातायात बहुत कम होता था।

लाहौर में पहले चार महीने मैं जेल रोड पर किराए के मकान में अपने चाचा के साथ रहा। उनकी पत्नी ने हाल ही में जुड़वां बेटियों को जन्म दिया था। वे पंजाब विधानसभा के चुनाव भी लड़ रहे थे। वहां राजनेताओं, समर्थकों, चुनाव प्रचार प्रबंधकों और ऐसे ही अन्य लोगों का काफी आना-जाना लगा रहता था। मेरे चचेरे भाई, जिन्होंने कॉलेज में दाखिला लिया था, और मैंने कॉलेज के छात्रावास में रहने का फैसला किया। सरकारी कॉलेज में दो छात्रावास थे: आम लोगों के लिए क्वाड्रेंगल और ज़मींदारों के बेटों के लिए विशेष कमरों वाला अधिक महंगा न्यू हॉस्टल, जिनमें से कुछ के पास नौकर भी थे। हमें एक कोने में कमरा मिला, जहां से डी.ए.वी. कॉलेज और अदालतें दिखाई देती थीं। हमारी खिड़की के नीचे वह जगह थी जहां से भगत सिंह और राजगुरु ने लाहौर रेलवे स्टेशन के बाहर साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन के दौरान लाला लाजपत राय पर हमला करने वाले एंग्लो-इंडियन पुलिस इंस्पेक्टर सॉन्डर्स को गोली मारकर हत्या कर दी थी। अदालतें देखने में बहुत अच्छी नहीं लगती थीं। हमने सुबह-सुबह काली महिला पुलिसकर्मियों को हथकड़ी और पैरों में जंजीरों से जकड़े कैदियों को उतारते और शाम को वापस ले जाते देखा। साथ ही, अदालत की दीवारों के सामने पेशाब करने के लिए वादी और वकील कतार में खड़े होते थे।

सरकारी कॉलेज एक भव्य इमारत थी, जो पहाड़ी की चोटी पर बने किसी गॉथिक गिरजाघर जैसी दिखती थी। इसके सामने एक बड़ा खेल का मैदान था; इसके पश्चिमी हिस्से में टेनिस कोर्ट, पूर्वी हिस्से में एक स्विमिंग पूल और चौक था। कॉलेज गोले बाग नामक एक गोलाकार पार्क के एक छोर पर स्थित था, जो संग्रहालय और एक विशाल तोप, भंगियां दी तोपे, की ओर जाता था। यह तोप सिखों से छीनी गई थी और बाद में रूडयार्ड किपलिंग के उपन्यास के नायक किम के नाम पर इसका नाम किम की तोप रखा गया था। यहीं से द मॉल शुरू होता था, जो उच्च न्यायालय, विधान सभा भवन और लॉरेंस गार्डन से होते हुए एक नहर तक जाता था, जो शहर के पूर्वी छोर को चिह्नित करती थी। लाहौर का मुख्य बाजार, अनारकली,

कॉलेज से केवल एक फर्लांग की दूरी पर था। और बहुत दूर नहीं, लाहौर का प्रसिद्ध रेड-लाइट एरिया, हीरा मंडी था, जिसका नाम महाराजा रणजीत सिंह के प्रिय राजा हीरा सिंह डोगरा के नाम पर रखा गया था। स्थानीय लोग इसे तिब्बी बाजार के नाम से जानते थे। सरकारी कॉलेज के कई लड़कों ने तिब्बी की वेश्याओं के साथ अपना कौमार्य खोया था।

सरकारी महाविद्यालय में मेरे कई सहपाठी विभिन्न क्षेत्रों में ख्यातिप्राप्त हुए। उनमें से एक थे अंग्रेजी के प्रोफेसर ए.एस. बोखारी, जो भोजन के बाद भाषण देने में माहिर थे, उर्दू में हल्के-फुल्के गद्य (पितरों के मज़ामीन) के लेखक थे और महिलाओं के पारखी थे। वे अखिल भारतीय रेडियो के महानिदेशक और फिर संयुक्त राष्ट्र के जनसंचार विभाग के प्रमुख बने। उनका अचानक हृदय गति रुकने से निधन हो गया। शफकत महमूद, जो उस समय न्यूयॉर्क स्थित पाकिस्तानी वाणिज्य दूतावास में तैनात थे और बोखारी के घनिष्ठ मित्र थे, उनके सामान की सूची बनाने के लिए उनके अपार्टमेंट गए। नौकरानी ने शफकत को बताया कि बोखारी अपना अधिकांश समय अपने अध्ययन कक्ष में बिताते थे और किसी को भी उसमें प्रवेश नहीं करने देते थे। नौकरानी को उनकी जेब में चाबी मिली और उसने शफकत को दे दी। उन्होंने अध्ययन कक्ष खोला। उसमें उच्च गुणवत्ता वाले उपकरण थे और अलमारियाँ रिकॉर्ड किए गए टेपों से भरी हुई थीं। ये बोखारी द्वारा विभिन्न मंचों पर दिए गए भाषणों की रिकॉर्डिंग थीं। वे घंटों अपनी आवाज़ और मिली तालियों को सुनते रहते थे।

इम्तियाज़ अली ताज, मोहम्मद तहसीर और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ (अल्लामा इक़बाल के बाद पाकिस्तान के सबसे महान कवि) सहित कई प्रख्यात उर्दू लेखक बोखारी से जुड़े थे। तहसीर की पत्नी स्कॉटिश थीं, जिनकी छोटी बहन एलिस ने बाद में फ़ैज़ से शादी की। उनका समूह बहुत ही घनिष्ठ था, जिसमें केवल वे पुरुष शामिल थे जो उर्दू या फ़ारसी कविता में पारंगत थे। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन मैं इस विशिष्ट समूह में प्रवेश पाने में असफल रहा।

सरकारी कॉलेज में मेरा प्रदर्शन सेंट स्टीफंस से बेहतर नहीं रहा। एक तो हमारे शिक्षक बेहद नीरस थे। बोखारी को पढ़ाने में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी और वे पैंतालीस मिनट के समय का अधिकांश हिस्सा इंग्लैंड में अपने कारनामों का बखान करने में बिताते थे। एम.जी. सिंह कुछ ज़्यादा कर्तव्यनिष्ठ थे, लेकिन वे छात्रों को प्रश्न पूछने का मौका दिए बिना कवियों और लेखकों पर अपनी राय देने तक ही सीमित रहते थे। चूंकि अंग्रेजी साहित्य में मेरी रुचि जुनून में बदल चुकी थी, इसलिए मैंने पाठ्यपुस्तक की कई कविताएँ, साथ ही शेक्सपियर के दो नाटक, 'अ मिडसमर नाइट्स ड्रीम' और 'रिचर्ड द्वितीय', जो हमारे पाठ्यक्रम में शामिल थे, याद कर लिए। जो मुझे समझ नहीं आया, वह अनसुना ही रह गया। मुझे महान लेखकों, नाटककारों और कवियों की रचनाओं पर दूसरों के विश्लेषण या आलोचना पसंद नहीं थी। मेरे लिए यह एक सुंदर तितली को काटकर मार डालने जैसा था। मेरे लेखन के प्रयासों की सराहना नहीं की गई। मैंने कॉलेज की पत्रिका 'रवि' में दो रचनाएँ भेजीं; दोनों को अस्वीकार कर दिया गया, और उनके अंशों को 'कचरा पेटी' कॉलम में प्रकाशित किया गया ताकि यह साबित हो सके कि वे बेकार थीं।

हमारे इतिहास और अर्थशास्त्र के शिक्षक वर्षों से संकलित नोट्स को बस पढ़कर सुनाते थे। वे न तो चर्चा को प्रोत्साहित करते थे और न ही अपने विषयों पर प्रकाशित नई पुस्तकों पर ध्यान देते थे। कॉलेज में एक किस्सा प्रचलित था, जो प्रख्यात वैज्ञानिक और नोबेल पुरस्कार विजेता सर सी.वी. रमन के आगमन से संबंधित था। प्रधानाचार्य गैरेट उन्हें कॉलेज की नई प्रयोगशाला दिखाने ले गए। अंग्रेज कर्नल से शिक्षाविद बने सर सी.वी. रमन ने पूछा, 'सर सी.वी., आपको हमारी प्रयोगशाला कैसी लगी?' चतुर तमिलियन ने उत्तर दिया, 'संगमरमर का फर्श बहुत अच्छा है।' गैरेट, जो सी.वी. रमन का असली मतलब नहीं समझ पाए थे, ने प्रश्न दोहराया। उन्हें वही उत्तर मिला।

सरकारी कॉलेज में मुस्लिम छात्रों से दोस्ती करने की मेरी कोशिशें नाकाम रहीं। वे ज़्यादातर अपने आप में ही रहते थे। उनका अपना मेस था जहाँ हलाल मांस परोसा जाता था और उनकी अपनी कैंटीन थी। हिंदू और सिख छात्रों के अपने शाकाहारी और मांसाहारी कैंटीन थे, साथ ही अलग-अलग कैंटीन भी थीं। हालाँकि हम साथ में टेबल टेनिस, कैरम और दूसरे इनडोर खेल खेलते थे और कक्षाओं में अगल-बगल बैठते थे, लेकिन मुसलमानों के साथ घनिष्ठ मित्रता के कुछ ही उदाहरण थे। जिन कुछ ज्ञात लोगों के साथ ऐसी मित्रता हुई, उन पर तुरंत समलैंगिकता के आरोप लगने लगे। एक कमज़ोर दिखने वाले सिख युवक, जो बाद में एक अच्छा मुक्केबाज़ निकला, के बारे में कहा जाता था कि हॉकी टीम के मुस्लिम कप्तान ने उसके साथ अप्राकृतिक यौन संबंध बनाए थे। कुछ साल बाद, वह सिख खुद नए आने वाले सुंदर लड़कों से दोस्ती करने लगा। समलैंगिक बन चुके सिखों के बारे में उर्दू में आम टिप्पणी यह थी: "जब छबछे भर गए, तो पानी पाइपों से बाहर बहने लगा।"

कुछ समय बाद, मैंने अपने मन में उन लोगों से दोस्ती करने का फैसला कर लिया जो मुझे पसंद आए। उनमें से एक बहुत ही सुंदर लड़का था, चेतन आनंद—गोरा, लड़कियों जैसा दिखने वाला, घुंघराले बालों और सपनों भरी आँखों वाला। उसे अपने से बड़े छात्रों से बचना मुश्किल होता था जो उस पर बुरी नज़र रखते थे। वह मुझसे बहुत घुलमिल गया। वह रवींद्रनाथ टैगोर की शैली में कविताएँ लिखता था और अक्सर मुझे बेतरतीब, बिना तुकबंदी वाली कविताएँ सुनाता था। हम साथ में क्लास जाते थे, एक-दूसरे के बगल में बैठते थे, टेनिस खेलते थे और अक्सर साथ में फ़िल्में देखने जाते थे। इंग्लैंड में हमारी फिर से मुलाकात हुई। जब मैं लाहौर में बस गया, तो उसने मेरे साथ एक गर्मी बिताई। फिर वह फिल्म निर्माता बनने के लिए मुंबई चला गया, लेकिन ज़्यादा सफल नहीं हो पाया। वह सिर्फ़ लेने वाला था, देने वाला नहीं। हमारे समूह में एन. इकबाल सिंह भी था, एक छोटा सिख, जिसकी लंबाई पाँच फीट चार इंच से ज़्यादा नहीं थी और जिसकी आवाज़ लड़कियों जैसी पतली थी। उसका उपनाम चूची था। उसने भी मेरे साथ दिल्ली, लाहौर और लंदन में कई महीने बिताए। चेतन की तरह, वह भी लेने वाला था, देने वाला नहीं। मैं दूसरों की तुलना में जल्दी लेने वालों से ऊब जाता हूँ और आतिथ्य सत्कार में कभी भी एकतरफा व्यवहार सहन नहीं कर पाया हूँ। गवर्नमेंट कॉलेज में कुछ और भी थे जो बाद में फिल्म जगत की हस्तियाँ बने,

जैसे बलराज साहनी, जो बहुत ही आकर्षक और मिलनसार व्यक्ति थे और मुझसे कुछ साल सीनियर थे। और मेरे एक सहपाठी, बी.आर. चोपड़ा, जो बॉम्बे के एक प्रमुख फिल्म निर्माता बने।

वहाँ किरपाल सिंह चावला भी थे, जो एक समृद्ध व्यापारी के सबसे बड़े बेटे थे। हालाँकि उन्होंने जीवन में कोई खास सफलता हासिल नहीं की, फिर भी मुझे उन्हें याद रखने का अच्छा कारण है। उन्होंने मुझसे दोस्ती इसलिए की क्योंकि उनके पास भी एक मोटरसाइकिल थी और उनका मानना था कि संपन्न परिवारों के बेटों को एक समूह बनाना चाहिए। वे हमेशा सलीके से सिले हुए सूट, बो-टाई और करीने से बंधी पगड़ी में सजे रहते थे, जिसके नीचे से बहुरंगी रिबन दिखाई देता था। वे अपनी हल्की दाढ़ी को संवारते थे, मूंछों को ऊपर की ओर घुमाते थे और सीना फुलाकर मोटरसाइकिल चलाते थे। उन्होंने मुझे पहले तो बेहतर कपड़े पहनने और मोटरसाइकिल पर झुककर न बैठने की सलाह दी। उन्होंने मुझसे कहा, 'जिनकी जेब में चार पैसे हैं, उन्हें सीना तानकर चलना चाहिए।' फिर वे मुझे अपने घर बुलाने लगे। उनके पिता भी बड़े सलीके से कपड़े पहनते थे और इंग्लैंड से मंगाई गई रेशमी टाई लगाते थे। उन्हें कोई देख नहीं पाता था क्योंकि वे उनकी लंबी, भूरी दाढ़ी से ढकी रहती थीं, जो उनकी नाभि तक लटकती थी। उन्होंने दूसरी शादी की थी और दोनों पत्नियों से उनके कई बेटे और जवान बेटियां थीं। उन्होंने अपने बेटे को अपने सिख दोस्तों को घर पर बुलाने के लिए प्रोत्साहित किया। किरपाल का बगीचे में गैराज के ऊपर एक अलग कमरा था। वे कला प्रेमी थे और उनके पास भारतीय शास्त्रीय संगीत के कई रिकॉर्ड थे। उन्होंने विचित्र वीणा बजाना शुरू किया और इतने कुशल हो गए कि उन्हें ऑल इंडिया रेडियो के लाहौर स्टेशन पर प्रस्तुति देने का निमंत्रण मिला। उन्हें गोरी चमड़ी वाली महिलाओं के प्रति विशेष आकर्षण था। वे कहते थे, 'कश्मीरी पंडितों की बेटियों जैसी लड़कियां और कोई नहीं,' और साथ ही साथ एक काल्पनिक लड़की को अपनी बाहों में पकड़े रहते थे। 'अगर कभी शादी करूँगी, तो किसी पंडितानी कुंवारी से ही करूँगी। लेकिन मैं शादी नहीं करूँगा क्योंकि मेरी जीवन रेखा बताती है कि मैं तीस साल की उम्र से पहले ही मर जाऊँगा।' वे अपनी जीवन रेखा की लंबाई दिखाने के लिए अपने दाहिने हाथ की हथेली खोलते थे। गोरी चमड़ी वाली महिला से शादी करने की उनकी इच्छा कॉलेज में पढ़ते समय ही पूरी हो गई थी। उन्होंने मुझे बताया कि यह सब कैसे हुआ।

एक गर्मी की दोपहर, जब वह कश्मीरी सुंदरी के बारे में सोच रहा था, तभी उसे ज़बरदस्त उत्तेजना हुई। वह हस्तमैथुन करने ही वाला था कि धोबिन उसके कपड़ों का गट्ठा लेकर अंदर आ गई। वह मोटी, अधेड़ उम्र की महिला थी और कई बच्चों की माँ थी। उसका रंग भी गोरा था। किरपाल ने उसे सीधे अपने बिस्तर पर धकेल दिया और उसके साथ संबंध बना लिया। धोबिन ने पहले तो थोड़ा विरोध किया, फिर किरपाल को अपनी इच्छा पूरी करने दी। यह ज़्यादा देर तक नहीं चला। उसने उसे दस रुपये का नोट इनाम के तौर पर दिया। वह इसे पाकर खुश थी। उसने कपड़ों की सूची देखी और गंदे कपड़ों का ढेर बनाकर उसे धोने के लिए दे दिया। उसने शरारती अंदाज़ में ताना मारा, 'तुमने आग लगा दी है, अब तुम्हें ही बुझानी होगी।'

तो उसने दोबारा कोशिश की, जिससे बूढ़ी धोबिन को दस रुपये के दूसरे नोट से भी ज़्यादा खुशी मिली। यह एक निरंतर संबंध बन गया। वह उसके साप्ताहिक आगमन का इंतज़ार करता था। उसने मुझे भी इस आनंद में शामिल होने का न्योता दिया, बशर्ते मैं दस रुपये खर्च करने को तैयार हूँ। मुझे अपनी यौन गतिविधियों के बारे में किसी को बताना अच्छा नहीं लगता था, इसलिए मैंने विनम्रतापूर्वक उनका निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। किरपाल चालीस वर्ष की आयु में अविवाहित ही चल बसे।

मुझे ठीक से याद नहीं कि कविता, संगीत और कला में मेरी रुचि फिर से कैसे जागृत हुई। शायद चेतर की कविताओं ने या किरपाल चावला के कमरे में सितार वादकों को सुनने ने – मैंने सितार सीखना फिर से शुरू करने और चित्रकला में हाथ आजमाने का फैसला किया। जब पहली गर्मी की छुट्टियां नजदीक आ रही थीं, तो मैंने शांतिनिकेतन स्थित टैगोर विश्वविद्यालय को पत्र लिखकर कला भवन में प्रवेश के लिए आवेदन किया, जो संगीत और कला का केंद्र था। मुझे एक आवेदन पत्र मिला जिसमें उनसे किसी परिचित व्यक्ति का नाम मांगा गया था। अशोक सेन के पिता के पास शांतिनिकेतन में जमीन का एक टुकड़ा था और वे वहां कई लोगों को जानते थे। मैंने उनसे सिफारिश पत्र देने का अनुरोध किया। 'अकाली! [वे हमेशा मुझे अकाली कहकर बुलाते थे क्योंकि मैंने अकाली आंदोलन के दौरान काली पगड़ी पहनना शुरू कर दिया था] शांतिनिकेतन में आप क्या करेंगे?' मैंने उनसे कहा। वे एक दयालु बुजुर्ग थे और उन्होंने तुरंत विश्व भारती के रजिस्ट्रार को पत्र लिख दिया।

शांतिनिकेतन की यात्रा मेरी पहली ट्रेन यात्रा थी जो मैंने अकेले की थी। मैंने हावड़ा में ट्रेन बदलकर बोलपुर जाने के लिए तृतीय श्रेणी में सफर किया। मानसून अभी शुरू ही हुआ था। हावड़ा और बोलपुर के बीच का पूरा इलाका पानी से भरा हुआ था। मैंने एक बैलगाड़ी किराए पर ली और एक घंटे बाद विश्वविद्यालय के प्रशासक को अपने आगमन की सूचना दी। मुझे एक बड़ा, बिना साज-सज्जा वाला कमरा दिखाया गया जिसे मुझे श्रीलंका के मंजुश्री नामक एक युवा बौद्ध भिक्षु के साथ साझा करना था, और फिर मुझे भोजन कक्ष और कला भवन का भ्रमण कराया गया। जब तक मैंने परिसर का भ्रमण पूरा किया, अंधेरा हो चुका था और हल्की-हल्की बारिश शुरू हो गई थी। मैं अपने कमरे में लौटा और फर्श पर अपना बिस्तर बिछाया। मंजुश्री दीपक की रोशनी में पढ़ रहे थे - हमारे कमरों में बिजली नहीं थी। हमने एक-दूसरे के बारे में अंग्रेजी में जानकारी साझा की क्योंकि उन्हें हिंदुस्तानी नहीं आती थी। वे शांतिनिकेतन के अभिलेखागार में पाली की कुछ पांडुलिपियों पर काम कर रहे थे और उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था जिसके अनुसार उन्हें महिलाओं से बात नहीं करनी थी। उन्होंने मुझसे सबसे पहले उन लड़कियों के बारे में सवाल किए जिन्हें मैं जानता था।

मुझे ठीक से नींद नहीं आई क्योंकि मुझे सख्त ज़मीन पर सोने की आदत नहीं थी। तभी तेज़ बारिश शुरू हो गई। मैं सपनों की दुनिया में खो गया। दूर से आती हुई आवाज़ें मेरे करीब आती सुनाई दीं। मुझे एहसास हुआ कि मैं सपना नहीं देख रहा हूँ।

मैं बिस्तर से उठा और दरवाज़ा खोला। हल्की बूंदा-बांदी के बीच से धुंधली चाँदनी अंदर आ रही थी। मैंने देखा कि कुछ युवक-युवतियाँ बेदाग सफेद कपड़ों में, लालटेन और मोमबत्तियाँ लिए, रास्ते से गाते हुए आ रहे थे। मैं तब तक मंत्रमुग्ध होकर खड़ा रहा जब तक वे मेरे दरवाज़े से आगे नहीं निकल गए। मंजुश्री ने मुझे बताया, 'यह वर्षा मंगल है, बारिश का स्वागत करने का उत्सव। वे कैंपस में टैगोर के गीत गाते हुए घूमेंगे।'

शांतिनिकेतन से मेरा परिचय बहुत सुखद रहा। गीत और सौंदर्य की वह छवि कई वर्षों तक मेरे मन में बसी रही। सुरेंद्र नाथ कर के मार्गदर्शन में कला छात्र के रूप में पंजीकरण कराने और सितार शिक्षक मिलने के बाद और भी बहुत कुछ होना बाकी था। मैंने पूरा दिन उपकरण खरीदने और अपने परिवेश से परिचित होने में बिताया। दोपहर में टैगोर उदय शंकर और उनकी फ्रांसीसी नृत्य साथी सिम्की से छात्रों का परिचय कराने के लिए परिसर में आए, जो अभी-अभी अपने पहले यूरोपीय दौरे से लौटे थे। टैगोर एक चबूतरे पर रखी एक बड़ी कुर्सी पर बैठे और शंकर को सीधे-सीधे आदेश दिया, 'मुझे आपका नृत्य देखने दीजिए!' वहाँ न मेकअप था, न उपकरण, न स्टेज लाइट, सरोद बजाने वाले तिमिर बरन के अलावा कोई ऑर्केस्ट्रा नहीं था। उदय शंकर ने पार्वती के रूप में सिम्की के साथ तांडव नृत्य किया। मैंने हिजड़ों के भद्दे नृत्यों और शौकिया कथक नर्तकों द्वारा राधा-कृष्ण की धुनों पर किए जाने वाले नृत्यों के अलावा कोई भारतीय नृत्य नहीं देखा था। शंकर और सिम्की के सरोद की ताल पर थिरकते हुए उनके लचकदार नृत्यों ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया। उस रात मुझे नींद नहीं आई; संगीत और नृत्य ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

शांतिनिकेतन ने मुझे बंगाल के ग्रामीण इलाकों की खूबसूरती से रूबरू कराया। मैंने अपने जीवन के कई साल पंजाब के समतल खाकी मैदानों में और गर्मियां कसौली या शिमला में बिताई थीं। शांतिनिकेतन बिल्कुल अलग था। यह संथाल लोगों का इलाका था, जहां लाल बजरी से ढकी पहाड़ियां थीं, जिन पर साल के जंगल थे और कीचड़ भरे, तेज बहते झरने थे। मानसून का मौसम होने के कारण ज्यादातर झरने उफान पर थे। बारिश रुकने के बाद पूरा इलाका छोटे-छोटे सांपों और बिच्छुओं से भर गया था। पहले तो वे मुझे डराते थे और मैंने दो सांपों को मार डाला, इससे पहले कि मुझे पता चले कि वे बिल्कुल हानिरहित होते हैं। (महिलाओं को चिढ़ाने का उनका पसंदीदा तरीका था कि वे कुछ हायला सांपों को उनकी चादर के नीचे रख देते थे।) एक बार, तेज बारिश के दौरान, मैं कमर तक गहरे, कीचड़ भरे, घूमते पानी में फंस गया। मैंने एक कांटेदार झाड़ी की शाखा पकड़ी और उसके चारों ओर सांप, बिच्छू, मेंढक और चूहे जमा हुए पाए। खतरे में होने के बावजूद, उन्होंने एक-दूसरे को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया। इन ग्रामीण सैरों के दौरान मुझे अक्सर सिर पर लकड़ियाँ ढोती अर्धनग्न संथाल लड़कियाँ दिखाई देती थीं। उनका रंग सांवला था, शरीर सुडौल था और वे किसी रंगमंच पर नर्तकियों की तरह चलती थीं। गुरुदेव टैगोर को संथाल राजा कहलाना पसंद था।

सप्ताह में एक बार हमें टैगोर के आलीशान घर, उत्तरायण (कर्क रेखा) में उनके दर्शन करने की अनुमति मिलती थी। वे आमतौर पर दंत चिकित्सकों की कुर्सियों जैसी एक बड़ी कुर्सी पर बैठे होते थे। कुर्सी मच्छरदानी से ढकी होती थी और उसमें अगरबत्ती जलाने के लिए दो कप होल्डर लगे होते थे। नंद लाल बोस और कुछ अन्य विशेष लोगों को ही उनके पैर छूने की अनुमति थी। छात्र ज़मीन पर बैठकर उनकी घनी मूंछों और दाढ़ी वाले मुख से ज्ञान की बातें सुनने का इंतज़ार करते थे। वे हमसे शायद ही कभी कुछ वाक्यों से ज़्यादा बोलते थे। मुझे यह साप्ताहिक आयोजन बहुत बनावटी लगता था।

एक बार शांतिनिकेतन में रहने के दौरान मैंने कलकत्ता जाने और रोमा बिस्वास से मिलने का फैसला किया, जो वहां छुट्टियां बिताती थीं। हमारी चिट्ठियों में कुछ प्रेम प्रसंग झलक रहे थे और मुझे लगा कि उनसे अकेले में मिलना शायद फायदेमंद साबित हो। मैंने बोलपुर से हावड़ा के लिए सप्ताहांत का वापसी टिकट खरीदा। मेरे पास एक लिफाफे में सिर्फ दो दस रुपये के नोट थे। मैं हावड़ा पुल पार करके भीड़ भरे बाजारों में पैदल ही चल पड़ा। उनका अपार्टमेंट ढूंढने में मुझे तीन घंटे से ज्यादा लग गए। मैंने घंटी बजाई। कोई जवाब नहीं मिला। मैंने दरवाजा जोर से खटखटाया। किसी ने दरवाजा नहीं खोला। एक पड़ोसी बाहर आया, उसने मुझे शक की नजरों से देखा और बताया कि वह सप्ताहांत के लिए बाहर गई हैं। मैंने अपना नाम लिखने के लिए एक लिफाफे से एक पट्टी फाड़ी, तभी मुझे यह देखकर बहुत दुख हुआ कि लिफाफे के साथ ही मेरे दोनों नोट भी फट गए थे। मेरे पास उन्हें बदलने का कोई साधन नहीं था क्योंकि बैंक बंद थे। मैं हावड़ा वापस लौट आया, समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूं, कहां रात बिताऊं या खाना कहां खाऊं। मैं एक मारवाड़ी धर्मशाला में गया। मैनेजर ने मुझे बाहर जाने का आदेश दिया: यह सिर्फ मारवाड़ियों के लिए थी। उन्होंने मुझसे कहा, 'जाओ और अपने गुरुद्वारे में ठहरो।' मुझे हावड़ा में गुरुद्वारा मिल गया। ग्रंथी ने मुझे दूसरे यात्रियों के साथ एक कमरा दे दिया। गुरुद्वारे की रसोई से मुझे मुफ्त में दाल-चपाती मिली और मैं अपनी पगड़ी को तकिया बनाकर ज़मीन पर सो गया। अगली सुबह मैं हावड़ा पुल और शहर के भीड़भाड़ वाले बाज़ारों के अलावा कलकत्ता का कुछ भी देखे बिना ही पहली ट्रेन से बोलपुर वापस आ गया। सच्चे प्यार का रास्ता कभी आसान नहीं होता। यह तो सच्चा प्यार भी नहीं था: बस एक किशोर की एक बड़ी उम्र की महिला के प्रति तीव्र वासना थी, जिसने उसकी समस्याओं को समझने का वादा किया था।

मुझे यह समझने में ज़्यादा समय नहीं लगा कि मैं कभी चित्रकार नहीं बन पाऊँगा। कुछ हफ़्तों तक रेखाचित्र बनाने की कोशिश करने के बाद मैंने हार मान ली। सितार में मैं बेहतर था। मैंने गुरु से एक पुराना सितार खरीदा, जिससे ज़ाहिर तौर पर उन्हें फ़ायदा हुआ। उसके बाद उन्होंने मेरी पढ़ाई पर ज़्यादा ध्यान दिया और अक्सर मुझे अपने घर पर रागों का अभ्यास कराया। मैंने अपने कमरे में घंटों सितार का अभ्यास किया, और मेरे एकमात्र श्रोता श्रीलंकाई भिक्षु ही होते थे। मेरी मेहर नाम की एक पारसी लड़की से दोस्ती भी हो गई थी, जो अक्सर मुझसे मिलने और बातें करने आती थी। भिक्षु उससे कभी

बात नहीं करते थे, लेकिन उसके जाते ही मुझसे पूछते कि क्या मैंने कुछ सीखा है। 'क्या तुमने उसका हाथ पकड़ा है? उसे चूमा है?' मेरी असफलताओं से वे निराश थे।

शांतिनिकेतन में मेरा प्रवास अचानक समाप्त हो गया। मच्छरदानी लगाने और हाथ-पैरों पर मच्छर भगाने वाली क्रीम लगाने के बावजूद, मुझे बुरी तरह मच्छरों ने काट लिया और पूरे शरीर पर चकत्ते पड़ गए। डॉक्टर ने मुझे जल्द से जल्द शांतिनिकेतन से निकलने की सलाह दी। एक सुबह, जिन लोगों से मेरी दोस्ती हुई थी, उनसे विदा लिए बिना, मैंने भिक्कू मंजुश्री के चरण स्पर्श किए और दिल्ली के लिए रवाना हो गया। नए सत्र के आरंभ में मैं लाहौर वापस आ गया, इस बार अपने सितार और एक मेट्रोनोम के साथ।

सरकारी महाविद्यालय में मेरी एकमात्र उपलब्धि वाद-विवाद में थी। मैंने वार्षिक विश्वविद्यालय वाद-विवाद में अपना नाम दर्ज कराया। एक सिख के लिए ऐसे श्रोताओं का सामना करना बहुत कठिन था जिनमें अधिकतर गैर-सिख थे। मंच पर आते ही उनका उपहासपूर्ण ठहाकों और उपहास से स्वागत किया गया, मानो उन्हें याद दिला दिया गया हो कि दोपहर बारह बजे सभी सिख पागल हो जाते हैं। जब मेरी बारी आई तो मेरा भी वैसा ही स्वागत हुआ। लेकिन जैसे ही मैंने बोलना शुरू किया, वे सब चुप हो गए; और जब मैंने बोलना समाप्त किया तो उन्होंने तालियाँ बजाईं। निर्णायक मंडल में तीन प्रोफेसर थे, जिनकी अध्यक्षता ए.एस. बोखारी कर रहे थे। वक्ताओं में विभिन्न कॉलेजों के सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता शामिल थे। बोखारी ने मंडल का सर्वसम्मत निर्णय सुनाया: मुझे प्रथम पुरस्कार दिया गया। मेरे चचेरे भाई और रूममेट नरिंदर के साथ जो हुआ, उससे मेरी जीत कुछ फीकी पड़ गई। बेचारा अपने भाषण के बीच में ही रो पड़ा।

सरकारी महाविद्यालय में हुई कुछ शरारतें मुझे आज भी याद हैं। पढ़ाई से मुझे चिढ़ होती थी, इसलिए मैं दूसरों को परीक्षा के लिए पढ़ाई करने से रोकने की कोशिश करता था। मैंने बत्तियाँ उड़ाने का एक आसान तरीका खोज निकाला। मुझे बस बल्ब और सॉकेट के बीच एक सिक्का डालना होता था और अपने टेबल लैंप को चालू करना होता था। इससे फ्यूज उड़ जाता था और पूरे छात्रावास में अंधेरा छा जाता था। फिर मैं छत पर जाकर तारों की रोशनी में इत्मीनान से टहलने लगता था। एक रात, छात्रावास के सभी छात्रों को अंधेरे में रखने के बाद, कुछ अन्य छात्र भी मेरे साथ छत पर आ गए। अचानक बत्तियाँ जल उठीं। और हमें वार्डन, प्रोफेसर अमोलक खन्ना को अपनी पत्नी के साथ अंतरंग होते हुए देखने का अच्छा नज़ारा मिला। उनका अपार्टमेंट एल-आकार के छात्रावास के समकोण पर था। हमने दूसरों को ऊपर आकर देखने के लिए आवाज़ लगाई, लेकिन खन्ना दंपति ने हमारी आवाज़ सुन ली और अपनी बत्तियाँ बंद कर दीं।

कुछ दिनों बाद, हॉस्टल देर से लौट रहे कुछ छात्रों ने खन्ना की बेबी ऑस्टिन कार के पेट्रोल टैंक में पेशाब करने का फैसला किया, जिसके बगल में मैंने अपनी मोटरसाइकिल खड़ी की थी। मैं उनमें से नहीं था, लेकिन खन्ना ने यह मानकर मुझ पर

50 रुपये का भारी जुर्माना लगा दिया कि मोटरसाइकिल होने के कारण कार की जानकारी सिर्फ मुझे ही है। दरअसल, उन्हें पता चल गया था कि मैं उन छात्रों में से एक था जो छत पर बैठकर उनकी पत्नी के साथ उन्हें देख रहे थे।

अमोलक खन्ना एक अनोखे व्यक्तित्व के धनी थे। उन्हें इतिहास का बहुत कम ज्ञान था, जिसे वे पढ़ाने की कोशिश करते थे, लेकिन शारीरिक फिटनेस के मामले में वे बेहद उत्साही थे। कद में छोटे होने के बावजूद वे टेनिस और हॉकी का ज़ोरदार खेल खेलते थे। सर्दियों के सबसे ठंडे दिनों में भी वे हर सुबह आधा घंटा कॉलेज के स्विमिंग पूल में तैरते थे। मैंने भी उनकी नकल करने की कोशिश की और टेनिस के बाद घंटों पूल में चक्कर लगाता रहा। इसी तरह मैं कॉलेज की तैराकी और वाटर पोलो टीमों के लिए योग्य हो गया।

कॉलेज के स्विमिंग पूल में एक मज़ेदार घटना घटी। कुश्ती टीम में शामिल एक बहुत ही घने बालों वाला सिख छात्र, तैरने के बाद नहाते समय अक्सर किसी का भी साबुन उठा लेता था। एक मुस्लिम छात्र ने उससे मज़ाक करने का सोचा। उसने बाल हटाने वाला साबुन उठाया और तौलिए से नहाते समय उसे साबुनदानी में रख दिया। सिख छात्र ने हमेशा की तरह साबुन उठाया और ज़ोर-ज़ोर से अपने चेहरे, दाढ़ी और शरीर पर रगड़ा। मुस्लिम छात्र चुपचाप खिसक गया। अगले चार दिनों तक, बहुत गुस्से में भरा सिख, जिसके शरीर पर बहुत कम बाल थे, उस छात्र को ढूंढता रहा जिसने उसके साथ यह शरारत की थी। मुस्लिम छात्र ने चुपके से गवर्नमेंट कॉलेज छोड़ दिया और इस्लामिया में दाखिला ले लिया।

मैंने 1934 में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की - तृतीय श्रेणी में। अपनी मेहनत को देखते हुए पास होना मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। तब तक मैंने कई ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए आवेदन कर दिया था। तृतीय श्रेणी के साथ ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज में मेरा प्रवेश संभव नहीं था। इसलिए मैंने लंदन विश्वविद्यालय को चुना। मेरे लिए उपलब्ध तीन कॉलेजों में से मैंने किंग्स कॉलेज को चुना, क्योंकि यह यूनिवर्सिटी कॉलेज या लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स की तुलना में अधिक शाही लगता था। मैंने एलएलबी. डिग्री के लिए पंजीकरण कराया और साथ ही बैरिस्टर बनने के लिए इनर टेम्प्ल की सदस्यता के लिए भी आवेदन किया।

मैंने अपनी आखिरी गर्मियों की छुट्टियाँ भारत में शिमला में गिल परिवार के साथ उनके बड़े से घर, लॉन्गवुड में बिताईं, जो कभी चार्ल्स डिकेंस के पोते का था। सेवा सिंह गिल अपनी हैसियत से कहीं अधिक आलीशान जीवन जीते थे। मेरे पिता को उनकी पत्नी से बहुत लगाव था और वे अक्सर शाम को अपनी शराब पीने के लिए सड़क पार जंतर-मंतर जाते थे। तीनों ने साथ में यूरोप की यात्रा की थी और जाहिर तौर पर उनका समय बहुत अच्छा बीता था। मेरे पिता हमें नाव पर और यूरोप के विभिन्न शहरों में घटी घटनाओं के बारे में बताने से कभी नहीं थकते थे। सेवा सिंह की बहन का विवाह मनाउली के मुखिया उमराव सिंह से हुआ था। उमराव ने दूसरी शादी कर ली। अपनी दूसरी शादी को पूरा करने से पहले ही, उनकी पहली पत्नी ने पंजाब राज्य के रेजिडेंट के पास उमराव सिंह से पैदा हुई एक बेटी और एक बेटे के जन्म का पंजीकरण करा दिया। दोनों

बच्चों को अस्पताल से लाया गया था। बड़ी बेटी जाहिर तौर पर एक यूरोपीय नर्स की संतान थी; बेटे के पिता का पता नहीं चल पाया। जब तक उमराव सिंह को इस बात का पता चला, तब तक बच्चे बड़े हो चुके थे। उन्होंने और उनकी दूसरी पत्नी ने, जो एक धर्मनिष्ठ महिला थीं, इस बात को मान लिया। उमराव सिंह, उनकी दोनों पत्नियां और बच्चे गिल परिवार के साथ लॉन्गवुड में रहते थे और स्पष्ट सद्भाव से जीवन व्यतीत करते थे।

उमराव सिंह शराबी और कामुक व्यक्ति थे। वे शराब के नशे में चूर रहते थे, सुबह से लेकर देर रात तक लगातार पीते रहते थे। फिर अचानक ही वे दो-तीन महीने के लिए शराब के नशे में डूब जाते थे, जब तक कि उन्हें फिर से शराब की तलब न सताने लगे। जब मैं उनके साथ ठहरी हुई थी, तब वे ऐसे ही शराब के नशे में थे। एक रात उन्होंने एक नौकरानी को मेरे कमरे में जबरदस्ती भेजा और मुझे आदेश दिया कि वह मेरे साथ यौन संबंध बनाए, जबकि वे पर्दे के पीछे से देखते रहे। बेचारी लड़की काफी देर तक मेरे बिस्तर के पास खड़ी रही, मेरे पहल करने का इंतज़ार करती रही। अपने मालिक के उकसाने के बावजूद, उसने अपने सलवार-कमीज़ उतारने से इनकार कर दिया। जब उमराव सिंह एक और ड्रिंक लेने गए, तो वह चुपके से निकल गई और मैंने उसके पीछे से दरवाजा बंद कर लिया। एक बार पहाड़ी रियासतों में से एक का सरदार लॉन्गवुड में रात बिताने आया। वह भी उमराव सिंह की तरह ही नशे में चूर हो गया। सरदार चाहता था कि उमराव उसके साथ यौन संबंध बनाए। उमराव ने अपने ड्राइवर को बुलाया और उसे सरदार के साथ अप्राकृतिक यौन संबंध बनाने का आदेश दिया। ड्राइवर ने उसकी बात मान ली। उमराव अलग-अलग कोणों से दंपति को देखते हुए उनके आसपास उछल-कूद कर रहा था और उनका हौसला बढ़ा रहा था। कहा जाता था कि वह स्वयं काफी नपुंसक था।

1934 की गर्मियों में मैं दिल्ली से लंदन के लिए रवाना हुआ। यह एक भावुक विदाई थी, जिसमें मेरे माता-पिता, रिश्तेदार और दोस्त स्टेशन पर मुझे माला पहनाकर विदा करने के लिए मौजूद थे। मेरे बड़े भाई और उनकी पत्नी अमरजीत मुझे बॉम्बे तक छोड़ने आए। वहाँ मैंने इतालवी जहाज कॉन्टे रोसो पर सवार हुआ। जहाज पर मैं किसी को नहीं जानता था, न ही इंग्लैंड में मेरा कोई दोस्त था। केवल रोमा बिस्वास ही मुझसे पहले उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए लंदन जा चुकी थीं।

4 इंग्लैंड की खोज

समुद्री यात्रा में कुछ ऐसा होता है जो सहयात्रियों को जीवनभर के लिए मित्रता के बंधन में बांध देता है। वे छोटी-छोटी बातों को ऐसे याद करते हैं मानो वे कभी न भूलने वाली रोमांचक कहानियां हों। यह एक चिंतामुक्त समय होता है, उस दुनिया के बीच जिसे वे पीछे छोड़ आए हैं और उस नई दुनिया के बीच जो अभी आने वाली है। यह अनिश्चित अवस्था एक ऐसी भाईचारे की भावना को जन्म देती है जो एक ही रेजिमेंट में सेवा कर चुके सैनिकों के बीच होती है। जब भी वे जीवन के बाद के पड़ावों में मिलते हैं, उनका परिचय इस प्रकार होता है: 'क्या हम बंबई से लंदन जाने वाली एक ही नाव में नहीं थे?'

बॉम्बे से साउथेम्प्टन तक की समुद्री यात्रा में ग्यारह दिन लगे, जिसमें अदन और पोर्ट सईद में कुछ घंटों का ठहराव भी शामिल था। इस्माइलिया में भी एक संक्षिप्त पड़ाव था, जहाँ पिरामिड और काहिरा घूमने के इच्छुक यात्रियों को उतारा जाता था और फिर पोर्ट सईद में जहाज पर सवार किया जाता था। अक्सर जहाजों को स्वेज नहर के प्रवेश द्वार पर अपनी बारी का इंतजार करना पड़ता था ताकि वे पायलटों को लेकर लाल सागर और भूमध्य सागर को जोड़ने वाली सत्तर मील लंबी संकरी नहर से गुजर सकें। यह यात्रा धीमी गति से होती थी, जिसमें आगे और पीछे जहाजों की कतारें लगी रहती थीं और दोनों ओर विशाल रेगिस्तान फैला होता था, जिसके बीच-बीच में धूल से भरी साधारण बस्तियाँ बिखरी होती थीं।

कॉन्टे रोसो के इकोनॉमी क्लास में ज़्यादातर यात्री भारत के अलग-अलग हिस्सों से आए छात्र थे। सौ से ज़्यादा पुरुष और लगभग एक दर्जन महिलाएं थीं। उनमें से मैं सिर्फ़ अर्जन सिंह को अच्छी तरह जानता था, जो गवर्नमेंट कॉलेज में मेरे सहपाठी थे। वे एक साल पहले इंग्लैंड गए थे और अपने पिता बावा डिंगा सिंह, जो एक समृद्ध लकड़ी व्यापारी थे, के साथ फ़र्स्ट क्लास में सफ़र कर रहे थे। अर्जन ने मुझे अपनी पिछली यात्रा के बारे में बताया था, कि वहाँ गोरी लड़कियों को पटाना कितना आसान था और पोर्ट सईद के वेश्यालयों में थोड़े से पैसों में किस तरह का अभ्यास मिल जाता था।

मेरे लिए परिचित एकमात्र दूसरा चेहरा सोम नाथ चिब का था, जिन्हें हाल ही में लाहौर के दयाल सिंह कॉलेज में लेक्चरर नियुक्त किया गया था। कुछ सप्ताह पहले ही उन्होंने लाहौर विश्वविद्यालय की एक प्रसिद्ध सुंदरी सावित्री भल्ला से शादी की थी। उनके लिए यह हनीमून जैसा था। वे एक-दूसरे की आँखों में देखते हुए, सबके सामने चुंबन करते हुए और फिर जल्दी से अपने दो लोगों के लिए बने केबिन में लौट जाते थे। उनके प्रेम प्रसंगों ने खूब ईर्ष्या और गपशप को जन्म दिया।

हम छह पुरुष एक केबिन में थे। परिचय के बाद दोपहर के भोजन का घंटा बजा। भोजन कक्ष में जाने से पहले, हम बॉम्बे बंदरगाह से जहाज को निकलते हुए देखने गए और अपने उन मित्रों और रिश्तेदारों को हाथ हिलाकर विदा किया जो हमें विदाई देने आए थे। फिर समुद्र में अपने पहले भोजन के लिए सीढ़ियों से नीचे उतरे। सूप परोसे जाते ही जहाज हिलने-डुलने लगा। मानसून का समय था और अरब सागर बहुत अशांत था। हमने अपना सूप अधूरा ही छोड़ दिया और जल्दी से अपने

केबिनों में चले गए। कुछ लोगों ने वॉश बेसिन में उल्टी कर दी; मैं किसी तरह अपनी ऊपरी बर्थ पर चढ़ गया और जी मिचलाने की समस्या से जूझता रहा। मैंने जहाज को ऐसे कराहते और कांपते हुए सुना जैसे वह टुकड़ों में टूट जाएगा। अगले तीन दिनों तक मैं अपनी बर्थ से केवल शौचालय जाने और वापस आने के लिए ही उठा, ताकि सांस ले सकूं और संतुलन बना सकूं। कभी-कभी केबिन अटेंडेंट मेरे लिए रोटी और फल लाता था जिसे मैं वापस कर देता था। तीन दिन और तीन रातें पीड़ा में बिताने के बाद, कॉन्टे रोसो का हिलना-डुलना बंद हुआ। हम अशांत जलक्षेत्र से बाहर निकल चुके थे। अगले दिन जहाज अदन में आकर रुका।

अदन के बाज़ारों में कुछ घंटे घूमने के बाद, जो ज़्यादातर भारतीयों के स्वामित्व में थे, मेरी मुलाकात कुछ सहयात्रियों से हुई। मैं उनमें से केवल दो का नाम लूंगा जो बाद में मेरे जीवन में फिर से सामने आए। एक थे लक्ष्मीकांत झा, जिन्होंने आईसीएस की उपाधि प्राप्त की और लगभग सत्तर वर्ष की आयु में निधन से पहले सरकार में कई महत्वपूर्ण पदों पर रहे। वे भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर, संयुक्त राज्य अमेरिका में राजदूत, जम्मू और कश्मीर के गवर्नर और प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के मुख्य आर्थिक सलाहकार बने। वे हस्तरेखा विज्ञान और कुंडली विज्ञान में भी रुचि रखते थे। भारी-भरकम शरीर और शरीर से भरे होने के बावजूद, वे युवा और सुंदर महिलाओं को बड़े चाव से रिझाते थे। झा और मैं कुछ महीनों तक लंदन के एक ही गेस्ट हाउस में रहे और बाद के वर्षों में भी मिलते रहे। एक और थीं मिस नेहरू, जो स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री की दूर की रिश्तेदार थीं। वे हमेशा हाथ से बुने खादी के वस्त्र पहनती थीं और हमें 'भारत के राजदूत' के रूप में कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस पर उपदेश देने का कोई अवसर नहीं छोड़ती थीं। उनके बारे में आगे विस्तार से बताऊंगा।

अदन के बाद का सफर बेहद सुखद था। लाल सागर किसी झील की तरह शांत था। हम डेक टेनिस, क्वॉइट्स, टेबल टेनिस खेलते थे और लड़कियों से बातें करते थे। पास के रेगिस्तानों से गर्म हवाएं चल रही थीं। कभी-कभी प्रवासी पक्षी जहाज पर आकर बैठ जाते थे; उड़ने वाली मछलियां अक्सर डेक पर आ जाती थीं। एक शाम जब सूरज ढल रहा था, दूर-दूर तक फैला पूरा समुद्र डॉल्फ़िनों से जगमगा उठा, जो पानी में उछल-कूद कर रही थीं। रात में आकाश अनगिनत तारों से जगमगा रहा था। चांदनी रातों में समुद्र पारे की विशाल चादर की तरह चमक रहा था। जहाज से यात्रा करना उन लगातार उड़ानों से कहीं अधिक आनंददायक था जो मुझे बाद में करनी पड़ीं - जिनमें शराब पीना, तंग जगहों पर जल्दी-जल्दी खाना और समय बिताने के लिए फिल्में देखना शामिल था।

पिरामिड देखने की इच्छा रखने वाले लोगों को उतारने के बाद, हम स्वेज़ नहर में प्रवेश कर गए। ऐसा लग रहा था मानो हम किसी विशाल रथ पर सवार होकर रेगिस्तान में धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हों, और डेक के बीच से पानी मुश्किल से ही दिखाई दे रहा था। मिस्र की तरफ नहर के किनारे एक सड़क बनी हुई थी, जो छोटे-छोटे विलाओं और इक्का-दुक्का बस्तियों से होकर

गुजरती थी; दूसरी तरफ बंजर, ऊबड़-खाबड़, धूल भरी ज़मीन फैली हुई थी। यात्रा के इसी हिस्से के दौरान बाबा अर्जन सिंह ने उन युवकों के नाम लिखे जो पोर्ट सईद में अपना कौमार्य भंग करना चाहते थे। मैं उनमें से एक नहीं था।

हम पोर्ट सईद में छह घंटे के लिए रुके। उतरते ही, लाल टोपी और जलेबा पहने हुए चिकने-चुपड़े दिखने वाले आदमियों ने हमें घेर लिया। वे अश्लील पोस्टकार्ड बेचने की कोशिश कर रहे थे और हमें मिस्र के वेश्यालयों के सुखों का लुत्फ़ उठाने के लिए बुला रहे थे! वे अपनी तर्जनी उंगली को दूसरे हाथ के अंगूठे और तर्जनी से बने छेद में डालते हुए पूछते, 'क्या तुम वेश्यालय नहीं जाना चाहते?' हमने उन्हें झटक कर भगा दिया, लेकिन तभी कुछ और लोग हमारे पीछे पड़ गए और तब तक हमारा पीछा करते रहे जब तक हम अपनी मंज़िल, साइमन आर्ट्ज़ डिपार्टमेंट स्टोर नहीं पहुँच गए। मैंने इतना बड़ा स्टोर पहले कभी नहीं देखा था; उस समय यह एशिया का सबसे बड़ा स्टोर था। यह यहूदी स्वामित्व वाला था, लेकिन यहाँ सबसे ज़्यादा अमीर मिस्रवासी आते थे। मैंने बिना कुछ खरीदे ही चारों ओर विस्मय से देखा। फिर मैं उस संकरे रास्ते पर चल पड़ा जो स्वेज़ नहर के वास्तुकार फर्डिनेंड डी लेसेप्स की मूर्ति की ओर जाता था। जब मैं वापस लौटा, तब तक कॉन्टे रोसो के रवाना होने में केवल एक घंटा बचा था। ऊपर जाने से पहले ही मुझे खजूरों का एक डिब्बा खरीदने के लिए मना लिया गया - वे हदाली में देखे गए खजूरों से लंबे, गहरे रंग के और ज़्यादा रसीले दिख रहे थे। मैं विक्रेता से आधी कीमत पर खजूर खरीदने में कामयाब रहा और विजयी भाव से उन्हें चखने के लिए डेक पर चला गया। मैंने पाया कि एक दर्जन खजूरों की ऊपरी परत के नीचे केवल लकड़ी का बुरादा था।

मैंने अपने साथी यात्रियों को चेतावनी दी जो जहाज के किनारे बंधी नावों से सामान खरीद रहे थे और रस्सियों से लटकी टोकरियों में सामान मंगवा रहे थे। कई लोगों ने चॉकलेट के डिब्बे खरीदे, लेकिन बाद में पता चला कि पहली परत के नीचे कुछ भी नहीं था; कुछ ने फ्रांसीसी ब्रांडों के नाम वाले इत्र खरीदे, लेकिन पता चला कि बोतलों में सिर्फ सुगंधित तेल था। तब से मैं कई बार पोर्ट सईद और काहिरा से गुजरा हूँ, लेकिन मैंने फिर कभी मिस्र में कुछ नहीं खरीदा।

उस शाम हमने उन पुरुषों के कारनामों के बारे में सुना जो वेश्यालयों में गए थे। उन्हें वहाँ कोई अपशकुन करने वाली हूरें नहीं मिलीं: केवल अधेड़ उम्र की, मोटी, अरब और अश्वेत महिलाएँ मिलीं। एक बार वेश्यालय के अंदर जाने के बाद, उनके पास बचने का कोई रास्ता नहीं था। उन्हें उम्मीद से कहीं ज़्यादा टिप देनी पड़ी। स्त्री शरीर के साथ यह उनका पहला संपर्क था, इसलिए वे अंदर जाते ही स्खलित हो गए—कुछ तो संभोग से पहले ही स्खलित हो गए। उन्हें इस बात का डर सता रहा था कि कहीं उन्हें यौन रोग न हो गए हों, क्योंकि उनमें से किसी ने भी गर्भनिरोधक का नाम तक नहीं लिया था। उन्होंने अगले दो दिन अपने लिंगों की जाँच-परख में बिताए, ताकि सिफलिस या गोनोरिया के लक्षण न दिखें। पुरुषों की करतूतों की खबर नेहरू की लड़की तक पहुँच गई। एक सुबह उसने हमें एक बैठक में बुलाया। उसने जो सुना था, उसका खुलासा किए

बिना, हमारे शर्मनाक व्यवहार के लिए हमें फटकारा। उसने पूछा, 'क्या आप चाहते हैं कि आपके देश का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाए कि आप में से कुछ ने पोर्ट सईद में क्या किया है?'

हमारी पूरी यात्रा के दौरान भूमध्य सागर का पानी नीला और धूप से जगमगाता रहा। हम जिब्राल्टर जलडमरूमध्य से होते हुए बिस्के की खाड़ी में पहुँचे, जो अपनी अशांत लहरों के लिए कुख्यात है। हम भाग्यशाली रहे। इंग्लिश चैनल भी अपनी उतनी ही अशांत लहरों के लिए जाना जाता था। हमने साउथेम्प्टन में लंगर डाला और वहाँ से नाव-ट्रेन से लंदन के लिए रवाना हुए। मेरे पास रहने के लिए कोई पता नहीं था।

रोमा बिस्वास विक्टोरिया स्टेशन के प्लेटफार्म पर मेरा इंतज़ार कर रही थीं। जैसा कि मैंने पहले भी बताया है, गवर्नमेंट कॉलेज से उन्हें लिखे मेरे पत्र प्रेम भरे होते जा रहे थे। एक बार दिल्ली की छुट्टियों में मैं उनसे मिलने मॉडर्न स्कूल गया था। छत पर उनके कमरों का एक सुइट था। हम देर शाम तक बैठे बातें करते रहे। जब हम बाहर आए तो चांद पूरा निकला हुआ था। उन्हें अलविदा कहने के बजाय, मैंने उन्हें बाहों में भर लिया और उनके होंठों पर ज़ोर से चुंबन किया। उन्होंने नाराज़गी जताते हुए कहा, 'सच में, तुम ऐसा कैसे कर सकते हो?' मैं भागकर नीचे चला गया। लाहौर लौटकर मैंने उन्हें पत्र लिखकर अपने व्यवहार के लिए माफ़ी मांगी। उन्होंने उदारतापूर्वक मुझे माफ़ कर दिया। लेकिन उसके बाद उनके पत्र भी मेरे पत्रों की तरह ही भावुक हो गए थे। मुझे नहीं पता था कि वे मुझे कैसे स्वीकार करेंगी।

मुझे अब कोई संदेह नहीं था। जैसे ही हम टैक्सी में बैठे, जो हमें गौवर स्ट्रीट स्थित इंडियन स्टूडेंट्स यूनियन हॉस्टल ले जाने वाली थी, उसने मुझे बाहों में भर लिया और मेरे होंठों से अपने होंठ चिपका लिए। हम तब तक एक-दूसरे को जोश से चूमते रहे जब तक टैक्सी हॉस्टल के बाहर नहीं रुक गई। वहाँ कोई कमरा खाली नहीं था। सचिव ने सड़क के उस पार एक गेस्ट हाउस की ओर इशारा किया और हमें वहाँ कोशिश करने को कहा। हम अपना सूटकेस लेकर वहाँ गए। एल.के. झा पहले से ही वहाँ मौजूद थे। गेस्ट हाउस एक इतालवी व्यक्ति सेराफिनो द्वारा चलाया जाता था - एक छोटा, झुर्रियों वाला आदमी और उसकी काफी बड़ी अंग्रेज पत्नी, जो खाना बनाती थी। मुझे वहाँ काम करने वाली दो नौकरानियों में से एक ने ऊपर की मंजिल पर एक छोटे से कमरे में ले जाया। रहने और नाश्ते का खर्च मेरे बजट के भीतर था। मैंने पहले कुछ महीनों के लिए वहीं रहने का फैसला किया। जैसे ही हम अकेले हुए, रोमा और मैं बिस्तर पर गिर पड़े और एक-दूसरे को जोश से चूमने लगे। मैंने किसी महिला को इतने करीब से नहीं जाना था और मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। मैं उसे तब तक चूमता रहा जब तक उसके होंठ दुखने नहीं लगे। मैंने उसकी साड़ी खोलने के लिए बहुत संघर्ष किया। मैं खुद को रोक नहीं पा रही थी। यह बहुत ही गंदा काम था। मुझे बहुत शर्म आ रही थी और मैं उसे फिर कभी नहीं देखना चाहती थी।

‘यह प्रेम नहीं, वासना है,’ उसने मुझे डांटा। लेकिन वह उत्तेजित हो चुकी थी और मुझे जाने नहीं देना चाहती थी। जब मैं बिस्तर पर लेटा खुद पर तरस खा रहा था, वह मेरे पास आई। ‘वादा करो कि तुम दोबारा ऐसा नहीं करोगे!’ उसने मांग की। फिर वही घिनौनापन शुरू हो गया। और फिर वही अंत हुआ। मुझे उससे और खुद से घिन आ रही थी।

मैं रोमा लोगों के साथ और कोई जोखिम नहीं लेना चाहती थी। खाने का समय हो गया था। हम एक छोटे से सड़क किनारे वाले कैफे में गए और खाना खाया। सौभाग्य से गेस्ट हाउस के नियमों के अनुसार, रात के समय महिलाओं को आने की अनुमति नहीं थी।

अगर रोमा को किशोरों से निपटने का ज़्यादा अनुभव होता, तो शायद वो इंग्लैंड में अपने बाकी प्रवास के लिए मेरी प्रेमिका बन जाती। उसने जो किया वो ये था कि कई महीनों तक मेरी उससे और सेक्स से दूरी बना ली। अगले कुछ दिनों तक उसने गेस्ट हाउस को घेर रखा था। उसने मुझे अपने कमरे में अकेले ले जाने की हर कोशिश की, लेकिन मैं उससे बचता रहा। आख़िरकार, वह तंग आकर मॉडर्न स्कूल के एक बड़े और ज़्यादा अनुभवी छात्र के साथ चली गई। उसके बाद उसका कोई अता-पता नहीं चला।

लंदन से मुझे पहली नज़र में ही प्यार हो गया। मैं इसकी गलियों, खूबसूरती से सजी दुकानों की खिड़कियों, बसों, ट्रामों, अंडरग्राउंड और इसकी खुशबूओं का दीवाना हो गया। सबसे बढ़कर, यहाँ की महिलाओं और लगभग हर चीज़ का। मैंने पहले कुछ दिन इसे जानने-समझने में बिताए। मैं टोटेनहम सर्कस तक पैदल गया, ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट से मार्बल आर्च तक गया, फिर वापस ऑक्सफोर्ड सर्कस और रीजेंट स्ट्रीट से होते हुए पिकाडिली सर्कस, लेस्टर और ट्राफलगर स्क्वायर तक गया। मैं सेंट मार्टिन-इन-द-फील्ड्स की सीढ़ियों पर बैठकर लोगों को कबूतरों को दाना खिलाते देखता रहा; मैंने लाखों सारस पक्षियों की चहचहाहट सुनी। जब शाम ढलने लगी तो मैं स्टैंड से होते हुए होल्बोर्न, ब्लूम्सबरी गया और रात के खाने के समय तक वापस गेस्ट हाउस पहुँच गया।

कुछ ही दिनों में जीवन एक नियमित दिनचर्या में ढल गया। सुबह की शुरुआत यूनिवर्सिटी कॉलेज में रोमन कानून पर व्याख्यान से होती थी। हमारे शिक्षक गंभीर चेहरे वाले और चिड़चिड़े स्वभाव के डॉ. जोलोविच थे। फिर मैं स्ट्रैंड स्थित किंग्स कॉलेज के लिए बस लेता था। वहाँ अध्ययन विभाग के डीन, डॉ. पॉटर, हमें अंग्रेजी कानून पर व्याख्यान देते थे। उसके बाद एल्डविच पार करके लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स जाता था, जहाँ प्रोफेसर हेरोल्ड लास्की राजनीति पर द्विसाप्ताहिक भाषण देते थे, प्रोफेसर डेविस अपकृत्य कानून पर व्याख्यान देते थे और प्रोफेसर इवोर जेनिंग्स संवैधानिक कानून पर व्याख्यान देते थे। शाम को मैं गैस की रोशनी से जगमगाते होल्बोर्न से होकर वापस आता था, जहाँ ऑर्गन वादक लोकप्रिय धुनें बजाते थे, ब्रिटिश संग्रहालय के पास से गुजरता हुआ सेराफिनो प्रतिष्ठान तक जाता था। अक्सर मैं अपना भोजन भारतीय छात्र छात्रावास में करता था क्योंकि वह करी और चावल के लिए सबसे सस्ता स्थान था। कभी-कभी मैं एक

इतालवी रेस्तरां में जाता था जहाँ पाँच शिलिंग से कम में पास्ता का भरपेट भोजन मिल जाता था। सत्र के दौरान इनर टेम्पल में भी रात्रिभोज होते थे। वहाँ काले कपड़े और काला गाउन पहनना अनिवार्य था। हर चार लोगों के लिए पोर्ट या रेड वाइन की दो बोतलें होती थीं। अंग्रेज़ी के छात्र, जिन्हें हमेशा एक अतिरिक्त गिलास पीने की प्यास रहती थी, मुझे ढूंढते थे ताकि मैं उनके हिस्से का चार गिलास पूरा कर सकूँ और वे मेरा हिस्सा ले सकें।

नवंबर में ठंड बढ़ गई। फिर घना कोहरा छा गया: भूरा-पीला और जानलेवा। हाथ फैलाकर भी कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। मुझे ठंड लग गई, फिर खांसी और बुखार हो गया। डॉक्टर ने मुझे कुछ दिनों के लिए लंदन से बाहर जाने की सलाह दी। मैं बकिंघमशायर के किसी इलाके के लिए ट्रेन से गया और न्यू फॉरेस्ट के बीचोंबीच एक पब में कमरा किराए पर लिया। ताजी हवा और एल्म, ओक और चीड़ के पेड़ों के बीच लंबी सैर ने जल्द ही मेरी सर्दी-खांसी को ठीक कर दिया। मुझे बहुत अच्छा महसूस हो रहा था और लंदन लौटने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी।

एक रात, जंगल में रात के खाने के बाद लंबी सैर के बाद, मैं अनिच्छा से पहली मंजिल पर अपने कमरे में सोने चला गया। प्रवेश कक्ष में मुझे कुछ आवाज़ें सुनाई दीं, जो रात के लिए कमरा मांग रही थीं। महिला की आवाज़ जानी-पहचानी लग रही थी। मैं दबे पांव कमरे से बाहर निकला और बालकनी में देखा। वह उपदेश देने वाली नेहरू महिला एक युवा अंग्रेज के साथ थी। उसने शायद अतिथि रजिस्टर में सिंह नाम देख लिया था, लेकिन उस समय उसके पास कोई विकल्प नहीं था और वह भाग नहीं सकती थी। उस जोड़े को मेरे बगल वाला कमरा दिया गया और उन्होंने रात साथ बिताई। अगली सुबह वे पब से बिना नाश्ता किए ही निकल गए, जबकि नाश्ता बिल में शामिल था। जब मैं भोजन कक्ष में गया, तो मैंने रजिस्टर पर एक नज़र डाली: उन्होंने अपना नाम मिस्टर और मिसेज़ इंग्लिश समथिंग-ऑर-द-अदर लिखवाया था: विदेश में रहने वाले भारतीयों को अपने देश का राजदूत बताने और हिंदू नारीत्व की पवित्रता के बारे में उनके उपदेशों का एक सटीक उपसंहार! मैं उनसे गांधी जी के जन्मदिन और दिवाली जैसे कई भारतीय समारोहों में मिली और मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्होंने विदेश में दूसरों को यह बताने की आदत नहीं छोड़ी थी कि उन्हें विदेश में कैसा व्यवहार करना चाहिए।

कई बार मुझे बेहद अकेलापन और घर की याद सताती थी। कॉलेज में मेरी कई अंग्रेज़ छात्रों से जान-पहचान हो गई थी, लेकिन वे लंदन के दूर-दराज इलाकों में रहते थे। स्टूडेंट्स यूनियन हॉस्टल में हर शाम मिलने वाले भारतीय छात्रों के अपने-अपने समूह थे और मेरे साथ टेबल-टेनिस खेलने के अलावा वे मुझे अपने दोस्तों में शामिल नहीं करना चाहते थे। झा आईसीएस की तैयारी में इतना व्यस्त था कि वह सिर्फ मेरे नोट्स उधार लेने के लिए मेरे कमरे में आता था। कभी-कभी गेस्ट हाउस की दो अंग्रेज़ नौकरानियाँ, जो मेरा बिस्तर ठीक करने आती थीं, मुझसे छेड़छाड़ करने की कोशिश करती थीं। मुझमें जवाब देने की हिम्मत नहीं थी। उन्हें झा ज़्यादा मिलनसार लगता था।

मेरे कमरे के सामने यूनिवर्सिटी कॉलेज अस्पताल था। शनिवार की शाम को वहाँ डॉक्टरों, छात्रों और नर्सों के लिए नृत्य कार्यक्रम होते थे। मेरी खिड़की से मैं उन्हें नाचते-गाते देख सकता था। मुझे वियना के वाल्ट्ज़ और आजकल के लोकप्रिय गीतों की धुनें सुनाई देती थीं, जैसे 'रेड सेल्स इन द सनसेट', 'म्यूजिक गोज़ राउंड एंड राउंड एंड कम्स अप हियर' और 'लैम्बेथ वॉक'। दूसरों को खुश और आनंदित देखकर मुझे अपने अकेलेपन का और भी गहरा एहसास होने लगा।

सप्ताहांत सबसे बुरे होते थे। मिचम कॉलेज के मैदान में टेनिस या हॉकी खेलने के बाद मेरे पास अपने लेक्चर नोट्स की साफ़-सुथरी प्रतियां बनाने या कानून की किताबें पढ़ने के अलावा कुछ करने को नहीं होता था। कुछ साहसी भारतीय पुरुष पिकाडिली सर्कस जाते और महिलाओं को उठाकर अपने कमरे में ले जाते। वे मुझे बताते थे कि यह आसान है और उन्हें पब में एक-दो ड्रिंक और घर पर कुछ सैंडविच देने से ज़्यादा कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। फिर वे स्ट्रिप पोकर खेलते। जिसके पास सबसे छोटा पत्ता होता, उसे अपना एक कपड़ा उतारना पड़ता था। खेल के पंद्रह मिनट के भीतर ही दोनों बिल्कुल नग्न हो जाते थे। फिर वे अपने काम में लग जाते। मैं उनकी लुभावनी कहानियाँ सुनता, उत्तेजित होता, लेकिन कभी भी उनके नक्शे कदम पर चलने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। मैं बस इतना ही कर पाता था कि पिकाडिली सर्कस, शेफर्ड्स मार्केट या बेज़वॉटर रोड की गलियों में घूमता और इन इलाकों में आने-जाने वाली वेश्याओं को देखता रहता। किसी ने कभी मुझसे संबंध बनाने का प्रस्ताव नहीं रखा। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अगर मैं उनके पास जाऊँगा, तो वे मुझे सिर्फ इसलिए ठुकरा देंगे क्योंकि मैं सांवला था और पगड़ी और दाढ़ी रखता था।

रविवार को मैं हाइड पार्क जाता था। मैं एक नाव किराए पर लेता और सर्पेन्टाइन नदी के एक छोर से दूसरे छोर तक कई बार चप्पू चलाता, ताकि मेरे शरीर में जमा अतिरिक्त ऊर्जा को कम कर सकूँ। लेकिन यह तरीका ज़्यादा कारगर साबित नहीं हुआ। हरे-भरे मैदानों में जोड़े एक-दूसरे को कसकर गले लगाए लेटे रहते थे, राहगीरों की परवाह किए बिना। अंग्रेज इतने सभ्य थे कि वे घूरते नहीं थे, लेकिन मेरे जैसे पूर्वी लोग उनसे नज़रें नहीं हटा पाते थे। कभी-कभी वे एक-दूसरे के ऊपर लेटे होते थे, बस एक रेनकोट या ओवरकोट ओढ़े हुए। कुछ देर बाद इतनी नज़दीकी देखकर तो हम जैसे निर्मम अंग्रेज भी असहज हो जाते थे: उनका कपड़ा तेज़ी से हिलने लगता और फिर ढेर हो जाता। अगर यौन संबंध ज़्यादा ही स्पष्ट हो जाता, तो पुलिस उन्हें पास के थाने ले जाती। मामूली जुर्माना भरकर उन्हें छोड़ दिया जाता। मैं बस इतना ही कर पाता था कि इन दृश्यों का वर्णन अपने चचेरे भाई नरिंदर को लिखे पत्रों में करूँ। कभी-कभी मैं पत्रों में खुद को स्ट्रिप पोकर खेल रहे अपने किसी दोस्त की जगह लिख देता था और उसे बताता था कि मैं कितना आनंद ले रहा हूँ। सच्चाई यह थी कि इंग्लैंड में अपने पहले साल के अंत तक मैं अभी भी कुंवारा था।

मुझे बस एक ही अफ़सोस था कि मैं कभी किसी अंग्रेज़ के घर में नहीं गया था। मैं जिन एक अंग्रेज़ों को अच्छी तरह जानता था, वे थे भारतीय पुलिस के सी.एच. एवरेट, जो यूनिवर्सिटी कॉलेज में कानून की पढ़ाई कर रहे थे। वे शर्मीले और कम

बोलने वाले व्यक्ति थे। फिर भी, उन्होंने मुझे कराची के पूर्व कमिश्नर, सेवानिवृत्त आई.सी.एस. अधिकारी की बेटी से अपनी शादी में आमंत्रित किया। हनीमून के बाद, एवरेट ने मुझे अपनी पत्नी के माता-पिता के गाँव वाले घर में एक सप्ताहांत बिताने के लिए कहा। वे मेहमाननवाज तो थे, लेकिन एक अश्वेत व्यक्ति को अपने घर में मेहमान के रूप में पाकर असहज महसूस कर रहे थे। मैं भी ऐसा ही था। वे रात के खाने के लिए सज-धज कर आए और उच्च वर्ग के अंग्रेज़ परिवारों के सख्त अनुशासन का पालन किया। अगली सुबह वे मुझे अपने साथ काउंटी में लोमड़ी के शिकार के लिए ले गए। चूंकि मैं घुड़सवारी नहीं कर सकता था, इसलिए मैंने जाने की अनुमति मांग ली। लेकिन मुझे पोशाक की रस्म, शिकारियों के बीच का पदानुक्रम, सींग बजाना, बीगल कुत्तों को संभालना, एक बेचारे लोमड़ी को दौड़ाकर मार डालना और उसकी पूंछ (ब्रश) काटे जाने का नजारा देखने को मिला। अपना उद्देश्य पूरा कर लेने के बाद, शेरी के गिलास ऐसे बांटे गए जैसे किसी धार्मिक अनुष्ठान के बाद प्रसाद बांटा जाता है।

इंग्लैंड में गर्मी की छुट्टियां बिताने के बजाय मैंने भारत लौटने का फैसला किया। मैं ट्रेन से जेनोआ गया और फिर से लॉयड ट्रेस्टिनो की नाव, कॉन्टे वर्डे, से बॉम्बे के लिए रवाना हुआ। इस बार मैंने एक अनुभवी यात्री होने का नाटक किया। यात्रा के दौरान मैंने एक दर्जन इतालवी शब्द सीख लिए थे और इतालवी रेस्तरां में जाकर कुछ और शब्द जोड़ लिए: buon giorno, buona sera, grazie, si, no, perfavore, quanto costa? आदि। यात्रियों में चिब्स दंपति भी थे जो अपनी चार महीने की बेटी के साथ घर लौट रहे थे। वे प्रेम-प्रसंग के उन्मादी दौर से बाहर आ चुके थे। वह अपनी पढ़ाई में वापस लग गए थे; और वह अपनी बच्ची में मग्न थीं। हमें एक ही मेज पर बैठाया गया।

हमारा अगला पड़ाव ब्रिन्डिसी था, जो जेनोआ से समुद्र मार्ग से चौबीस घंटे की दूरी पर था। ब्रिन्डिसी पहुँचने से पहले, सावित्री चिब ने मुझे इतालवी वेटरों से बात करते हुए देखा और मुझसे पूछा, 'आप थोड़ी-बहुत इतालवी भाषा तो बोल लेते हैं, है ना?'

मैंने सिर हिलाया।

'क्या आप मुझे एक बच्चे के लिए ग्लिसरीन सपोसिटरी का एक पैकेट दिलवा सकते हैं? मेरी बेटी को कब्ज है और मैं उसे मुंह से कोई जुलाब नहीं देना चाहती।'

मैंने सहर्ष ऐसा करने का वचन दिया।

मुझे दवा की दुकान ढूंढने में ज़्यादा परेशानी नहीं हुई। मैंने अलमारियों पर नज़र दौड़ाई कि क्या मुझे ग्लिसरीन सपोसिटरी मिल सकती हैं। मुझे नहीं मिलीं। मैंने सोचा कि मुझे अपनी ज़रूरत को अपने एक दर्जन शब्दों के ज्ञान से समझाना चाहिए। फार्मासिस्ट कब्ज़ शब्द समझ गया और उसने कुछ ब्रांड की जुलाबें निकालीं। मैंने सिर हिलाकर 'नहीं, नहीं' कहा। फिर मैंने अपनी तर्जनी उंगली को टेढ़ा करके अपने नितंबों की ओर इशारा किया। फार्मासिस्ट समझ गया और उसने एक एनीमा

उपकरण निकाला। मुझे पता था कि मैं अपने लक्ष्य के करीब पहुँच रहा हूँ। अचानक मुझे इतालवी शब्द 'बच्चा' याद आ गया। मैंने अपने पेट पर हाथ फेरा (मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था) और विजयी होकर चिल्लाया 'बम्बिनो, पोर बम्बिनो'। ‘अहा, जी महोदय!’ फार्मासिस्ट ने समझदारी भरी नज़र से कहा और काउंटर पर गर्भनिरोधक गोलियों का एक पैकेट पटक दिया। मैं कॉन्टे वर्डे में बच्चे की कब्ज़ दूर करने के लिए सपोसिटरी लेकर नहीं, बल्कि कई पार्टियों में जान डालने वाला एक किस्सा लेकर लौटा।

बाकी का सफर शांतिपूर्ण रहा। पोर्ट सईद में डी लेसेप की प्रतिमा तक फिर से लंबी पैदल यात्रा करनी पड़ी। मैंने कुछ नहीं खरीदा। हम अदन में नहीं रुके, और अरब सागर शांत था। जल्द ही मैं भारत वापस आ गया। मैंने पूरा दिन बंबई में घूमते हुए बिताया और शाम की ट्रेन से दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

इस बार रेलवे स्टेशन पर मुझे लेने सिर्फ मेरे परिवार के लोग ही आए थे। मुझे वैसे ही फटे-पुराने कपड़ों में देखकर वे निराश हुए जैसे मैं उनसे विदा लेते समय था। मेरी माँ ने ताना मारते हुए कहा, ‘लगता है तुम अदन से लौटकर आए हो।’ शिमला में अपने चाचा, चाची और उनकी जुड़वां बेटियों के साथ एक हफ़्ता बिताने जाने पर भी यही हाल था। मेरे चाचा और चाची, जो कुछ साल पहले लंदन में गोलमेज सम्मेलन में गए थे, उन्होंने वहाँ कुछ ही महीनों में मुझसे कहीं ज़्यादा ज्ञान हासिल कर लिया था, जितना मैंने एक साल में भी नहीं किया था। उनके पास सैविल रो के दो सूट थे; मेरी चाची ने अंग्रेज़ी बेहतर बोलना सीख लिया था और उन्हें अंग्रेज़ी सलाद का स्वाद पसंद आने लगा था। उनकी पसंदीदा चीज़ लेट्यूस थी, जिसे वे फिर भी ‘लेट ऊस’ बोलती थीं। मेरी चचेरी बहनें, जिनके साथ मैं शाम की सैर पर जाता था, कहती थीं कि मैंने सिर्फ टार्ज़न की वो आवाज़ सीखी है जब वो ‘यू हू’ चिल्लाकर अपने बंदरों के दल को बुलाता है। हालाँकि, नरिंदर मेरा एक उत्सुक श्रोता था, जिसे मैं अंग्रेज़ी लड़कियों को रिझाने की अपनी मनगढ़ंत कहानियाँ सुनाता था।

दो महीने मेरी उम्मीद से कहीं ज़्यादा तेज़ी से बीत गए। एक बार फिर मैं फ्रंटियर मेल से बॉम्बे गया ताकि एस.एस. विक्टोरिया जहाज़ पकड़ सकूँ – यह भी लॉयड ट्रेस्टिनो का ही जहाज़ था (हम भारतीय पी एंड ओ के जहाज़ों से बचते थे क्योंकि हमें बताया गया था कि अंग्रेज़ स्टीवर्ड भारतीय यात्रियों के साथ वैसा शिष्टाचार नहीं बरतते जैसा अंग्रेज़ों के साथ बरतते हैं)। मैं दोपहर में बॉम्बे पहुँचा। मेरा जहाज़ अगली सुबह रवाना होने वाला था। मैंने विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर, जहाँ मैं ट्रेन से उतरा था, रात के लिए एक कमरा ढूँढ़ लिया। यह कोई सौभाग्यशाली चुनाव नहीं था, लेकिन निजी कारणों से एक यादगार अनुभव रहा।

मैंने अपना सामान कमरे में रखा और उसे ताला लगा दिया। मैं आस-पड़ोस घूमने निकल गया। मैं एक संकरी गली में पहुँच गया, जहाँ नीचे कुछ भद्दी दुकानें थीं और ऊपर खुली खिड़कियों के पास औरतें बैठी थीं। जैसे ही मैंने ऊपर देखा, उनमें से एक ने मुस्कुराकर मुझे इशारा किया। मैंने उसकी बात अनसुनी कर दी और आगे बढ़ गया। मुझे पता चला कि मैं वेश्याओं

के इलाके कमातीपुरा में था। मैं गली के अंत तक गया और वापस मुड़ा। जिस औरत ने मुझे इशारा किया था, वह अभी भी अपनी खिड़की के पास खड़ी थी। उसने फिर से मुझे ऊपर आने का इशारा किया। 'किधर?' मैंने उससे पूछा। उसने अपने कमरे की ओर जाने वाली सीढ़ियों की ओर इशारा किया। मैं अंधेरी सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक लड़का बैठा था। वह औरत मुझे लेने आई। वह मोटी, सांवली, अधेड़ उम्र की थी और सलवार कमीज पहने थी। स्वागत का एक भी शब्द कहे बिना, उसने पंजाबी में कहा: 'दस रुपये लगेंगे।' मैंने दस रुपये का नोट निकाला और उसे दे दिया। उसने लड़के को पाँच रुपये का नोट दिया और उसे अपने मकान मालिक को देने का आदेश दिया। उसने अंदर से दरवाजा बंद कर दिया।

वह एक अंधेरा, गंदा कमरा था जिसमें सिर्फ एक तेल का दीपक जल रहा था। उसमें कोई फर्नीचर नहीं था सिवाय उसकी चारपाई के, जिस पर एक चिकनी दरी बिछी थी और एक गंदा तकिया था। वहाँ पानी का एक घड़ा था जिसका मुँह लोटे से ढका हुआ था। वह मेरी ओर मुड़ी और बोली, ‘तुम सरदार इतने अच्छे दिखते हो, फिर भी ठुड्डी के आसपास ये फफूंद क्यों उग आती है?’ उसने मेरी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए पूछा। मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उसे महसूस हो गया कि मैं अनुभवहीन हूँ। ‘क्या तुम पहले कभी किसी औरत के पास गए हो?’ उसने पूछा। ‘नहीं,’ मैंने कुछ कर्कश आवाज में जवाब दिया। ‘तुम पहली हो।’

उसने जवाब दिया, 'आपको चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है, मैं बिल्कुल साफ-सुथरी हूं।'

उसने अपनी सलवार उतार दी और कमीज़ को कमर के ऊपर खींच लिया, जिससे उसका मोटा नितंब दिख गया। वह घड़े के पास गई, लोटा भरा और जांघों के बीच पानी छिड़का और एक गंदे कपड़े से अपना पेट पोंछा। वह चारपाई पर पीठ के बल लेट गई और घुटनों से मोड़ी हुई टांगों को सीने तक उठाया। 'आओ!' उसने दोनों बाहें मेरी ओर फैलाते हुए कहा।

तब तक मैंने किसी स्त्री की जांघों के बीच का हिस्सा ठीक से देखा तक नहीं था। कमला बोस के घने बालों वाले गुप्तांगों की एक झलक ने ही मुझे घृणा से भर दिया था। स्त्री के निचले हिस्से के बारे में मेरी धारणा संगमरमर की मूर्तियों तक ही सीमित थी, जिनमें से किसी पर भी गुप्तांगों के बाल नहीं होते थे। यह सांवली, मोटी स्त्री जो मेरे सामने घुटने ठुड्डी से सटाकर लेटी थी, उसने अपने बाल साफ कर रखे थे। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं उसके अंदर कैसे प्रवेश करूं। जैसे ही मैंने अपनी पतलून खोली और उसके ऊपर झुका, उसने एक हाथ से मेरा लिंग पकड़ लिया और उसे सही जगह पर ले गई। जैसे ही मैंने उसके अंदर प्रवेश किया, मैं स्खलित हो गया।

वह एक दयालु वेश्या थी। उसे एहसास हुआ कि मुझे अपने पैसों के बदले बहुत कम मिला है। 'अगर तुम दोबारा करना चाहो तो सिर्फ पाँच रुपये लगेंगे,' उसने चारपाई पर बैठते हुए कहा। मुझे नहीं पता था कि मुझे दोबारा ऐसा करने की इच्छा कब होगी, इसलिए मैंने बहाना बनाकर वहाँ से जाने का फैसला किया। 'जब मन करे तब आ जाना, तुम्हें मेरी कोई चिंता करने

की ज़रूरत नहीं है,' उसने मुझे भरोसा दिलाया। 'मैं तुम्हें और भी अच्छा समय दूंगी। तुम मेरे स्तन छू सकते हो और मुझे चूम भी सकते हो।'

मैं विक्टोरिया टर्मिनस स्थित अपने कमरे में लौट आया। उस संक्षिप्त मुलाकात की तस्वीर मेरे दिमाग से निकल ही नहीं रही थी। मैंने उस वेश्या के पास दोबारा जाने का फैसला किया, शायद एक और बार, और शायद ज़्यादा संतोषजनक अनुभव के लिए। लेकिन स्टेशन के गेट बंद मिले। गोरखा गार्ड ने मुझे बताया कि अगर मैं बाहर गया तो सुबह तक अंदर नहीं आने दिया जाएगा। अनिच्छा से मैं अपने कमरे में लौटा और अपने अंदर जमा तनाव को दूर किया। मुझे यकीन नहीं था कि मैं उस बहुत ही संक्षिप्त यौन क्रिया को अपनी कौमार्यता खोना कह सकता हूँ। हालाँकि, इंग्लैंड की वापसी यात्रा के दौरान, मैंने कई पल चिंता में बिताए और अपने लिंग में सिफिलिस के घावों की जाँच की।

अपनी छुट्टियों पर जाने से पहले, मैं सेराफिनो के गेस्ट हाउस से निकलकर दक्षिण-पश्चिम लंदन में टल्स हिल और स्ट्रीथम के बीच स्थित नॉलीज़ रोड की मिस व्हेली के गेस्ट हाउस में रहने चला गया, जो क्रिस्टल पैलेस से ज़्यादा दूर नहीं था। तीन मंज़िला गेस्ट हाउस रेलवे ट्रैक के किनारे बना था, जिस पर हर पाँच मिनट में ट्रेनें गुज़रती थीं। मुझे उनकी आवाज़ से अभ्यस्त होने में कुछ दिन लग गए। मिस व्हेली के गेस्ट हाउस में रहने वाले अन्य लोग एक बुज़ुर्ग स्कॉटिश व्यक्ति, आर्मस्ट्रांग थे, जो उनके साथ कमरा साझा करते थे, एक अधेड़ उम्र की महिला जो एक लॉन्ड्री की देखभाल करती थीं, एक बुज़ुर्ग स्कॉटिश भाई-बहन, डंसमुइर, दो नर्सें, मिस मैज बार्कहम और मिस लिलियन बूथ, और एक युवा अंग्रेज़ रसायनज्ञ थे। मेरे लिए रहने का इंतज़ाम शोरान सिंघा ने किया था, जो भारतीय छात्र छात्रावास के सचिव थे। उनका घर उसी सड़क के स्ट्रीथम छोर पर था, जहाँ वे अपनी फ्रांसीसी पत्नी और उसकी बेटी के साथ रहते थे। मैं सिंघा परिवार के यहाँ सप्ताह में दो बार उनकी सौतेली बेटी से फ्रेंच सीखने जाता था। साथ ही, सप्ताह में दो बार मैं एक युवा अंग्रेज़ लड़की से बॉलरूम डांस सीखने भी जाता था।

मैं मैज मार्खम के बगल वाले अटारी के कमरे में रहता था। वह तीस साल की एक साधारण सी दिखने वाली महिला थी। उसकी सहकर्मी लिलियन बूथ उससे कुछ छोटी, सुडौल और ज़्यादा आकर्षक थी। मुझे लगता था कि साधारण दिखने वाली मैज के साथ मेरे मौके ज़्यादा आकर्षक लिलियन से बेहतर थे। मैज ने हमें अपने भाई द्वारा लिखे एक नाटक के टिकट दिलवाए थे, जो वेस्ट एंड के एक थिएटर में खूब चल रहा था। मैंने उससे कुछ बार बात करने की कोशिश की और एक रात तो मैं दबे पांव उसके कमरे में गया और उसके मना करने के बावजूद उसे चूम लिया। मैंने उसे भारत से पत्र लिखा था। उसने मेरे पत्रों का जवाब दिया था।

जब मैं नॉलीज़ रोड लौटा, तो मुझे पहली मंज़िल पर थोड़ा ज़्यादा किराए पर एक बड़ा कमरा दिया गया। हॉस्टल के लिहाज़ से, मैं ज़्यादातर भारतीय छात्रों से बेहतर स्थिति में था। सबसे बड़ा फ़ायदा यह था कि मैं पूरी तरह से अंग्रेज़ और स्कॉटिश माहौल में था। शाम को हम सब बैठक में साथ बैठकर गपशप करते, साथ में खाना खाते और अक्सर खाने के बाद स्ट्रीथम कॉमन पर टहलने निकल जाते। हालाँकि कॉलेज पहुँचने में मुझे बस और ट्रेन से लगभग एक घंटा लगता था, फिर भी मुझे यह बदलाव फ़ायदेमंद लगा। पास में ही मेरी कक्षा का एक अंग्रेज़ छात्र डेनिस विज़डम रहता था। उसके पिता स्थानीय स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। डेनिस अक्सर मुझे अपने घर खाने पर बुलाता था। मैं विज़डम परिवार का सदस्य बन गया। बाद में भी मैं विज़डम परिवार के संपर्क में रहा और जब मेरी पोस्टिंग इंडिया हाउस में हुई, तो मैंने डेनिस की शादी में शिरकत की। डेनिस वकील बन गया। उसने खूब तरक्की की, एक रोल्स रॉयस और टेम्स नदी के किनारे एक बड़ा घर खरीदा। उनकी छोटी बहन सिंथिया भी मेरे संपर्क में रहती थी और अपने बच्चों को दिल्ली में हमारे साथ रहने के लिए भेजती थी।

विदेश में रहने वाले भारतीय आपस में ही रहना पसंद करते हैं। वे भारतीय क्लबों में शामिल होते हैं, नियमित रूप से मस्जिदों, मंदिरों और गुरुद्वारों में जाते हैं और घर पर या भारतीय रेस्तरां में भारतीय खाना खाते हैं। वे अंग्रेजों के साथ बहुत कम ही वैसे मेलजोल रखते हैं जैसे अपने देशवासियों के साथ रखते हैं। इस तरह का अलगाववादी जीवन रूढ़ियों को बढ़ावा देता है — अंग्रेज बहुत ही संकोची होते हैं; वे बाहरी लोगों को अपने घरों में आमंत्रित नहीं करते क्योंकि वे अपने घरों को अपना किला मानते हैं; अंग्रेज महिलाएं भावहीन होती हैं, इत्यादि। मैंने पाया कि इनमें से कोई भी बात सच नहीं थी। आने वाले वर्षों में, मेरी अंग्रेजों के साथ भारतीयों की तुलना में कहीं अधिक घनिष्ठ मित्रता हुई। मैं दर्जनों अंग्रेज घरों में रहा और उनकी पारिवारिक समस्याओं को साझा किया। और मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि अंग्रेज महिलाओं के भावहीन होने की बात से परे कोई भी बात सच नहीं थी।

मैं व्हेली परिवार में एक साल से ज़्यादा समय तक रहा। दोनों नर्सें अपने अलग कमरों में रहने लगीं - दो छोटे कमरे जिनमें अलग-अलग रसोईघर थे। लिलियन को यह आभास हो गया था कि मैं मैज की तुलना में उसकी ओर ज़्यादा आकर्षित था। उसके जाने से एक दिन पहले, मैंने उसे हैम्पस्टेड के एक छोटे से सिनेमाघर में दिखाई जा रही एक बहुत अच्छी कॉन्टिनेंटल फिल्म के बारे में बताया था। उसने पूछा, 'क्यों न तुम मुझे भी साथ ले चलो?' हम तय समय पर एक मेट्रो स्टेशन पर मिले और सिनेमाघर की ओर चल दिए। जब लाइटें बंद हुईं, तो उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। फिल्म खत्म होने के बाद, हम एक पब में ड्रिंक और सैंडविच खाने गए और फिर हैम्पस्टेड हीथ पर टहलने निकल गए। जब हम कीट्स की कुटिया के पास से गुज़रे, तो मैंने उसे 'ओड टू अ नाइटिंगेल' की पहली पंक्ति सुनाई।

वह मुझसे प्रभावित हुई और उसने मेरे हाथ पर चुंबन देकर मुझे पुरस्कृत किया। हम हाथ में हाथ डालकर केनवुड तक गए और एकांत जगह ढूंढकर एक-दूसरे को बेहतर तरीके से जानने लगे। मुझसे थोड़ी ही बड़ी, लैवेंडर और स्टार्च की खुशबू वाली

उस खूबसूरत लड़की के इतने करीब होना मेरे लिए रोमांचकारी था। अगले एक-दो साल तक मैं लिलियन से अक्सर मिलता रहा। हम हाइड पार्क, क्यू गार्डन्स आदि घूमने जाते थे। हम फिल्में देखने और रेस्टोरेंट में जाते थे। वह मुझे 'द स्वान लेक' दिखाने ले गई। यह मेरा पहला बैले था। मुझे कुछ समझ नहीं आया। वह अक्सर मुझे अपने कमरे में बुलाती थी, जहाँ हम देर रात तक चुंबन करते रहते थे। मैं रोमा बिस्वास के साथ जो था, उससे आगे कभी नहीं बढ़ पाया! मुझमें अब भी स्तनों को छूने जैसी हरकतें करने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन मुझे यकीन है कि वह मुझसे यही उम्मीद करती थी। और उसे यह एहसास नहीं था कि मैं अब भी कुंवारा था (हालांकि तकनीकी रूप से नहीं) और अगर वह मुझे सेक्स के बारे में कुछ सिखा देती तो मैं उसका आभारी होता। धीरे-धीरे हम एक-दूसरे से दूर हो गए—बिना किसी द्वेष के, लेकिन निराशा की भावना के साथ। मुझे नहीं पता उसका क्या हुआ।

किसी ने मुझे बताया कि सतिंदर सिंह, जो मॉडर्न स्कूल में मेरी कक्षा में थे, लंदन में चिकित्सा की पढ़ाई कर रहे हैं। मैं उनसे मिलने के लिए बहुत उत्सुक था क्योंकि इंग्लैंड में मेरा कोई और भारतीय मित्र नहीं था। लेकिन मुझे पता नहीं था कि वह कहाँ मिलेंगे। एक दिन मैं मेट्रो से कॉलेज जा रहा था, और जैसे ही ट्रेन के दरवाजे खुले, सतिंदर अंदर आ गए। इतना ही नहीं, उन्हें किंग्स कॉलेज के मेडिकल संकाय में दाखिला मिल गया था। अगले कुछ वर्षों तक हम लगभग हर समय साथ रहे। वह खेलों में अच्छे थे और महिलाओं के मामले में भी उनका व्यवहार अच्छा था। उनके पास अक्सर पैसों की कमी रहती थी और वे आमतौर पर मुझसे उधार लेते थे। हम कॉलेज की कैंटीन में साथ में दोपहर का भोजन करते थे और कॉमन रूम में टेबल टेनिस खेलते थे।

कॉलेज के कॉमन रूम में एक घटना घटी जिसमें हम भी शामिल थे। एक सलीके से कपड़े पहने, अधेड़ उम्र के अंग्रेज ने अपना परिचय ब्रिटिश विदेश सेवा के सदस्य के रूप में दिया, जिसकी भारत में पोस्टिंग होने वाली थी। हमने उसे अन्य भारतीय छात्रों से मिलवाया। अचानक चोरी की घटनाओं में तेज़ी आ गई - ज़्यादातर पीड़ित भारतीय थे। एक दोपहर मैं टेबल टेनिस खेल रहा था और मैंने अपना कोट उस जगह पर छोड़ दिया था जहाँ सतिंदर और वह अंग्रेज बैठे थे। जब मैंने खेलना खत्म किया और अपना कोट पहना तो देखा कि मेरा बटुआ गायब था। मुझे लगा सतिंदर ने मेरे साथ मज़ाक किया है, लेकिन उसने बटुआ लेने से इनकार कर दिया। तब मेरा शक उस अंग्रेज पर गया। मैंने उसके बारे में और जानने की कोशिश की। मुझे ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़ा। कुछ दिनों बाद स्कॉटलैंड यार्ड का एक जासूस हमारे कॉलेज में उन लोगों की जाँच करने आया जिनके पैसे चोरी हुए थे। उसने मुझे बताया कि उस व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया गया है। उसका चोरी और जेब काटने का लंबा आपराधिक रिकॉर्ड था। उसके अन्य पीड़ितों में एक अठारह वर्षीय अंग्रेज लड़की भी थी, जिसकी वार्षिक छात्रवृत्ति की रकम उसके चेक कैश कराने वाले दिन उसके हैंडबैग से चोरी हो गई थी। मुझे भी उन कई छात्रों में शामिल किया गया था जिन्हें बो स्ट्रीट मजिस्ट्रेट के सामने पेश होकर ज़रूरत पड़ने पर गवाही देने के लिए कहा गया

था। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का यह मेरा पहला अनुभव था। हम गैलरी में बैठकर दूसरे मामलों की सुनवाई सुन रहे थे। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि लगभग सभी आरोपियों ने अपना जुर्म कबूल कर लिया और उन्हें जुर्माना या कारावास की सज़ा मिली। फिर हमारे 'विदेशी सेवा' के भेष में आए व्यक्ति की बारी आई। उसके हाथों में हथकड़ी थी। उसके साथ उसकी पत्नी भी थी, जो सलीके से कपड़े पहने हुए, तीस साल की उम्र की एक आकर्षक महिला थी। उस व्यक्ति ने खुद को निर्दोष बताया। जब मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि क्या वह अपने किसी भी आरोप लगाने वाले से जिरह करना चाहता है, तो उसने मेरी ओर इशारा किया। मुझे आगे आकर सच बोलने की शपथ लेने के लिए कहा गया। मैंने कॉमन रूम में घटना का ब्योरा दिया। उन्होंने मुझसे कोई सवाल नहीं पूछा। मजिस्ट्रेट ने उसे समाज के लिए कलंक और गरीब छात्रों को लूटने के लिए जमकर फटकार लगाई। उसके आपराधिक रिकॉर्ड को देखते हुए, उन्होंने उसे चार साल जेल की सज़ा सुनाई। मामले का निपटारा करने में दस मिनट से भी कम समय लगा।

सतिंदर महिलाओं के मामले में मुझसे कहीं ज़्यादा साहसी था। हर शनिवार, टेनिस या हॉकी के खेल के बाद, वह किसी न किसी लड़की को पटाकर घर ले जाता था। उसकी यह खूबी मुझे हैरान कर देती थी क्योंकि वह कम बोलने वाला था और किसी से भी किसी भी विषय पर मुश्किल से ही बात कर पाता था। पेरिस में छुट्टियाँ मनाते समय मुझे इसका अनुभव खुद हुआ। हम पैंथियन के पास एक गेस्ट हाउस में ठहरे थे। वहाँ ठहरने वालों में एक लंबी, पतली, सुडौल छाती और चौड़े कूल्हों वाली अफ्रीकी-अमेरिकी लड़की थी, मैरी स्टोक्स। वह उसी संस्थान में फ्रेंच साहित्य का कोर्स कर रही थी जहाँ मैं शुरुआती फ्रेंच की कक्षाएँ ले रहा था। मुझे उसके साथ समय बिताने के ज़्यादा मौके मिले, सतिंदर को नहीं। हालाँकि मुझे पूरा भरोसा था कि वह मेरी कोशिशों को ठुकराएगी नहीं, फिर भी मैं कुछ कर नहीं पाया। सतिंदर ने मुझे चेतावनी दी: 'अगर तुमने अगले तीन दिनों में मैरी के साथ संबंध नहीं बनाया, तो मैं तुम्हारे लिए उसके साथ संबंध बना दूँगा।' मैं समझ गया कि वह जो कह रहा है, वही करेगा और मैंने उससे और समय माँगा।

इसी बीच, मेरी घबराहट दूर करने के लिए उसने मुझे फ्रांसीसी वेश्यालयों से परिचित कराया। उसने 'द पिंक बुक' नाम की एक किताब निकाली, जिसमें पेरिस के वेश्यालयों की सूची और उनके पते थे। उनमें से ज़्यादातर गैरे सेंट लाज़ारे इलाके में थे। हम एक वेश्यालय में गए। वहाँ की मालकिन ने हमारा स्वागत किया और हमें एक बड़े ड्राइंग रूम में ले गई, जिसकी दीवारों पर शीशे लगे थे। उन्होंने हमें बताया कि कितना खर्चा आएगा; टिप अलग से देनी थी। उन्होंने ताली बजाई। एक दर्जन लड़कियाँ अंदर आईं, सभी पूरी तरह नग्न थीं। वे अपने गुप्तांगों के बालों को ऐसे घुमा रही थीं जैसे वे मूंछें हों, और उनके लिए शैम्पेन मंगाई गई। हमने शैम्पेन और सेवाओं का भुगतान किया। हमने अपनी पसंद की लड़कियों की ओर इशारा किया और वे हमें अपने-अपने कमरों में ले गईं। जिस लड़की से मैं मिला, उसने बिडेट से अपने गुप्तांग धोए और मुझे भी ऐसा ही करने को कहा। उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं उसके मुँह में वीर्य स्खलित करना चाहूँगा। 'नहीं!' मैंने दृढ़ता से जवाब

दिया। पहले की तरह, यह सब कुछ पल भर में ही खत्म हो गया। मुझे सतिंदर का लगभग आधे घंटे तक इंतज़ार करना पड़ा, फिर वह अपनी प्रेमिका के साथ अपने मिलन से बेहद खुश होकर लौटा, और मुस्कुराती हुई उसे दोबारा आने के लिए कहने लगा। उसने मुझे चूतिया कहा और फिर से मैरी को मुझसे छीन लेने की धमकी दी।

मैंने सतिंदर को यह कहकर टाल दिया कि मैं आखिरकार मैरी को बहकाने में कामयाब हो गया हूँ। मैं बस उसके गाढ़े रंगे होंठों को चूमने तक ही पहुँचा था। उसने इसे एक प्रेम प्रसंग की शुरुआत समझा, जो बाद में पूरा होना था। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद वह अमेरिका चली गई। हम एक-दूसरे को पत्र लिखते रहे। तीस साल से भी ज़्यादा समय बाद वह मुझसे रोचेस्टर में मिलने आई, जहाँ मुझे पढ़ाने का काम मिला था। उसका वज़न बहुत बढ़ गया था: पेरिस में मिली लंबी, पतली लड़की अब मांस का पहाड़ बन गई थी। मैं उसे अपने अपार्टमेंट में ले गया। वह रात भर बस से रोचेस्टर आई थी। नहाते समय उसने मुझे अपनी दो शादियों और अपने प्रेमियों के बारे में बताया। नहाकर वह अपने भारी-भरकम धड़ और नितंबों को सहलाते हुए बाहर आई और मुझसे बातें करती रही। मैंने उसके स्तनों को छुआ और उसे चूमा। 'प्रिय, तुम अब मेरे साथ बिस्तर पर नहीं जाना चाहते: तुमने पेरिस में भी ऐसा नहीं किया था जब मैं सचमुच बिस्तर पर जाने लायक थी।' मैंने अपनी कमज़ोर कोशिश छोड़ दी। बाद में उसने मुझे ताना मारा: 'तुमने मुझे ज्यादा परेशान नहीं किया, वरना मैं खुशी-खुशी हार मान लेती।'

मैंने मैरी को डेट्रॉइट स्थित उसके घर में और भी करीब से देखा, जहाँ उसने मेरी पत्नी और मेरे लिए एक बड़ी दावत दी थी। उसकी नेत्रहीन माँ ने मुझे अपनी गोद में बैठने को कहा। ‘मैरी ने तुम्हारे बारे में मुझे बहुत कुछ बताया है; अब मैं तुम्हें अपने हाथों से देखना चाहती हूँ।’ उसने अपनी उंगलियाँ मेरी पगड़ी, दाढ़ी और चेहरे पर ऐसे फिराईं जैसे ब्रेल लिपि पढ़ रही हो। ‘अब मुझे ठीक-ठीक पता चल गया है कि तुम कैसे दिखते हो,’ उसने कहा। मैरी दिल्ली स्थित हमारे घर भी आई थी। मेरे बच्चे, जिन्हें मेरी पत्नी ने बताया था कि पापा की कॉलेज के दिनों की प्रेमिका रात के खाने पर आ रही है, बेसब्री से उसके आने का इंतज़ार कर रहे थे। वह उनके लिए उपहार लाई थी। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मैरी के कभी कोई प्रेमी भी हो सकते थे। मैरी मेरी एक लघु कहानी, ‘ब्लैक जैस्मिन’ का विषय बनी। यह कहानी तथ्यों से कहीं अधिक काल्पनिक थी। मैं दक्षिण लंदन में व्हेली के गेस्ट हाउस में वापस आ गया था। एक शाम आर्मस्ट्रांग और लॉन्ड्री वाली महिला के बीच भयंकर झगड़ा हो गया। वे दोनों एक-दूसरे को बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। आर्मस्ट्रांग बहुत नशे में था और उसने महिला को गालियां दीं। हम सभी उस महिला का पक्ष लेकर झगड़े में शामिल हो गए। हालांकि मिस व्हेली आर्मस्ट्रांग की प्रेमिका थीं, फिर भी उन्हें उसे घर छोड़ने का आदेश देना पड़ा। उसने कसम खाई कि वह अगली सुबह चला जाएगा, लेकिन उसने मिस व्हेली को अपनी वसीयत से बेदखल कर दिया। उसने चेतावनी दी, 'मेरी संपत्ति का एक पैसा भी तुम्हें नहीं मिलेगा।'

अगली सुबह आर्मस्ट्रांग को पछतावा हुआ। उसने कपड़े धोने वाली महिला को छोड़कर बाकी सभी कैदियों से माफी मांगी। मिस व्हेली उसे माफ करने और उसे वहीं रहने देने के लिए बहुत उत्सुक थीं। डंसमुइर परिवार, जिन्हें विशेष रूप से सस्ते दरों पर कमरा मिल रहा था, उन्होंने भी वहीं रहने का फैसला किया। बाकी लोग कपड़े धोने वाली महिला के पक्ष में थे, इसलिए उन्होंने कहीं और रहने का इंतजाम करने का फैसला किया।

मुझे तुरंत जो एकमात्र रहने की जगह मिली, वह वर्सली रोड पर भारतीय छात्रों के लिए एक विधवा और उसके बेटे द्वारा चलाया जाने वाला एक गेस्ट हाउस था, जो हैम्पस्टेड और बेल्साइज़ पार्क के बीच स्थित था। यह एक दयनीय छोटा सा कमरा था, जिसमें चार अन्य भारतीय छात्र, दो सिंधी, एक बंगाली मुस्लिम और कुमाऊं की पहाड़ियों का एक सुंदर युवक रहते थे। हम केवल नाश्ते और रात के खाने के समय ही मिलते थे। उस जगह का एकमात्र फायदा यह था कि वह हैम्पस्टेड हीथ के पास थी, जिसे मैं, जैसा कि कहते हैं, अपनी हथेली की तरह जान गया था।

मुझे पूरी तरह से भारतीयों के बीच रहना अच्छा नहीं लगा। मैं इंग्लैंड इसलिए नहीं आया था। इस पेंशन में बिताए कुछ महीनों में दो घटनाएँ घटीं: एक का मेरे भविष्य पर निर्णायक प्रभाव पड़ा, दूसरी एक मामूली घटना थी जिसे बाद में मैंने एक छोटी कहानी में बदल दिया।

पहले मामूली बात। कुमाऊं का वह नौजवान, मुझे लगता है उसका नाम शाह था, हमसे घुलना-मिलना नहीं चाहता था। कुछ हफ़्तों बाद उसका व्यवहार मेरे प्रति नरम हुआ और वह खुलकर बातें करने लगा। उसकी एक अंग्रेज़ प्रेमिका थी - 'एक बहुत ही सभ्य, उच्च वर्ग के परिवार से', उसने मुझे कई बार यकीन दिलाया। 'उन सस्ती वेट्रेस और नर्सों जैसी नहीं जिनके साथ ज़्यादातर भारतीय पुरुष डेट करते हैं। बहुत ही शांत, बहुत ही गरिमापूर्ण,' उसने कहा। कुछ दिनों बाद मैंने उससे पूछा कि उसके साथ उसका क्या हुआ। 'मैंने तुम्हें बताया है, वह उस तरह की लड़की नहीं है,' उसने थोड़ा चिढ़कर जवाब दिया। 'वह किसी को भी अपने साथ ज़बरदस्ती करने की इजाज़त नहीं देगी जब तक कि वह उससे सच्चा प्यार न करती हो।' कुछ दिनों बाद उसने माना कि जाते समय उसने उसे चूमा था और शायद वह उससे प्यार करती थी। वह अपनी प्रगति से बहुत खुश था। 'तुम कब करोगे?' मैंने उससे पूछा। उसे मेरा इस तरह का शब्द इस्तेमाल करना पसंद नहीं आया। लेकिन ज़ाहिर है, यह बात उसके दिमाग में बहुत चल रही थी। एक रविवार को, उसने अपना सबसे अच्छा गहरा सूट पहना और खूब सारा इत्र लगाया। उसने मुझे बताया कि लड़की के माता-पिता सप्ताहांत के लिए बाहर गए हुए हैं और वह उसके साथ अकेला रहेगा। मैंने उसे शुभकामनाएं दीं।

वह एक घंटे के भीतर वापस आ गया। मैं उसके कमरे में गया। वह अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था और बहुत उदास लग रहा था। मैंने उससे पूछा कि क्या हुआ था। क्या उसने उसे ऐसा करने से मना कर दिया था? ‘कुछ ना पूछो सरदारजी, हमारा तो दिल टूट गया है।’ कहानी कुछ इस तरह सामने आई कि लड़की अनिच्छुक होने के बजाय, तुरंत शाह को अपने शयनकक्ष में

ले गई और अपने कपड़े उतार दिए। उसने शाह को भी ऐसा ही करने का आदेश दिया। उसने आज्ञाकारी होकर अपने कपड़े उतार दिए। वे गले मिले। उसने उसके अविभाजित लिंग को प्यार से अपने हाथों में लिया और कहा, 'मैं देखती हूँ कि तुम मुसलमान नहीं हो।' कुमाऊं की पहाड़ियों के उस धर्मनिष्ठ हिंदू ब्राह्मण का सारा जोश ठंडा पड़ गया। वह निष्कलंक हो गया। मैंने इस घटना का उपयोग अपनी कहानी 'द ग्रेट डिफरेंस' में किया है।

एक और घटना जो घटी, वह थी मलिक परिवार का इंग्लैंड आना। वे अपने दूसरे बेटे शुभचिंतन को, जो पढ़ाई में बहुत धीमा था, केंट के एक कृषि महाविद्यालय में दाखिला दिलाने के लिए लाए थे। वे अपनी बेटी कवल के लिए भी वर तलाशना चाहते थे। वे कट्टर सिख थे; उनके होने वाले दामाद का सिख होना अनिवार्य था। उसी साल तरलोक सिंह का दाखिला आईसीएस में हो गया था। अगर उन्हें तरलोक मिल जाता, तो इससे बेहतर कुछ नहीं होता। अगर वह नहीं मिलता, तो वे ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे अन्य योग्य सिख लड़कों की तलाश करने वाले थे। मैं उनमें से एक था। दोनों परिवार एक-दूसरे को जानते थे, लेकिन मलिक परिवार मेरे बारे में बहुत कम जानता था। उन्होंने मुझे फोन किया। मैंने उन्हें अपने कमरे में चाय पर आमंत्रित किया। वे समय से थोड़ा पहले आ गए और उन्हें मेरा कमरा दिखाया गया। श्रीमती मलिक ने कमरे का अच्छी तरह निरीक्षण किया। वे मेरे बिस्तर पर बैठीं और तकिया उठाया। उन्हें उसके नीचे एक गुटखा (सिखों की दैनिक प्रार्थना पुस्तक) मिली। उन्होंने अपना मन बना लिया। अगर तरलोक सिंह नहीं मिल सकता, तो मैं दूसरा सबसे अच्छा विकल्प था। एक वरिष्ठ अभियंता होने के नाते, श्री मलिक अपनी बेटी का विवाह उस भवन निर्माण ठेकेदार के बेटे से करने में हिचकिचा रहे थे जो अक्सर उनसे मदद मांगता था। लेकिन उनके लिए अपनी पत्नी की राय हमेशा अपनी राय से अधिक महत्वपूर्ण थी। इसके अलावा, मेरे पिता तब तक एक प्रमुख ठेकेदार बन चुके थे, जिनके पास नई दिल्ली के मध्य में काफी संपत्ति थी। अंततः तकिए के नीचे रखी छोटी प्रार्थना पुस्तक ही मेरे लिए तुरुप का पत्ता साबित हुई।

उसी गर्मी में मेरी उनसे फिर मुलाकात हुई। मैं लेक डिस्ट्रिक्ट के विंडरमेयर में छुट्टियां मना रहा था; वे झील के उत्तरी छोर पर बो नेस में एक आलीशान होटल में ठहरे हुए थे। एक सुबह मैं उनके साथ नाश्ता करने के लिए नाव से बो नेस गया। वे मेरी शारीरिक क्षमता से बहुत प्रभावित हुए। श्री मलिक ने होटल चलाने वाली महिला से बात की और मुझे बाकी की छुट्टियां वहीं बिताने पर बहुत ही उचित दाम पर कमरा मिलने की पेशकश की गई। अगले दिन मैं विंडरमेयर स्थित अपने गेस्ट हाउस से निकलकर इस होटल में आ गया, जिसमें एक बार, बैंक्वेट हॉल और झील के सामने एक बगीचा था। मैंने एक महीने के लिए एक नाव किराए पर ली और अपना अधिकांश समय नाव चलाने, पर्च मछली पकड़ने या आसपास की पहाड़ियों के जंगलों में घूमने में बिताया। यह वर्ड्सवर्थ का इलाका था। मैंने कानून की किताबों से ज्यादा समय उनकी कविताएं पढ़ने में बिताया। मुझे लगा था कि भूतों का डर मुझ पर काबू पा चुका है। एक चांदनी रात में जब मैं जंगल में टहल रहा था, तो मुझे एक छोटा सा स्मारक मिला जिस पर संगमरमर की एक पट्टिका लगी थी। मैं उस पर लिखे शिलालेख को पढ़ सका। यह उस जगह को

चिह्नित करता था जहां कुछ लोगों पर बिजली गिरी थी और उनकी मृत्यु हो गई थी। मैं घबरा गया और मुझे अपने आसपास मृतकों की उपस्थिति का आभास हुआ। मैं होटल की ओर वापस जाने लगा, बार-बार पीछे मुड़कर देखता रहा ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि कोई मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है।

लंदन लौटने पर मैं हैम्पस्टेड वापस नहीं गई। हॉकी खेलते समय मेरी दोस्ती रिचर्ड रीस नाम के एक लंबे, सुंदर, सुनहरे बालों वाले लड़के से हो गई, जो इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा था। उसने मुझे वेल्विन गार्डन सिटी में अपने परिवार के साथ एक रविवार बिताने का न्योता दिया। मैं रीस परिवार से बहुत प्रभावित हुई। पिता, कैप्टन रीस, ने कुछ समय भारत में बिताया था और वे गार्डन सिटी के संस्थापकों में से एक थे। श्रीमती रीस व्हिस्लर द्वारा चित्रित उनकी माँ की तरह ही थीं - लंबी, सफ़ेद बालों वाली और गरिमापूर्ण। वे एक क्वेकर और शांतिवादी थीं। रिचर्ड की बहनें भी थीं, जो अपने भाई की तरह ही बेहद खूबसूरत, गोरी और सुनहरे बालों वाली थीं। उनका घर एक पहाड़ी की चोटी पर था, जहाँ से गोल्फ़ कोर्स दिखाई देता था। एक तरफ फर्न, ओक और देवदार के पेड़ों का जंगल फैला हुआ था, और जंगली रोडोडेंड्रोन पूरी तरह खिले हुए थे। मैंने खुद से पूछा, मुझे लंदन में ही क्यों रहना है, इस बेहद खूबसूरत जंगल वाले कस्बे में क्यों नहीं?

श्रीमती रीस ने मेरे लिए एक आदर्श आवास का इंतजाम किया। प्रोफेसर एफ.एस. मार्विन, जो उस समय सत्तर वर्ष से अधिक आयु के थे, एक सुंदर दो मंजिला कॉटेज में रहते थे, जिसमें एक बड़ा बगीचा भी था। उनकी देखभाल के लिए उनके साथ एक एंग्लो-इंडियन महिला, श्रीमती क्रेमोना और उनकी बीस वर्षीय बेटी डोरिस रहती थीं। उनके पास एक अतिरिक्त कमरा था और मुझे अपने यहाँ किराएदार के रूप में पाकर उन्हें खुशी हुई। उनके दोनों बेटे बाहर रहते थे। मैं अपना सारा सामान लेकर वेल्विन गार्डन सिटी चला गया। इंग्लैंड में मेरे पाँच साल के प्रवास का यह सबसे सुखद समय था।

मैंने कई अंग्रेज़ दोस्त बनाए। उनमें से एक वे लोग थे जिनके साथ मैं रोज़ लंदन आता-जाता था। मैं डेलकॉट टेनिस क्लब में शामिल हो गया और खेल में अच्छा होने के कारण स्थानीय क्लबों के खिलाफ़ क्लब की ओर से खेलने लगा। क्रिसमस के नज़दीक, मैं कैरल गाने वालों के एक समूह में शामिल हो गया जो किंग्स क्रॉस की सुबह की यात्रा में बांसुरी की संगत के साथ गाने का अभ्यास करते थे। उनमें बारबरा पर्डम नाम की एक युवा, काले बालों वाली लड़की भी थी, जो बैले डांसर बनने का प्रशिक्षण ले रही थी। उसके पिता एक तरह के लेखक थे; उसका भाई एक फिल्म अभिनेता था। वे रोमन कैथोलिक थे। मेरी समझ से परे कारणों से, बारबरा मुझे पसंद करने लगी और अपने बचकाने उत्साह में मुझसे शादी करने का निश्चय कर लिया। वह अक्सर मुझे अपने घर पर अपने नृत्य के अभ्यास देखने के लिए बुलाती थी; वह ट्रेन में मेरी जेब में प्रेम पत्र डाल देती थी और जानबूझकर मेरे बगल में बैठती थी। मैं उसकी इस हरकत से खुश होने के बजाय ज़्यादा शर्मिंदा होता था।

मेरे जिन दोस्तों से मेरी दोस्ती हुई, उनमें जैक पील और उनकी बेहद खूबसूरत एस्टोनियाई पत्नी भी शामिल थीं, जो एक कैफे में वेट्रेस का काम करती थीं, जहां मैं अक्सर रविवार की सुबह कॉफी पीने जाया करता था। जैक जन्मजात भाषाविद

थे, जर्मन और रूसी भाषा में उतने ही धाराप्रवाह थे जितनी अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में। वे एक कुशल पियानोवादक भी थे और गांव के हॉल में संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। वे प्रतिद्वंद्वी क्लब के लिए टेनिस भी खेलते थे। सिखों से उनका गहरा नाता था, क्योंकि उन्होंने पहले गुरदयाल सिंह से दोस्ती की थी, जो उनकी प्रेमिका को अपने साथ ले गया था। विदेशी भाषाओं पर अपनी पकड़ के बल पर, जैक लेवर ब्रदर्स में एक वरिष्ठ अधिकारी के पद तक पहुंचे और उन्हें पूर्वी यूरोपीय विभाग का प्रभारी बनाया गया। उन्होंने याल्टा में स्टालिन के साथ विंस्टन चर्चिल की मुलाकातों में दुभाषिया के रूप में भी काम किया। जब जैक की एस्टोनियाई पत्नी का निधन हो गया, तो उन्होंने उतनी ही आकर्षक जर्मन लड़की एरिका से शादी कर ली, जिनसे उन्हें निकी नाम का एक बेटा हुआ। जैक के माध्यम से मेरी वेल्विन में कई अन्य दोस्त भी बने, जिनमें ऑर्टन परिवार भी शामिल था, जो वेस्टन नामक एक छोटे से गांव में रहते थे, और बेहरमन परिवार, जो एक जर्मन यहूदी थे और बाद में ईसाई अंग्रेज बन गए। रीज़ और पील परिवारों से मेरा संपर्क कभी नहीं टूटा। रिचर्ड की बेटी ने एक हरियाणवी जाट, रणधीर सिंह से शादी की, जो अमेरिका में बस गए। जब वह मुझसे मिलने आए, तो मैंने उन्हें दामाद की तरह माना। जब मेरी लंदन स्थित भारतीय उच्चायोग में पोस्टिंग थी, तब भी जैक और मैं दोपहर के भोजन के समय स्क्वैश खेलते रहे। वह और उनकी पत्नी दिल्ली में हमारे साथ कुछ दिन बिता चुके हैं और जब भी मैं लंदन में होता हूँ, हम साथ में भोजन करते हैं।
पेरिस के अलावा, मुझे यूरोप के ज़्यादा हिस्से देखने का मौका नहीं मिला। छात्र जीवन के दौरान, मैंने एक गर्मी का मौसम कोट डी'अज़ूर में बिताया था। बर्लिन ओलंपिक से ठीक पहले जर्मनी जाने का अवसर मिला। जर्मन भारतीय ओलंपिक टीम से भिड़ने से पहले भारतीय शैली की हॉकी देखना चाहते थे। उन्होंने संयुक्त अंग्रेजी विश्वविद्यालय भारतीय हॉकी टीम को वेइस्बाडेन में आयोजित एक टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। किंग्स विश्वविद्यालय के दो छात्र, दोनों सिख, केन्या के बसंत सिंह और मैं, टीम को एक प्रामाणिक भारतीय रूप देने के लिए शामिल किए गए। हम दोनों औसत दर्जे के खिलाड़ी थे।
जर्मनी में मुझे पहली बार यहूदी-विरोध का सामना करना पड़ा। खेल के मैदान के चारों ओर दर्शकों के लिए बेंचें लगी थीं। उनमें से कुछ पीले रंग से रंगी हुई थीं और उन पर 'जुडेन' (यहूदी) शब्द लिखा हुआ था। मैं समझ गया कि इसका क्या अर्थ है। प्रारंभिक मुक़दमे देखते समय मैंने दूसरी बेंचों के बजाय उन पर बैठने का फ़ैसला किया। मेरे एक मेज़बान ने मुझे बताया कि ये बेंचें यहूदियों के लिए हैं। मैंने जवाब दिया कि मुझे पता है, लेकिन मैं उन पर इसलिए बैठा था क्योंकि मैं कम्युनिस्ट (जो सच नहीं था) और फासीवाद-विरोधी (जो मैं था) था। वे बहुत नाराज़ हो गए। हमारी टीम के कप्तान की इच्छा के विपरीत, मुझे इंग्लैंड वापस भेजने के बजाय, उन्होंने मुझे दरकिनार करने की कोशिश की। मैं टीम का सबसे लोकप्रिय सदस्य बन गया। मुझे उन समारोहों में आमंत्रित किया जाता था जो केवल आर्यों के लिए होते थे। ऐसे ही एक समारोह में मेरी मुलाक़ात एक विशाल, छह फ़ीट से भी ज़्यादा लंबी, गोरी, सुडौल जर्मन लड़की से हुई, जो हिटलर के सपनों की आर्य

कन्या का साक्षात रूप थी। एक दुभाषिए के माध्यम से मैंने उससे कहा कि मैंने अपने जीवन में उसके जैसी सुंदर स्त्री कभी नहीं देखी। मुझे ठीक से याद नहीं कि जर्मन में मेरी तारीफ़ उन तक कैसे पहुँची, लेकिन उसी शाम वह होटल में मेरे कमरे में आई और टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में मुझसे कहा कि चूंकि मैं उन्हें बहुत पसंद करता था, इसलिए वह मुझे अच्छा समय देने आई हैं। मैं उनका प्रस्ताव मान लेता, लेकिन उन्होंने एक वाक्य कहा: 'आपको यहूदी इतने पसंद क्यों हैं?' इस बात ने मुझे थोड़ा निराश कर दिया, क्योंकि सच कहूँ तो, किंग्स कॉलेज में मैं जिन कुछ यहूदी लोगों को जानता था, वे मुझे दूसरों से ज़्यादा पसंद थे। उनमें ब्रोनोव्स्की थे, जिन्होंने अपना नाम बदलकर बैरन रख लिया था। वे इंग्लैंड के लिए टेबल टेनिस खेलते थे और बाद में किसी अफ़्रीकी देश में मुख्य न्यायाधीश बन गए। लेविंसन थे, जिन्होंने मेरी परीक्षा की तैयारी में मेरी मदद की। वे एक सफल वकील बने। और मिस जैफ़े थीं, जो हमारी कक्षा की सबसे होशियार लड़की थीं। अंतिम परीक्षा देते समय उन्हें मानसिक आघात लगा और वे सारे प्रश्नपत्र हल नहीं कर पाईं। फिर भी, परीक्षकों ने उन्हें प्रथम श्रेणी दी। मैं यहूदियों से दोस्ती करने के लिए हर संभव प्रयास करता हूँ।

चुनी गई चारों जर्मन टीमों को भारतीय कॉलेज के लड़कों की हमारी जल्दबाज़ी में बनाई गई टीम को हराने में ज़्यादा परेशानी नहीं हुई। लेकिन उन्होंने हमसे तकनीक के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं सीखा। जब हमारी ओलंपिक इलेवन के खिलाफ खेलने की बारी आई, तो जर्मन टीम ताश के पत्तों की तरह बिखर गई।

जब मैं वेल्विन लौटा, तो मैंने पाया कि दिल्ली में जिन पुरुषों और महिलाओं को मैं जानता था, उनमें से काफी लोग इंग्लैंड आ चुके थे। सबसे पहले, कावल मलिक थीं, जो मोंटेसरी शिक्षण पद्धति में कोर्स करने आई थीं। वह बेहद खूबसूरत हो गई थीं और उन्हें इस बात का एहसास था। वह अक्सर कहती थीं कि उनके शारीरिक माप-तोल काफ़ी हद तक मिस यूनिवर्स का ताज जीतने वाली लड़कियों जैसे थे। प्रताप लाल, जिनके साथ मैंने स्कूल में भाईचारे के प्रतीक के रूप में पगड़ी बदली थी, कानून और पत्रकारिता की पढ़ाई करने आए थे। दोनों ईलिंग में बेल परिवार द्वारा संचालित एक ही गेस्ट हाउस में रहते थे। ई.एन. मंगत राय, जो आईसीएस में दाखिला लेने में सफल रहे, ऑक्सफोर्ड के केबल कॉलेज में प्रोबेशन पर आए; और अमरजीत सिंह, जिन्हें कैम्ब्रिज के किसी कॉलेज में दाखिला मिल गया था, ट्रिपोस करने आए थे।

प्रताप और अमरजीत दोनों ही कवल के प्रति बहुत आकर्षित थे। अमरजीत सिख होने के नाते और कवल के बड़े भाई से अपनी बहन की शादी होने के कारण, अपनी संभावनाओं को लेकर काफी आश्वस्त थे। प्रताप को कवल से अक्सर मिलने का अवसर मिलता था। मंगत राय उस समय कवल के प्रति उदासीन और कुछ हद तक शत्रुतापूर्ण रवैया रखते थे। मैंने इन लोगों से काफी मुलाकात की। एक बार मंगत राय, रिचर्ड रीस और मैं ऑक्सफोर्ड और कॉट्सवोल्ड्स में साइकिल से घूमने गए। एक बार प्रताप लाल और मैं साइकिल से टिंटर्न एबे और वेल्स गए। टिंटर्न में, मुझे बहुत निराशा हुई और प्रताप को बहुत खुशी हुई, जब लॉज के रखवाले ने मुझे उसका पिता समझ लिया। हालांकि, उसकी सात साल की बेटी ने मेरी दाढ़ी के

पीछे से पहचान लिया और हमें एक ही उम्र का बताया। एक बार अमरजीत वेल्विन में मेरे साथ रहने आया। वह प्रोफेसर मार्विन का बहुत चहेता बन गया क्योंकि वह पियानो पर चोपिन की कुछ धुनें बजा सकता था। एक दोपहर जंगल में टहलते समय एक बुजुर्ग महिला ने उससे कुछ सवाल पूछे जिनका वह जवाब नहीं दे सका। उसने महिला से कहा, 'मैं वह सिंह नहीं हूँ जिसे आप जानती हैं।' 'मैं उनकी दोस्त हूँ और उनके साथ रह रही हूँ।' महिला ने माफी मांगते हुए कहा, 'मुझे पता था कि आप कुछ अलग दिख रहे हैं।' एक घंटे बाद जब अमरजीत कैम्ब्रिज जाने वाली ट्रेन का इंतजार कर रहे थे, तो वही महिला उनके पास आई और बोली, 'श्री सिंह, आपको पता है कि मैंने गलती से आपके एक दोस्त को आप समझ लिया था।'
अगले क्रिसमस पर मुझे कवल मलिक का दिल जीतने का मौका मिला। पिछला क्रिसमस मैंने सीर ग्रीन हॉल्ट में एक क्वेकर हॉस्टल में बिताया था, जो बीकन्सफील्ड से कुछ ही दूरी पर था, जहाँ कवि मिल्टन की कुटिया थी और जहाँ ग्रे ने अपनी प्रसिद्ध शोकगीत की रचना की थी। उसके पास कोई योजना नहीं थी। बेल परिवार छुट्टी पर जाने और कुछ दिनों के लिए अपना हॉस्टल बंद करने की योजना बना रहा था। मैंने उसे सुझाव दिया कि वह मेरे साथ क्वेकर हॉस्टल चले। वह एक शांत जगह थी जहाँ ज़्यादातर बुज़ुर्ग विधवाएँ आती थीं। मैंने उसे फ्रेंड्स मीटिंग हाउस, मेफ्लावर खलिहान के बारे में बताया जहाँ हम बैडमिंटन और टेबल टेनिस खेल सकते थे, उस कब्रिस्तान के बारे में बताया जहाँ पेन ब्रदर्स दफ़न थे और आसपास के जंगलों के बारे में भी बताया।
हॉस्टल का संचालन श्रीमती कथबर्टसन नाम की एक विधवा महिला करती थीं। मैंने उन्हें बताया कि पिछले साल मुझे कितना मज़ा आया था। उन्होंने कहा कि हाँ कहने से पहले उन्हें अपने माता-पिता से अनुमति लेनी होगी। उन्होंने उन्हें पत्र लिखा। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि वे मुझे उनके साथ जाने के लिए राज़ी हो गए। तो क्रिसमस से कुछ दिन पहले हम बकिंघमशायर के सीर ग्रीन हॉल्ट के लिए एक धीमी ट्रेन से गए। स्टेशन से गाँव तक एकमात्र टैक्सी चलाने वाली एक बुज़ुर्ग महिला ने हमें क्वेकर हॉस्टल में छोड़ दिया।
मैंने कवल मलिक का दिल जीत लिया। मिल्टन की कुटिया और स्टोक पोगेस गिरजाघर के कब्रिस्तान तक लंबी सैर के दौरान मैंने उन्हें अंग्रेजी कविता के अपने ज्ञान से प्रभावित करने की कोशिश की। मैं मिल्टन के बारे में ज्यादा नहीं जानता था, लेकिन मुझे उनकी शोकगीत (एलिजी) अच्छी तरह याद थी। जब हम वहाँ पहुँचे तो मैंने पहला श्लोक सुनाया; उन्हें यह श्लोक पता नहीं था और जब मैंने उन्हें बताया कि यह उसी जगह रचा गया था जहाँ हम खड़े थे, तो वे बहुत प्रभावित हुई।
'और यह भी सुनो,' मैंने आगे कहा:

शुद्धतम और शांत किरणों से भरपूर अनेक रत्न,
समुद्र के भालू की अंधेरी, अथाह गुफाएँ,

कई फूल तो बिना देखे ही शरमाने के लिए पैदा होते हैं,
और इसकी मिठास रेगिस्तान की हवा में बर्बाद हो जाती है।

मुझे एहसास हो गया था कि मैंने अपनी छाप छोड़ दी है। उसकी किसी भी सहेली ने कविता के माध्यम से उससे प्रेम निवेदन नहीं किया था। हालाँकि अगर मैं उसे छूने की कोशिश करता तो वह पीछे हट जाती, लेकिन उसकी हिचक धीरे-धीरे टूटने लगी थी। जब हम क्वेकर हॉस्टल में थे, तब उसे प्रताप लाल से कई लंबे पत्र मिले। वे मेरे बारे में ताने-बाने से भरे थे और इस बात से भी कि एक बालदार सिख की संगति में रहना उसके लिए कितना अप्रिय होगा। वह एक प्रतिभाशाली लेखक और कार्टूनिस्ट था। उसने मुझे उसके पत्र दिखाए। मुझे इस बात की और पुष्टि हो गई कि वह अब मेरी पहुँच से बाहर हो चुका था। लंदन लौटते समय मैंने उसे शादी का प्रस्ताव दिया। उसने अपने माता-पिता की सहमति के अधीन मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मैंने अपने पिता को पत्र लिखकर सारी बात बताई और उनसे मलिक परिवार से मिलने का अनुरोध किया। उन्होंने ऐसा किया। उन्होंने सहमति दे दी। हमने अपनी सगाई की घोषणा कर दी। प्रताप लाल ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और हम अच्छे मित्र बने रहे। कई वर्षों बाद हम उनके साथ बैंगलोर में रहे, जहाँ वे हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स के महाप्रबंधक थे, और जब वे वायु सेना प्रमुख और वायु सेना प्रमुख बने, तब उनसे हमारी अक्सर मुलाकात होती रही। उनका 1978 में लंदन में निधन हो गया। अमरजीत, जो कई बार मेरे रास्ते में आया था और मुझे कभी पसंद नहीं करता था, ने तीखी टिप्पणी की: 'उसके पिता के बैंक बैलेंस की जीत हुई।'
एक और युवक जिसने कावल मलिक को अपना दिल दे दिया था, वह था भरत राम, जो भारत के सबसे धनी परिवारों में से एक का वंशज था। तब तक उसकी शादी हो चुकी थी और वह एक बेटे का पिता भी था। फिर भी, उसने कई वर्षों तक कावल मलिक से संपर्क बनाए रखा, जब तक कि उसे यह एहसास नहीं हो गया कि वह मुझे अपने जीवन से निकाल नहीं सकता। भरत का परिवार, जिसमें उसके पिता श्री राम भी शामिल थे, यूरोप में छुट्टियां मनाने आया। कुछ दिनों बाद कावल उनके साथ जर्मनी के एक स्पा में गई। मैं स्कीइंग की छुट्टी मनाने के लिए फ्रांसीसी आल्प्स चली गई।
उसे अपने पक्ष में करने के बाद, मैं इस बात को लेकर दुविधा में पड़ गया कि क्या मैंने सही किया है। मंगत राय ही एकमात्र व्यक्ति थे जो मुझे बार-बार यह कहते रहे कि मैंने गलती की है। उनकी राय में कावल की मानसिक क्षमताएँ अच्छी नहीं थीं और यहाँ तक कि वे उसकी सुंदरता को भी बहुत महत्व नहीं देते थे।
हमारी चिट्ठी-पत्री धीमी पड़ने लगी। उसे स्कीइंग और बर्फ के प्रति मेरा उत्साह बहुत उबाऊ लगता था। नूर्नबर्ग से भेजे गए एक तस्वीर वाले पोस्टकार्ड में उसने एक बड़ी रैली का ज़िक्र किया था जिसे उसने देखा था और 'एक नए जर्मन नेता, एडॉल्फ हिटलर' के बारे में लिखा था। यह उस समय की बात है जब यूरोप में हर कोई हिटलर और नाज़ीवाद के खतरे के अलावा किसी और चीज़ की बात नहीं कर रहा था। ज़ाहिर है, वह अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित सामग्री के अलावा अखबार

या किताबें नहीं पढ़ती थी। जब वह श्री राम परिवार के साथ भारत लौटी, तब तक हमारे बीच का प्यार काफी ठंडा पड़ चुका था। इसके अलावा, मुझे अपने भविष्य को लेकर भी संदेह होने लगा था।

मैंने यूं ही आईसीएस परीक्षा देने का फैसला किया। मेरे पास सिर्फ एक ही मौका था; मुझे पता था कि मेरा अकादमिक रिकॉर्ड मेरे खिलाफ है। मैंने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की। मुझे विश्वास था कि अंतर्राष्ट्रीय कानून मेरा सबसे अच्छा विषय होगा। मैंने एक पेपर छोड़ दिया क्योंकि मुझे लगा कि उसमें मेरा प्रदर्शन खराब रहेगा। फिर परीक्षा का समय आया। मैं हमेशा की तरह बेढंगे कपड़ों में गया, एक बेमेल गहरे रंग का सूट, लाल टाई और नीली पगड़ी पहने हुए। तीन सदस्यों के पैनल ने मुझसे पहला सवाल पूछा कि मैं आईसीएस में क्यों जाना चाहता हूं। मैंने साफ-साफ जवाब दिया कि मुझे पता था कि मेरे सफल होने की संभावना बहुत कम है, लेकिन चूंकि इसे बुद्धि की परीक्षा माना जाता है, इसलिए मैंने सोचा कि एक बार कोशिश कर लूं। वे हंस पड़े। अन्य भारतीय उम्मीदवारों ने भी इसी सवाल का जवाब देते हुए कहा था कि वे जनता की सेवा करना चाहते हैं, देश की सेवा करना चाहते हैं, आदि। इसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या कानून की पढ़ाई के दौरान मैंने कभी इंग्लैंड की अदालतों का दौरा किया है और देखा है कि न्याय कैसे दिया जाता है। मैंने उन्हें बताया कि मैं बो स्ट्रीट मजिस्ट्रेट के सामने गवाह के रूप में पेश हुआ था और इस बात पर मुझे आश्चर्य हुआ कि मामले का निपटारा कितनी जल्दी हो गया, कितने आरोपियों ने अपना जुर्म कबूल कर लिया और छोटी-मोटी चोरियों के लिए कितनी कड़ी सजाएँ सुनाई गईं। और यह भी बताया कि अंग्रेज़ वकीलों के लिए गुज़ारा करना कितना मुश्किल होता होगा। वे फिर ज़ोर से हँसे।

एक महीने बाद नतीजे घोषित हुए। मैं आईसीएस में दाखिला पाने से बस एक पायदान से चूक गया। मेरी उम्मीदों के विपरीत, परीक्षक ने मुझे अंतर्राष्ट्रीय कानून में कम अंक दिए थे। अगर उन्होंने मुझे ग्यारह अंक और दिए होते, या अगर मैंने उस पेपर में भी उतने ही अंक प्राप्त किए होते जो मैंने नहीं दिया था, तो मेरा दाखिला हो जाता। और इसका एकमात्र कारण यह था कि मैं अकेला उम्मीदवार था, चाहे भारतीय हो या अंग्रेज, जिसे मौखिक परीक्षा में पूरे अंक मिले थे: 300 में से 300। मुझे अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य के रूप में नामांकन के लिए भी सिफारिश की गई थी। वे हर तीन साल में बारी-बारी से एक मुस्लिम, एक ईसाई या एक सिख का चयन करते थे। मोहन सिंह, जो उस समय भारत के लिए विदेश मंत्री की सलाहकार परिषद के सदस्य थे, ने मुझे फोन करके बधाई दी और मेरे पिता को बधाई का टेलीग्राम भेजा। एक हफ्ते तक मैं सातवें आसमान पर था, मैंने कानून की परीक्षाओं की चिंता न करने का फैसला किया और ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज में प्रोबेशन पर एक और साल इंग्लैंड में बिताने का सपना देखा। और फिर 'ईश्वर की अपनी सेवा' के सदस्य के रूप में विजयी होकर घर लौटने का। दुर्भाग्यवश, एक साल पहले एक सिख उम्मीदवार का नाम दर्ज हुआ था और उससे एक साल पहले एक ईसाई उम्मीदवार का। इस तरह नामांकन एक मुस्लिम को मिल गया। मैं बेहद निराश हो गया। अब सोचता

हूँ तो लगता है कि कानून, पत्रकारिता और किताबें लिखने में सालों तक संघर्ष करने के बजाय शायद मैंने सरकारी सचिव के रूप में अपना करियर समाप्त कर लिया होता।

स्कीइंग की छुट्टियों के दौरान मुझे पता चला कि एल.एल.बी. की परीक्षा में मेरा प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। मैं जैसे-तैसे पास हुआ था, लेकिन मुझे एक पेपर दोबारा देना पड़ेगा। मैंने किसी तरह बार परीक्षा पास की और कानून में मास्टर्स डिग्री के लिए कॉलेज में दोबारा दाखिला लिया। मेरे ट्यूटर, डॉ. पॉटर ने साफ-साफ कह दिया कि मैं इसके काबिल नहीं हूँ। एल.एल.एम. कोर्स में छह महीने तक संघर्ष करने के बाद मैंने हार मान ली और घर लौटने का फैसला किया। बैरिस्टर का सर्टिफिकेट पाने में मुझे छह महीने और लग जाते, लेकिन कावल के पिता और भारत के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश और दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर मौरिस ग्वेयर के पत्रों की बदौलत मुझे अनुपस्थिति में ही लाइसेंस मिल गया।

प्रोफ़ेसर मार्विन के साथ मेरे दिन अचानक ही समाप्त हो गए, और इसका सारा श्रेय मुझे ही जाता है। हम दोनों के बीच बहुत अच्छे संबंध थे। उन्होंने मुझे अपनी कार चलाने दी। मैं उनके बगीचे की देखभाल में उनकी मदद करता था, उनके लॉन की घास काटता और झाड़ू लगाता था, और सर्दियों के लिए लकड़ियाँ काटता था। एक दोपहर एक अंग्रेज़ लड़की मुझसे मिलने आई। वह इस बात से प्रभावित थी कि मैं मार्विन जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ रह रहा था, जिन्होंने कई किताबें लिखी थीं। मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'आओ, उनसे मिलो।' हम मार्विन के अध्ययन कक्ष में घुस गए। वह अपने टाइपराइटर के सामने गहरे विचारों में डूबे हुए थे और परेशान होने पर स्पष्ट रूप से नाराज़ थे। मैंने लड़की का उनसे विनम्रतापूर्वक परिचय कराया और उन्हें बताने लगा कि वह कौन है। वह गुस्से से पीले पड़ गए और भड़क उठे, 'क्या तुम्हें नहीं दिख रहा कि मैं व्यस्त हूँ? तुम दोनों यहाँ से निकल जाओ!' मैं उनके इस अचानक गुस्से से बुरी तरह हिल गया। मैं लड़की को जंगल के रास्ते घर ले गया। मैं मार्विन को उनके इस असभ्य व्यवहार के लिए माफ़ नहीं कर सका। अगले कुछ दिनों तक मैंने उनसे बात करने से परहेज़ किया। इस बार वह नाराज़ थे और उन्हें यह समझाना पड़ा कि उन्होंने अपना आपा क्यों खो दिया था। मेरे मन में क्षमा करने की कोई भावना नहीं थी। मैं वेल्विन गार्डन के एक बोर्डिंग हाउस में रहने चला गया। फिर पील के सुझाव पर मैं उनके दोस्तों मॉरिस और ब्रेंडा ऑर्टन के साथ वेस्टन गाँव में रहने चला गया, जो लेचवर्थ गार्डन सिटी से कुछ मील दूर था। कॉलेज की पढ़ाई पूरी होने और बार फाइनल परीक्षा के लिए केवल एक पेपर पर काम करने के कारण मेरे पास काफी समय था। मुझे एंड कॉटेज बहुत सुविधाजनक लगा। ऑर्टन लंदन में काम करते थे। वे सुबह निकल जाते थे और शाम को देर से भोजन के समय लौट आते थे। मुझे उनका कॉटेज पूरी तरह से अपने लिए मिल जाता था।

ऑर्टन दंपति एक अजीब जोड़ी थे, जिनसे मैं पहले कभी नहीं मिली थी। वह एक लंबे, सुनहरे बालों वाले, मजबूत कद-काठी के व्यक्ति थे, जो एक मजदूर वर्ग के परिवार से थे और उनकी शिक्षा बहुत कम थी। उन्होंने उच्च वर्ग के लहजे को अपनाकर

अपनी अशिक्षा को छुपा लिया था। वह एक छोटी कद-काठी की, काले बालों वाली, सभ्य यहूदी लड़की थीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय से पढ़ाई की थी। उनकी मुलाकात एक पार्टी में हुई थी, जहाँ मौरिस ने अपनी कुछ कविताएँ पढ़ीं और भविष्य के मजदूर वर्ग के कवि होने का आभास कराया। कविता पाठ के बाद, पेय पदार्थों के दौरान उनकी बातचीत शुरू हुई। वह उनकी प्रशंसा में भावुक हो उठीं। उन्होंने बस उनका हाथ पकड़ा और मेजबान के शयनकक्ष में चले गए और उनके साथ शारीरिक संबंध बना लिया। ब्रेंडा ने कभी भी इस तरह के सीधे-सादे, बिना किसी औपचारिकता के शारीरिक संबंध का अनुभव नहीं किया था। कुछ हफ्तों बाद उनकी शादी हो गई।

ब्रेन्डा को जल्द ही पता चल गया कि मौरिस एक असभ्य, हिंसक स्वभाव का व्यक्ति था और हर कुछ दिनों में एक नई औरत चाहता था। वह कोई भी नौकरी लंबे समय तक नहीं कर पाता था और अपने अंदर के बुर्जुआ समाज को अपनी प्रतिभा को न पहचानने के लिए दोषी ठहराता था। जब वह बेरोजगार होता था, तो उसका गुस्सा ब्रेन्डा पर निकलता था। जब मैं उनके कॉटेज में रहने आई, तब उसकी नज़र फियोना नाम की उन्नीस साल की गाँव की लड़की पर थी। उसने ब्रेन्डा पर ज़ोर डाला कि वह उसे घर बुलाए। जब वह उसे वापस छोड़ने गया, तो उसने उसके साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की। उसकी माँ ने उन्हें देख लिया और ब्रेन्डा को इसके बारे में बता दिया। एक बार उसने एक भारतीय लड़की को चुना और उसे वेस्टन में उनके साथ सप्ताहांत बिताने के लिए बुलाया। उसने उसके साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की। वह बुरी तरह डर गई और जब तक वह वहाँ से नहीं चली गई, तब तक मेरा साथ नहीं छोड़ा। कई बार वह बहुत गुस्से में आ जाता था और ब्रेन्डा को उसके दफ्तर जाने से मना कर देता था। वह उसे गालियाँ देता था - 'कुतिया! वेश्या!' और धमकी देता था कि अगर वह कॉटेज से बाहर निकली तो उसे पीटेगा। ब्रेन्डा रोने लगी, लेकिन डर के मारे उसकी बात मानने से इनकार नहीं कर सकी। एक सप्ताहांत वह मेरे साथ पेरिस आया और ज़िद करने लगा कि मैं उसके साथ सोने के लिए एक औरत ढूंढूँ। मैंने उससे कहा, 'जाओ और अपने लिए ढूंढ लो।' उसने अपनी पैंट की ज़िप खोलकर अपना लिंग बाहर निकालते हुए कहा, 'मुझे कोई वेश्या नहीं चाहिए, मुझे तुम्हारी सहेलियों में से एक चाहिए। इसके बाद वे मुझे कभी नहीं भूलेंगी।' मैंने अब तक का सबसे बड़ा लिंग देखा था - लगभग गधे के लिंग जितना बड़ा। हम वेस्टन लौट आए और वह अपना समय और पैसा बर्बाद करने पर बड़बड़ाता रहा। मुझे ब्रेन्डा के लिए बहुत दुख हुआ, लेकिन मैं उसे दिलासा देने के लिए कुछ खास नहीं कर सकी। मौरिस के बावजूद, मैंने एंड कॉटेज में दो महीने खुशी से बिताए, सुबह लंबी सैर पर जाती और दोपहर में घुड़सवारी करती। लेकिन आखिरकार मैं ऑर्टन परिवार से दूर होकर खुश थी। बाद में, मुझे जैक पील से पता चला कि मौरिस वायु सेना में भर्ती हो गया था और द्वितीय विश्व युद्ध के शुरुआती महीनों में एक हवाई दुर्घटना में मारा गया था। बहुत राहत महसूस करते हुए ब्रेंडा ने दूसरी शादी कर ली और वह एक महिला पत्रिका का संपादन कर रही थी।

मैं कुछ शर्मिंदा होकर घर लौटा। अफवाहें फैल रही थीं कि मेरी सगाई टूटने की कगार पर है। जिन परीक्षाओं को दूसरों ने तीन साल में पास कर लिया था, उन्हें पास करने में मुझे पाँच साल लग गए। जब मेरे पिता के दोस्त उनके बेटे के लौटने पर उन्हें बधाई देने आए और उनसे पूछा, 'काका की पास कर की आई है?' तो वे जवाब देते, 'होर तय पता नहीं टाइम बहुत पास कर की आई है'। जब कावल की दादी को पता चला कि उनकी पोती की शादी एक बैरिस्टर से होने वाली है, तो उन्होंने कहा, 'हाय! हाय! इत्त पुत्तो तय बैरिस्टर निकलदा है'।

मुझे घर वापस देखकर सबसे ज़्यादा खुश होने वाली मेरी दादी थीं। उन्होंने अपनी सहेलियों को इकट्ठा करके और ढोल बजाते हुए योद्धाओं की वापसी के उपलक्ष्य में गाँव के लोकगीत गाकर मेरी वापसी का जश्न मनाया। यह सब उनके लिए असहनीय साबित हुआ। अगली सुबह उन्हें हल्का बुखार हो गया। लेकिन इससे उनका सुबह जल्दी स्नान करने, दिनभर चरखा चलाते हुए 'शांति का भजन' गुनगुनाने और दोपहर में गौरैयों को दाना खिलाने का सिलसिला नहीं रुका। सैकड़ों गौरैया आकर बासी चपातियों के टुकड़े उठाती थीं, जिन्हें वह छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर उन्हें खिलाती थीं। बुखार बढ़ता ही गया। लेकिन उन्होंने प्रार्थना करने, चरखा चलाने और गौरैयों को दाना खिलाने की अपनी दिनचर्या नहीं छोड़ी। एक सुबह वह उठ नहीं पाईं। डॉक्टरों को बुलाया गया। उन्हें पता था कि उनका अंत निकट है। उन्होंने परिवार के लेखाकार को बुलवाया और उनसे कहा कि वह अपने पास मौजूद थोड़े से नकद और गहनों के बारे में अपनी इच्छा लिख लें। एक घंटे बाद, अपने दो बेटों और नाती-पोतों के साथ, उन्होंने हमें अलविदा कहा और इस दुनिया से विदा हो गईं।
उनका शव बरामदे के फर्श पर रखा गया था, जहाँ वे दिन का अधिकांश समय सूत कातने और गौरैयों को दाना खिलाने में बिताती थीं। गौरैया हर दोपहर की तरह वहाँ झुंड बनाकर आती थीं। मेरी माँ उन्हें रोटी के टुकड़े फेंकती थीं। शोक मनाने वालों के आने-जाने या उनके शव को दाह संस्कार के लिए ले जाने से पहले आयोजित विलाप और कीर्तन के कारण, टुकड़े वैसे ही पड़े रह गए। मेरी दादी कई साल बाद, जब मेरी ओटावा में पोस्टिंग हुई, तब मैंने एक लेख लिखा, जो 'द कैनेडियन फोरम' में 'एक महिला का चित्र' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह मेरी सबसे लोकप्रिय कहानी बनी हुई है।
सबसे असहज पल कावल से मेरी मुलाकात थी। हमारे बीच की चुप्पी को हमारे पुराने वादों के टूटने के रूप में समझा गया – एक-दूसरे को अस्वीकार करने के रूप में। हमने इस बारे में एक घंटे से अधिक बात की, महसूस किया कि अगर हमने सगाई तोड़ दी तो इससे हमारे परिवारों की बदनामी होगी और चूंकि अलग होने का कोई ठोस कारण नहीं था, इसलिए हमने शादी करने की अपनी योजना पर आगे बढ़ने का फैसला किया। मैं कुछ महीनों के लिए इसे टालने के पक्ष में था, जब तक कि मुझे लाहौर में एक ऐसी जगह न मिल जाए जहां मैं वकालत शुरू करना चाहता था। मेरे पिता ने समस्या को पहले ही सुलझा

लिया था और शहर के मुख्य राजमार्ग, द मॉल पर, उच्च न्यायालय के सामने, एक नवनिर्मित इमारत में दो कमरों का कॉर्नर फ्लैट किराए पर ले लिया था।

घर लौटने और शादी के बीच के तीन महीने मैंने कृपा नारायण के दफ्तर में बिताए, जो मेरे पिता का कानूनी कारोबार संभालते थे और दिल्ली के जाने-माने वकीलों में से एक थे। उन्होंने मुझे जो केस तैयार करने को दिए, उनमें मेरी कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। मैंने संपत्ति विवादों से जुड़े मामलों की बजाय सेशन कोर्ट में हत्या के मामलों की सुनवाई में ज्यादा समय बिताया। शामें मैं कवाल के साथ दिल्ली में घूमती, भरत राम्स के साथ फिल्म देखने जाती या उनके स्विमिंग पूल में नहाती थी।

हमारी शादी एक भव्य समारोह था। कावल के पिता सी.पी.डब्ल्यू.डी. के पहले भारतीय मुख्य अभियंता थे और यह उनकी इकलौती बेटी की शादी थी। मेरे पिता तब तक राजधानी के अग्रणी भवन निर्माण ठेकेदार और सबसे बड़े अचल संपत्ति के मालिक बन चुके थे। वे कई वर्षों से दूसरों के बच्चों को उपहार देते आ रहे थे। अब उनकी बारी थी अपने दूसरे बेटे के माध्यम से उपहार प्राप्त करने की।

यह एक पारंपरिक सिख विवाह था, जिसमें पीतल का बैंड बारात के आगे चल रहा था और मैं चमेली के फूलों से बने दूल्हे के दुपट्टे में लिपटा हुआ, हाथ में तलवार लिए एक सफेद घोड़े पर सवार था। मलिक परिवार 1 तुगलक रोड पर रहता था, जो मेरे पिता के घर, 1 ए जनपथ से बस एक फर्लांग की दूरी पर था। दुल्हन के रिश्तेदारों द्वारा स्वागत की रस्म पूरी हुई और उसके चचेरे भाइयों ने मेरे साथ खूब हंसी-मजाक और शरारतें कीं, जिसके बाद दावत हुई। मैंने रात मलिक के घर में बिताई। अगली सुबह, एक विशाल शामियाने के नीचे हम ग्रंथ साहिब के सामने बैठे थे, दुल्हन ने अपने चेहरे को दुपट्टे से ढका हुआ था; मैं क्रीम रंग की शेरवानी और चूड़ीदार पहने हुए था और मेरे हाथ में सोने की कृपाण थी। आनंद कारज (आनंद का समारोह) एक गंभीर आयोजन था जिसमें रागी विवाह के भजन गा रहे थे। मैं खुद को रोक नहीं पाया और उसके दुपट्टे के नीचे हाथ डालकर उसके पैर मरोड़ दिए। हमने ग्रंथ साहिब के चार चक्कर लगाए, मैं आगे और वह मेरे पीछे-पीछे चल रही थी, मेरे हाथों में मौजूद दुपट्टे का एक सिरा पकड़े हुए। हमने विवाह की प्रतिज्ञा ली - एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने और दूसरों को भाई-बहन मानने की। यह 30 अक्टूबर, 1939 की सुबह की बात है।

उसी शाम मेरे पिता ने अपने घर के सामने विशाल लॉन में कॉकटेल और डांस पार्टी का आयोजन किया। 1000 से अधिक लोग आए। स्कॉच, शैम्पेन, वाइन और ब्रांडी खूब परोसी गई; विशेष रूप से तैयार किए गए लकड़ी के फर्श पर बॉलरूम डांस सुबह तक चलता रहा। मेहमानों में श्री एम.ए. जिन्ना भी थे, जो सड़क के उस पार रहते थे और कभी-कभी मेरे पिता के गुलाब के बगीचे का निरीक्षण करने आते थे। हमें आधी रात को अपने वैवाहिक संबंध को पूरा करने के लिए जाने की

अनुमति दी गई। बाद में मुझे बताया गया कि नशे में धुत मेहमानों में से एक ने बधाई का टेलीग्राम देने जाते समय अपनी कार एक टेलीग्राफ चपरासी पर चढ़ा दी थी। इस खबर को दबा दिया गया।

शादी की रात हर दूल्हा-दुल्हन के लिए बेहद खास होती है। मैंने भी पारंपरिक रीति-रिवाजों का पालन करने की पूरी कोशिश की। तभी मुझे पता चला कि मेरी दुल्हन कुंवारी थी। हमने तब तक कभी भी यौन संबंध के बारे में बात नहीं की थी और न ही उसने मुझे कभी अपनी कमर के नीचे हाथ डालने की इजाजत दी थी। उसने मुझसे धैर्य रखने की विनती की। मैंने उसकी बात मान ली।

अगली शाम हम हनीमून के लिए माउंट अबू के लिए रवाना हुए। मैंने यह जगह सिर्फ इसलिए चुनी थी क्योंकि वेल्विन गार्डन सिटी रेलवे स्टेशन के प्रवेश द्वार पर एक बड़ा पोस्टर लगा था जिस पर संगमरमर के मंदिर का चित्र था और लिखा था, 'भारत आइए: माउंट अबू के दिलवारा मंदिर'। मेरे अंग्रेज़ दोस्तों ने मुझसे पूछा कि क्या मैंने वह जगह देखी है। मैंने माना कि नहीं देखी है, लेकिन घर लौटते ही देख लूंगा। हमें अजमेर में रुकना पड़ा, जहाँ हम उत्तम सिंह के मेहमान थे, जो मेरे ससुर के अधीन एक कार्यकारी अभियंता थे, और उनकी बेहद युवा और सुंदर हंगेरियन-यहूदी पत्नी मैडी के भी। किसी को समझ नहीं आया कि उन्होंने अपने पिता से भी बड़े, सफ़ेद दाढ़ी वाले सिख से शादी क्यों की। वह अपनी माँ के साथ भारत आई थीं, जिनकी उम्र उत्तम सिंह से उनकी बेटी की तुलना में ज़्यादा मिलती थी। मैडी एक समर्पित और वफ़ादार पत्नी साबित हुई। अपने पति की मृत्यु के बाद ही उन्होंने दून स्कूल के प्रधानाध्यापक जॉन मार्टिन से संबंध बनाए और उनसे शादी कर ली। मार्टिन की मृत्यु के कुछ साल बाद मैडी की देहरादून स्थित उनकी कुटिया में हत्या कर दी गई। हमने उत्तम सिंह के घर पर रात बिताई। मेरी दुल्हन के साथ मेरी कोई प्रगति नहीं हुई।

अगली सुबह हम माउंट अबू के लिए रवाना हुए। हमारे लिए सीपीडब्लूडी का एक विशाल बंगला आरक्षित था, जहाँ से नक्की झील का नज़ारा दिखता था। रसोइया, वेटर, आया और माली एक सप्ताह तक हमारी सेवा में तत्पर थे। साथ ही हमें क्लब की सदस्यता और उसके तहखानों में मौजूद हर तरह की शराब का आनंद लेने की आज़ादी भी मिली। हमने वहाँ का सारा इंग्लिश साइडर पी लिया। नक्की झील में घूमने के लिए एक नाव भी थी। हमने सुबह कुछ ऊदबिलावों का पीछा किया और उन्हें झील से भगाकर पहाड़ियों तक पहुँचा दिया। राजपुताना राज्य के अंग्रेज़ रेज़िडेंट ने हमारे लिए एक भोज का आयोजन किया, जिसमें स्थानीय साहब और उनकी पत्नियाँ उपस्थित थीं। माउंट अबू में हमारा रुतबा बढ़ गया। यह पहली बार था जब हमने स्कॉच का स्वाद चखा और हमारे लिए प्रस्तावित शैंपेन टोस्ट में शामिल हुए। हम कुछ हल्का महसूस करते हुए और दुनिया के शिखर पर पहुँचकर अपने बंगले पर लौटे।

वो रात प्यार के लिए ही बनी थी। पूर्णिमा का चाँद नक्की पर चमक रहा था और पहली मंज़िल के हवादार बरामदे में बिछे हमारे पलंगों पर उसकी रोशनी पड़ रही थी। माली ने हमारे तकियों पर चमेली और गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखेर दी थीं। इस

बार मेरी उमंग को कोई रोक नहीं सकता था और वो चुपचाप आने वाली चीज़ के लिए तैयार थी। हाँ कहने से पहले उसने थोड़ा विरोध किया; मैंने उसे थोड़ा सा दर्द दिया। थोड़ा सा खून भी निकला, लेकिन अंततः हमारा मिलन पूरा हुआ।

हम दिल्ली लौट आए, अब भी एक-दूसरे के लिए तरस रहे थे, तभी मेरे पिता ने मुझे मियां चन्नू जाने का आदेश दिया, जहाँ चाचा उज्ज्वल सिंह की तबीयत खराब बताई जा रही थी। मैंने वैसा ही किया और एक सप्ताह के लिए उनसे दूर रहा, जो बहुत कष्टदायक था। वे अपनी बीमारी से उबर रहे थे और उन्होंने मुझे दिल्ली लौटने की अनुमति दे दी।

हनीमून का दौर खत्म हो चुका था। अब मुझे लाहौर में घर बसाना था और वकालत शुरू करनी थी—दोनों ही पूरी तरह से मेरे पिता की उदारता पर निर्भर थे। उन्होंने मुझे एक नई फोर्ड कार दी, जिसमें मैं अपनी नवविवाहित पत्नी के साथ लाहौर गया, रहने के लिए एक फ्लैट और फेन रोड पर मुवक्किलों से मिलने के लिए एक कमरा दिया। मेरे ससुर ने फ्लैट को सजाया-संवारा। मेरे पिता के सबसे करीबी दोस्त, बसाखा सिंह ने मुझे शादी के तोहफे के रूप में कानून की सारी किताबें दीं, जिनकी मुझे ज़रूरत थी। अब यह मुझ पर निर्भर था कि मैं वकालत में सफल हो जाऊं या असफल हो जाऊं।

5. लाहौर, विभाजन और स्वतंत्रता

गवर्नमेंट कॉलेज में दो साल बेफिक्र होकर बिताने के बाद, लाहौर मेरे लिए कोई अनजान जगह नहीं थी। लेकिन वहां आकर रोजी-रोटी कमाना एक अलग ही बात थी। मेरे लिए सब कुछ तैयार था! एक सुसज्जित फ्लैट और दफ्तर, और दो प्रमुख क्लबों की सदस्यता — कॉस्मोपॉलिटन, जो भारतीय अभिजात वर्ग के लिए था, और अधिक विशिष्ट जिमखाना, जो मुख्य रूप से अंग्रेजों का अड्डा था और जिसमें ऑक्सब्रिज से आए हुए एक दर्जन से ज्यादा अंग्रेज नहीं होते थे। मेरे पिता और ससुर की प्रतिष्ठा (दोनों को अंग्रेजों ने नाइट की उपाधि दी थी) ने मेरे लिए न्यायाधीशों और मंत्रियों के दरवाजे खोल दिए। कवल की युवावस्था और सुंदरता को देखते हुए, हम जल्द ही लाहौर में एक लोकप्रिय और चर्चित जोड़ी बन गए। बस वकीलों की कमी थी। मैं सुबह के कुछ घंटे अपने दफ्तर में कानून की किताबें पढ़ने में बिताता था। फिर गपशप सुनने के लिए बार रूम जाता था। महत्वपूर्ण मामलों की बहस सुनने के लिए अदालतों में जाता था, गपशप के लिए एक घंटा कॉफी हाउस में बिताता था और दोपहर के भोजन के लिए घर लौट आता था। पहले कुछ महीनों तक एक भी मुवक्किल मेरे घर नहीं आया। कुछ समय तक मैंने कृपा नारायण के जूनियर के रूप में काम किया, जो दिल्ली से लाहौर आ गए थे। एक दिन एक मामले की बहस के दौरान वे गिर पड़े और डॉक्टर को बुलाने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। वकीलों में ऐसी मौतें आम बात थीं। मैं जय गोपाल सेठी के जूनियर के रूप में काम करने लगा, जिनका पंजाब में आपराधिक मामलों का सबसे बड़ा प्रैक्टिस था। वे कभी-कभी अपने मुवक्किलों से मुझे जूनियर फीस के रूप में कुछ पैसे दिलवा देते थे। मुझे बताया गया कि मुझे एक अच्छा मुंशी रखना चाहिए। मुंशी भारतीय कानूनी पेशे में एक संस्था हुआ करते थे (और आज भी करते हैं)। जहाँ सॉलिसिटर नहीं होते, जैसे कि पंजाब में, वे मुवक्किलों से बात करते थे, उनके कागजात व्यवस्थित करते थे, फीस तय करते थे और दस प्रतिशत मुंशी कमीशन वसूलते थे। लाहौर में मेरे समय में, मुंशी बहुत कुछ करते थे। वे होटल एजेंटों की तरह रेलवे स्टेशनों और बस स्टैंडों पर जाते थे, मुवक्किलों को ढूंढते थे और उन्हें अपने मालिक को वकील बनाने के लिए राजी करते थे। हर तरह के प्रलोभन का इस्तेमाल किया जाता था: उनके मालिक की पत्नी जज की रखैल होती थी, या इसके विपरीत; वह इंग्लैंड से लौटे सबसे काबिल बैरिस्टर थे और साहबों के साथ टेनिस और ब्रिज खेलते थे, तथा उनकी मेमनाओं के साथ मौज-मस्ती और नाच-गाना करते थे। मैंने जिस पहले क्लर्क को काम पर रखा, वह हिमाचल प्रदेश का एक तेजतर्रार लड़का था। उसने मुझे पंजाब के विभिन्न जिलों का दौरा करने और मेरे मामले का प्रचार करने के लिए राजी कर लिया। वह एक महीने के लिए बाहर गया, मुझे अपने यात्रा बिल सौंपे और आश्वासन दिया कि जिला अदालतों के कई प्रमुख वकीलों ने मुझे अपने अपीलीय मामले भेजने का वादा किया है। लेकिन कोई नहीं आया। मेरा दूसरा क्लर्क एक शिया मुस्लिम था। उसने मुझे लखनऊ के एक प्रमुख वकील के कनिष्ठ के रूप में बहराइच के दो धनी शिया जमींदारों की शाखाओं

से जुड़े एक मामले में केस दिलवाया, जिसमें लाहौर की संपत्ति को लेकर विवाद था। मुझे मामूली फीस मिली, लेकिन लाहौर के जमींदार परिवार से मेरी दोस्ती टूट गई। हम केस भी हार गए। इसके बाद, मेरे पास करने को कुछ नहीं था, इसलिए मैंने अपने मुंशी को एक मौलवी रखने को कहा, जो मुझे हर सुबह एक घंटे कुरान पढ़ाता था। कुछ समय बाद मुंशी ने मुझे इस बहाने से छोड़ दिया कि ईश्वर के अस्तित्व पर सवाल उठाने वाले गैर-मुस्लिम से वेतन लेना हराम है - गैरकानूनी है।

हताशा में आकर मैंने लाहौर के सबसे महंगे मुंशी को काम पर रखा। उधम सिंह छह फुट लंबा, तगड़ा सिख जाट था, जो दलाली के लिए मशहूर था। मैंने उसकी सेवाएं लेने के लिए उसे 10,000 रुपये अग्रिम दिए—जो उस समय बहुत बड़ी रकम थी। वह लाहौर जिले के गांवों से अच्छी तरह वाकिफ था। जब भी किसी सिख गांव में हत्या होती—और हर महीने कम से कम चार-पांच हत्याएं होती थीं—वह पीड़ित परिवार से मिलने और आरोपी के परिवार से मिलने जाता था। वह किसी न किसी पक्ष से केस हासिल कर लेता था। मुंशी के तौर पर उसे मिलने वाले दसवें हिस्से के बजाय वह मेरी फीस का एक तिहाई हिस्सा ले लेता था। हालांकि, आपराधिक मामले मेरे पास आने लगे। मैंने कुछ केस जीते, कुछ हारे। मुझे पता चला कि आपराधिक मामलों में ऊंची फीस पर जाने-माने वकीलों को रखने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता। अगर मजिस्ट्रेट या जज मेरे प्रति नरम होते, तो मुझे अपने मुवक्किलों के लिए जमानत मिल जाती थी, और अक्सर सजा भी हल्की हो जाती थी। एक एंग्लो-इंडियन वकील था जिसे कानून की ज्यादा जानकारी नहीं थी, लेकिन वह साहब होने के नाते अपने दलालों के जरिए केस हासिल कर लेता था। एक पारसी भी था, जो एक आँख पर चश्मा लगाता था, बनावटी उच्च-वर्गीय अंग्रेज़ी लहजे में अपने मुकदमों को बड़ी हिचकिचाहट के साथ पेश करता था और किसी तरह ठीक-ठाक गुज़ारा कर लेता था। एक मुस्लिम वकील था जिसने अपने मुकदमों को कभी भी पूरी तरह से तैयार न करने और उन्हें अदालत के भरोसे छोड़ने के लिए बदनामी हासिल की। 'कानून को आपसे बेहतर कौन जानता है? मैं कौन होता हूँ आपको मामले के असली तथ्य बताने वाला? आप निस्संदेह मुझसे बेहतर उन्हें समझेंगे और मेरे मुवक्किल को न्याय दिलाएंगे!' उसने उन अधिकांश वकीलों से बेहतर प्रदर्शन किया जो रात-दिन अपने मुकदमों पर काम करते और न्यायाधीशों से बहस करते रहते थे।

यह एक कठिन, कमरतोड़ और नीरस पेशा था। मैं सत्र न्यायालयों में बिना वकील वाले मामलों को 16 रुपये प्रतिदिन की फीस पर लड़ता था; कम्युनिस्टों के खिलाफ मामलों में मैं मुफ्त में पेश होता था; मैंने विधि महाविद्यालय में अंशकालिक अध्यापन का काम किया; मुझे उच्च न्यायालय में बचाव पक्ष के वकीलों के पैनल में और फिर महाधिवक्ता के पैनल में शामिल किया गया। मेरी मासिक आय मुश्किल से एक हजार रुपये से अधिक होती थी। मेरे पिता हमें आर्थिक सहायता देते रहे। उन्होंने हमें संपत्ति सहित एक बड़ा अपार्टमेंट खरीदकर दिया जिससे हमें कुछ किराया मिलता था; फिर लाहौर के सबसे बड़े पार्क, लॉरेंस गार्डन (बाद में बाग-ए-जिन्ना नाम दिया गया) के सामने लॉरेंस रोड पर एक बड़ा घर खरीदा।

शायद वकालत में बड़ी सफलता न मिलने से ही मेरा मन खट्टा हो गया था। मैंने खुद से पूछा, 'क्या वकालत में कुछ रचनात्मक है? क्या मुझे अपनी इस एक जिंदगी के लिए दूसरों के झगड़ों से पैसा कमाने से ज़्यादा कुछ नहीं करना चाहिए? एक आम वेश्या भी वकील से ज़्यादा समाज की सेवा करती है। बल्कि, यह तुलना वेश्या के साथ अन्याय है। वह कम से कम एक सामाजिक ज़रूरत तो पूरी करती है और अपने ग्राहकों को पैसे के बदले सुख देती है; एक वकील तो वह भी नहीं करता।' मुझे पूरा यकीन है कि अगर मैं वकालत ही करता, तो मैं न्यायाधीश बन जाता और शायद सुप्रीम कोर्ट तक भी पहुँच जाता। कम अनुभव और कम कानूनी समझ वाले लोग भी न्यायाधीश बन गए; उनमें से कुछ तो सुप्रीम कोर्ट के जज भी बन गए। मुझे वकालत छोड़ने का कभी अफ़सोस नहीं हुआ; मुझे बस इस बात का अफ़सोस है कि मैंने पाँच साल इसे पढ़ने में और सात साल इससे जीविका कमाने की कोशिश में बर्बाद कर दिए।

कानूनी पेशे और उससे जुड़े लोगों के बारे में मेरा नज़रिया नहीं बदला है। वकीलों के समूह में अदालती अनुभवों और जजों के असभ्य व्यवहार के अलावा शायद ही कोई चर्चा होती है। उनकी एकमात्र रुचि राजनीति में होती है और उनमें से काफी लोग राजनीति की ओर रुख कर लेते हैं। यह कुछ हद तक भारतीय राजनीति की अनैतिकता और भारतीय परिदृश्य में राजनेताओं की पूर्ण अनुपस्थिति को स्पष्ट करता है। जहाँ तक हास्यपूर्ण बातचीत की बात है, लाहौर उच्च न्यायालय में अपने सात वर्षों के दौरान मैंने केवल एक ही बार ऐसा सुना। एक वरिष्ठ वकील को एक अंग्रेज जज को अपने तर्क मनवाने में बहुत कठिनाई हो रही थी। हर बार जब वह कोई नया तर्क विचार के लिए रखते, जज झट से जवाब देते, 'बकवास!' घोर निराशा में वकील ने कहा, 'आज सुबह आपके मुँह से बकवास के सिवा कुछ नहीं निकल रहा है!'

कानूनी पेशे में यौन संबंध हमेशा से ही गहन रुचि का विषय रहा है और मेरी पीढ़ी के युवा वकीलों के मन में भी यह विषय प्रमुखता से छाया रहता है। एक वकील रविवार दोपहर को पार्टियां आयोजित करता था, जहां वह तिब्बी से वेश्याओं को बुलाकर अपने मेहमानों का मनोरंजन करवाता था। वह वेश्या बाजार में आने वाले नए माल (नए माल) के बारे में पूरी जानकारी रखता था। एक नए वकील ने, जिसकी शादी एक कॉकनी महिला से हुई थी, हमें उस उन्माद की कहानियां सुनाईं, जिसके साथ अंग्रेज़ लड़की प्रेम करती थी, और उसने हमें अपने शरीर पर उन निशानों को दिखाया जहां उसने उसे काटा था या अपने नाखून गड़ाए थे। ऐसी ही एक पार्टी में यह प्रतियोगिता हुई कि किसका लिंग सबसे अधिक मजबूत है। एक संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी को एक डोरी से बांधकर उसमें एक फंदा लगाया गया, यह देखने के लिए कि कौन सा लिंग बिना झुके उसे सीधा रख सकता है। वे किशोर अपराधियों जैसी मानसिकता वाले बड़े हो चुके बच्चे थे। कवि अकबर इलाहाबादी ने उनका सटीक वर्णन किया है:

Paida hua vakeel, to Iblees nay kahaa:
'Allah nay mujhey Sahib-e-awlaad kar diyaa.'

(जिस दिन एक वकील का जन्म हुआ, शैतान ने हर्षोल्लास किया:)
'अल्लाह ने मुझे मेरी अपनी संतान का आशीर्वाद दिया है।'

अदालतों में समय बिताने के लिए कुछ खास न होने के कारण, मैंने साहित्य की वो किताबें पढ़ना शुरू कर दिया जो मुझे कॉलेज के दिनों में पढ़नी चाहिए थीं: अंग्रेजी कविता के संकलन, शेक्सपियर के नाटक और सॉनेट; टॉलस्टॉय, ऑस्कर वाइल्ड, एल्डस हक्सले, राधाकृष्णन द्वारा लिखित हिंदू दर्शन आदि। मैंने द ट्रिब्यून के लिए किताबों की समीक्षा भी शुरू कर दी (मुझे अपने दोस्तों को बताना पड़ता था कि कॉलम के अंत में लिखा K.S. मैं ही हूँ) और सोवियत संघ के मित्रों के लिए स्टालिन पर एक छोटी सी प्रशंसात्मक पुस्तिका लिखी, जिसका मैं लाहौर में संस्थापक सदस्य था। शिमला की पहाड़ियों में छुट्टियों के दौरान मैंने सुबह पढ़ने और दोपहर में लंबी सैर करने के अलावा कुछ खास नहीं किया। हर दोपहर मैं अपनी पत्नी के साथ, जो साइकिल पर होती थी, मशोबरा से मॉल तक छह मील पैदल चलता था। हम वेंगर या डेविको में चाय पीते थे, अंग्रेज अधिकारियों, भारतीय मंत्रियों और उनकी सजी-धजी पत्नियों को आते-जाते देखते थे। और फिर छह मील वापस मशोबरा लौट आते थे। एक बार ग्वालियर के महाराजा के वित्त मंत्री सर चार्ल्स कार्सन ने हमारे साथ कुछ दिन बिताए। उन्होंने मुझे बताया कि वे शिमला से 5,000 फीट नीचे सतलुज नदी के किनारे स्थित तातापानी के गर्म पानी के गंधक झरनों तक पैदल गए और एक ही दिन में वापस आ गए, कुल मिलाकर 44 मील की दूरी तय की। अगले सप्ताहांत मैंने भी ऐसा ही किया। मैंने खौलते गंधक के पानी में स्नान किया, बर्फीली और तेज बहती सतलुज नदी में ठंडी की हुई एक बोतल बीयर पी और रात दस बजे तक घर लौट आया।
मेरी बहन के पति जसपाल सिंह, जो मेरी नज़र में अब तक के सबसे मज़बूत सिख जाटों में से एक थे, ने शर्त लगाई कि वे मुझसे ज़्यादा पैदल चल सकते हैं। हम पूर्णिमा की रात को हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर निकल पड़े। उनके साथ उनके दो भतीजे थे—दोनों की उम्र बीस के आसपास थी—और दो कश्मीरी कुली थे जो हमारा सामान ढो रहे थे। पंद्रह मील चलने के बाद, दोनों लड़के और कुली आगे जाने से मना कर गए। हमने उन्हें एक डाक बंगले पर छोड़ दिया और अपने गंतव्य नारकंडा की ओर चल पड़े। उसी रात हम एक देवदार के जंगल में बने दूसरे डाक बंगले पर रुके ताकि तरोताज़ा हो सकें; जसपाल ने खूब सारा दूध पिया; मैंने ब्रांडी मिली चाय पी। चांदनी रात की खामोशी में माहौल अजीब सा था। हम ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे कि तभी उस खाली से दिखने वाले बंगले से ज़ोर से आवाज़ आई, 'दफ़ा हो जाओ!' हम चले गए और सुबह-सुबह नारकंडा पहुँच गए। चौकीदार ने जो कुछ भी दिया, हमने वही लिया: घी के पराठे और बहुत मीठी चाय। फिर हमने वापसी की यात्रा शुरू की। हम दिनभर और देर शाम तक एक ही गति से चलते रहे। मेरे पैरों से खून बहने लगा। मशोबरा से लगभग दस मील पहले एक डाक बंगले पर मैं रुका और चौकीदार द्वारा दिए गए कपड़ों से अपने पैरों पर पट्टी बांधी। जसपाल ने जीत का दावा करने के लिए आगे जाने का फैसला किया। मैं उसके सौ गज पीछे-पीछे चला। वह लगभग

आधी रात को मशोबरा पहुंचा, परिवार को बताया कि मैंने रास्ते में ही हार मान ली थी और विजयी भाव से सो गया। उसके कुछ देर बाद मशोबरा पहुंचकर मैं सीधे अपने कमरे में चला गया। नाश्ते की मेज पर जब मैं उसके पास पहुंचा तो वह अपनी उपलब्धि के बारे में डींगें मार रहा था। तकनीकी रूप से तो वही जीता था। हमने लगभग बिना रुके 72 मील की दूरी तय की, और हम दोनों ने अगले कुछ दिन अपने दर्द भरे पैरों की देखभाल में बिताए। मेरे पिता ने बस यही कहा, 'अगर तुमने 72 मील चलने के बजाय 72 घंटे कानून की किताबें पढ़ी होतीं तो तुम ज्यादा समझदार होते।'

मुझे अब और लंबी पैदल यात्रा करने की अनुमति नहीं थी। लेकिन दो हफ्ते बाद, जब मेरे पिता दिल्ली में थे और मुझे किसी काम से लाहौर लौटना पड़ा, तो मैंने कालका तक पैदल जाने का फैसला किया, जो कि 65 मील का रास्ता था और ज्यादातर ढलान वाला था। मैं अंधेरा होते ही मशोबरा से निकला, दोपहर तक सोलन (25 मील दूर) पहुँच गया और विश्राम गृह में चाय पी रहा था कि अचानक मेरे पिता वहाँ आ गए। उन्हें याद आया कि मेरे लिए कोई कार इंतज़ार नहीं कर रही थी। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी टैक्सी कहाँ है?' मुझे मानना पड़ा कि मैं पैदल ही सोलन गया था। उन्हें गुस्सा आ गया और उन्होंने अपने ड्राइवर को कालका के लिए टैक्सी मंगवाने का आदेश दिया और मुझे उसमें बैठकर जाते हुए देखा। कितना दुख हुआ! कालका तक की लंबी पैदल यात्रा के बाद मैं बस एक ही चीज़ का इंतज़ार कर रहा था - रेलवे स्टेशन पर नहाना, फिर ठंडी बीयर की बोतल और बढ़िया खाना।

मुझे अपने माता-पिता के खूबसूरत घर, 'सुंदरबन', जो मशोबरा में था, में बिताए गर्मियों के महीनों की अनमोल यादें हैं। यह घर पूरी पहाड़ी पर फैला हुआ था और उत्तर की ओर बर्फ से ढके पहाड़ों और दूसरी ओर फैली घाटियों का शानदार नज़ारा पेश करता था। मेरी माँ ने एक बड़ा सीमेंट का चबूतरा बनवाया था, जहाँ से शिमला से मशोबरा बाज़ार, गेबल्स होटल, फरीदकोट के राजा की जागीर से होते हुए नालदेरा के नौ-होल वाले गोल्फ कोर्स तक जाने वाली सड़क दिखाई देती थी। हम अपनी ज़्यादातर सुबह और दोपहर इसी चबूतरे पर धूप सेंकते हुए या इसके बगल में खड़े होली-ओक के पेड़ की छाँव में बिताते थे। मशोबरा में पक्षियों की भरमार थी: बारबेट पक्षी दिन भर चहकते रहते थे, चेरी के पेड़ों के बीच स्कारलेट मिनीवेट पक्षियों के झुंड उड़ते रहते थे, सिबिया पक्षी एल्म के पेड़ पर उगने वाली लता में घोंसला बनाते थे, और फ्लाईकैचर, जिनमें सबसे खूबसूरत चांदी-सफेद पैराडाइज़ फ्लाईकैचर भी शामिल था, जिसकी पूंछ की दो पट्टियाँ पीछे लटकती रहती थीं, अक्सर दिखाई देते थे। लैमर्जियर और हिमालयी चीलें हवा में मंडराती रहती थीं। सुबह-सुबह और शाम ढलते समय, काली चिड़ियाएँ हमारी छत पर बैठ जाती थीं और मधुर गीत गाने लगती थीं। चाँदनी रातों में चिड़ियाएँ आपस में आवाज़ें निकालती रहती थीं। उड़ने वाली गिलहरियों के एक परिवार ने हमारी छत के छज्जे में अपना घोंसला बना रखा था; हम अक्सर उन्हें एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उतरते और टेनिस कोर्ट पर उछलते-कूदते देखते थे।

रविवार का दिन खास होता था। हम सुबह मशोबरा बाजार के प्रवेश द्वार पर स्थित सेंट स्विथिन चर्च की घंटियों की गूंज से जागते थे। इसे कानपुर के एक अंग्रेज चमड़े के व्यापारी ने बनवाया था और इसका नाम मोचियों के संरक्षक संत के नाम पर रखा गया था। यह बिल्कुल इंग्लैंड के किसी गांव के गिरजाघर जैसा था, जिसमें एक ऊंचा प्रवेश द्वार, रंगीन कांच की खिड़कियां और एक विशाल वेदी थी। पहाड़ी की चोटी पर स्थित गेबल्स और वाइल्ड फ्लावर हॉल में ठहरे अंग्रेज लोग सुबह की प्रार्थना के लिए अपने सबसे अच्छे कपड़ों में चर्च में आते थे। प्रार्थना करने के बाद वे बाजार में टहलते थे और उनके शरीर से लैवेंडर और फ्रेंच परफ्यूम की मनमोहक खुशबू निकलती थी।

मेरे पिता अंग्रेज़ों के प्रशंसक थे और उन्हें श्वेत लोगों का मनोरंजन करना बहुत पसंद था। एक बार उन्हें वाइल्ड फ्लावर हॉल और गेबल्स में ठहरे यूरोपीय लोगों की सूची मिली और उन्होंने उन्हें रात्रिभोज का निमंत्रण भेजा। वे दर्जनों की संख्या में आए, क्योंकि युद्ध का समय था और उनके होटलों में कुछ खास नहीं होता था। हमने प्रवेश द्वार से लेकर अपने घर तक चीनी लालटेनें लगाईं। हमने नृत्य संगीत बजाने के लिए एक गोवा बैंड को बुलाया। साहबों ने अपना और अपनी मेमों का परिचय दिया, हमारी स्कॉच और वाइन पी, हमारा करी वाला भोजन खाया, नाचा और चले गए। मैंने अपने पिता से पूछा कि अजनबियों के मनोरंजन पर हज़ारों रुपये खर्च करने से उन्हें क्या मिला? उन्होंने उत्तर दिया, 'अंग्रेज़ कभी भी उन लोगों को नहीं भूलते जो उनका आतिथ्य करते हैं।' वे सही थे। कुछ दिनों बाद जब वे रेलगाड़ी से दिल्ली जा रहे थे, तो एक अंग्रेज अधिकारी उनके पास आया और अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उनकी पार्टी में आया था। दोनों में बातचीत शुरू हुई। मेरे पिता को सेना को रसद आपूर्ति करने का एक अच्छा-खासा ठेका मिल गया।

फरीदकोट के राजा को गोरों का मनोरंजन करना बहुत पसंद था। हर शरद ऋतु में वे खुले मैदान में बैल-लड़ाई का आयोजन करते थे। दूर-दराज के गांवों से किसान अपने सर्वश्रेष्ठ बैल लेकर आते थे। विदेशी और महत्वपूर्ण भारतीय सोफे पर बैठकर बैलों की लड़ाई देखते थे। खेल खत्म होने के बाद, राजा अपने निजी बैंड के साथ मेहमानों के लिए भोज का आयोजन करते थे। चूंकि हमारे कई अंग्रेज मित्र हमारे साथ ठहरते थे, इसलिए हमें अक्सर आमंत्रित किया जाता था। राजा जितने उदार थे, उतने ही कंजूस भी। वे सभी को शैंपेन पिलाते थे, लेकिन जब व्हिस्की की बात आती थी, तो उनके सेवक भारतीयों को भारतीय ब्रांड की व्हिस्की और गोरों को केवल स्कॉच व्हिस्की ही परोसते थे। एक शाम जब हम 'द स्टेट्समैन' के संपादक इवान चार्लटन और उनकी पत्नी जॉय को उनकी एक पार्टी में ले गए, तब मुझे इसका पता चला। जब मैंने इवान से व्हिस्की की गुणवत्ता के बारे में शिकायत की, तो उन्होंने चिढ़कर कहा, 'तुम तो बड़े शक्की हो! मेरी व्हिस्की तो ठीक है।' हमने गिलास बदले। मेरी व्हिस्की चखते ही उन्होंने नाक सिकोड़ ली। राजा बहुत असभ्य भी हो सकते थे। जब भी मेरे पिताजी उसे बुलाते, वह इतना ज़्यादा पी लेता कि होश ही खो बैठता और बाकी मेहमानों के चले जाने के बाद भी वहीं रुका रहता। वह

मेरी किशोर उम्र की भतीजियों और वहाँ मौजूद दूसरी युवतियों पर बुरी नज़र रखता था। मेरे बेचारे माता-पिता, जो आमतौर पर रात 9 बजे सो जाते थे, आधी रात तक जागते रहते थे।

मुझे सबसे ज़्यादा लंबी पैदल यात्रा करना पसंद था। शिमला जाने के अलावा, मैं पहाड़ों के दूसरे रास्तों को भी एक्सप्लोर करता था। एक सुनसान, छायादार रास्ता चीड़ और देवदार के जंगल से होते हुए एक इतालवी मठ, सैन डेमियानो तक जाता था। एक और रास्ता मशोबरा से खड़ी चढ़ाई पर डेन्स फॉली नामक एक छोटे से बगीचे से होते हुए वाइल्ड फ्लावर हॉल की ओर जाता था। पहाड़ी की चोटी से 10,000 फीट से ऊपर उठती शाली चोटी और दो पर्वत श्रृंखलाओं को अलग करती एक चौड़ी धारा दिखाई देती थी। बरसात के मौसम में, घाटी अक्सर कोहरे से ढकी रहती थी। रहस्यमय तरीके से, कोहरा छंट जाता और सूरज निकल आता, जिससे बारिश से धुली पन्ना जैसी हरी पहाड़ियाँ रोशन हो जातीं और उनके बीच बहने वाली धारा प्रकाश में चमक उठती।

साल में एक बार शरद ऋतु में मशोबरा बाजार से लगभग एक मील नीचे स्थित सिपी गाँव में एक मेला लगता था। गाँव वाले अपनी युवा बेटियों और बेटों को यहाँ उनके विवाह तय करवाने के लिए लाते थे। ऐसी अफवाह थी कि सुंदर लड़कियाँ - हिमाचल प्रदेश की लड़कियाँ गोरी, छोटी कद-काठी वाली, बादाम जैसी आँखों वाली और चंचल स्वभाव की हो सकती हैं - सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेची जाती थीं। मैंने कई सुंदर लड़कियाँ देखीं, लेकिन किसी को भी बाहरी व्यक्ति द्वारा ले जाते हुए नहीं देखा।

लाहौर में ज्यादा काम न होने, एक अच्छा घर और एक सुंदर (हालांकि अब थोड़ी ज्यादा आत्मविश्वास वाली) पत्नी होने के कारण, मेरे पास मेहमानों की कमी नहीं थी। उनमें सबसे प्रमुख मंगत राय थे, जिनकी पोस्टिंग लाहौर में थी। आईसीएस में होने के कारण, शादी योग्य बेटियों वाले ईसाई परिवार उन्हें बहुत पसंद करते थे। वे अक्सर अपने दोस्तों को घर बुलाते और अपनी लिखी रचनाएँ पढ़कर सुनाते थे। एक रचना, जिसे बार-बार सुना जाता था, एक मुर्गी के बारे में थी जो नाले में अंडे देती थी। उनकी महिला प्रशंसकों की बढ़ती संख्या हमेशा उसकी प्रशंसा करती थी। कुछ महीनों बाद, वे ऑफिस से लौटते समय हमारे घर आने लगे। वे अपनी साइकिल सीढ़ियों से ऊपर लाते और अक्सर हमारे यहाँ पेय और भोजन के लिए रुक जाते। मेरी पत्नी के बारे में उनके मन में जो भी झिझक थी, वह गायब हो गई थी; मुझे स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था कि वे उससे बहुत प्यार करने लगे थे। मुझे कोई संदेह न रहे, इसलिए उन्होंने मुझे एक पत्र लिखकर स्वीकार किया कि वे उससे प्यार करते हैं और हमसे मिलने आने की अनुमति मांगी। मैंने उनका पत्र अपनी पत्नी को दे दिया। वह बहुत खुश हुई। मैंने इसे एक मज़ाक समझा और जवाब में उन्हें आश्वस्त किया कि उनका पहले की तरह ही स्वागत होगा। मुझे अपनी इस उदारता पर पछतावा हुआ। मंगत राय में लोगों को अपनी बात मनवाने की अद्भुत क्षमता थी।

उन दिनों मेरी पत्नी भाबेश सान्याल के स्टूडियो में सुबह चित्रकारी करती थी। मंगत राय स्टूडियो में आने लगे और उन्होंने मेरी पत्नी को समझाया कि चित्रकारी एक व्यर्थ शौक है। उन्होंने चित्रकारी छोड़ दी। वह टेनिस की शौकीन थीं और हर शाम कॉस्मोपॉलिटन क्लब में टेनिस खेलती थीं; उन्होंने मेरी पत्नी को समझाया कि साइकिल चलाना ज़्यादा मज़ेदार है, इसलिए उन्होंने टेनिस छोड़ दिया और उनके साथ साइकिल चलाने लगीं। वह धार्मिक अनुष्ठानों का भी बहुत पालन करती थीं, हर सुबह ग्रंथ साहिब खोलकर एक-दो भजन पढ़ती थीं। शाम को वह पवित्र ग्रंथ को लपेटकर सो जाती थीं। उन्होंने मेरी पत्नी को समझाया कि ऐसे अनुष्ठान व्यर्थ हैं। मेरी पत्नी ने अपनी नियमित प्रार्थना छोड़ दी। मंगत राय बहुत ज़्यादा शराब पीने लगे थे; मेरी पत्नी भी शराब पीने लगी। वह अपने हर काम के बारे में खुलकर बात करते थे। उन्होंने मेरी पत्नी को बताया कि एक शाम रेलवे स्टेशन पर अपनी बहन को छोड़ने जाते समय उनकी मुलाकात एक युवा ईसाई लड़की से हुई जिसे हम सब जानते थे। उसके पास आने-जाने का कोई साधन नहीं था। उन्होंने उसे अपनी साइकिल पर घर छोड़ने की पेशकश की। वह सामने वाली बार पर बैठी थी। शारीरिक संपर्क से दोनों में आकर्षण पैदा हुआ। उन्होंने उसे अपने अपार्टमेंट में आमंत्रित किया। उसने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने रात एक ही बिस्तर पर बिताई। उसने माना कि उसे थोड़ा अपराधबोध हो रहा था क्योंकि वह मेरी पत्नी से प्यार करता था, उस लड़की से नहीं जिसके साथ उसने रात बिताई थी। निराश होने के बजाय, मेरी पत्नी ने उसकी ईमानदारी की सराहना की और उसकी ओर और भी आकर्षित हो गई। स्वाभाविक रूप से, उनके रिश्ते की खूब चर्चा होने लगी।

मेरे घर नियमित रूप से आने वालों में न्यायमूर्ति गोपाल दास खोसिया, जो आईसीएस के सदस्य थे, और उनकी पत्नी शकुंतला भी शामिल थे। मेरी पत्नी उन्हें बहुत पसंद थीं; मैं उनकी पत्नी को। इस तरह हम दोनों बराबर थे। एक कनाडाई दंपति भी थे - विल्फ्रेड कैंटवेल-स्मिथ, जो भारतीय इस्लाम पर डॉक्टरेट की थीसिस पर काम कर रहे थे, और उनकी पत्नी मुरियल, जो लाहौर मेडिकल कॉलेज में चिकित्सा की पढ़ाई कर रही थीं। दयाल सिंह कॉलेज में इतिहास के व्याख्याता पी.एन. किरपाल भी थे। वे मंगत राय की बड़ी बहन प्रियोबाला के प्रति आसक्त थे और उनसे विवाह करने की आशा रखते थे। उनका हमारे जीवन में जीवन भर रहने का भाग्य था। अन्य लोग भी थे, जैसे नवाबजादा महमूद अली खान और उनकी सिख पत्नी सतनाम; विलबर्न और उषा लाल, जो मंगत राय के दूर के रिश्तेदार थे; सरकारी कॉलेज में अंग्रेजी के व्याख्याता इंदर मोहन वर्मा; बिशन नारायण और उनकी पत्नी शांति, दोनों खोसला परिवार के मित्र थे। अन्य लोग आते-जाते रहे। कभी-कभार जब हम लाहौर में होते थे, तो आर्थर लाल का छोटा भाई जॉन भी वहाँ होता था, जो आईसीएस में था। जॉन थोड़ा अय्याश था और उसकी ब्रिटिश लहजे में बोलने की कला कमाल की थी। वह अक्सर मुझ पर चुटकुले सुनाता रहता था। एक दिन उसने कवल से कहा, 'अगर तुम्हारी बहन हो तो उसकी शादी तुम्हारे दाढ़ी वाले पति से करवा दो और तुम मुझसे।' मैं दोनों लाल भाइयों के मज़ाक का निशाना बनती थी। जॉन से मेरा हिसाब तब चुकता हुआ जब वह अपनी मंगेतर

होप को हम सबसे मिलवाने लेकर आया, जो सांवली और थोड़ी गोल-मटोल थी। अगले दिन वह आया और मुझसे पूछा कि मुझे वह कैसी लगी। मैंने उससे कहा, 'वह आस्था और दान की सदा-प्रथा में डूबी रहेगी।' इसके बाद उसने कोई चुटकुला नहीं सुनाया। आर्थर से हिसाब चुकता करने का मेरा दिन कुछ सालों बाद आया।

लाहौर में इन वर्षों के दौरान मेरी मुलाकात जिन दो लोगों से हुई, उनका ज़िक्र करना ज़रूरी है। एक थीं चित्रकार अमृता शेरगिल। हमारे फ्लैट के सामने वाली इमारत में रहने से पहले ही उनकी प्रसिद्धि फैल चुकी थी। उन्होंने हाल ही में अपने हंगेरियन चचेरे भाई, विक्टर ईगन से शादी की थी, जो एक डॉक्टर थे और लाहौर में अपना क्लिनिक खोलना चाहते थे। अमृता बेहद खूबसूरत और बेहद कामुक बताई जाती थीं। कहा जाता है कि पंडित नेहरू उनके आकर्षण में फंस गए थे; उनकी कामुकता की कहानियां बड़े चाव से सुनाई जाती थीं। वह पहले भी लाहौर आ चुकी थीं और उपयुक्त अपार्टमेंट ढूंढने के लिए फलेटिस होटल में रुकी थीं। कहा जाता है कि वह अपने प्रेमियों को हर दिन तीन से चार बार मिलने का समय देती थीं, कुछ घंटों के अंतराल पर। वे आते, अपना काम करते और काम खत्म होते ही चले जाते। गवर्नमेंट कॉलेज के दिनों के मेरे दोस्त, छोटे कद के इकबाल सिंह, जो उस समय ऑल इंडिया रेडियो में प्रोड्यूसर थे, शाम को उनके आखिरी मेहमान हुआ करते थे। उन्हें सोते समय उनकी ज़रूरतों को पूरा करने का सीमित सौभाग्य प्राप्त था। मुझे नहीं पता था कि उसके कामुक होने की अफवाहों में कितनी सच्चाई थी, लेकिन मैं उसे जानने के लिए उत्सुक था। मुझे ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा।

गर्मियों का मौसम था। मेरी पत्नी और छह महीने का बेटा कसौली में उसके माता-पिता के घर गए हुए थे। एक दोपहर जब मैं दोपहर के भोजन के लिए घर लौटा तो मैंने मेज पर बीयर का एक बड़ा मग और एक महिला का पर्स रखा हुआ पाया, और मेरे बैठक कक्ष में फ्रांसीसी इत्र की तेज़ खुशबू फैली हुई थी। मैं दबे पांव रसोई में गया और अपने रसोइए से पूछा कि कौन है। उसने जवाब दिया, 'मुझे नहीं पता, साड़ी पहने एक मेमसाहिब आई थीं। उन्होंने आपको बुलाया था। मैंने उन्हें बताया कि आप दोपहर के भोजन तक वापस आ जाएंगे। उन्होंने फ्लैट में इधर-उधर देखा और फ्रिज से बीयर निकाल ली। वह बाथरूम में हैं।'

मुझे पूरा यकीन था कि यह अमृता शेरगिल ही होंगी। और ऐसा ही हुआ। वह बैठक में आई और अपना परिचय दिया। उन्होंने मुझे सड़क के उस पार किराए पर लिए गए फ्लैट के बारे में बताया और बढ़ई, प्लंबर, दर्जी आदि के बारे में सलाह मांगी। मैंने उन्हें उन लोगों के बारे में जो कुछ भी पता था, बता दिया। मैंने उन्हें परखने की कोशिश की। मैं उनकी आंखों में ज्यादा देर तक नहीं देख सका क्योंकि उनकी आंखों में एक ऐसी बेबाक और दिलेर अदा थी जो मुझ जैसे डरपोक आदमियों को भी नज़रें झुकाने पर मजबूर कर देती है। वह कद में छोटी और सांवली थीं (आधी सिख और आधी हंगेरियन होने के कारण)। उनके बाल बीच से बँधे हुए थे और पीछे कसकर बंधे हुए थे। उनकी नाक उभरी हुई थी और उसमें काले धब्बे दिख रहे थे।

उनके होंठ मोटे थे और उन पर हल्की सी मूंछों की झलक थी। मैंने उन्हें बताया कि मैंने उनकी पेंटिंग्स के बारे में बहुत कुछ सुना है और दीवार पर लगी कुछ जलरंग पेंटिंग्स की ओर इशारा किया जो मेरी पत्नी ने बनाई थीं। मैंने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, 'वह अभी पेंटिंग सीख रही हैं।' उन्होंने चिढ़कर कहा, 'यह तो साफ है।' शिष्टता उनके गुणों में से एक नहीं थी; वह अपने मन की बात कहने में विश्वास रखती थी, चाहे वह कितनी भी असभ्य या निर्दयी क्यों न हो।

कुछ सप्ताह बाद मुझे उसकी बदतमीज़ी का एक और नमूना देखने को मिला। मैं अपनी पत्नी और बेटे को कसौली से लेकर मशोबरा गया था। अमृता अपने दोस्तों चमन लाल के साथ ठहरी हुई थी, जिन्होंने मेरे पिता के घर से थोड़ा ऊपर एक घर किराए पर लिया था। मैंने उन्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया। हम होली-ओक के पेड़ की छाँव में खुले चबूतरे पर बीयर और जिन-स्लिंग पी रहे थे। मेरा बेटा एक प्लेपेन में खड़ा होना सीख रहा था। हर कोई उसकी तारीफ कर रहा था: वह घुंघराले बालों, बड़ी-बड़ी जिज्ञासु आँखों और गालों पर डिंपल वाला एक बहुत ही प्यारा बच्चा था। अमृता ने टिप्पणी की, 'कितना बदसूरत बच्चा है!' बाकी लोगों ने अपनी शर्मिंदगी जाहिर की। मेरी पत्नी एकदम शांत हो गई। अमृता बेफिक्र होकर अपनी बीयर पीती रही। बाद में, जब उसने सुना कि मेरी पत्नी ने उसके व्यवहार के बारे में क्या कहा और उसे 'बेशर्म कुतिया' कहा, तो अमृता ने अपने मुखबिर से कहा, 'मैं उस औरत को सबक सिखाऊँगी। मैं उसके पति को बहकाऊँगी।' प्रेम प्रसंग का वो दिन कभी नहीं आया। जब हम लाहौर लौटे, तो मेरी पत्नी ने अमृता के लिए हमारे घर में प्रवेश वर्जित घोषित कर दिया। कुछ महीनों बाद, हमारे कुछ परिचितों ने बताया कि अमृता की तबीयत ठीक नहीं है। एक रात, अमृता की तबीयत इतनी खराब थी कि वो मेहमानों से मिलना नहीं चाहती थी, इसलिए उसका एक चचेरा भाई हमारे घर आया। उसने बताया कि अमृता बेहोश थी और ब्रिज खेलते समय कुछ बुदबुदा रही थी - वह ब्रिज की शौकीन खिलाड़ी थी। अगली सुबह हमें पता चला कि उसकी मृत्यु हो गई है। उसकी उम्र मात्र 31 वर्ष थी।

मैं ईगन के अपार्टमेंट में गया। अमृता के बूढ़े, दाढ़ी वाले पिता उमराव सिंह सदमे में थे और उनकी माँ व्याकुल थीं। वे शिमला के समर हिल से अभी-अभी आए थे और उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनकी युवा, प्रतिभाशाली बेटी हमेशा के लिए इस दुनिया से चली गई है। उस दोपहर, लगभग एक दर्जन पुरुष और महिलाएं अमृता के शवयात्रा के साथ श्मशान घाट तक गए, जहाँ उनके पति ने चिता को अग्नि दी। जब हम ईगन के अपार्टमेंट में लौटे, तो पुलिस उनका इंतज़ार कर रही थी। इंग्लैंड ने नाज़ी जर्मनी के सहयोगी के रूप में हंगरी पर युद्ध की घोषणा कर दी थी। ईगन एक शत्रु देशवासी बन गया था। सौभाग्य से उसे पुलिस हिरासत में ले लिया गया था।

अमृता की मां को अपनी बेटी की बीमारी और मृत्यु के बारे में जानकारी मिलने में कुछ समय लगा। उन्होंने अपने भतीजे और दामाद को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने मंत्रियों, अधिकारियों और दोस्तों (जिनमें मैं भी शामिल था) को पत्रों

की बौछार कर दी और उन पर हत्या का आरोप लगाया। मुझे पूरा यकीन है कि यह हत्या नहीं थी। लेकिन मुझे उतना ही यकीन है कि यह लापरवाही थी। अमृता की मृत्यु के बारे में मुझे जो जानकारी मिली, वह लाहौर के एक प्रमुख चिकित्सक डॉ. रघुबीर सिंह से मिली। उन्हें आधी रात को अमृता के पास बुलाया गया, जब उनके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। उनका मानना था कि अमृता गर्भवती हो गई थीं और उनके पति ने उनका गर्भपात करा दिया था। ऑपरेशन गलत हो गया था। उन्हें अत्यधिक रक्तस्राव हुआ और पेरिटोनिटिस हो गया। उनके पति चाहते थे कि डॉ. रघुबीर सिंह उन्हें रक्त चढ़ाएं और इसके लिए उन्होंने अपना रक्त देने की पेशकश भी की। डॉ. रघुबीर सिंह ने रक्त समूह की जानकारी लिए बिना ऐसा करने से इनकार कर दिया। जब दोनों डॉक्टर आपस में बहस कर रहे थे, अमृता की मृत्यु हो गई।

कला समीक्षक कार्ल खंडालावाला, इकबाल सिंह और उनके भतीजे, चित्रकार विवान सुंदरम जैसे कई लोगों ने अमृता पर किताबें लिखी हैं। बदरुद्दीन तैयबजी ने अमृता के आकर्षण का सजीव वर्णन किया है (उन्होंने अपने कपड़े उतार दिए और चूल्हे के पास कालीन पर नग्न अवस्था में लेट गईं)। विवान स्वीकार करते हैं कि अमृता के कई प्रेमी थे। उनके अनुसार, अमृता के जीवन का असली जुनून एक दूसरी स्त्री थी।

मेरी पत्नी और बेटे के गर्मी की छुट्टियों में बाहर जाने के दौरान मेरे अपार्टमेंट में ठहरने वाले मेहमानों में कम्युनिस्ट नेता दानियाल लतीफी भी थे। वे कई बार जेल जा चुके थे और पार्टी मुख्यालय में उन्हें जो खाना दिया जाता था, वह उन्हें रास नहीं आता था। उस समय पार्टी से करीबी संबंध होने के कारण, मैंने उन्हें कुछ हफ़्ते अपने साथ रहने और स्वास्थ्य लाभ करने के लिए आमंत्रित किया। दानियाल बहुत ज़्यादा बोलने वाले व्यक्ति थे। उनकी सपाट, एकरस आवाज़ में एक तरह का सम्मोहन था। एक शाम मेरे दो दोस्त आए। दोनों बहुत नशे में थे। दानियाल ने उनके विनम्र प्रश्नों का उपयोग द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष पर एक लंबा भाषण देने के लिए किया। मैं ताज़ी हवा लेने बाहर चला गया। जब मैं आधे घंटे बाद लौटा, तो दानियाल अभी भी भाषण दे रहे थे। मेरे दोनों दोस्त गहरी नींद में सो रहे थे।

दानियाल के ज़रिए मुझे बारी-बारी से दो और आगंतुक मिले। पहला था श्रीपाद डांगे, जो उस समय पुलिस से भागा हुआ था। उसे मेरा नौकर होने का नाटक करना पड़ा। वह अपना ज़्यादातर समय मेरी किताबें पढ़ने में बिताता था। जब भी कोई मुझसे मिलने आता, वह रसोई में गायब हो जाता था। दूसरा था अजय घोष, जो उस समय भूमिगत था। वह एक गंभीर और कम बोलने वाला व्यक्ति था। उसकी प्रेमिका और बाद में उसकी पत्नी, लिट्टो, रोज़ आती थीं और जब मैं उच्च न्यायालय में होता था, तो उसके साथ कई घंटे बिताती थीं। कई साल बाद इंग्लैंड में मैंने अपने मित्र एवरेट से, जो सी.आई.डी. में था, पूछा कि क्या उसे इन लोगों के मेरे साथ रहने के बारे में पता था। उसने कहा कि उसे पता था। यह तय किया गया था कि उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जाएगा, बल्कि केवल मेरे अपार्टमेंट पर नज़र रखी जाएगी और मेरे कम्युनिस्ट मेहमानों से मिलने आने वाले लोगों के नाम नोट किए जाएंगे।

लाहौर में रहने के दौरान मेरे जीवन पर सबसे गहरा प्रभाव रखने वाले व्यक्ति थे मंजूर कादिर। वे मुझसे कुछ साल बड़े थे, इंग्लैंड से वकालत की पढ़ाई की थी और लायलपुर (अब फैसलाबाद) की जिला अदालतों में वकालत करते थे। उनके कई मुवक्किल थे और वे असाधारण योग्यता वाले एक ईमानदार व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे। उनके पिता, सर अब्दुल कादिर, लाहौर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और साहित्यकार थे: मखज़ान के संपादक के रूप में उन्होंने अल्लामा इकबाल की कविताओं को प्रकाशित करने वाले पहले व्यक्ति थे, जिनसे उनकी गहरी मित्रता थी। मंजूर ने मियां सर फजल-ए-हुसैन की बेटी असगरी से विवाह किया। वह बेहद खूबसूरत थीं। रूसी चित्रकार स्वेतोस्लाव रोएरिच ने उन्हें अपनी मैडोना की तस्वीरों के लिए मॉडल के रूप में इस्तेमाल किया था। उस समय असगरी मंजूर को अपने से कम दर्जे का समझती थीं और मानती थीं कि उन्होंने उन पर बहुत बड़ा उपकार किया है। वे कद में छोटे, गंजे, तेज आंखों वाले और मोटे चश्मे पहनने वाले व्यक्ति थे। वह अपनी पत्नी से बेहद प्यार करते थे और धैर्यपूर्वक उनके नखरे सहते थे। मंज़ूर और मुझे एक-दूसरे से परिचित होने और दोस्त बनने में ज़्यादा समय नहीं लगा। सौभाग्य से, हमारी पत्नियाँ, जो दोनों ही स्वभाव से थोड़ी गुस्सैल थीं, भी आपस में खूब घुलमिल गईं। हम लगभग हर दूसरे दिन एक-दूसरे के घर खाना खाने लगे। मेरी पत्नी भी मंज़ूर की तरह सिनेमा की शौकीन थीं: वे हर हफ्ते कम से कम एक फिल्म साथ में देखते थे। साथ ही, उन्हें आम भी बहुत पसंद थे। वे दोनों मिलकर एक ही बार में बड़े चाव से एक दर्जन आम चट कर जाते थे।

मंज़ूर हर लिहाज़ से मेरी ज़िंदगी में मिले सबसे असाधारण व्यक्ति थे। वे निःसंदेह पंजाब के सबसे प्रतिभाशाली उभरते वकील थे। वे और उनके चाचा मोहम्मद सलीम, जो पंद्रह वर्षों तक डेविस कप में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रसिद्ध टेनिस खिलाड़ी थे, उच्च न्यायालय में दिन भर का काम निपटाने के बाद घंटों कानूनी मुद्दों पर बहस करते थे। दोनों ही व्यक्ति ईमानदारी के उच्चतम मानकों का पालन करते थे, जो विशेष रूप से वकीलों में एक दुर्लभ गुण है। वे अपनी फीस चेक से लेते थे, या नकद भुगतान मिलने पर अपने मुवक्किलों को पूरी राशि की रसीद देते थे। वे अक्सर निर्धारित आयकर से अधिक आयकर अदा करते थे और उसका कुछ हिस्सा वापस भी पा लेते थे। मंज़ूर मेरी ज़िंदगी में एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने कभी झूठ नहीं बोला और लोगों को ठेस न पहुँचाने का पूरा प्रयास किया। समय के साथ, वे अपने दोस्तों के लिए एक तरह से कसौटी बन गए, जिससे वे अपनी ईमानदारी की जाँच करते थे। जब भी किसी कार्य योजना को लेकर संदेह होता, तो हम खुद से पूछते, 'क्या मंज़ूर इसे मंज़ूर करेंगे?' मेरी तरह, वे भी अज्ञेयवादी थे।

मंज़ूर और मुझमें साहित्य के प्रति प्रेम समान था। उनके मामले में, यह प्रेम पूरी तरह से उर्दू कविता के लिए था, जिसके प्रति उन्होंने मेरी आँखें फिर से खोल दीं। उन्हें कई कवियों की रचनाएँ कंठस्थ थीं। उन्होंने खुद भी कविता लिखने का प्रयास किया, लेकिन उन्हें ज़्यादा सफलता नहीं मिली। वे अश्लील कविताएँ रचने में माहिर थे, जिन्हें वे अपने पुरुष मित्रों के समूह के सामने बड़े जोश से सुनाते थे। महिलाओं के आसपास वे बेहद शालीन रहते थे। हमने कई छुट्टियाँ साथ बिताईं - कभी

पटियाला में, जहाँ मेरे ससुर सर तेजा सिंह मलिक मंत्री थे; कभी दिल्ली या मशोबरा में मेरे माता-पिता के साथ। हमारी दोस्ती पूरे शहर में चर्चा का विषय बन गई, क्योंकि सिखों और मुसलमानों या हिंदुओं और मुसलमानों के बीच इतनी घनिष्ठ मित्रता के उदाहरण दुर्लभ थे।

मेरे करियर में एक महत्वपूर्ण मोड़ मंगत राय की हमारे समूह के अन्य लोगों से एक साहित्यकार के रूप में आगे निकलने की इच्छा थी। उन्होंने सुझाव दिया कि केवल वे ही अपने लेख श्रोताओं के सामने पढ़कर सुनाने के बजाय, सभी को अपना लिखा हुआ कुछ न कुछ पढ़ना चाहिए। इसके बाद हमारी पहली मुलाकात उनके घर में हुई - वारिस रोड पर किराए पर लिए गए उनके मकान के एक हिस्से में। उन्होंने जो विषय सुझाया वह था 'मैं विश्वास करता हूँ'। हमें जीवन के मूल्यों पर अपने विश्वास लिखने थे। लगभग दस छोटे लेख पढ़े गए। मैंने ईश्वर, धर्म, देशभक्ति, मित्रता, प्रेम, विवाह, मृत्यु और परलोक के सिद्धांतों में अपने अविश्वास के कारण लिखे। मैंने जो लिखा उसमें कुछ भी मौलिक नहीं था, और मैंने वही लिखा जो मेरे मन में आया। मेरी मुख्य उपलब्धि यह थी कि मैं अब तक के बेजोड़ मंगत राय के प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरा। ईमानदारी से कहूँ तो, उन्होंने मेरी प्रशंसा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अगले दिन मुझे विल्फ्रेड और मुरियल कैंटवेल स्मिथ से प्रशंसा पत्र मिला। यह मेरा पहला प्रशंसा पत्र था और इसने मेरा मनोबल काफी बढ़ाया।

साहित्यिक मंडली साप्ताहिक कार्यक्रम बन गई। हम बारी-बारी से अलग-अलग घरों में मिलते थे। खूब शराब (ज्यादातर भारतीय शराब) पी जाती थी, और कविताएँ, लघु कथाएँ और निबंध पढ़े जाते थे, जिन पर सभी लोग तालियाँ बजाते थे। इनमें सबसे ज्यादा योगदान न्यायमूर्ति जी.डी. खोसला और मेरा था। खोसला एक न्यायविद के बजाय एक लेखक के रूप में अपनी पहचान बनाने के लिए ज्यादा उत्सुक थे। मेरा काम बाकी लोगों की तुलना में बहुत कम था। मैं अपने मुवक्किलों के सिख गाँवों की यात्राओं को अपनी कहानियों की पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल करता था। मैं हमारी बैठकों का केंद्र बिंदु बन गया था। धीरे-धीरे मुझे एहसास हुआ कि हमारे मंडली के अन्य लोगों की तरह परीक्षाओं में अच्छे अंक लाना (मंगत राय ने आई.सी.एस. में अपने निबंध में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए थे) अकेले ही ध्यान आकर्षित करने वाली कहानी सुनाने की क्षमता पर कोई खास असर नहीं डालता। यह एक जन्मजात प्रतिभा थी - कुछ लोगों में होती थी, कुछ में नहीं। मंगत राय का योगदान और हमारी बैठकों में उनकी उपस्थिति दोनों ही कम होने लगीं।

मंगत राय ने जीवनसाथी की तलाश शुरू कर दी थी। सबसे पहले उन्हें एक बेहद खूबसूरत लड़की, लाजवंती रल्लिया राम, आकर्षित किया, जो एक राष्ट्रवादी ईसाई परिवार से थीं। उनका रंग कश्मीरी ब्राह्मणों जैसा गोरा, आँखें बड़ी, कद लंबा और दुबला-पतला था। उन्होंने एम.ए. अंग्रेजी परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया (उनके पिता संयोगवश विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे)। मुझे याद नहीं कि उनकी मुलाकात कैसे हुई, लेकिन चूंकि मंगत राय ईसाई समुदाय में सबसे लोकप्रिय कुंवारे थे, इसलिए रल्लिया राम परिवार को उन्हें ढूंढने और अपनी बेटी को उनसे मिलवाने में ज्यादा परेशानी नहीं हुई होगी। जब

हम क्लब में बाहर होते थे, तब वे दोनों अक्सर मेरे अपार्टमेंट में मिलते थे। उन्होंने अपनी सगाई की घोषणा की और शादी की तारीख तय हो गई। शादी के कार्ड छपवाकर भेज दिए गए। लाजवंती ने अपने घरेलू कपड़ों पर L.M.R. अक्षर छपवाए। स्थानीय चर्च में होने वाली शादी से कुछ दिन पहले, मंगत राय ने शादी तोड़ दी। लाजवंती का दिल टूट गया। लगभग जल्दबाजी में उन्होंने मोहम्मद यूनुस से शादी कर ली, जो एक आकर्षक पठान थे और स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय थे (और बाद में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सबसे करीबी सहयोगियों में से एक बन गए)। यह विवाह दोनों के लिए विनाशकारी साबित हुआ।

मंगत राय लगभग हर दिन हमसे मिलने आने लगे। मुझे उनके आने से कोई आपत्ति नहीं थी क्योंकि मेरी पत्नी बहुत ज्यादा अधिकार जताने वाली, ईर्ष्यालु और ध्यान की मांग करने वाली बन गई थी। मैं उसकी असुरक्षा की भावना को स्वाभाविक मानता था क्योंकि मैं भी एक नंबर का अय्याश बन गया था और महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करता था। मंगत राय के साथ उसकी व्यस्तता से मुझे कुछ राहत मिली।

लगभग एक साल बाद, मंगत राय की मुलाकात चंपा नाम की एक और युवा ईसाई लड़की से हुई। चंपा ने भी एम.ए. अंग्रेजी परीक्षा में टॉप किया था, जब उसके पिता एस.पी. सिंघा विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे। चंपा सांवली, जीवंत और निडर थी। मंगत राय उसकी जीवंतता से आकर्षित हुए। दोनों की सगाई हो गई। चंपा ने सगाई को लंबा खींचने का जोखिम नहीं लिया और दोनों ने चर्च में शादी कर ली। हमें शादी में आमंत्रित किया गया था, लेकिन हम नहीं गए। चंपा ने हमसे दोस्ती करने की कुछ अधूरी कोशिशें कीं, लेकिन जब हमने कोई जवाब नहीं दिया, तो उसने हमसे रिश्ता तोड़ लिया।

जैसा कि मैंने पहले ही अनुमान लगा लिया था, यह विवाह एक दुर्भाग्यपूर्ण संबंध साबित हुआ। मंगत राय हमसे मिलने फिर से आने लगे और जब हम बाहर होते, तो मेरी पत्नी को लंबे-लंबे पत्र लिखते। हालांकि, उनका वैवाहिक जीवन किसी की भी उम्मीद से कहीं अधिक विचित्र तरीके से टूटने लगा। एक गर्मी के मौसम में हम दोनों शिमला में एक साथ थे। मंगत राय परिवार लक्कड़ बाजार के पास एक घर में अपनी बहन शीला और उनके पति आर्थर लाल के साथ रह रहा था। हम हमेशा की तरह मशोबरा में मेरे पिता के घर पर थे। हम हर दोपहर साइकिल से शिमला जाते और शाम को उनके साथ मॉल में टहलते। यह स्पष्ट था कि चंपा और आर्थर के बीच खूब जम रहा था। एक हफ्ते के लिए हिमालयी क्षेत्र में ट्रेकिंग की योजना बनाई गई। एक दल बनाया गया और कुली किराए पर लिए गए। आखिरी दिन मंगत राय ने अपना इरादा बदल दिया। उनकी बहन शीला ने भी ऐसा ही किया। आर्थर और चंपा ने हिमालय के बीहड़ों में एक हफ्ता साथ बिताया, और रातें सुनसान डाक बंगलों में गुजारीं। ट्रेक से लौटने पर उन्हें यकीन हो गया कि वे एक-दूसरे के लिए ही बने हैं। मंगत राय और उनकी पत्नी शीला ने कुछ अनिच्छा से आर्थर की उससे अलग होने की इच्छा मान ली। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जब सिंघा परिवार को इस बात का पता चला, तो उन्होंने अपनी बेटी पर कड़ा प्रहार किया। चंपा ने अपने पति से माफी मांगी। उसने

उतनी ही आसानी से माफी मांग ली जितनी आसानी से उसने उसे तलाक दिया था। लेकिन व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो उनका विवाह समाप्त हो चुका था।

लाहौर में मेरे दिन अब समाप्त हो रहे थे। लगभग जिस दिन से मैं वहाँ रहने आया था, यूरोप और सुदूर पूर्व में युद्ध छिड़ा हुआ था। मेरे विचार फासीवाद-विरोधी थे और मुझे पूरा विश्वास था कि भारत को सही मायने में आज़ाद होने से पहले हिटलर, मुसोलिनी, उनके यूरोपीय सहयोगियों और जापानियों को हराना ज़रूरी था। अधिकांश भारतीय धुरी शक्तियों की जीत पर प्रसन्न थे, नाज़ियों और फासीवादियों के प्रति प्रेम से ज़्यादा अपने अंग्रेज़ शासकों के प्रति द्वेष के कारण। सुभाष चंद्र बोस के भारतीय राष्ट्रीय सेना की कमान संभालने के बाद जापानियों के इरादों को लेकर मैं पूरी तरह आश्वस्त नहीं था। वे इतने शक्तिशाली व्यक्ति थे कि किसी के हाथों की कठपुतली नहीं बन सकते थे, लेकिन फिर भी उनके और उनकी भारतीय राष्ट्रीय सेना के बारे में मुझे गंभीर संदेह थे। स्टालिन द्वारा हिटलर के साथ समझौता करने पर मेरे साम्यवादी भ्रम चकनाचूर हो गए, और जब दोनों देशों ने एक-दूसरे के खिलाफ युद्ध छेड़ा तो वे आंशिक रूप से ही बहाल हो पाए। मैं गांधी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन का समर्थक नहीं था। मैंने उन क्षेत्रों में एक अलग राज्य की मुस्लिम मांग का समर्थन किया जहां वे बहुमत में थे, यह मानते हुए कि भारत दो स्वायत्त मुस्लिम बहुसंख्यक राज्यों के साथ एक देश बना रहेगा।

बहुत कम भारतीयों को विश्वास था कि अंग्रेज स्वेच्छा से भारत में अपना साम्राज्य छोड़ देंगे। वे ग्रिप्स और कैबिनेट मिशनों को दिखावा मानते थे। वे अंग्रेजों को नहीं जानते थे। भारत में युद्ध सेवा देने वाले युवा ब्रिटिश अधिकारी एक नई पीढ़ी थे। उन्होंने केवल श्वेत लोगों के क्लबों में शामिल होने से इनकार कर दिया, भारतीयों से दोस्ती करने के लिए हर संभव प्रयास किया, कुछ अंग्रेज शासकों द्वारा भारत में किए गए कार्यों पर खेद व्यक्त किया और कांग्रेस के नेतृत्व वाले स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति सहानुभूति दिखाई। हालांकि, इन सबसे अलग, एक घटना ने मुझे आश्वस्त किया कि स्वतंत्रता निकट ही है। यह घटना 1946 की गर्मियों में घटी थी।

मैं अपने माता-पिता के साथ मशोबरा में था। मुझे लाहौर लौटना था और मैंने शाम की रेलगाड़ी से कालका के लिए प्रस्थान किया। मेरे अलावा उसमें केवल एक और भारतीय था, बाकी सभी वर्दीधारी ब्रिटिश अधिकारी या अंग्रेज नागरिक थे। बरोग में रात के खाने के लिए थोड़ी देर रुकने के बाद हम अपनी ढलान वाली यात्रा पर आगे बढ़े। वह एक खूबसूरत पूर्णिमा की रात थी। धरमपुर के पास एक मोड़ पर, रेलगाड़ी का एक पहिया पटरी से उतर गया। ड्राइवर ने हमें अगले स्टेशन तक इंतजार करने को कहा ताकि वह कालका से एक वैकल्पिक रेलगाड़ी भेजने का आदेश दे सके। हम चांदनी में नहाए हुए पहाड़ी पर चीड़ के पेड़ों के बीच बैठ गए। अंग्रेज स्वाभाविक रूप से घबराए हुए थे क्योंकि कुछ महीने पहले ही एक रेलगाड़ी

पर लुटेरों ने हमला किया था, जिन्होंने छह अंग्रेज यात्रियों को गोली मार दी थी और बिना कुछ लिए भाग गए थे। संदेह था कि यह भारतीय आतंकवादियों का काम था।

पटरी से उतरी बोगी में किसी ने रेडियो चालू किया और बीबीसी ओवरसीज सर्विस लगा दी। चुनाव परिणाम घोषित हो रहे थे। लेबर पार्टी ने भारी बहुमत से जीत हासिल की थी और क्लेमेंट एटली को इंग्लैंड का प्रधानमंत्री चुना गया था। अंग्रेज़ यात्री सन्नाटे में यह खबर सुनते रहे। मैं और दूसरा भारतीय, जिसे मैं नहीं जानता था, खुशी से उछल पड़े और एक-दूसरे को गले लगा लिया। हम जानते थे कि इंग्लैंड में समाजवादियों के सत्ता में आने के साथ ही भारत की स्वतंत्रता निकट थी।

मंजूर कादिरों के साथ हमारी दोस्ती के बावजूद, मुझे मुस्लिम-हिंदू/सिख विभाजन के बारे में कोई भ्रम नहीं था। यहां तक कि हाई कोर्ट बार एसोसिएशन और लाइब्रेरी में भी, मुस्लिम वकील बड़े लाउंज और लाइब्रेरी के अलग-अलग कोनों में हिंदुओं और सिखों से अलग बैठते थे। शादियों और अंत्येष्टि में कुछ हद तक सतही मेलजोल होता था, लेकिन यह केवल दिखावे के लिए था। मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग वाले प्रस्ताव के बाद, यह विभाजन और भी गहरा हो गया और बढ़ता ही गया। पाकिस्तान की मांग एक हिमस्खलन की तरह बढ़ती गई, और आगे बढ़ती ही गई। लगभग हर दूसरे दिन दोपहर में मुसलमानों के विशाल जुलूस एक साथ नारे लगाते हुए मॉल से गुजरते थे:

Pakistan ka naaraa kya?
प्रभु लिलिल्लाह के साथ
(पाकिस्तान का नारा क्या है?)
ईश्वर एक ही है, वह अल्लाह है।

एक मामला जिसमें मैं मंज़ूर के कनिष्ठ वकील के रूप में पेश हुआ था, इस बात का उदाहरण था कि ज़हर कितनी गहराई तक फैल चुका था। यह मामला सरदारनी प्रेम प्रकाश कौर नाम की एक धनी और सुंदर सिख विधवा से संबंधित था। उनका विवाह लुधियाना के एक धनी ठेकेदार के इकलौते बेटे से हुआ था। उनके पति व्यभिचारी थे। उन्हें सिफलिस हो गया और विवाह के बाद शारीरिक संबंध बनाए बिना ही उनकी मृत्यु हो गई। उनकी सारी संपत्ति उस युवा विधवा को मिल गई। एक बार शिमला में छुट्टियां मनाते हुए, वह डेविको के रेस्तरां में चाय पी रही थीं। मॉल में टहल रहे एक युवक ने उन्हें खिड़की के पास अकेले बैठे देखा। उनकी नज़रें मिलीं और उनकी मुस्कान ने उसे आश्वस्त किया कि उसका स्वागत किया जाएगा। वह भी उनके साथ चाय पीने बैठ गया। वे प्रेमी बन गए। वह युवक सुंदर तो था, लेकिन एक नाई का निकम्मा बेटा था। वह प्रेम प्रकाश कौर के सहारे जीने लगा। उनके दो बेटे हुए। फिर प्रेम प्रकाश कौर अपने असभ्य प्रेमी से तंग आ गईं। उनके चचेरे भाई गुरनाम सिंह, जो बेहद आकर्षक और सुसंस्कृत थे, लायलपुर में एक प्रतिष्ठित वकील थे (वे मंजूर कादिर के घनिष्ठ मित्र

थे)। उन्होंने प्रेम प्रकाश को नाई के बेटे के चंगुल से छुड़ाने का फैसला किया। प्रेम प्रकाश गुरनाम के साथ रहने लगीं। उनके मुस्लिम प्रेमी ने दो बेटों की अभिरक्षा के लिए उन पर मुकदमा कर दिया। उनका दावा था कि प्रेम प्रकाश ने इस्लाम धर्म अपना लिया था, इस्लामी रीति-रिवाजों से उनसे शादी की थी, उनके बेटों का खतना हुआ था और उन्हें मुस्लिम नाम दिए गए थे। शादी और बच्चों की अभिरक्षा के अलावा, उन पर अतिक्रमण और संपत्ति पर जबरन कब्जा करने के आपराधिक मामले भी दर्ज थे। जैसे-जैसे ये मामले निचली अदालतों से अपीलीय अदालतों तक पहुंचे, एक स्पष्ट पैटर्न सामने आया; यदि न्यायाधीश मुस्लिम होता, तो फैसला नाई के बेटे के पक्ष में जाता; यदि हिंदू या सिख होता, तो फैसला सिख विधवा के पक्ष में जाता। मैं उस समय इस मामले से जुड़ा जब शादी और अभिरक्षा का मामला लाहौर के जिला एवं सत्र न्यायाधीश डोनाल्ड फालशॉ आई.सी.एस. के समक्ष सुनवाई के लिए आया। मुझे इस मामले को सांप्रदायिक रंग से मुक्त रखने के लिए और डोनाल्ड और उनकी पत्नी जोन के साथ मित्रवत होने के कारण नियुक्त किया गया था।

हम धर्मांतरण और विवाह का मामला पेश कर रहे थे: दोनों घटनाओं के दौरान उपस्थित रहे एक मौलवी द्वारा दिया गया हलफनामा और निकाहनामा (विवाह अनुबंध) की मूल प्रति को विधिवत रूप से प्रदर्श एक और दो के रूप में प्रस्तुत किया गया। फिर मंजूर (या शायद मुस्लिम वकीलों के दूसरे पैनल में से कोई एक) ने तीसरा प्रदर्श प्रस्तुत किया - एक रिबन में लिपटा हुआ पैकेट, और उसे फालशॉ की मेज पर रख दिया। 'माननीय न्यायाधीश, यह इस बात का निर्णायक प्रमाण है कि प्रेम प्रकाश कौर ने सिख धर्म त्यागकर इस्लाम धर्म अपना लिया।'

'यह क्या है?' फालशॉ ने पूछा।

'माननीय न्यायाधीश महोदय, आप इसे खोलकर इसकी सामग्री की जांच कर सकते हैं।'

फाल्शॉ ने पैकेट को बड़ी सावधानी से खोला, फिर बिजली का झटका लगने की तरह अपने हाथ पीछे की ओर झटक दिए। टमाटर की तरह लाल चेहरे के साथ वह दहाड़ा, 'यह किस तरह का सबूत है?'

‘माननीय महोदय, ये महिला के गुप्तांग के बाल हैं। उन्होंने शादी के दिन इन्हें मुंडवाकर उन्हें भेंट किया था। जैसा कि माननीय महोदय को ज्ञात होगा, सिख अपने बाल कभी नहीं कटवाते।’

फाल्शॉ दहाड़ते हुए बोला, 'इसे ले जाओ, कूड़ेदान में फेंक दो। मैं इस तरह का कचरा स्वीकार नहीं करूंगा।'

अगस्त 1947 में भारत के विभाजन के कारण ही यह मामला आगे नहीं बढ़ पाया। प्रेम प्रकाश कौर और उनकी सारी संपत्ति पूर्वी पंजाब में थी, जो भारत में शामिल हो गया। नाई का बेटा पाकिस्तान में ही रह गया। गुरनाम सिंह पूर्वी पंजाब चले गए, वहाँ के मुख्यमंत्री बने और प्रेम प्रकाश के साथ अपने संबंध फिर से स्थापित किए। पंजाब विधानसभा में बहुमत खोने के बाद, उन्हें ऑस्ट्रेलिया में भारतीय उच्चायुक्त नियुक्त किया गया। कैनबरा में अपने परिचय पत्र प्रस्तुत करने के एक

सप्ताह बाद, वे अपनी प्रेमिका और सामान को ऑस्ट्रेलिया ले जाने के लिए घर लौटे। उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और कोई भी जीवित नहीं बचा।

पंजाब का माहौल नफरत से इतना भर गया था कि उसे भड़कने के लिए बस एक चिंगारी की जरूरत थी। कलकत्ता में लंबे समय तक चले हिंदू-मुस्लिम दंगों के कारण बिहार में मुसलमानों का नरसंहार हुआ, जिसके बाद पूर्वी बंगाल के नोआखली में हिंदुओं का नरसंहार हुआ। फिर उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के मुसलमानों ने बिखरे हुए सिख और हिंदू गांवों पर धावा बोला और जितने लोगों को पकड़ सके, उन्हें मार डाला। बाकी लोग अपने घरों से भागकर लाहौर, अमृतसर और पूर्वी पंजाब में शरण लेने के लिए मजबूर हो गए।

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में हिंदुओं और सिखों की हत्याएं हो रही थीं, उसी दौरान मुझे एक हिंदू परिवार की दो शाखाओं से जुड़े हत्या के मामले में बचाव पक्ष के वकील के रूप में पेश होने के लिए एबटाबाद जाना पड़ा। मामला एक ही दिन में निपटा दिया गया। अगली सुबह, ट्रेन पकड़ने के लिए तक्षशिला जाने के बजाय, मैंने लगभग दस मील की दूरी पैदल तय करने का फैसला किया। मौसम सुहावना था। सड़क बिल्कुल सुनसान थी। जिन गांवों से मैं गुजरा, वहां मुझे जीवन का कोई आभास नहीं हुआ। पुरुष और महिलाएं मुझे चलते हुए देखने के लिए अपने दरवाजों से झांक रहे थे। यह भयावह था। तक्षशिला से कुछ मील पहले, सिख सैनिकों से भरा एक ट्रक मेरे पास आकर रुका। एक युवा कैप्टन ने मुझसे कठोर स्वर में कहा, 'सरदारजी, क्या आपका दिमाग खराब हो गया है? इन गांवों में सभी सिखों को मार डाला गया है और आप ऐसे घूम रहे हैं जैसे शाम की सैर पर निकले हों। अंदर बैठिए।' मैंने उनकी बात मानी और मुझे तक्षशिला स्टेशन पर उतार दिया गया।

तक्षिला रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर और कुछ टिकट कलेक्टरों के अलावा सन्नाटा पसरा हुआ था। मैंने अपनी ट्रेन को आते और बाहरी सिग्नल पर रुकते देखा। मुझे कुछ चिल्लाहट सुनाई दी, लेकिन समझ नहीं आया कि किस बात की। ट्रेन के प्लेटफार्म पर रुकते ही मैं प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चढ़ गया। मैं अकेला यात्री था और मैंने अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। ट्रेन जिन स्टेशनों से गुजरी, वहां किसी भी स्टेशन पर कोई हलचल नहीं थी। जब मैं लाहौर में उतरा, तो प्लेटफार्म पर मंजूर कादिर के अलावा कोई नहीं था, जो मुझे लेने आया था। उसने मुझे बताया कि लाहौर में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे हैं। अगली सुबह मैंने अखबारों से पढ़ा कि जिस ट्रेन से मैंने यात्रा की थी, उसे तक्षिला स्टेशन के पास सिग्नल पर रोक दिया गया था और उसमें सवार सभी सिख यात्रियों को बाहर निकालकर मार डाला गया था।

कुछ दिनों बाद मंज़ूर कादिर को लेने की मेरी बारी आई। वह गुजरांवाला में एक केस के सिलसिले में गए थे। लौटते समय जब उनकी ट्रेन बादामी बाग में रुकी, तो उस पर एक मुस्लिम भीड़ ने हमला कर दिया और सिख यात्रियों को बाहर खींचकर बेरहमी से मार डाला। उन्होंने अपनी आँखों से यह नरसंहार देखा था। उनका चेहरा पीला पड़ गया था और वह अभी भी लड़खड़ाते हुए चल रहे थे।

मुझे नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर किए जाने से पहले, आखिरी बार जब मैंने लाहौर छोड़ा था, तब मुझे गुजरांवाला के सेशन जज की अदालत में डकैती और हत्या के आरोप में तीन लोगों का बचाव करना था। आरोपियों में से दो भारतीय नौसेना के सदस्य थे और मुझे उनकी पैरवी के लिए गठित एक संगठन ने नियुक्त किया था। यह कोई राजनीतिक अपराध नहीं, बल्कि हत्या का मामला था। ये लोग लाहौर से रावलपिंडी जाने वाली रात की ट्रेन में चढ़े और दो युवा अंग्रेज़ सेना नर्सों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे प्रथम श्रेणी के एक छोटे से डिब्बे में जबरदस्ती घुस गए। लड़कियों ने विरोध किया; उनमें से एक ने उस आदमी को काट लिया जिसने उसे ऊपर की बर्थ से नीचे खींचने की कोशिश की थी। दूसरी ने अपने हाथों से उसका मुकाबला किया। उन लोगों ने उसे तेज़ रफ़्तार ट्रेन से बाहर फेंक दिया। जब ट्रेन गुजरांवाला में रुकी, तो तीनों लुटेरे अंधेरे में गायब हो गए। बची हुई लड़की चीखती-चिल्लाती हुई प्लेटफार्म पर भागी। रेलवे पुलिस मौके पर पहुंची और दूसरी अंग्रेज़ लड़की का शव पटरी के किनारे पड़ा पाया। बची हुई लड़की को गुजरांवाला के अस्पताल ले जाया गया और सदमे का इलाज करने के बाद उसे वापस इंग्लैंड भेज दिया गया। तीनों आरोपियों को अगले दिन गिरफ्तार कर लिया गया। वे सिख थे। ट्रेन लूट के बाद, उन्होंने रात में एक नाई को जगाया और उससे अपने लंबे बाल और दाढ़ी कटवा ली ताकि उन्हें कोई देख न सके।

कुछ महीनों बाद, जब अभियोजन पक्ष अपना मामला पेश करने के लिए तैयार था, तब जीवित बची अंग्रेज़ लड़की को वापस भारत लाया गया। पहचान परेड में लड़की से उसके हमलावरों की पहचान करने को कहा गया। पुलिस ने दर्ज किया कि उसने सही पहचान की थी और नाई की गवाही, आरोपियों से बरामद चोरी के सामान, जिनमें पीड़िता का कॉम्पैक्ट वाला हैंडबैग, उसकी लिपस्टिक, कंघी और अन्य मेकअप सामग्री शामिल थी, के आधार पर उन्हें लगा कि उनका मामला पुख्ता है। जब मैं सेशन कोर्ट पहुँचा, तो यह स्पष्ट था कि सेशन जज, जो एक मुस्लिम थे, ने तीनों आरोपियों को फांसी देने का मन बना लिया था। मैंने अंग्रेज़ लड़की की ईमानदारी पर भरोसा किया। मैंने नाई से या आरोपियों से बरामद सामान के बारे में पुलिस से ज़्यादा पूछताछ नहीं की: गाँव के नाइयों से पुलिस जो चाहे कहलवा सकती थी; और निर्दोष लोगों पर आपत्तिजनक सामान रखना आम बात थी। मैंने अपना पूरा ध्यान अंग्रेज़ लड़की पर केंद्रित किया। वह अभी भी सदमे में थी और उस दुर्भाग्यपूर्ण ट्रेन यात्रा की घटनाओं को सुनाते हुए कई बार रो पड़ी। जब मैं उससे जिरह करने के लिए खड़ी हुई, तो जज ने मुझसे बहुत ही रूखेपन से कहा: 'संक्षेप में बोलो! उसने बहुत कुछ सहा है। मैं तुम्हें उसे परेशान करने की इजाजत नहीं दूंगी।'

मैंने विरोध किया कि मुझे अपना कर्तव्य निभाना है, अन्यथा मुझे इस मामले से हटने की अनुमति दी जाएगी। वह मान गए और मुझे आगे बढ़ने की अनुमति दे दी। मैंने उस लड़की से पूछा कि क्या वह लगभग एक ही उम्र के सिखों में फर्क बता सकती है? उसने स्वीकार किया कि उसके लिए यह बहुत मुश्किल होगा। फिर वह कैसे यकीन कर सकती है कि ये वही तीन

आदमी थे जिन्होंने उन्हें लूटा था, उसने किसे काटा था और किसने उसके साथी को ट्रेन से बाहर फेंक दिया था? उसने माना कि वह निश्चित नहीं हो सकती, फिर भी इन आदमियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था और उसे उनकी पहचान करने के लिए कहा गया था। मैंने पूछा कि क्या उसे पता है कि आरोपियों ने अपनी दाढ़ी मुंडवा ली थी और पुलिस ने उन्हें पहचान बताने से पहले दोबारा दाढ़ी बढ़ाने के लिए मजबूर किया था? नहीं, उसने स्वीकार किया, उसे इसकी जानकारी नहीं थी। पहचान परेड बहुत ही घटिया ढंग से हुई थी। अंग्रेज़ लड़की के सामने खड़े बारह आदमियों में से केवल तीन दाढ़ी वाले सिख थे; उसने उन्हें पहचान लिया था। उसने आसानी से स्वीकार किया कि अगर सभी दाढ़ी वाले और पगड़ीधारी होते तो उसके लिए दोषियों को पहचानना नामुमकिन होता। उसने यह भी माना कि एक पुलिस अधिकारी ने आरोपियों की पहचान करने में उसकी मदद करने की पेशकश की थी, लेकिन उसने उसकी पेशकश ठुकरा दी थी। मैंने उससे कटघरे में हथकड़ी लगे तीनों आरोपियों को देखने और उस एक को पहचानने के लिए कहा जिसे उसने काटा था, और उन दो को पहचानने के लिए कहा जिन्होंने उसके साथी को डिब्बे से बाहर फेंक दिया था। उसने आरोपियों को देखने से इनकार कर दिया। अभियोजन पक्ष के वकील और जज ने मुझे चुप कराने की कोशिश की। मैं अपनी बात पर अड़ा रहा और जज द्वारा मेरे सवाल को खारिज करने से पहले उसे रिकॉर्ड में दर्ज करने पर जोर दिया। सवाल रिकॉर्ड कर लिया गया। जज ने इसे खारिज करने के बारे में दोबारा सोचा और बहुत ही नरमी से गवाह से पूछा कि क्या वह इसका जवाब देना चाहेगी। लड़की रोते हुए बोली, 'नहीं, नहीं, नहीं। मैं इन खूनी बदमाशों को नहीं देखना चाहती।' 'कृपया मुझे जाने दो!' मेरे आग्रह पर, उसकी प्रतिक्रिया रिकॉर्ड की गई और दो ब्रिटिश सैनिकों ने लड़की को अदालत से बाहर निकलने में मदद की।

मैंने एक बेहद क्रोधित न्यायाधीश के सामने अपना बचाव भाषण दिया। ऐसा लग रहा था मानो वह मुझे तीनों आरोपियों के साथ फांसी पर लटका देना चाहते हों। मैं लाहौर के लिए रवाना हुआ और कुछ दिनों बाद कसौली चला गया। बाद में मुझे पता चला कि सत्र न्यायाधीश ने पुख्ता सबूतों के अभाव में तीनों आरोपियों को बरी कर दिया था। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं था कि जिन तीन लोगों को मैंने बरी करवाया था, वे डकैती और हत्या के दोषी थे। यही वह बात है जो मुझे वकालत के पेशे के बारे में घृणा पैदा करती है: इसका न्याय से कोई लेना-देना नहीं है।

अचानक लाहौर में दंगे भड़क उठे। इनकी शुरुआत सिख नेता मास्टर तारा सिंह द्वारा पंजाब विधानसभा भवन के बाहर किए गए नाटकीय हावभाव से हुई। विधानसभा के भीतर, प्रधानमंत्री सर खिजर हयात तिवाना ने मुस्लिम लीग के दबाव में आकर इस्तीफा दे दिया था। अब यह स्पष्ट हो गया था कि पंजाबी मुसलमानों ने भी पाकिस्तान का साथ दे दिया है। सत्र समाप्त होते ही, मास्टर तारा सिंह ने अपनी कृपाण म्यान से निकाली और 'पाकिस्तान मुर्दाबाद' के नारे लगाए। यह ऐसा था मानो ज्वलनशील गैस से भरे कमरे में जलती हुई माचिस की तीली फेंक दी गई हो। पूरे प्रांत में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। हत्याओं में मुसलमानों का पलड़ा भारी था। वे बहुसंख्यक थे, हिंदुओं और सिखों की तुलना में अधिक संगठित और प्रेरित थे।

पंजाब पुलिस में ज्यादातर मुस्लिम थे और वे बेशर्मी से पक्षपातपूर्ण थे। मुस्लिम गिरोहों का प्रतिरोध करने वाला एकमात्र संगठित समूह आरएसएस था, लेकिन वह केवल कुछ बम विस्फोट कर सका, जिनमें शायद एक या दो लोग मारे गए। फिर वह गायब हो गया। शहरी सिख बड़े दयनीय थे: वे अपनी युद्ध कला का बखान करते थे जबकि उनमें ऐसी कोई कला नहीं थी, और वे लंबी कृपाण लहराते थे जिन्हें उन्होंने पहले कभी नहीं चलाया था।

एक दिन, जिस पेट्रोल पंप से मैं पेट्रोल खरीदता था, वहाँ काम करने वाले एक बिहारी को दिनदहाड़े ग्यारह और बारह साल के दो मुस्लिम लड़कों ने चाकू मारकर हत्या कर दी। सड़कों पर रस्सियाँ बंधी थीं, जिनसे साइकिल चला रहे सिखों को अचानक दोनों तरफ से उठाकर गिरा दिया जाता था और उन पर चाकू से वार किया जाता था। हमारी रातें एक तरफ से 'अल्लाह-ओ-अकबर' और दूसरी तरफ से 'सत श्री अकाल' या 'हर हर महादेव' के अचानक आने वाले नारों से व्याकुल हो जाती थीं। मुस्लिम ज़्यादा बेखौफ थे - वे हिंदू और सिख बस्तियों के पास आकर चिल्लाते थे, 'होशियार! शिकार का है इंतज़ार!' - सावधान रहो, हम अपने शिकार का इंतज़ार कर रहे हैं।

जून 1947 की एक भीषण दोपहर को मुस्लिम गुंडों के खिलाफ हिंदुओं और सिखों का जो थोड़ा-बहुत प्रतिरोध था, वह पूरी तरह से ध्वस्त हो गया। न तो गोलियों की आवाज सुनाई दी और न ही नारे गूंजे: शहर से केवल काले धुएं के बादल उठ रहे थे। पूरी तरह से हिंदू बहुल शाहलमी इलाके में आग लगा दी गई थी। हिंदू और सिख अपने साथ जो कुछ भी ले जा सकते थे, उसे लेकर लाहौर छोड़ने लगे। कुछ दिनों बाद, उन्हें बिना कुछ ले जाने की अनुमति दिए जबरन बाहर निकाल दिया गया। उनके घरों और सामानों पर उनके मुस्लिम पड़ोसियों ने कब्जा कर लिया।

मुझे नहीं पता था कि हम लाहौर में कब तक रह पाएंगे। हमने अपने दोनों बच्चों को कसौली में उनके नाना-नानी के पास भेज दिया था। मेरे दोनों तरफ के पड़ोसियों ने अपनी धार्मिक पहचान दीवारों पर लिख रखी थी: एक तरफ बड़ा सा क्रॉस बना था, जो दर्शाता था कि वे ईसाई हैं; दूसरी तरफ बड़े-बड़े उर्दू अक्षरों में लिखा था, 'पारसी का मकान' - यानी एक पारसी का घर। पास ही में न्यायमूर्ति तेजा सिंह रहते थे। वे अक्सर मुझे और अन्य सिखों को हिम्मत बनाए रखने के लिए प्रेरित करते थे। अगस्त की शुरुआत में एक सुबह जब मैं उनकी घर गया तो देखा कि उस पर ताला लगा हुआ था। चौकीदार ने बताया कि उसका मालिक दिल्ली चला गया है। मेरे लंदन के कॉलेज के दोस्त, सी.एच. एवरेट, जो उस समय सी.आई.डी. के प्रमुख थे, ने मुझे सलाह दी कि जब तक हालात सामान्य नहीं हो जाते, मैं कुछ दिनों के लिए लाहौर छोड़ दूं। उन्होंने कहा, 'अपना घर और सामान किसी मुस्लिम दोस्त के पास छोड़ दो।' उस समय मंजूर शिमला में किसी मामले की सुनवाई कर रहे थे। मैंने उन्हें फोन किया और हमने कालका-शिमला मार्ग पर धरमपुर में मिलने का समय तय किया, जहाँ से कसौली जाने वाली सड़क अलग होती है। अगली रात, मेरी पत्नी, मैं और हमारा हिंदू रसोइया, एवरेट द्वारा उपलब्ध कराए गए बलूच

पुलिसकर्मियों के एक दल के साथ रेलवे स्टेशन तक गए। हमने अपने युवा सिख नौकर, दलीप सिंह को घर की देखभाल का जिम्मा सौंप दिया, जब तक कि कादिर परिवार आकर घर की देखरेख न करने लगे।

अगली सुबह हम बिना किसी अप्रिय घटना के कालका पहुँच गए। मैंने अपनी कार पहले ही वहाँ हमें लेने के लिए भेज दी थी। हम धरमपुर के लिए रवाना हुए। कुछ मिनट बाद, मंज़ूर शिमला से टैक्सी से आ गया। उसने मुझे बताया कि शिमला में कुछ कश्मीरी मुस्लिम मजदूरों पर चाकू से हमला किया गया है और मुसलमान हिमाचल के पहाड़ी रिसॉर्ट्स से निकल रहे हैं। मैंने उसे अपने घर की चाबियाँ सौंप दीं। हम गले मिले और हमने वादा किया कि हालात सामान्य होते ही हम वापस आ जाएँगे।

हमने कसौली में कुछ दिन बिताए। तब तक पाकिस्तान से हिंदुओं और सिखों का तथा पूर्वी पंजाब से मुसलमानों का बड़े पैमाने पर पलायन शुरू हो चुका था। ट्रेनों और सड़क काफिलों पर हमलों की खौफनाक खबरें थीं, जिनमें हजारों लोगों का बेरहमी से कत्लेआम कर दिया गया था। पश्चिमी पंजाब में बुरी तरह पिट चुके सिख पूर्वी पंजाब में निर्दोष मुसलमानों से खूनी बदला लेने निकले थे और एक के बाद एक मुस्लिम गांवों को तबाह कर रहे थे। मैंने जोखिम उठाकर दिल्ली पहुंचने का फैसला किया। मुझे तय करना था कि क्या करूं। मैंने अपनी पत्नी और बच्चों को कसौली में छोड़ दिया और कार खराब होने की स्थिति में एक मैकेनिक को अपने साथ ले लिया। कालका से कुछ मील आगे जाकर मुझे पता चला कि सड़क किनारे के पेट्रोल पंप बंद थे। मैं टैंक भरवाने और पेट्रोल का एक अतिरिक्त कैन लेने के लिए कालका लौट आया। रास्ते में मुझे लाहौर में रहने वाला हमारा नौकर दलीप सिंह सड़क पर चलता हुआ मिला। उसने मुझे बताया कि लाहौर में हमारे घर पर मुस्लिम भीड़ आ गई थी। कादिरों और उनके नौकरों ने उसे कई दिनों तक छत पर छिपाए रखा था और मंज़ूर ने गेट से मेरी नेमप्लेट हटाकर उसकी जगह अपनी नेमप्लेट लगा दी थी। हालांकि, यह बात फैल गई थी कि एक सिख को पनाह दी जा रही है और गुंडे घर की तलाशी लेना चाहते थे। मंज़ूर समय रहते पुलिस को बुलाने में कामयाब रहा और उन्हें घर में घुसने से रोक दिया। उस रात उसने दलीप सिंह को अपनी कार की डिक्की में बिठाया और उसे उस जगह ले गया जो बाद में नई भारत-पाकिस्तान सीमा बनने वाली थी। उसने उसे पैसे दिए और अमृतसर से कालका जाने वाली ट्रेन पकड़ने का निर्देश दिया। इस तरह वह वहाँ पहुँचा। कसौली के बारे में न जानते हुए, वह दिल्ली जाने वाली सड़क पर निकल पड़ा, इस उम्मीद में कि रास्ते में कहीं बस मिल जाएगी।

मैंने दलीप सिंह को कार में बिठाया, दिल्ली तक पहुँचने के लिए पर्याप्त पेट्रोल लिया और अपनी राह पर चल पड़ा। सड़क पर कोई नहीं था, ग्रैंड ट्रंक रोड के किनारे बसे किसी भी कस्बे या गाँव में जीवन का कोई आभास नहीं था। करनाल से आगे निकलने के बाद, जो दिल्ली से लगभग साठ मील दूर था, मैंने अपनी ओर आती हुई एक जीप देखी। मैंने गाड़ी रोक दी। जीप ने भी लगभग सौ गज की दूरी पर गाड़ी रोक दी। मैंने अपनी पिस्तौल निकाली और इंतज़ार करने लगा। जीप को पाँच

मिनट तक घूरने के बाद, मैंने देखा कि उसमें बैठे लोग सिख थे। दो आदमी हाथों में राइफल लिए सड़क पर उतरे। मुझे तसल्ली हुई और मैं जीप के पास गया। मैंने उनसे पूछा कि क्या दिल्ली जाना सुरक्षित है। उन्होंने मुझे आश्वस्त किया, 'बिल्कुल सुरक्षित।' 'हमने सड़क के किनारे बसे सभी गाँवों से सभी सूअरों को निकाल दिया है।' उन्होंने मुसलमानों के लिए 'सूअर' शब्द का इस्तेमाल किया। यह सुनकर मेरा पेट खराब हो गया। उनसे बहस करने का यह उचित समय नहीं था। भारत की स्वतंत्रता की घोषणा होने से कुछ दिन पहले मैं दिल्ली पहुंचा था।

मेरे पास अपने पिता का घर था। मेरे जैसे लाखों लोग, जो पाकिस्तान के लिए निर्धारित क्षेत्र से भाग गए थे, उनके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं थी। कुछ को शरणार्थी शिविरों में रखा गया; कुछ ने पुराने स्मारकों, रेलवे स्टेशनों के प्लेटफार्मों, दुकानों और कार्यालयों के बाहर बरामदों पर कब्जा कर लिया, या फुटपाथों पर अपना घर बना लिया। घटी त्रासदी की भयावहता आने वाली स्वतंत्रता के उल्लास में अस्थायी रूप से दब गई थी। यह उस व्यक्ति की तरह था जिसे अचानक हाथ या पैर कट जाने पर कोई दर्द महसूस नहीं होता: दर्द कुछ समय बाद आता है।

14 अगस्त की रात, मैं संसद भवन की ओर बढ़ रही भीड़ में शामिल हो गया। मेरे साथ मेरी पत्नी का चचेरा भाई हरजी मलिक भी था। हम रात 11 बजे तक संसद पहुँच गए। भीड़ विशाल, अनुशासित और उत्साह से भरी हुई थी। बीच-बीच में ‘महात्मा गांधी की जय’ और ‘इंकलाब जिंदाबाद’ के नारे गूंज रहे थे। आधी रात से ठीक एक मिनट पहले भीड़ में सन्नाटा छा गया। लाउडस्पीकर पर सुचेता कृपलानी द्वारा गाए गए वंदे मातरम की आवाज सुनाई दी। इसके बाद पंडित नेहरू ने अपना यादगार भाषण दिया: ‘बहुत साल पहले हमने नियति से एक वादा किया था... अब उस वादे को निभाने का समय आ गया है...’ और इसी तरह आगे। भाषण समाप्त होते ही भीड़ जयकारे लगाने लगी और नारे लगाने लगी। हमने अजनबियों को गले लगाया और एक-दूसरे को आजादी मिलने की बधाई दी। हम रात 2 बजे के बाद ही घर पहुँचे।

मैं सुबह जल्दी उठ गया ताकि लाल किले पर यूनियन जैक को उतरते और भारतीय तिरंगे को फहराते हुए देख सकूँ। एक बार फिर पूरा रास्ता पैदल चलने वालों से खचाखच भरा हुआ था। लॉर्ड और लेडी माउंटबेटन अपने छह घोड़ों वाले वायसराय रथ में सवार होकर आए। कई ब्रिटिश अधिकारियों को भीड़ ने अपने कंधों पर उठा लिया। मानो रातों-रात ही नफरत किए जाने वाले अंग्रेज भारतीयों के सबसे प्रिय विदेशी बन गए थे।

मैं लाल किले की प्राचीर से लगभग पचास गज दूर खड़ा था और मैंने बिगुल बजाने वालों को लॉर्ड माउंटबेटन द्वारा यूनियन जैक को नीचे उतारते समय अंतिम सलामी बजाते सुना। बैंड ने राष्ट्रगान बजाया जब पंडित नेहरू ने भारतीय तिरंगा फहराया और तोपों ने देश के नए नेता को सलामी दी। मैंने सब कुछ सुना, लेकिन बहुत कम देख पाया क्योंकि खुशी के आंसुओं ने मेरी दृष्टि धुंधली कर दी थी। और मेरा दिल गर्व से भरा हुआ था। यह सब तो ठीक था, लेकिन अब मैं अपनी जीविका कैसे चलाऊं? स्वतंत्रता और विभाजन के साथ फैली नफरत के माहौल में हम लाहौर वापस नहीं जा सकते थे।

6. मेनन के साथ लंदन में, मलिक के साथ कनाडा में

भारत के विभाजन के बाद मेरे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि मैं वकालत के पेशे से बाहर निकल सका। मैंने कसम खाई कि मैं कभी इसमें वापस नहीं लौटूँगा। मुझे वकालत जारी रखने के लिए कई प्रलोभन भी दिए गए। श्री जिन्ना ने मेरे पिता को संदेश भेजा कि वे मुझे लाहौर में ही रहने के लिए मनाएँ। उनका संकेत स्पष्ट था; वे मुझे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करना चाहते थे। जाहिर है, उन्होंने न तो यह सोचा था और न ही कल्पना की थी कि उनके द्वारा स्थापित पाकिस्तान में गैर-मुसलमानों के लिए कोई जगह नहीं होगी। मेरे मित्र न्यायमूर्ति खोसला ने भी मुझे ऐसा ही आश्वासन दिया, जो शिमला में पुनर्गठित पंजाब उच्च न्यायालय में दूसरे स्थान पर आ गए थे। उन्होंने कहा कि मैं उन हिंदू या सिख वकीलों से कमतर नहीं था जो यहाँ आए थे और वे मेरा नाम स्वीकार करवा लेंगे। लेकिन कानून के प्रति मेरी घृणा इतनी प्रबल थी कि मैंने इन प्रलोभनों के आगे झुकने से इनकार कर दिया।

मैं क्या करता? बहुत सारी नौकरियाँ उपलब्ध थीं। भारत ने कई दूतावास खोले थे और उनमें काम करने के लिए लोगों की ज़रूरत थी। असगरी कादिर के भाई, अज़ीम हुसैन, जिन्होंने भारत में ही रहने का फैसला किया था, उस समय उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के अधीन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में उप सचिव थे। उन्होंने कहा कि वे मुझे लंदन स्थित इंडिया हाउस के जनसंपर्क विभाग में सूचना अधिकारी के पद पर नियुक्त करवा सकते हैं। यह कोई बहुत बड़ी नौकरी नहीं थी, बस इतना था कि इससे मुझे इंग्लैंड वापस जाने का मौका मिल जाता। मुझे सरदार पटेल से एक संक्षिप्त जानकारी मिलनी थी; इसके बाद संघ लोक सेवा आयोग द्वारा नियुक्ति की पुष्टि की जानी थी।

मेरी ब्रीफिंग काफी खास थी। मुझे सरदार पटेल के घर (बाद में मोतीलाल नेहरू मार्ग पर इतालवी राजदूत का निवास) पर उपस्थित होने के लिए कहा गया था। जब मैं वहाँ पहुँचा तो मुझे प्रवेश द्वार के बगल में स्थित निजी सचिव के कमरे में ले जाया गया और बताया गया कि मुझे कुछ देर इंतजार करना होगा क्योंकि मंत्री जी एक महत्वपूर्ण अतिथि की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कुछ मिनट बाद इंदौर के महाराजा का झंडा लगी एक विशाल रोल्स रॉयस आकर रुकी। नौसेना की सफेद वर्दी पहने एक अधिकारी ने कार का दरवाजा खोला और महाराजा को बाहर निकाला। मंत्री के सचिव ने उनका स्वागत किया और उन्हें ड्राइंग रूम तक ले गए। जहाँ मैं बैठा था, वहाँ से मुझे सब कुछ दिखाई दे रहा था। सरदार पटेल हमेशा की तरह गुस्से वाले चेहरे के साथ अंदर आए और खड़े हुए महाराजा को बैठने का इशारा किया। उन्होंने अपने मेहमान से हाथ नहीं मिलाया। महाराजा अपनी ऑक्सब्रिज वाली अंग्रेज़ी में तेज़ी से बोलने लगे। सरदार पटेल की नज़रें अपनी चप्पलों पर टिकी रहीं। ऐसी अफवाह थी कि महाराजा अन्य राजकुमारों को भोपाल के नवाब के साथ शामिल होने और भारत सरकार की उनके राज्यों

पर कब्ज़ा करने और उन्हें निजी पेंशन देकर विदा करने की योजना का विरोध करने के लिए मना रहे थे। गृह मंत्री के रूप में, सरदार पटेल को उनसे विलय पत्र पर हस्ताक्षर करवाने का काम सौंपा गया था। मैं इंदौर के महाराजा की बात नहीं सुन सका, लेकिन यह स्पष्ट था कि वे अपने ऊपर लगाए गए सभी आरोपों का खंडन कर रहे थे। सरदार पटेल ने महाराजा को बिना ऊपर देखे या बीच में टोके, उनकी बात पूरी होने तक इंतजार किया। जब महाराजा ने अपनी बात खत्म की, तो पटेल खड़े हो गए और इतनी ऊँची और स्पष्ट आवाज़ में बोले कि मेरे कानों तक पहुँच गई, 'तुम सरासर झूठे हो!' और चले गए। बेहद निराश महाराजा, अपने आकर्षक सहायक सचिव के साथ, जल्दी से रोल्स रॉयस की ओर बढ़े। सरदार पटेल के सचिव ने आकर मुझे बताया कि मंत्री जी मुझसे मिलने के लिए बहुत परेशान हैं। मुझे लंदन जाना था और वहाँ मुझे जनसंपर्क अधिकारी सुधीर घोष से जानकारी लेनी थी, जो मेरे तत्काल प्रमुख होंगे।

कुछ दिनों बाद मैंने केएलएम की फ्लाइट से लंदन की यात्रा की। उन दिनों हवाई यात्रा बहुत ही सुकून भरी होती थी। हमें सोने के लिए बर्थ मिले और काहिरा में उतरने से एक घंटा पहले हमें गर्म चाय या कॉफी से जगाया गया। हमें एक छोटे से विश्राम गृह में ले जाया गया जहाँ हमें आराम करने, नहाने और नाश्ता करने के लिए कमरे दिए गए। लंदन जाने वाले विमान में दोबारा सवार होने से पहले हमें बगीचे में टहलने के लिए एक घंटा और दिया गया।

जब तक मेरा परिवार नहीं आ जाता और हम अपना खुद का घर नहीं ढूंढ लेते, तब तक मुझे नाइट्सब्रिज में आर्थर और शीला लाल के तीन मंजिला अपार्टमेंट में रहना था। यह व्यवस्था मुझे बहुत पसंद आई। हाइड पार्क में थोड़ी देर टहलने के बाद मैं बस या मेट्रो से एल्डविच में इंडिया हाउस जा सकता था। मुझे घर के कामों की चिंता नहीं करनी पड़ती थी क्योंकि लाल दंपति अपने रसोइए (वे उसे माली कहते थे) को साथ लाए थे। लाल दंपति के पास ड्यूटी-फ्री शराब का अच्छा-खासा स्टॉक था।

आर्थर कृष्णा मेनन से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने मुझे यकीन दिलाया कि कृष्णा मेनन अब तक मिले सबसे बुद्धिमान व्यक्ति थे और स्टालिन (जिनके बारे में यह नहीं कहा जाता था कि वे बहुत बुद्धिमान थे) से भी कहीं बेहतर थे। कॉलेज के दिनों में मेरी कृष्णा मेनन से संक्षिप्त मुलाकात हुई थी और मुझे उनमें प्रतिभा का कोई संकेत नहीं दिखा था। वे एक चिड़चिड़े स्वभाव के वकील थे, जिनके पास कोई केस नहीं था और वे अपनी सारी ऊर्जा इंडिया लीग बनाने और पंडित नेहरू के इंग्लैंड आने पर उनसे मिलने-जुलने में लगाते थे। भारत और इंग्लैंड में रहने वाले भारतीय समुदाय ने उनकी उच्चायुक्त नियुक्ति को घोर पक्षपात बताकर कड़ी आलोचना की थी। आर्थर की बातें सुनने के बाद मुझे लगा कि शायद मेनन के बारे में मेरा आकलन गलत था, या शायद वे परिपक्व होकर एक बेहतर इंसान बन गए थे।

अगली सुबह मैंने इंडिया हाउस में काम पर रिपोर्ट किया। मैंने सुधीर घोष से अपना परिचय दिया। वे मुझे देखकर कुछ खास खुश नहीं दिखे। उनकी वर्किंग टेबल के कांच के स्लैब के नीचे गांधी और सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, गांधी और प्रधानमंत्री एटली के

बीच हुए पत्रों की कई तस्वीरें और मूल प्रतियां रखी थीं, जिनमें सुधीर घोष की प्रशंसा की गई थी। यह भी स्पष्ट था कि सुधीर का कृष्णा मेनन से मतभेद चल रहा था और भारतीय पत्रकारों से उनके संबंध अच्छे नहीं थे। उन्होंने मुझे उस छोटे से कमरे में ले गए जहाँ मुझे काम करना था और मुझे पामेला कुलेन नाम की एक अंग्रेज लड़की से मिलवाया, जो मेरी सहायक बनने वाली थी। उन्होंने मुझे यह नहीं बताया कि मुझे क्या करना है। उन्होंने कहा, 'जब आप मेनन से मिलें तो उनसे पूछ लेना।' उन्होंने जानबूझकर उन्हें उच्चायुक्त कहकर संबोधित करने या उनके नाम के आगे 'मिस्टर' लगाने से परहेज किया। मुझे जनसंपर्क का मतलब बिल्कुल नहीं पता था और न ही यह कि मुझे उन्हें बढ़ावा देने के लिए क्या करना था। मुझे कोई विशेष कार्य सौंपा या निर्देश नहीं दिया गया था, इसलिए मैंने सोचा कि शायद सबसे अच्छा यही होगा कि मैं भारत पर पुस्तिकाएँ तैयार करूँ - यहाँ के लोग, संसाधन, वनस्पति, जीव-जंतु आदि। राजनीति का मेरे मन में कोई स्थान नहीं था। लाहौर से निकाले जाने के बावजूद, मैं पाकिस्तान से भावनात्मक रूप से जुड़ा रहा। विवाद के केंद्र, कश्मीर पर, जिस पर दोनों देशों के बीच युद्ध हुआ था, मुझे लगता था कि पाकिस्तान का पक्ष भारत से कहीं अधिक मजबूत है।

लंदन पहुंचने के पहले चार दिनों तक, मैं हर सुबह इंडिया हाउस में काम पर हाजिर होता था। मैं आगंतुक पुस्तिका में हस्ताक्षर करता था और सुधीर घोष को याद दिलाता था कि वे मुझे उच्चायुक्त से मिलवा दें। उन्हें यह ज़रूरी नहीं लगा। मैंने लाल से पूछा। उन्होंने कहा कि यह काम उनका नहीं, बल्कि सुधीर का है। हालांकि, उन्होंने मेनन को बताया कि मैं उनसे मिलना चाहता था। पांचवें दिन, सुधीर घोष मुझे मेनन के कमरे में ले गए। मैंने कृष्णा मेनन का अभिवादन करते हुए अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया, मेरे चेहरे पर एक बड़ी सी मुस्कान थी। उन्होंने अपनी नुकीली उंगलियों से मेरा हाथ झटक दिया। स्वागत भरी मुस्कान के बजाय उनके चेहरे पर गुस्से की लकीरें थीं। मैंने उन्हें खुशी-खुशी याद दिलाया कि मैं एक बार उनके और रजनी पटेल के साथ पेरिस गया था। उन्होंने मेरे परिचय को अनसुना कर दिया और गरजते हुए कहा, 'सरदार, क्या तुम्हें भारत में कोई शिष्टाचार नहीं सिखाया गया? तुम यहां चार दिन से हो और मुझसे मिलने की तमीज़ भी नहीं दिखाई। मैं उच्चायुक्त हूं, तुम्हें पता है!' मेरी मुस्कान वहीं जम गई। मैंने विरोध करते हुए कहा कि मैंने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की थी—विज़िटर्स बुक पर हस्ताक्षर किए थे, और सुधीर और आर्थर लाल दोनों से मेरे लिए अपॉइंटमेंट लेने को कहा था। सुधीर ने बीच में ही टोकते हुए कहा कि यह उनकी गलती थी। मेनन ने मुझे यह कहते हुए जाने का इशारा किया, 'मैं तुम्हें बाद में बुला लूँगा। मुझे श्री घोष से बात करनी है।'

मैं बहुत घबराया हुआ अपने कमरे में लौटा। मेनन ने जिस तरह मुझसे बात की थी, वैसा पहले कभी किसी ने नहीं किया था, और वो भी बिना किसी वजह के। मैंने ठान लिया था कि अब मैं इसे बर्दाश्त नहीं करूँगा। मैंने मन ही मन कसम खाई कि अगली बार अगर मेनन मुझसे कुछ भी कठोर बोलेगा, तो मैं उसे करारा जवाब दूँगा, अपना इस्तीफ़ा दे दूँगा और उसे कह दूँगा कि वो अपनी गंदी गांड में डाल ले। मैं पूरी दोपहर बेचैन रहा। काम करने के बजाय, मैं टेम्स नदी के किनारे टहलने चला

गया, जब तक कि मेरा गुस्सा थोड़ा शांत नहीं हो गया। शाम को मुख्य स्वागत कक्ष में चाय पार्टी थी। मैं वहाँ गया, एक कप चाय ली और एक कोने में बैठ गया। मेनन अंदर आया। मैंने ऐसा दिखाया जैसे मैंने उसे देखा ही नहीं। वह मेरे पास आया और मेरे कंधों पर हाथ रखते हुए बोला, 'आज सुबह तुम्हें डांटने के लिए माफ़ करना। मुझे उम्मीद है कि तुम्हें समझ आ गया होगा कि ये तुम्हारे लिए नहीं था।' लहजे में आए इस अचानक बदलाव से मैं थोड़ा अचंभित होकर खड़ा हो गया। मैंने जवाब दिया, 'मैं थोड़ा चौंक गया था।'

'अगर तुममें इतनी भी अक्ल नहीं है, तो तुम सूचना अधिकारी नहीं बन पाओगे,' उसने मुझे यकीन दिलाया। उसने मेरी पीठ थपथपाई और दूसरे लोगों से हाथ मिलाने चला गया। मैं पूरी तरह निराश हो गया। वह साफ़ तौर पर दोस्ती का दिखावा कर रहा था; असल में वह सुधीर घोष को निशाना बना रहा था। मेनन का दिमाग़ बहुत पेचीदा था।
इंडिया हाउस की राजनीति को समझने में मुझे ज़्यादा समय नहीं लगा। कृष्णा मेनन के अपने वफादारों का एक समूह था। इस सूची में सबसे ऊपर उनके व्यापार आयुक्त आर्थर लाल थे। वे अपने नंबर दो, आईसीएस के ही उप उच्चायुक्त आर.एस. मणि का ज़रा भी सम्मान नहीं करते थे। मणि एक कमज़ोर शरीर वाले व्यक्ति थे, जिनकी बेल्जियम की पत्नी भी उनसे कमज़ोर थीं। उन्होंने मेनन को खुश करने की पूरी कोशिश की, लेकिन उन्हें पायदान की तरह बर्ताव सहना पड़ा। वे पायदान ही बने रहे। मेनन वर्दीधारी लोगों से भी चिढ़ते थे और अपने सैन्य, नौसेना और वायु सेना के अटैचियों के साथ खुलेआम तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते थे। उनके कट्टर विरोधी सुधीर घोष थे, जो जनसंपर्क विभाग को एक स्वतंत्र संस्था की तरह चलाना चाहते थे। वे खुद को गांधी जी का निजी दूत मानते थे, उन नेक इरादे वाले ब्रिटिश नागरिकों के लिए, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन का साथ दिया था। उनमें से ज़्यादातर क्वेकर थे। वे मेनन से सलाह लिए बिना ही उन्हें आधिकारिक मिशन सौंप देते थे। 'मेनन को अपना काम करने दो और मुझे मेरा काम करने दो,' वह अक्सर मुझसे कहते थे, और अपनी मेज पर रखी तस्वीरों और पत्रों पर इतराते रहते थे। 'मैंने गांधीजी के साथ कई साल बिताए हैं। मेरे दिल में किसी के लिए कोई नफरत नहीं है,' वह बार-बार मुझे आश्वस्त करते थे। फिर वह मेनन के खिलाफ अपनी तीखी आलोचना शुरू कर देते थे। आर्थर लाल के अलावा, मेनन के सबसे करीबी लोग उनके कनिष्ठ कर्मचारी थे। कुछ, जैसे उनके निजी सचिव, भारतीय नौसेना के कैप्टन श्रीनिवासन, को वह तब तक बुरी तरह से कोसते थे जब तक कि वे उनके प्रति अपनी वफादारी साबित नहीं कर देते थे। मेनन को सुंदर महिलाओं पर नजर रहती थी। वह सुंदर महिलाओं के पतियों को मित्र की तरह मानते थे। अगर उन्हें पति-पत्नी के बीच तनाव महसूस होता, तो वह उनके प्रति विशेष रूप से सहानुभूति दिखाते थे: मेनन को गलत समझी जाने वाली पत्नियों के प्रति गहरी समझ थी। शीला लाल और मेरी पत्नी (परिवार के मेरे साथ आने के बाद) इसी श्रेणी में आती थीं। आर्थर और मैं उनके पहले और दूसरे सबसे पसंदीदा बन गए। हम दोनों में सबसे ऊपर युवा कमला

जसपाल थीं, जो उनके क्लर्कियल पूल में शामिल हुई थीं। वह सिख थीं, गोरी रंगत वाली, घुंघराले काले बालों और एक आंख में हल्की सी भेंगापन लिए हुए। वह दफ्तर ऐसे सज-धज कर आती थीं मानो किसी कॉकटेल पार्टी में जा रही हों। वह चमकीले रंग की शिफॉन साड़ियां पहनती थीं, जिनके ब्लाउज से उनका पेट, यहां तक कि नाभि भी, काफी हद तक दिखाई देता था। वह चांदी, सोने और कांच के कंगन पहनती थीं जो उनकी बांहों को लगभग पूरी तरह ढक लेते थे और जब भी वह अपने बिखरे बालों को चेहरे से हटाती थीं, जो कि अक्सर होता था, तो उनमें खनक सुनाई देती थी। कम कपड़े पहनने के कारण उन्हें अक्सर सर्दी-जुकाम हो जाता था और नाक बहती रहती थी। वह अंग्रेजी कवियों के नाम लेती थीं और भरतनाट्यम के कुछ कदम बेढंगे तरीके से नाचती थीं; उनकी गद्य-कविता भी खराब थी। वह मुखर और आक्रामक थीं और अपनी बात मनवाने में कोई कसर नहीं छोड़ती थीं। लेकिन वह कृष्ण मेनन की पूजा ऐसे करती थीं मानो वे भगवान विष्णु का अवतार हों। एक अच्छी हिंदू पत्नी की तरह वह उन्हें कभी उनके नाम से या उच्चायुक्त कहकर नहीं पुकारती थीं, बल्कि महामहिम कहकर संबोधित करती थीं। कृष्ण मेनन, जो कई दशकों से भारत से दूर थे, के लिए कमला जसपाल आधुनिक भारतीय नारीत्व का प्रतीक थीं। उन्होंने उनकी प्रशंसा का जवाब फूलों और उपहारों से दिया, जिसमें उन्हें घर छोड़ने के लिए अपनी रोल्स रॉयस कार का इस्तेमाल करना भी शामिल था। वे अपनी उम्रदराज अंग्रेज़ प्रेमिका ब्रिजेट से ऊब चुके थे, जो इंडिया लीग की देखरेख करती थीं, और उनकी जगह किसी और की तलाश में थे। कुछ समय तक कमला ने ब्रिजेट को रिझाने की कोशिश की और जल्द ही उन्हें पता चल गया कि वह उन्हें हटा सकती हैं। इंडिया हाउस में हर कोई जानता था कि कृष्णा मेनन के साथ अच्छे संबंध रखने के लिए कमला जसपाल के साथ अच्छे संबंध बनाना ज़रूरी था। लंदन में अपनी पहली पोस्टिंग के दौरान मैंने ब्रिजेट और कमला दोनों के साथ अच्छे संबंध बनाए।

मेनन को सुधीर घोष की तुलना में मुझ पर अधिक भरोसा करने का कारण था और उसने मुझे सुधीर घोष से छुटकारा पाने के लिए एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करने का फैसला किया। उसे ऐसा करने के अवसर के लिए ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा।

मुझे सबसे पहले हालात की गंभीरता का पता तब चला जब संयोगवश मेरी नज़र मेनन द्वारा पंडित नेहरू को लिखे एक गोपनीय पत्र पर पड़ी। उन्होंने घोष को 'पटल समर्थक' बताया था। ज़ाहिर है, नेहरू और उनके उप प्रधानमंत्री (सरदार पटेल) के बीच संबंध तनावपूर्ण थे। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विदेशी प्रचार-प्रसार विदेश मंत्री (नेहरू) के अधीन होना चाहिए, न कि गृह एवं सूचना मंत्री (पटेल) के अधीन। पंडित जी द्वारा पत्र का जवाब देने से पहले ही चिट गुम होने की घटना घटित हो गई, जिसने सुधीर घोष के पतन का कारण बना।

एक सुबह मेनन ने सुधीर घोष को अपने हाथ से एक कागज के टुकड़े पर एक नोट भेजा, जिसमें उनसे कहा गया था कि कार्यालय पहुँचते ही मुझे उनसे मिलने के लिए बुला लें। सुधीर ने दो घंटे बाद तक उस पर ध्यान नहीं दिया, जब तक कि कमला जसपाल यह देखने नहीं आईं कि मैं आया हूँ या नहीं। मैं घोष के कार्यालय में यह पता लगाने गया कि क्या बात है। उन्होंने चिट पढ़ते हुए कहा, 'अरे हाँ, मेनन मुझसे बिना मिले तुमसे मिलना चाहते हैं।' उन्होंने चिट को मोड़कर कूड़ेदान में फेंक दिया। जब मैं मेनन से मिलने गया तो उन्होंने मुझसे पूछा कि मुझे आने में दो घंटे क्यों लग गए। मैंने उन्हें बताया कि कमला के बताने तक मुझे इसके बारे में कुछ पता नहीं था और मैं सुधीर के कमरे में गया था। सुधीर को बुलाया गया। उन्होंने साफ इनकार कर दिया कि उन्हें मेनन से कोई संदेश मिला है। मैंने उन्हें आपस में बात करते हुए छोड़ दिया, घोष के कमरे में लौटा और उनके कूड़ेदान से मुड़ी हुई चिट निकाली। कमला जसपाल के माध्यम से मैंने वह चिट मेनन को सौंप दी। मुझे नहीं पता कि गांधीवादी सुधीर अपने बोले गए उस खुले झूठ से कैसे बच निकले। अगले दिन वे भारत के लिए रवाना हो गए; मेनन कुछ दिनों बाद उनके पीछे-पीछे चले गए।

उनकी अनुपस्थिति में मुझे कनाडा स्थानांतरण के टेलीग्राम आदेश प्राप्त हुए। पी.एल. भंडारी, जिन्हें मैं लाहौर के सिविल एंड मिलिट्री गजट में कनिष्ठ संवाददाता के रूप में जानता था और जो स्वयं को जनसंपर्क का विशेषज्ञ मानते थे, को सुधीर का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया।

कुछ दिनों बाद मेनन और घोष लंदन लौट गए। घोष इंडिया हाउस में केवल एक बार आए, अपनी मेज से अपनी तस्वीरें और प्रशंसा पत्र लेने के लिए। विदाई के तौर पर उन्होंने अपने अंग्रेज़ मित्रों के लिए सैवॉय होटल में एक भव्य भोज का आयोजन किया। उन्होंने मुझे या किसी अन्य सहकर्मी को आमंत्रित करने की ज़हमत नहीं उठाई। उस एक पार्टी में उन्होंने जनसंपर्क विभाग के पूरे साल के मनोरंजन भत्ते को उड़ा दिया।

जब 30 जनवरी 1948 को दिल्ली में महात्मा गांधी की हत्या हुई, तब मैं लंदन में ही था। मैंने कनाडा जाने के लिए अपना सामान पैक करने के लिए छुट्टी ली थी। हमें आयकर विभाग के सेवानिवृत्त आयुक्त सर मैल्कम डार्लिंग ने दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया था, जो विक्टोरिया स्टेशन के पास एक तहखाने के फ्लैट में रहते थे। दोपहर के भोजन के बाद जब हम ठंडी, हवादार और धूप भरी धूप में बाहर निकले, तो मैंने एक अखबार के स्टॉल पर लगे पोस्टर पर हाथ से लिखा हुआ देखा: 'गांधी की हत्या'। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह हमारे बापू हो सकते हैं। भला कोई ऐसे संत को कैसे मार सकता है जिसने किसी का बुरा न किया हो? मैंने स्टॉल वाले से पूछा। उसकी आँखों में आँसू थे जब उसने मुझे 'द इवनिंग स्टैंडर्ड' की एक प्रति दी। 'जी हाँ, किसी निर्दयी ने उन्हें मार डाला है,' उसने कहा। मेरी आँखों में भी आँसू आ गए; मैं केवल शीर्षक ही पढ़ पाया। अपने जहाज़ के टिकट की पुष्टि कराने के लिए शिपिंग कार्यालय जाने के बजाय, हम अपने लोगों के साथ रहने के लिए इंडिया हाउस चले गए। गांधी जी के चित्र के आधार पर तेल के दीपक जलाए गए थे। पूरे स्थान पर सुगंधित

अगरबत्ती की खुशबू फैली हुई थी। पुरुष और महिलाएं ज़मीन पर बैठकर गांधीजी के प्रिय भजन गा रहे थे: वैष्णव जन तो तैने कहे जो पीड़ा पराई जाने रे — उन्हें केवल ईश्वर के उस भक्त के रूप में जानो जो दूसरों के दुखों को महसूस करता है। और राम धुन: ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सम्मति दे भगवान — ईश्वर और अल्लाह एक ही ईश्वर के नाम हैं, उनकी कृपा हम सब पर बनी रहे। हम वहाँ एक घंटे तक बैठे रहे। मेरी जेब में थिएटर के टिकट थे जो मैंने एक महीने पहले डायमंड लिल में मे वेस्ट को देखने के लिए खरीदे थे। मेरे मन में दुविधा चल रही थी। क्या दिल्ली में बापू के निधन के समय दुनिया की सबसे बड़ी सेक्स सिंबल को देखना उचित था? अंततः, हमने थिएटर जाने का फैसला किया। जब मैंने उस सुडौल महिला को यह कहते हुए सुना, 'कभी आकर मुझे देखना,' तो मुझे कोई शर्म या अपराधबोध नहीं हुआ। मैं खुशी-खुशी उनके निमंत्रण का जवाब दे देता। ब्रोशर से मुझे पता चला कि मे वेस्ट की उम्र मेरी मां के बराबर थी।
जब तक कनाडा जाने का मेरा आदेश आया, तब तक मेरे बेटे का शेरार्ड्स पार्क स्कूल में दाखिला हो चुका था और हमने सत्र की फीस भी भर दी थी। आखिरकार वह थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी सीख रहा था। उसकी शब्दावली के शुरुआती शब्दों में से एक अख़बार के लिए अंग्रेज़ी शब्द था। उसने गंभीरता से मुझे बताया, 'इसे पाइपर कहते हैं।' मैंने उसे सुधारते हुए कहा, 'पाइपर नहीं, पेपर। पाइपर तो कॉकनी भाषा का शब्द है।' वह अपनी बात पर अड़ा रहा। 'लेकिन मैंने रेलवे स्टेशन के बाहर एक अंग्रेज़ लड़के को 'पाइपर! पाइपर!' चिल्लाते हुए सुना।' एक और मौके पर जब वह मेरे साथ ब्रॉकेट पार्क में शाम की सैर पर गया, तो उसने मुझसे पूछा कि उस बड़े से बंगले में कौन रहता है। मैंने उसे बताया, 'वह लॉर्ड ब्रॉकेट का घर है।' वह हैरान रह गया। उसने पूछा, 'क्या वह उनके गुरुओं में से एक हैं?' मैंने कहा, 'नहीं, आपको ऐसा क्यों लगता है कि वह कोई अंग्रेज़ गुरु हैं?'

उन्होंने जवाब दिया, 'वे अपने गुरु को भगवान कहते हैं। स्कूल में वे हमें प्रभु यीशु के बारे में पढ़ाते हैं।'
लॉर्ड ब्रॉकेट एक शराब निर्माता थे।
मुझे तबादले से पूरी तरह से नाखुशी नहीं थी। लेकिन मेरी पत्नी को इस पर सख्त आपत्ति थी। मुझे एच.एस. मलिक के अधीन काम करना था, जो उसके चाचा थे, क्योंकि वे उसके पिता के छोटे भाई और उसकी मां की छोटी बहन के पति थे। एच.एस. मलिक परिवार बहुत ही संभ्रांत था। उन्हें आईसीएस में होने और पटियाला के प्रधानमंत्री रह चुके होने का बहुत ही गर्व था। उनकी पत्नी भी उतनी ही संभ्रांत थीं और परिवार में उन्हें 'डचेस' के नाम से जाना जाता था। मलिक परिवार के लिए संस्कृति का मतलब था अच्छे कपड़े पहनना, यूरोपीय तौर-तरीकों का ज्ञान होना और ओल्ड फैशन्ड, मिंट जुलेप और मैनहट्टन जैसे विदेशी पेय पदार्थों से परिचित होना। शाम को जब वे खाने से पहले ड्रिंक्स के लिए मिलते थे, तो वे रिश्तेदारों और दोस्तों के नाम लेते और बारी-बारी से उनकी बुराई करते थे। उनकी बुराई करने के बाद वे एक-दूसरे की तारीफ करके

भरपाई करते थे। वे एक बहुत ही घनिष्ठ और खुशहाल परिवार थे। मलिक और उनकी 'डचेस' दोनों ही अक्सर मेरी पत्नी को लापरवाही से कपड़े पहनने के लिए डांटते थे। वे मुझे एक नवधनी भवन निर्माण ठेकेदार का असभ्य बेटा समझते थे। एक बार जब मैं शिमला में उनके साथ रुका था, जब वे पटियाला के प्रधानमंत्री थे, तो मुझे घर के पीछे से चुपके से निकलना पड़ा ताकि सामने तैनात पहरेदार मुझे सलाम न करें। परिवार का माहौल इतना औपचारिक था कि मुझे अक्सर हवा को साफ करने के लिए गैस छोड़ने का मन करता था।

हम क्वीन एलिजाबेथ जहाज से न्यूयॉर्क गए। क्या शानदार अनुभव था! मैंने दिन का अधिकांश समय स्क्वैश खेलने में बिताया। मैंने पेशेवर खिलाड़ी को आराम करने दिया और बाकी यात्रियों को संभाला—कभी-कभी तो एक दिन में एक दर्जन तक। मुझे अपना समय कनाडा के बारे में पढ़ने में लगाना चाहिए था, जो ज़्यादा फ़ायदेमंद होता। मुझे उस देश के बारे में बस इतना ही पता था, जितना मैंने हियावाथा की किताब पढ़कर जाना था। मुझे उम्मीद थी कि मुझे बहुत सारे रेड इंडियन मिलेंगे जिनके सिर पर चील के पंख होंगे। मुझे पता था कि ओटावा राजधानी है और पश्चिमी तट पर कुछ सिख बसे हुए हैं। बस यही उस देश के बारे में मेरी जानकारी थी। मुझे तो उसके सबसे बड़े शहर मॉन्ट्रियल के अस्तित्व के बारे में भी पता नहीं था।

हमने न्यूयॉर्क में एक दिन बिताया और फिर रात की ट्रेन से ओटावा के लिए रवाना हुए। न्यूयॉर्क में हमने वाल्डोर्फ एस्टोरिया होटल में कमरा बुक कराया था। होटल में हमने जो कुछ घंटे बिताए (परिवार के चार सदस्य और दो नौकर), उससे मेरी महीने भर की तनख्वाह खर्च हो गई।

हरजी मलिक हमें लेने स्टेशन पर मौजूद थे। हमारे लिए शहर के सबसे महंगे होटल, शैतो लॉरियर में कमरा बुक किया गया था। मुझे पता चला कि होटल में एक हफ्ते रुकने का खर्च मेरी दो महीने की तनख्वाह के बराबर होगा। मेरी इस हालत पर किसी को खास तवज्जो नहीं थी। क्योंकि सब जानते थे कि मेरे पिता अमीर हैं।

हमें मलिक परिवार के साथ भोजन करना था। हमारा स्वागत बहुत ठंडा रहा। वह मुझे अपना नंबर दो बनाने के लिए उतने ही अनिच्छुक थे, जितना मेरी पत्नी अपने पति को अपने चाचा के इशारों पर चलने देने के लिए। 'डचेस' हमेशा की तरह ही घमंडी थीं। घटनाक्रम से खुश दिखने वाले केवल दो ही लोग थे - हरजी और मैं। हरजी इसलिए खुश थीं क्योंकि उन्हें मैं पसंद आने लगा था; और मैं इसलिए खुश था क्योंकि यह एक नया अनुभव था। मैं जानता था कि मलिक को गोल्फ में (वह एक बहुत अच्छे खिलाड़ी थे) और रईसों के साथ मेलजोल में कार्यालय के नीरस काम से ज़्यादा दिलचस्पी थी। मुझे उम्मीद थी कि मैं हमारे नए खोले गए मिशन का संचालन करूँगा।

हमारे आगमन के कुछ दिनों बाद ही पहला संकट आ पड़ा। हमने शैतो लॉरियर में गांधीजी की स्मृति में एक सभा आयोजित की। बैंड या रिकॉर्डेड संगीत न होने के कारण मैंने पियानो पर राष्ट्रगान बजाया। मलिक ने स्वागत भाषण दिया और हमेशा

की तरह टैगोर की पंक्ति 'जहाँ मन भयमुक्त हो' उद्धृत की। प्रधानमंत्री मैकेन्ज़ी किंग, जो कोई कुशल वक्ता नहीं थे, ने उत्तर दिया। बापू को दो यादगार श्रद्धांजलि अर्पित की गईं: एक ब्रिटिश उच्चायुक्त सर अलेक्जेंडर क्लटरबक द्वारा और दूसरी कनाडा के प्रमुख न्यायविद लियोनार्ड ब्रॉकिंगटन द्वारा। इससे अधिक भावपूर्ण भाषण मैंने अभी तक नहीं सुने हैं।
होटल के ठीक सामने भारतीय उच्चायोग था। एक सुबह जब ज़ोरदार बर्फ़बारी हो रही थी, मैं ट्रैफ़िक सिग्नल के पास खड़ा होकर सिग्नल बदलने का इंतज़ार कर रहा था ताकि मैं सड़क पार कर सकूँ। मेरी पगड़ी और दाढ़ी पर बर्फ़ जमी हुई थी। मैं ज़रूर अजीब दिख रहा होगा। एक लंबा-चौड़ा अमेरिकी, जो शायद पर्यटक था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया। उसने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और फिर मुझसे बात की। उसने पूछा, 'क्या आप अंग्रेज़ी बोलते हैं?' मैंने सिर हिलाकर हाँ में जवाब दिया। उसने आगे कहा, 'महोदय, आपके हाव-भाव और तौर-तरीकों से आप विदेशी लगते हैं।'
मैंने स्वीकार किया कि मैं वही हूँ। 'क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप कहाँ से हैं?'
मैंने जवाब दिया, 'मैं भारतीय हूँ।'

वह निराश दिखे। उन्होंने पूछा, 'क्या आपने आरक्षण कराया है?' उस समय मुझे पता नहीं था कि आरक्षण क्या होता है। मैंने जवाब दिया, 'नहीं, मैं शैतो लॉरियर में ठहर रहा हूँ।'
कुछ दिनों बाद, जब हमें अपना ठिकाना मिल गया, तब एक और रोचक घटना घटी। यह एक सिख सज्जन से हुई। मैंने उन्हें सड़क के उस पार ट्रैफिक सिग्नल के पास खड़े देखा। गुरु नानक के वंशज बेदी समुदाय की खास शैली में बंधी उनकी सुनहरी कढ़ाई वाली पगड़ी बेहद आकर्षक लग रही थी। उन्होंने काली शेरवानी, सफेद चूड़ीदार और सुनहरी कढ़ाई वाली पंजाबी चप्पलें पहनी हुई थीं। सर्दियों की कड़ाके की ठंड में वे बिल्कुल अलग दिख रहे थे। मैं उनके पास गया और उन्हें 'सत श्री अकाल' कहकर अभिवादन किया। उन्होंने विनम्रता से जवाब दिया और मुझसे पूछा कि मैं ओटावा में क्या कर रहा हूँ। मैंने उन्हें बताया। मैंने उनसे पूछा कि वे यहाँ क्यों आए हैं और क्या उन्हें अपने कपड़ों में ठंड नहीं लग रही है। उन्होंने बताया कि वे व्यापार के सिलसिले में आए हैं और कुछ दिनों में अपनी पत्नी और बच्चों के पास लौट जाएंगे, जिन्हें वे बहुत याद कर रहे हैं। उनके पहनावे के बारे में उन्होंने मुझे बताया कि विदेश में भारतीयों को अपनी राष्ट्रीय पोशाक पहननी चाहिए, 'वरना विदेशी हमारी विशिष्ट संस्कृति और जीवनशैली को कैसे जान पाएंगे?' मेरा अनुमान सही निकला कि वे बेदी थे। मैंने उन्हें रात के खाने पर आमंत्रित किया। शाम को मैं उन्हें उनके होटल से लेने गया। वे उसी पोशाक में थे।
मेरी पत्नी को मेरे साथ शराब पीते देख वह थोड़ा नाराज़ हो गया। उसने मेरी पत्नी से कहा, 'महिलाओं का शराब पीना हमारी परंपरा नहीं है।' उसे पता चला कि हम नाचने भी जाते हैं। उसने यूरोपीय तौर-तरीकों को अपनाने के खिलाफ एक

और उपदेश दिया। उसने कहा कि उसे पश्चिम से कोई लगाव नहीं है और वह अपने परिवार के पास घर लौटने के लिए उत्सुक है।

कुछ महीनों बाद, मैं संयोगवश टोरंटो में स्थानीय समाचार पत्रों के संपादकों से मिलने गया। मैंने उन्हें एक छोटे से, चुनिंदा रेस्तरां में दावत दी और देर रात अपने होटल लौटा, थोड़ा नशे में था। भूतल पर लगभग एक दर्जन लिफ्टें थीं, जिन्हें चलाने के लिए सुंदर लड़कियाँ पेज बॉय की वर्दी पहने खड़ी थीं। उनमें से एक ने मुझे दोस्ताना मुस्कान दी और 'सत श्री अकाल' कहकर मेरा अभिवादन किया। मैं तुरंत उसकी लिफ्ट में चला गया। जैसे ही दरवाजे बंद हुए, मैंने उससे पूछा, 'क्या आप मेरे देश गई हैं?' उसने मुझे शरारती नज़र से देखा और जवाब दिया, 'नहीं, लेकिन मैं आपके देशवासियों को जानती हूँ। कौन सी मंजिल?' मैंने अपने कमरे की चाबी पर लिखा नंबर देखा और जवाब दिया, 'ग्यारहवीं मंजिल।' 'क्या संयोग है,' उसने कहा, 'मेरा दोस्त भी ग्यारहवीं मंजिल पर था। कितना सुंदर सज्जन! उसकी पगड़ी आपकी पगड़ी से कहीं ज़्यादा अच्छी थी। पूरी सोने और चाँदी की। उसने मुझे मस्कॉका में उसके साथ सप्ताहांत बिताने के लिए आमंत्रित किया। हमने बहुत अच्छा समय बिताया!' सप्ताहांत को याद करते हुए उसने खुशी से आह भरी। श्री बेदी के अलावा और कौन हो सकता था जो अपनी पत्नी और बच्चों के पास वापस जाने के लिए इतना बेताब था? मैंने इस घटना को एक छोटी कहानी में बदल दिया।

कनाडा में कुछ भी वैसा नहीं था जैसा हियावाथा ने मेरे मन में कल्पना की थी। मैंने कभी भी ऊंचे गालों वाले, सांवले रंग के पुरुषों को पंखों से बना सिर का मुकुट पहने नहीं देखा। एकमात्र व्यक्ति जो रेड इंडियन बहादुर जैसा दिखता था, वह एक श्वेत व्यक्ति था जो कनाडाई शहरों के टूर का विज्ञापन करने वाली एक ट्रैवल एजेंसी के बाहर खड़ा था। रेड इंडियन से मिलने का मेरा सबसे करीबी मौका मॉन्ट्रियल में आया। होटल रिट्ज कार्लटन से बाहर निकलते ही, मैंने सड़क के दूसरी ओर से एक भूरे, ऊंचे गालों वाले व्यक्ति को आते देखा। उसने मुझे देखकर मुस्कुराया। मैं उससे मिलने के लिए सड़क पार कर गया। हाथ मिलाते हुए मैंने कहा, 'मैं देख सकता था कि आप एक भारतीय हैं।' उसने सिर हिलाया। मैंने उससे पूछा, 'आप कहां से हैं?' उसने जवाब दिया, 'मैं मद्रास से हूं।'

अगर मेरे जैसे भारतीयों को कनाडा के बारे में कम जानकारी थी, तो ज़्यादातर कनाडाई लोगों को भारत के बारे में उससे भी कम पता था। उस समय हैदराबाद की स्थिति खबरों में छाई हुई थी। एक सुबह मुझे एक कनाडाई हथियार व्यापारी का फोन आया। चूंकि उच्चायुक्त हवाना में गोल्फ खेलने गए हुए थे, इसलिए मैं उनकी जगह काम संभाल रहा था। दूसरी तरफ से आवाज़ आई, 'क्या यह नया भारतीय उच्चायोग है?' मैंने जवाब दिया, 'हाँ, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?'

उन्होंने समझाया, ‘बात कुछ इस तरह है। पहले जब भी हमें भारत की किसी रियासत से हथियारों का ऑर्डर मिलता था, हम उसे पूरा करने से पहले ओटावा में ब्रिटिश प्रतिनिधि को सूचित करते थे। हम आपके साथ भी यही शिष्टाचार बरतेंगे। हमें

हैदराबाद के निज़ाम से एक लाख 303 राइफलों की तत्काल आपूर्ति का ऑर्डर मिला है। भुगतान नकद में किया जा चुका है। हमें उम्मीद है कि आपको ऐसा करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।'
मैंने अपनी सरकार को सूचित करते हुए एक टेलीग्राम भेजा और अपने बॉस को फोन करके तुरंत ओटावा लौटने को कहा। वह मेरे खेल में बाधा डालने से नाराज़ थे और उन्होंने कहा कि इस सौदे में कोई जल्दबाजी नहीं है। अगले दिन भारतीय सेना हैदराबाद में घुस गई।

भारत को लेकर मीडिया में काफी नकारात्मक खबरें आईं। कनाडाई अखबारों ने भारत से जुड़ी खबरें वायर एजेंसियों या दिल्ली में तैनात अमेरिकी संवाददाताओं से लीं। मैंने उच्चायुक्त को राजी किया कि वे एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित करें ताकि कनाडाई मीडिया को हमारा दृष्टिकोण बताया जा सके।
दो दर्जन से अधिक पत्रकारों और रेडियो पत्रकारों ने जवाब दिया। उच्चायुक्त ने स्वतंत्र भारत की रियासतों को नए लोकतांत्रिक ढांचे में एकीकृत करने की नीति पर संक्षिप्त जानकारी दी। उन्होंने कहा कि हैदराबाद भारतीय भूभाग में एक द्वीप है और किसी भी हालत में उसे स्वतंत्र राज्य घोषित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कोई प्रश्न?
एक व्यक्ति ने पूछा, 'हैदराबाद कहाँ है?'
मैंने एक बोर्ड पर भारत का नक्शा फैलाया और अपनी तर्जनी उंगली से उसकी सीमाओं पर निशान बनाए। तभी एक होशियार युवा महिला पत्रकार ने टिप्पणी की, 'लेकिन आपके उच्चायुक्त तो कहते आ रहे हैं कि यह एक द्वीप है।' हमने सोचा कि उन्हें जानकारी देने का कोई फायदा नहीं है और हम स्कॉच और कैनपेस (एक प्रकार का नाश्ता) के लिए चले गए। अगली सुबह के अखबारों में उच्चायुक्त की प्रेस कॉन्फ्रेंस के बारे में शायद ही कुछ छपा था। उनके पास इससे कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण खबरें थीं। बारबरा एन स्कॉट विश्व आइस-स्केटिंग खिताब जीतने के बाद ओटावा लौट रही थीं। बचपन से लेकर स्केटिंग रिंक की रानी बनने तक की उनकी तस्वीरें अखबारों में छाई रहीं।
कनाडा में बिताया गया वह वर्ष मेरे करियर का एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। मैंने कई कनाडाई लेखकों और कवियों से परिचय प्राप्त किया। उनकी रचनाएँ पढ़ने के बाद, मैंने उन्हें अपने घर आमंत्रित किया। उनमें कवयित्री आइरीन पेज और एबे क्लेन, कैनेडियन फोरम और सैटरडे नाइट के संपादक शामिल थे। मेरी कहानियाँ इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। मॉन्ट्रियल में लिखी गई मेरी एक कहानी, जो दिल्ली में मेरे स्कूली दिनों पर आधारित थी, न्यूयॉर्क के हार्पर्स द्वारा प्रकाशित की गई। मलिक परिवार से मेरे संबंध थोड़े ठंडे पड़ जाने के कारण, मैंने नौकरी छोड़ने और लेखन को पूर्णकालिक करियर बनाने के बारे में सोचना शुरू कर दिया। मैं खुद को बार-बार याद दिलाता रहता था, 'बिना जोखिम उठाए कुछ नहीं मिलता।' मैं तीस वर्ष से अधिक आयु का था; अगर मैंने अभी यह कदम नहीं उठाया, तो शायद मैं कभी नहीं उठा पाऊँगा।

कनाडा ने न केवल मुझे लेखक बनने की प्रेरणा दी, बल्कि प्रकृति के प्रति मेरी रुचि भी बढ़ा दी। जब मैं ओटावा पहुँचा, तब कड़ाके की ठंड पड़ रही थी और चारों ओर बर्फ की मोटी चादर बिछी हुई थी। तेज़ बहने वाली ओटावा नदी के कुछ हिस्से भी जम गए थे, जिन पर लोग स्केटिंग कर रहे थे। मार्च तक बर्फ पिघलने के पहले संकेत दिखने लगे। संसद भवन से मुख्य सड़कों तक फैली तीन फुट चौड़ी पट्टी ट्यूलिप के फूलों से जगमगा रही थी। मुझे पता चला कि उसके नीचे से गर्म पानी की पाइपलाइन गुज़र रही थी। जैसे-जैसे बर्फ पिघली, बगीचे में हर जगह ट्यूलिप खिल उठे। मैंने कई सप्ताहांत गैटिन्यू हिल्स में स्कीइंग करते हुए बिताए थे और उन नंगे पेड़ों को देखकर अचंभित होता था जिनकी शाखाओं पर बर्फ की बेलनाकार नलियाँ जमी होती थीं, जो हवा के झोंकों से झूमर की तरह झनझनाती थीं। अब वे छोटे-छोटे पत्तों से ढके हुए थे। मैं उच्चायुक्त और उनके परिवार के साथ पश्चिमी तट गया। वैंकूवर में तीन दिन और तीन रात लगातार बारिश हुई। चौथे दिन मैंने स्टेनली पार्क में सैर की। गीले रास्तों पर सांप बिखरे पड़े थे। अगले दिन हम नाव से विक्टोरिया गए, जहाँ मैंने प्रकृति का सबसे खूबसूरत नज़ारा देखा। होटल के पास स्थित एम्प्रेस पार्क फूलों से लबालब भरा हुआ था। ओस से भीगे हरे-भरे लॉन पर मोर और बटेर दौड़ रहे थे, जो धूप में चमक रहे थे। मैं पार्क पार करके एक चट्टान के किनारे तक गया, जहाँ से एक सुनसान समुद्र तट दिखाई दे रहा था। मुख्य भूमि पर स्थित पहाड़ों की बर्फ से ढकी चोटियाँ गहरे नीले समुद्र के पानी में प्रतिबिंबित हो रही थीं। मैं चारों ओर के दृश्य को देखकर मंत्रमुग्ध हो गया। मानो इस रहस्यमय अनुभव को पूरा करने के लिए, मैंने एक युवा जोड़े को समुद्र तट पर आते देखा। उन्होंने चारों ओर देखा कि कोई उन्हें देख तो नहीं रहा है और फिर अपने कपड़े उतार दिए। वे रेत पर मस्ती करने लगे, समुद्र में दौड़ पड़े, पानी ठंडा लगा और धूप में खुद को गर्म करने के लिए बाहर आ गए। उन्होंने एक-दूसरे को गले लगाया और प्रेम करने लगे। मैंने उन्हें बारी-बारी से एक-दूसरे के ऊपर आते, अपनी गति बढ़ाते और आनंद से लथपथ होते देखा। यह एक शानदार सुबह का शानदार अंत था।

हमारी वापसी की यात्रा ट्रेन से हुई। हम सुबह वैंकूवर से निकले, रॉकी पर्वतमाला से गुज़रे, घने चीड़ और देवदार के जंगलों से होते हुए, चमचमाती नदियों और झीलों के किनारे-किनारे मूस और एल्क चरते हुए दिखे। हमने बैन्फ और लेक लुईस में, फिर कैलगरी, किंग्स्टन और अल्बर्टा में यात्रा रोकी। उस गर्मी में मैं अपने परिवार को एल्गोनक्विन पार्क ले गया। हमने झील में नाव चलाते हुए लून पक्षियों का पीछा किया और पर्च मछली पकड़ी। मैं परिवार को नियाग्रा जलप्रपात भी दिखाने ले गया। मैं तो पानी के विशाल झरने को देखकर दंग रह गया, लेकिन मेरी पत्नी उतनी प्रभावित नहीं हुई। उसने पूछा, 'इसमें ऐसा क्या खास है? हमारे यहाँ तो ओखला में भी ऐसा ही जलप्रपात है।' मैंने टोरंटो की एक और यात्रा की और थाउज़ेंड आइलैंड्स और मुस्कोका में घूमते हुए दिन बिताए। मैंने कनाडा जैसा खूबसूरत देश पहले कभी नहीं देखा।

गर्मियों में लॉर्ड और लेडी माउंटबेटन टोरंटो में कनाडाई व्यापार मेले का उद्घाटन करने आए थे। उन्होंने संदेश भेजा था कि वे चाहते हैं कि भारतीय उच्चायोग के कर्मचारी उनके साथ सुरक्षा प्रदान करें। हम बहुत प्रसन्न हुए और इसका कारण हमें

समारोह में ही पता चला। वहाँ लॉर्ड लुई माउंटबेटन पदकों और स्वर्ण एपॉलेट्स से जगमगाती शार्क की खाल जैसी चांदी-सफेद नौसैनिक वर्दी में, अपनी शाही पत्नी के साथ खड़े थे। और उनके पीछे पगड़ी और दाढ़ी वाले सिख, काली शेरवानी और सफेद चूड़ीदार पहने खड़े थे। यह ब्रिटिश साम्राज्य के गौरवशाली चरम का एक आदर्श दृश्य था। यदि हजारों उपस्थित श्रोताओं को इसकी प्रामाणिकता पर कोई संदेह था, तो लॉर्ड लुई ने अपने भाषण में उन्हें स्पष्ट कर दिया, जिसमें उन्होंने कई बार दोहराया, 'मेरी चचेरी बहन महारानी; मेरे भतीजे राजकुमार फलां-फलां।' और निश्चित रूप से, भारत के अंतिम वायसराय और गवर्नर-जनरल के रूप में प्रधानमंत्री और भारत की जनता से उन्हें प्राप्त अपार स्नेह का भी उल्लेख किया।
ओटावा लौटना कुछ हद तक निराशाजनक रहा। हालाँकि मुझे राइडो क्लब के लिए टेनिस खेलना, ओटावा नदी के किनारे टहलना, नदी में बहते हुए लकड़ी के द्वीपों को देखना, कनाडाई दोस्तों का मनोरंजन करना और उनसे मनोरंजन प्राप्त करना अभी भी अच्छा लगता था, लेकिन मलिक परिवार के साथ हमारे संबंध इतने खराब हो गए थे कि हम मुश्किल से ही एक-दूसरे से बात करते थे। सौभाग्य से, भारत में हुई घटनाओं ने हमें एक-दूसरे से अलग होने में मदद की। विदेशी प्रचार विभाग को विदेश मंत्रालय ने अपने अधीन कर लिया था। मेनन अब अपनी मनमानी कर सकते थे। उन्होंने मुझे लंदन वापस स्थानांतरित करने का आदेश दिया ताकि मैं पी.एल. भंडारी की जगह ले सकूँ, जिन्हें वे बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। मुझे अक्टूबर में किसी समय आदेश मिला, जब मेपल के पेड़ आग की तरह लाल हो रहे थे। मैंने फैसला किया कि मैं अपने परिवार को ओटावा में तब तक छोड़ दूँगा जब तक मेरा बेटा राहुल रॉकक्लिफ पब्लिक स्कूल में अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर लेता। एक बार फिर, मैंने क्वीन एलिजाबेथ जहाज लिया और जहाज पर स्क्वैश खेलते हुए दिन बिताए। मलिक भी उसी जहाज पर थे; हमें एक ही टेबल पर बैठना पड़ा। उनका विदाई उपहार मुझे पोकर के खेल में शामिल करना था, जिसके बारे में मुझे कुछ भी नहीं पता था। खेल खत्म होने पर उसने मुझे बताया कि मुझे सौ पाउंड देने हैं।
मेनन मुझे वापस पाकर बहुत खुश थे। मैं तो बस एक सूचना अधिकारी था। भंडारी से पदभार संभालने के कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने मुझे प्रेस अटैची और प्रथम सचिव के पद पर पदोन्नत कर दिया। उन्होंने कमला जसपाल की बहन के पति जमाल किदवई को मेरा नंबर दो नियुक्त करवा दिया था। कनाडा छोड़ने से पहले मैंने अपने नए पोंटियाक के साथ ड्यूटी-फ्री स्कॉच व्हिस्की के कुछ क्रेट मंगवाए थे। युद्ध के बाद के इंग्लैंड में ये दोनों चीज़ें बहुत काम आईं।
एक बार फिर मैं नाइट्सब्रिज में हैरोड्स के पीछे लल्ल परिवार के फ्लैट में रहने लगा। इस बार उनके यहाँ एक आकर्षक अंग्रेज़ लड़की, सेड्रा ओसबोर्न, हाउसकीपर के रूप में रहती थी। वह कोई घरेलू काम तो नहीं करती थी, लेकिन जब भी ड्रिंक्स परोसी जातीं, तो अच्छी संगत देती थी। आर्थर और शीला के रिश्ते टूटने की कगार पर थे। आर्थर, जो अन्य महिलाओं के साथ संबंध रखता था, अपनी पत्नी को किसी के साथ भी संबंध बनाते हुए बर्दाश्त नहीं कर पाता था। लल्ल परिवार के अपार्टमेंट में अक्सर आने वालों में तीन विवाहित पुरुष शामिल थे, जो विवाहेतर संबंधों के योग्य थे। इनमें लंबे-चौड़े,

आकर्षक बी.के. नेहरू थे, जो प्रधानमंत्री के चचेरे भाई थे और किसी महत्वपूर्ण राजनयिक कार्य के लिए लंदन आए थे; सुरुचिपूर्ण ढंग से कपड़े पहने अशोक चंदा थे, जिन्होंने इंडिया हाउस में उप उच्चायुक्त का पदभार संभाला था; और बिजू पटनायक (बाद में केंद्रीय कैबिनेट मंत्री और उड़ीसा के मुख्यमंत्री), एक मजबूत कद-काठी के छह फुट लंबे व्यक्ति थे, जो भारत से लंदन तक अपना विमान खुद उड़ाते थे। जब मेरा परिवार मुझसे मिलने आया, तो हमने लल्ल परिवार से किराए पर लिए गए ऊपरी मंजिल के एक अपार्टमेंट में कुछ सप्ताह बिताए। वहाँ कई नाटकीय घटनाएँ घटीं। हमारे समूह में उनकी पड़ोसी एल्सा वुडमैन भी शामिल हो गई, जो अमेरिकी दूतावास में नौसेना के अटैची की पत्नी थीं। वह एक उदार मेजबान थीं और अपने पति की अनुपस्थिति में मेहमाननवाज़ी के लिए हमेशा तैयार रहती थीं।

इन घटनाओं में से पहली घटना तब घटी जब आर्थर लाल भारत में थे। बिजू पटनायक, जो अक्सर आते-जाते रहते थे, ने आर्थर और शीला के बीच और मेरी पत्नी और मेरे बीच व्याप्त तनाव को भांप लिया था। एक शाम जब मैं दफ्तर में देर से लौटा, तो उन्होंने सहज भाव से शीला या मेरी पत्नी को पेरिस में सप्ताहांत बिताने के लिए आमंत्रित किया। मेरी पत्नी उनकी पेशकश स्वीकार करने की स्थिति में नहीं थीं; शीला ने तुरंत स्वीकार कर लिया। वह बेहद खुश होकर लौटीं। शीला कभी भी राज़ रखने में विश्वास नहीं करती थीं। कुछ दिनों बाद, आर्थर भारत से लौटे। हम उन्हें हवाई अड्डे से लेने गए। वापस आते समय शीला ने उन्हें बिजू के साथ बिताए अपने सप्ताहांत के बारे में बताया। वह बहुत दुखी हुए और उस शाम खूब शराब पी ली। आधी रात के काफी बाद शीला आई और हमारे दरवाजे पर दस्तक दी। उन्होंने एक शांत, सपाट स्वर में पूछा, 'के. सिंह, क्या आपके पास कोई रिवॉल्वर है? आर्थर खुद को गोली मारना चाहते हैं।' उनका स्वर इतना शांत था मानो वह नींद की गोली मांग रही हों।

आर्थर दिन-रात शीला को तब तक परेशान करता रहा जब तक वह थकान से चूर नहीं हो गई। ठीक उसी समय सोम नाथ मैरा, जो लाहौर के लॉ कॉलेज में मेरा छात्र था और उस समय ऑक्सफोर्ड में पढ़ रहा था, वहाँ आया। वह लंबा, आकर्षक और मिलनसार स्वभाव का व्यक्ति था। हम चाय पी रहे थे। माहौल मातम जैसा था। उसने हमें खुश करने की कोशिश की। उसने पूछा, 'क्या बात है? सब लोग बहुत गुस्से में हैं।' वह शीला के पास गया, उसकी ठोड़ी के नीचे हाथ रखा और विनती की, 'शीला जी, कृपया मुस्कुराइए!' इस इशारे ने आर्थर के गुस्से को भड़का दिया। वह गुस्से में भरे शेर की तरह मैरा पर टूट पड़ा, 'हरामजादा! बहनचोद! मेरी पत्नी के साथ बदतमीजी करने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई!' कद में छोटा होने के बावजूद आर्थर हट्टा-कट्टा था। लेकिन सोम मैरा उससे लगभग एक फुट लंबा, बीस साल छोटा और कहीं ज्यादा ताकतवर था। पहले तो उसने सोचा कि आर्थर उससे दोस्ताना कुश्ती करना चाहता है। जैसे ही उसे एहसास हुआ कि आर्थर उसे पीटने वाला है, उसने बाज़ी पलट दी और आर्थर को ज़मीन पर गिरा दिया। हम उन्हें लड़ते हुए देखते रहे, उन्हें अलग करने की कोशिश भी नहीं की। शीला अपनी कोमल आवाज़ में बुदबुदाती रही, 'आर्थर, तमीज़ से पेश आओ!' आर्थर को एहसास हुआ कि वह

सोम पर काबू नहीं पा सकता और गुस्से में कमरे से बाहर निकल गया, उसे गालियाँ देते हुए और चेतावनी देते हुए कि वह फिर कभी उसके घर में कदम न रखे।

लंदन लौटने के बाद शुरुआती कुछ हफ़्तों तक मुझे पहली मंज़िल पर एक कमरा दिया गया, जिस पर तांबे की एक नामपट्टिका लगी थी, 'काउंटेस माउंटबेटन ऑफ़ बर्मा'। नेहरू के बाद, माउंटबेटन परिवार ही वह परिवार था जिस पर मेनन अपने पद पर बने रहने के लिए भरोसा करते थे। उन्होंने लेडी एडविना से भारतीय मामलों में उनकी रुचि लेने की संभावना के बारे में बात की थी। उनके लिए एक कमरा अलग रखा गया था, जब भी वह उसका इस्तेमाल करना चाहतीं। लेकिन वह उस कमरे में एक बार भी नहीं गईं। फिर भी, मुझे चेतावनी दी गई थी कि ज़रूरत पड़ने पर मुझे तुरंत कमरा खाली करना होगा। कुछ दिनों तक यह काफ़ी मज़ेदार रहा: मैं दरवाज़े पर हल्की सी दस्तक सुनता और जैसे ही मैं चिल्लाता, 'अंदर आओ,' कोई चुपचाप दरवाज़ा खोल देता, इस उम्मीद में कि उसे अपनी कुर्सी पर बैठी शाही पूर्व वायसराय देखने को मिलेंगी। लेकिन उन्हें एक सिख मुस्कुराता हुआ दिखाई देता। 'अरे बदमाश! लेडी माउंटबेटन के कमरे में क्या कर रहे हो?' मेरे दोस्त भड़क उठते।

लेडी एडविना अपने लिए निर्धारित कमरे में कभी नहीं गईं, लेकिन लॉर्ड लुई ने अचानक ही दौरा कर लिया। उन्होंने इंडिया हाउस में आयोजित एक स्वागत समारोह का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। उनके सचिव ने उन्हें गलत समय बता दिया था और वे निर्धारित समय से आधा घंटा पहले पहुँच गए थे। लॉर्ड माउंटबेटन को किसी भी पार्टी में सबसे पहले आने की आदत नहीं थी; वे अन्य मेहमानों के आने के बाद आना ज़्यादा पसंद करते थे। इसलिए इस अवसर पर वे थोड़े असहज थे। मैंने उनसे उनकी पत्नी के लिए आरक्षित कमरे में कुछ मिनट प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया और मुझे आधे घंटे तक लॉर्ड माउंटबेटन के साथ अकेले समय बिताने का अवसर मिला। वे सरकार के एक साधारण से कर्मचारी से बात करके अपना कीमती समय बर्बाद नहीं करना चाहते थे। मैंने उनसे भारत में बिताए उनके दिनों के बारे में पूछकर बातचीत जारी रखने की पूरी कोशिश की। 'अब अगर मैं सोचूँ तो, क्या आपको नहीं लगता कि भारत का विभाजन एक गलती थी?' मैंने उनसे पूछा। 'जिस जल्दबाजी में इसे अंजाम दिया गया, उसके कारण हजारों निर्दोष लोगों की जानें चली गईं।' लॉर्ड माउंटबेटन समझ गए कि मैं क्या कहना चाह रहा हूँ और उन्होंने उत्तर दिया, 'मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि लोग आज मेरे बारे में क्या कहते हैं; इतिहास की कसौटी पर मेरा मूल्यांकन किया जाएगा।

इंडिया हाउस में मेरे जीवन में कुछ सुखद पल भी आए। ऐसा ही एक पल तब आया जब मंडी की रानी का कैंसर से निधन हो गया। वे अपने समय की महान सुंदरी थीं और अपने पति से अलग होने के बाद लंदन में रह रही थीं। शाम के अखबारों में उनके निधन की खबर छपी थी, जिनमें उनकी युवावस्था की तस्वीरें थीं। अगली सुबह जब मैं अपने दफ्तर में था, तो मेरी सचिव ने मुझे बताया कि एक अंग्रेज सज्जन मुझसे जरूरी काम से मिलना चाहते हैं। मैंने उन्हें अंदर आने के लिए कहा। वे

लंबे कद के व्यक्ति थे, जिन्होंने काली टोपी, काला कोट और धारीदार पतलून पहनी हुई थी। उनके हाथ में एक पार्सल था। उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा, 'मैं मेसर्स केन्योन एंड केन्योन अंडरटेकर्स का श्री केन्योन हूं। आपने हमारे बारे में जरूर सुना होगा!' मैं शहर के अलग-अलग हिस्सों में स्थित उनके अंतिम संस्कार गृहों के पास से अक्सर गुजरता था और मैंने जवाब दिया कि मैं उस फर्म से परिचित हूं।

उन्होंने पूछा, 'निश्चित रूप से आपने मंडी की रानी के बारे में सुना होगा?' मैंने उत्तर दिया कि मैंने इसके बारे में शाम के अखबारों में पढ़ा था।

'बहुत दुखद था, है ना?' उसने आह भरी।

मैंने जवाब दिया, 'यह वाकई बहुत दुखद है। वह बेहद खूबसूरत थी।'

'महामहिम,' उन्होंने आगे कहा, 'महामहिम ने वसीयत में लिखा है कि उनके अंतिम संस्कार के समय उनके पार्थिव शरीर को उनकी पसंदीदा साड़ी में लपेटा जाए।' उन्होंने पार्सल खोला और एक खूबसूरत नारंगी रंग की साड़ी निकाली जिस पर चौड़ी सुनहरी किनारी थी। 'हमें दिवंगत पुरुषों और महिलाओं को वस्त्र पहनाने का काफी अनुभव है, लेकिन हमने कभी किसी भारतीय महिला को वस्त्र नहीं पहनाया। मैं जानना चाहता था कि साड़ी शरीर पर कैसे लपेटी जाती है। इसलिए मैंने सोचा कि मैं जानकारी लेने के लिए व्यक्तिगत रूप से आपके दूतावास आऊं।'

मुझे एक मृत महारानी को नग्न अवस्था में देखने का ईश्वरीय अवसर मिला था—लेकिन कुछ हास्यपूर्ण कहने की अपनी प्रबल इच्छा के कारण मैंने वह सुनहरा मौका गंवा दिया। मैंने जवाब दिया, 'मुझे खेद है श्रीमान केन्योन, मुझे साड़ी उतारने का कुछ अनुभव तो है, लेकिन मैंने कभी किसी महिला को साड़ी नहीं पहनाई।'

श्री केन्योन अपना पार्सल लेकर जल्दी से चले गए और कृष्णा मेनन से मिलने गए। उन्होंने उनसे शिकायत की कि मैंने उनके अनुरोध को हल्के में लिया था। कमला जसपाल से जानकारी मिलने के बाद, मेनन ने मुझे बुलवाया। उन्होंने पूछा, 'सरदार, क्या तुम्हारी होशियारी दिखाने की आदत नहीं छूटेगी?' इसके बाद, उन्होंने हर किसी को अंतिम संस्कार करने वाले से मेरी बातचीत के बारे में बताया।

फिर पंडित नेहरू की प्रधानमंत्री के रूप में इंग्लैंड की पहली यात्रा थी, जहाँ वे राष्ट्रमंडल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में शामिल हुए थे। हमने इस अवसर को यादगार बनाने के लिए एक साप्ताहिक अखबार, इंडिया न्यूज़, निकालने का फैसला किया था। जमाल किदवई और मैं पहले अंक के लेआउट को अंतिम रूप देने, फ़ॉन्ट चुनने और समाचारों को तैयार करने के लिए कई बार प्रेस गए थे। पहला पृष्ठ पूरी तरह से पंडित जी की यात्रा और राष्ट्रमंडल सम्मेलन के महत्व को समर्पित था। हमने उनके आगमन से कुछ दिन पहले ही पहले पृष्ठ की सामग्री प्रिंटर को भेज दी थी। मुख्य शीर्षक था 'पंडित नेहरू लंदन में'। जब सुधार के लिए प्रूफ आए, तो 'P' की जगह 'B' लिखा हुआ था - 'डाकू नेहरू लंदन में'। क्या यह कोई मज़ाक था? मैंने प्रेस

मैनेजर को फोन किया और उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने बहुत माफी मांगी। उनके टाइपसेटर ने पंडित शब्द कभी सुना ही नहीं था और उन्हें लगा कि हमारा मतलब डाकू है। प्रूफ के दूसरे सेट में शब्द सही था। उस महान व्यक्ति के आने से एक शाम पहले, एक और व्यक्ति काम पर था और वह भी 'पंडित' शब्द के अस्तित्व से अनभिज्ञ था। एक बार फिर 'पंडित' को 'डाकू' में बदल दिया गया। हमें पूरा मामला रद्द करना पड़ा और हमने एक कर्मचारी को यह सुनिश्चित करने के लिए भेजा कि शब्द सही ढंग से छपा हो।

स्टाफ के वरिष्ठ सदस्यों को प्रधानमंत्री के स्वागत के लिए हीथ्रो हवाई अड्डे पर उपस्थित रहने का आदेश दिया गया था। विमान के उतरने के समय कड़ाके की ठंड थी। उन्होंने पूछा, 'आप सब इस अजीब समय में यहाँ क्या कर रहे हैं?' जाहिर है, उन्हें हमारी उपस्थिति की उम्मीद थी और यह देखकर उन्हें खुशी हुई कि हम अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। मेनन ने मुझसे प्रधानमंत्री से परिचय कराने और उनसे यह पूछने को कहा कि क्या उन्हें मुझसे कुछ काम करवाना है। मैंने ऐसा किया, लेकिन मुझे कोई जवाब नहीं मिला। 'इस समय मुझे आपसे क्या चाहिए? घर जाओ और सो जाओ।'

अगली सुबह जब मैं दफ्तर पहुँचा तो मेज पर मेनन का एक नोट पड़ा मिला जिसमें मुझे तुरंत मिलने के लिए कहा गया था। मैंने अखबारों की सुर्खियाँ सरसरी तौर पर देखीं कि कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गई। डेली हेराल्ड में नेहरू और लेडी माउंटबेटन की एक बड़ी सी तस्वीर छपी थी, जिसमें लेडी माउंटबेटन नाइटगाउन में नेहरू के लिए दरवाजा खोल रही थीं। कैप्शन में लिखा था, 'लेडी माउंटबेटन का आधी रात का मेहमान'। अखबार ने पाठकों को यह भी बताया कि लॉर्ड माउंटबेटन लंदन में नहीं थे। प्रधानमंत्री और लेडी एडविना के बीच संबंध एक बड़े घोटाले का रूप ले चुका था। हेराल्ड के फोटोग्राफर ने उन्हें रंगे हाथों तो नहीं पकड़ा, लेकिन कम से कम उसकी तैयारी में तो ज़रूर पकड़ लिया था। उसे अपनी एक्सक्लूसिव खबर मिल गई थी। जब मैं मेनन से मिलने गया तो वह मुझ पर चिल्लाए, 'क्या तुमने हेराल्ड देखा है? प्रधानमंत्री तुमसे बहुत नाराज़ हैं।'

मैंने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'मेरा इससे कोई लेना-देना नहीं था। मुझे कैसे पता चलता कि पंडितजी अपने होटल जाने के बजाय माउंटबेटन के घर जाएंगे?'

वैसे भी, वह बहुत गुस्से में है। बेहतर होगा कि आप एक-दो दिन तक उससे दूर रहें।

नेहरू के सम्मेलन में शामिल होने के कारण मुझे ज्यादा भागदौड़ नहीं करनी पड़ी। उनके लिए हमने सिर्फ अंतरराष्ट्रीय प्रेस के साथ एक बैठक और उनके होटल के सुइट में शीर्ष अंग्रेजी अखबारों के संपादकों के साथ दोपहर का भोजन आयोजित किया था। दोनों की जानकारी उनके सचिव एम.ओ. मथाई को दे दी गई थी। प्रेस कॉन्फ्रेंस में पाकिस्तानी पत्रकारों समेत भारी भीड़ उमड़ी। उनकी मुख्य रुचि कश्मीर में थी: पश्चिमी प्रेस आमतौर पर पाकिस्तानी दृष्टिकोण का समर्थन करता था। लोग यह सुनने के लिए उत्सुक थे कि भारत के प्रधानमंत्री कश्मीर के बचाव में क्या कहते हैं।

सम्मेलन सुबह 10:30 बजे शुरू होना था। 10:45 बजे तक पंडितजी का कोई अता-पता नहीं था। मैंने मथाई को फोन करके बताया कि प्रेस वाले बेचैन हो रहे हैं। पंद्रह मिनट बाद प्रधानमंत्री जी बहुत परेशान होकर पहुंचे। मेनन और मैं उन्हें मंच तक ले गए। 'यह सब क्या है? मुझे किसी ने बताया क्यों नहीं कि मुझे प्रेस से मिलना है?' उन्होंने इतनी जोर से फुफकारा कि माइक्रोफोन से उनकी आवाज कमरे के हर कोने तक पहुंच गई। फिर उन्होंने कैमरामैनों के लिए मुस्कुराते हुए पूछा, 'जी महोदय, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?'

पाकिस्तानी पत्रकार अपनी सीटों से उठ खड़े हुए और उनसे कश्मीर पर भारत का रुख स्पष्ट करने को कहा। उन्होंने बड़ी स्पष्टता से जवाब दिया। यह साफ था कि उन्होंने तैयारी की थी, लेकिन वे यह जताना चाहते थे कि वे बिना तैयारी के बोल रहे हैं। सम्मेलन बहुत सफल रहा। बाद में, जब मैंने उन्हें सम्मेलन का ज़िक्र करने वाला उनका छपा हुआ कार्यक्रम दिखाने की कोशिश की, तो उन्होंने मुझे नज़रअंदाज़ कर दिया। उन्होंने मेरे ज़रिए अपनी बात साबित कर दी थी।

मथाई ने मुझे यह भी चेतावनी दी थी कि प्रधानमंत्री की अनुमति के बिना उनकी कोई भी तस्वीर प्रेस को जारी नहीं की जानी चाहिए। वह एक संशयवादी व्यक्ति थे जो नाक खुजाते या जम्हाई लेते हुए पकड़े जाना नहीं चाहते थे।

संपादकों का दोपहर का भोजन पूरी तरह से असफल रहा। मेनू कमला जसपाल ने तैयार किया था और मेनन के लिए साफ़ सब्ज़ी का सूप परोसा गया, जिसके बाद बारी-बारी से चाय के प्याले परोसे गए। टाइम्स, टेलीग्राफ, मैनचेस्टर गार्जियन, ऑब्ज़र्वर, न्यू स्टेट्समैन और नेशन के संपादक उपस्थित थे। मेज पर बैठने से पहले हमने शेरी से शुरुआत की। फिर सूप और ठंडी सफेद वाइन के साथ पहला कोर्स परोसा गया; पंडितजी को खाने-पीने की कोई खास आदत नहीं थी और उन्हें सूखी शेरी और वाइन बहुत पसंद थी। उन्होंने अनौपचारिक बातचीत शुरू करने के लिए अपनी सिगरेट जलाई। उन्होंने पूछा कि रूढ़िवादी प्रेस आम तौर पर भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण क्यों है। संपादकों ने बारी-बारी से जवाब दिया कि ऐसा नहीं है, बल्कि वे भारत में अपने संवाददाताओं द्वारा भेजे गए संदेशों को प्रकाशित करने के लिए बाध्य हैं, जिन पर वे निष्पक्ष होने का भरोसा करते हैं। यदि कोई तथ्यात्मक त्रुटि होती, तो वे इंडिया हाउस द्वारा भेजे गए किसी भी सुधार को प्रकाशित करने के लिए तैयार होते। सभी ने मेनन की ओर देखा। उनका सिर छाती पर झुका हुआ था और वे नींद में ऊँघ रहे थे। पंडितजी ने गुस्से में मुझसे फुसफुसाते हुए कहा, 'क्या तुम्हें दिख नहीं रहा कि तुम्हारे हाई कमिश्नर की तबीयत ठीक नहीं है? तुम्हें उन्हें इस तरह बाहरी लोगों के सामने नहीं लाना चाहिए।' फिर पंडितजी का खुद का ध्यान भंग हो गया। जब एक संपादक ने उनसे सवाल पूछा, तो वे खाली निगाहों से इधर-उधर देखते रहे। सवाल का कोई जवाब नहीं मिला और वह हवा में ही लटका रहा। मैंने चुप्पी को भरने की पूरी कोशिश की। मिठाई परोसे जाने से पहले ही पंडितजी अपना सिर सीने पर टिकाकर सिर हिला रहे थे। संपादक कॉफी का इंतजार किए बिना ही चले गए।

मेरे लिए अभी और भी बहुत कुछ तय था। राष्ट्रमंडल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के बाद, पंडितजी को अपने पसंदीदा शौक, किताबें खरीदने और लेडी माउंटबेटन से मिलने के लिए कुछ दिन का समय मिला। एक दोपहर किताबों की खरीदारी के लिए आरक्षित थी। मेनन ने मुझे प्रधानमंत्री के साथ जाने और उनके द्वारा खरीदी गई किताबों पर हस्ताक्षर करवाने का काम सौंपा। उन्होंने मुझे यह भी निर्देश दिया कि मैं प्रधानमंत्री को बताऊं कि वे उच्चायुक्त के रूप में कितना अच्छा काम कर रहे हैं और भारतीय पत्रकारों द्वारा अपने अखबारों को भेजी जा रही प्रतिकूल रिपोर्टों में कोई सच्चाई नहीं है। मैंने नेहरू को उनके होटल से लिया और पूछा, 'महोदय, आप किस तरह की किताबें देखना चाहेंगे?' उन्होंने झट से जवाब दिया, 'पढ़ने के लिए किताबें, और क्या!' मैंने समझाने की कोशिश की कि कई किताबों की दुकानें अलग-अलग विषयों पर किताबें बेचती हैं - दुर्लभ किताबें, पूर्वी साहित्य, धर्म, दर्शन, यात्रा आदि। उन्होंने मेरी बात अनसुनी कर दी और ड्राइवर को ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट पर एक प्रसिद्ध किताबों की दुकान पर ले जाने का आदेश दिया। हम अपनी मंजिल पर पहुंचे। उन्हें पहचान लिया गया और बिक्री सहायकों ने उनकी खूब प्रशंसा की। उन्होंने कुछ किताबों पर नज़र डाली। जब एक सहायक ने उनसे पूछा कि क्या वे कुछ खास ढूंढ रहे हैं, तो उन्होंने जवाब दिया, 'बर्नार्ड शॉ।' शॉ का कुछ सप्ताह पहले ही निधन हो गया था और उनकी किताबों में लोगों की दिलचस्पी फिर से जाग उठी थी। शॉ की रचनाओं का संकलन किया गया और मैंने इंडिया हाउस की ओर से उन पर हस्ताक्षर किए। कुछ लोग नेहरू से उनके हस्ताक्षर लेने आए और उन्होंने खुशी-खुशी उन्हें हस्ताक्षर कर दिए। मैंने कविताओं की एक किताब खरीदी और उनसे उस पर हस्ताक्षर करवा लिए। खरीदारी का सिलसिला खत्म हुआ। होटल लौटते समय मैंने नेहरू से पूछा कि क्या उन्हें किताबें पढ़ने का समय मिलता है। 'बिल्कुल नहीं,' उन्होंने झट से जवाब दिया। नेहरू के प्रस्थान से दो शाम पहले उन्होंने लेडी माउंटबेटन को सोहो के एक ग्रीक रेस्तरां में दो लोगों के लिए सादे रात्रिभोज पर आमंत्रित किया। रेस्तरां के मालिक ने उन्हें पहचान लिया और अपने रेस्तरां का प्रचार करने के लिए प्रेस को फोन किया। अगली सुबह के अखबारों में दोनों की एक-दूसरे के करीब बैठे हुए तस्वीरें छपीं। मैं समझ गया कि मैं फिर से मुसीबत में हूँ। कार्यालय पहुँचते ही मुझे अपनी मेज पर मेनन का एक नोट मिला जिसमें लिखा था कि प्रधानमंत्री मुझसे तुरंत मिलना चाहते हैं। मैं तुरंत क्लेरिज होटल पहुँचा और मथाई से मिला। उन्होंने मशीनी अंदाज़ में कहा, 'अंदर जाओ।' मैंने घबराकर पूछा, 'क्या तुम्हें कुछ पता है कि वह मुझसे किस बारे में मिलना चाहते हैं?' उन्होंने कहा, 'बिल्कुल नहीं! वह खुद बता देंगे।' मैंने प्रधानमंत्री के दरवाजे पर धीरे से दस्तक दी और अंदर चला गया। वे कुछ फाइलों को देखने में व्यस्त थे। उन्होंने सिर उठाकर पूछा, 'जी?'

‘सर, आपने मुझे बुलवाया था।’

‘मैंने तुम्हें बुलवाया था? तुम कौन हो?’

‘सर, मैं लंदन में आपका पी.आर.ओ. हूँ।’

उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और कहा, 'प्रचार को लेकर आपके विचार अजीब हैं!'

नेहरू के जाने के तुरंत बाद मुझे नई दिल्ली बुलाया गया ताकि यूपीएससी द्वारा मेरी नियुक्ति की पुष्टि की जा सके। मेरे जैसे ही अन्य सभी लोगों को भी बुलाया गया था जिन्हें अलग-अलग देशों में भेज दिया गया था। मैंने सोचा था कि यह एक औपचारिक साक्षात्कार होगा: हम लगभग दो साल से सेवा में थे और जब तक पूरी तरह से अयोग्य साबित न हों, तब तक हमें बर्खास्त किए जाने की संभावना नहीं थी। मैं गलत था। साक्षात्कार में शामिल एक दर्जन से अधिक लोगों में से अधिकांश को अस्वीकार कर दिया गया। मैं भाग्यशाली लोगों में से था और मुझे अपने पद पर वापस लौटने के लिए कहा गया। इस यात्रा को गृह अवकाश के रूप में गिना गया।

मेटकाफ हाउस में हुए इंटरव्यू से लौटते समय मैं सब्जी मंडी से गुज़रा। सड़क पर आगे किसी तरह की झड़प होने के कारण जाम लगा हुआ था। मैंने ड्राइवर को गाड़ी रोकने को कहा और पता लगाने के लिए बाहर निकला। भीड़ में से एक ने मुझे बताया, 'हमने दो मुस्लिम सूअरों को गाय को कत्लखाने ले जाने की कोशिश करते हुए पकड़ा है।' मैं भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़ा और घटनास्थल के बीचोंबीच पहुँचा। वहाँ एक गाय और तीन आदमी - दो मुसलमान और एक सिख - लोहे की छड़ों और लंबे चाकुओं से लैस लोगों से घिरे हुए थे। सूट और टाई पहने मुझे देखकर वे लोग डर गए। मैंने गुस्से से पूछा, 'क्या हो रहा है?' मुझे बताया गया, 'ये दोनों कसाई हैं; इस सिख ने गाय इन्हें बेची है।' तीनों आदमी डर से काँप रहे थे। मुसलमानों को नंगा कर दिया गया था और उनका खतना किया गया था। उन्हें पीट-पीटकर और चाकू मारकर जान से मारने की योजना थी। सिख को पीट-पीटकर सबक सिखाने की योजना थी। मैंने कसाइयों के सामने अपने हाथ रख दिए और चिल्लाकर कहा, 'इन आदमियों को कोई हाथ नहीं लगाएगा! मैंने विभाजन के दौरान यह सब बहुत देखा है। इसे रोकना होगा।'

भीड़ मुझ पर बुरी तरह भड़क उठी। ‘क्या तुम्हें पता है कि ये लोग इस गाय को काटने वाले थे? तुम किस तरह के सिख हो?’ मैं अपनी जगह पर डटा रहा। ‘मैं तुम्हें इन्हें छूने नहीं दूंगा। अगर किसी ने छुआ तो मैं उसे गिरफ्तार करवा दूंगा। मैं सरकारी अधिकारी हूं।’ वे टस से मस नहीं हुए। लेकिन कोई भी पहल करने को तैयार नहीं था। मैंने एक रास्ता सोचा। ‘चलो इन्हें पुलिस स्टेशन ले चलते हैं और देखते हैं क्या कर सकते हैं।’ भीड़ ने मुझे वही करने दिया जो मैं चाहता था। मैं गाय को लेकर आगे बढ़ा और दोनों कसाइयों को गले लगा लिया; खून की प्यासी भीड़ ट्रामों में हमारे पीछे-पीछे आई और रास्ता साफ करने के लिए जोर-जोर से खड़खड़ाती हुई आगे बढ़ी। हम सब्जी मंडी पुलिस स्टेशन पहुंचे। मैंने प्रभारी इंस्पेक्टर, जो एक पंजाबी हिंदू थे, से अपना परिचय दिया और उनसे कसाइयों को हिरासत में लेने की गुहार लगाई। इस बीच सिख भीड़ में गायब हो गया था। ‘उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, मैं उन्हें क्यों गिरफ्तार करूं?’ उन्होंने पूछा। ‘उनकी जान बचाने के

लिए,' मैंने विनती की। वह अपनी बात पर अड़ा रहा। मैंने उसे अपने अधिकारी होने का डर दिखाया। उसे ज़रा भी परवाह नहीं थी। 'मुझे इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि तुम कौन हो या भीड़ इन लोगों के साथ क्या करेगी। इन्हें वही मिलेगा जिसके ये हकदार हैं।'

मैं गाय और कसाइयों के साथ भीड़ भरे बाज़ार से होते हुए तीस हज़ारी की ओर चल पड़ा, जहाँ एक पशु चिकित्सालय था। जब तक मैं वहाँ पहुँचा, भीड़ कम हो चुकी थी। पशुचिकित्सक सफ़ेद दाढ़ी वाला सिख था। मैंने उससे विनती की कि वह गाय को अपने कब्जे में ले ले और दोनों आदमियों को पशु क्रूरता के आरोप में गिरफ्तार कर ले। वह अपनी बात पर अड़ा रहा। 'मुझे गाय पर कोई चोट नहीं दिख रही है। और अगर वे इन साँपों को मारना चाहते हैं तो मैं उन्हें नहीं रोकूँगा,' यह कहकर वह चला गया। मैंने बचे हुए कुछ हत्यारों की ओर मुड़कर कहा, 'देखो, मैं गाय को यहीं छोड़ दूँगा और इन लोगों को ऐसी जगह ले जाऊँगा जहाँ मैं उन्हें उनकी करनी का सबक सिखा सकूँ।' वे मान गए, उनका सब्र टूट चुका था, उनका गुस्सा शांत हो गया था। मैंने गाय को खुला छोड़ दिया। वह खुली ज़मीन पर पूंछ उठाए दौड़ पड़ी, इंसानी बंधन से मुक्त होने की खुशी में अपने पिछले पैरों से लात मार रही थी। मैंने दोनों कसाइयों को अपनी कार में बैठने का आदेश दिया। 'तुम कहाँ रहते हो?' मैंने उनसे पूछा।

'Daryaganj.'

क्या आप लोगों को इस बात का एहसास नहीं है कि इन दिनों गायों का वध करना कितना खतरनाक है?

'जनाब, हमने दो दिन से कुछ नहीं खाया। हमने अपनी सारी जमा पूंजी लगाकर यह गाय खरीदी। अब हम बर्बाद हो गए हैं।' मैंने उन्हें दरियागंज में छोड़ दिया। वे अपने घर नहीं गए। मैंने देखा कि वे वापस मुड़कर अपनी खरीदी हुई गाय को ढूंढने चले गए।

मैं कोई बहादुर इंसान नहीं हूँ। खतरे के सामने मैंने जो साहस दिखाया था, उस पर मुझे खुद हैरानी हो रही थी। मैंने ड्राइवर से मुझे चांदनी चौक स्थित गुरुद्वारा सिसगंज ले जाने को कहा। अब तक मैंने पूजा स्थलों पर जाना छोड़ दिया था। सिसगंज नौवें गुरु, तेग बहादुर के वध स्थल को चिह्नित करता है। किंवदंती के अनुसार, उन्होंने हिंदुओं को अत्याचार से बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। दो मुसलमानों की जान बचाने वाले व्यक्ति के लिए यह सबसे उपयुक्त स्थान था। सिसगंज में मैंने गुरु के मकबरे पर मत्था टेका, जो एक भूमिगत कोठरी में है जहाँ उस बरगद के पेड़ का तना संरक्षित है जिसके नीचे उनका सिर कलम किया गया था। मैंने गुरु को धन्यवाद दिया कि उन्होंने मुझ जैसे कायर को सिखों के कर्तव्य को निभाने का साहस दिया। मैं भावुक हो गया; कृतज्ञता के आँसू मेरी आँखों में भर आए। जब मैं वहाँ से निकला, तो मेरे पैर काँप रहे थे। मैं बाल-बाल बचा था।

घर आकर मैंने बड़े गर्व से यह घटना सुनाई। प्रशंसा मिलने के बजाय, मेरे पिता के दोस्त सोहन सिंह, जो रावलपिंडी में उनके साथ रह रहे थे, ने मुझे 'बेवकूफ' और 'गधा' कहकर पुकारा। मेरी माँ इस बात से नाराज़ थीं कि मैंने अपनी जान जोखिम में डाल दी थी। मेरे पिता चुप रहे। मैं जानता था कि मुझे उस एक व्यक्ति की स्वीकृति मिली है जो मेरे लिए किसी और से ज़्यादा मायने रखता था।

दिल्ली में कुछ दिन बिताने के बाद मैं काम पर लौटने के लिए लंदन वापस आ गया। कनाडा से मंगाई गई मेरी ड्यूटी-फ्री स्कॉच व्हिस्की युद्ध के बाद के इंग्लैंड में बहुत काम आई, जहाँ स्कॉच व्हिस्की की बहुत कमी थी और लोग इसे पीने के लिए बेताब थे। मैं हर बुधवार को लल्ल के अपार्टमेंट में अपने मेहमानों का स्वागत करता था। कुछ को मैं आमंत्रित करता था, जबकि अन्य लोग बिना किसी पूर्व सूचना के ही आ जाते थे। मेनन तो नियमित रूप से आते थे क्योंकि मेरे अधिकांश मेहमान पत्रकार होते थे।

एक ऐसी ही पार्टी में हमारे मुख्य अतिथि प्रोफेसर सी.एम. जोआड थे, जिन्होंने अपनी किताबों, रेडियो पर अपनी प्रस्तुतियों और महिलाओं के प्रति अपने प्रेम की कहानियों के कारण प्रसिद्धि और बदनामी दोनों अर्जित की थी। 'एनी क्वेश्चन्स?' नामक एक श्रृंखला में अपनी एक प्रस्तुति के दौरान, उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर देकर दर्शकों को खूब हंसाया, 'जब एक महिला वाइसरीन को बेटा होता है तो कितनी तोपों की सलामी दी जाती है?' पैनल में केवल जोआड ने ही इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हाथ उठाया था। उन्होंने अपनी कर्कश आवाज में उत्तर दिया, 'मुझे नहीं पता कि कितनी तोपें दागी जाती हैं, लेकिन मुझे पता है कि ए.डी.सी. को बर्खास्त कर दिया जाता है।' जोआड एक मैले-कुचले, बेढंगे कपड़े पहने हुए, छोटी दाढ़ी वाले व्यक्ति थे। वे महिलाओं को 'क्या आप किसी सेलिब्रिटी के साथ बिस्तर पर जाना पसंद नहीं करेंगी?' कहकर लुभाने के लिए जाने जाते थे। जाहिर है, यह तरीका बहुत कारगर साबित हुआ। हालांकि, हाल ही में उन्हें बिना टिकट के ट्रेन में यात्रा करते हुए पकड़ा गया और उन पर जुर्माना लगाया गया। यह खबर सभी अखबारों के पहले पन्ने पर छपी थी।

जोआड ने हमारा निमंत्रण स्वीकार कर लिया; उन्हें पता था कि मैंने जाने-माने लेखकों और कवियों को आमंत्रित किया है। मुझे पता नहीं था कि मेनन को जोआद पसंद नहीं था। और दुर्भाग्य से मेनन और जोआद एक ही समय पर आ गए। मेनन तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़े (वह हमेशा दौड़कर ही चढ़ते थे) और जोआद को सुनाई देने जितनी ऊँची आवाज़ में बोले, 'अगर मुझे पता होता कि आपने उस आदमी को आमंत्रित किया है, तो मैं कभी आपकी पार्टी में नहीं आता।' वह मुझे आगे जाकर अपने मेहमानों से उनका परिचय कराने के लिए कहने के लिए सीढ़ियों पर रुक गए। इसके बजाय, मैं जोआद का ओवरकोट उतारने में मदद करने के लिए नीचे चला गया। जैसे ही हम सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, जोआद ने मुझसे ज़ोर से पूछा, 'क्या वह मेनन नहीं है?'

‘जी सर,’ मैंने उत्तर दिया।

‘वह यहाँ क्या कर रहा है? मुझे लगा था कि आपकी पार्टी लेखकों, कवियों और अन्य शिक्षित लोगों के लिए है।’
दोनों एक-दूसरे से बचते रहे। जोआड अपनी स्कॉच व्हिस्की पीने में मग्न हो गया और जल्द ही महिला प्रशंसकों से घिर गया। मेनन ने आर्थर लाल के साथ अकेले ही चाय का आनंद लिया।
मेनन एक जटिल व्यक्तित्व थे, मेरी मुलाकात अब तक के सबसे अप्रत्याशित और चिड़चिड़े इंसान। उनसे मेरी पहली मुलाकात लंदन-पेरिस ट्रेन में हुई थी, जब वे और रजनी पटेल किसी सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। डोवर में, वे और रजनी आव्रजन मंजूरी का इंतजार कर रहे यात्रियों की कतार तोड़कर आगे बढ़ गए। जब आव्रजन अधिकारी ने उन्हें वापस लाइन में जाने को कहा, तो मेनन ने उन पर नस्लीय भेदभाव का आरोप लगाया। अधिकारी ने उन्हें जाने दिया। मेनन को अश्वेत होने का बहुत दुख था और वे काल्पनिक नस्लीय अपमानों पर झगड़े मोल लेते थे। कुछ समय तक उन्होंने वकालत की पढ़ाई के लिए शाफ्ट और रामास्वामी के रेस्तरां में वेटर का काम किया था। उन्होंने वकालत तो नहीं की, लेकिन समाजवादी राजनेताओं से उनकी अच्छी जान-पहचान हो गई और वे पेलिकन पुस्तक श्रृंखला के संपादकों के पैनल में शामिल थे। उच्चायुक्त बनने तक वे हमेशा तंगहाली में रहे और किसी भी तरह की मेहमाननवाजी को सहर्ष स्वीकार करते थे। वे दुबले-पतले, मध्यम कद के और सांवले थे, उनकी नाक-नक्श तीखे थे और आंखें चमकीली थीं। उनका माथा चौड़ा था, उनके घुंघराले काले बाल कनपटी पर सफ़ेद हो रहे थे, नाक बड़ी थी और गाल की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। औरतें उन्हें आकर्षक मानती थीं। वे बहुत तनाव में रहते थे, उनका चेहरा कभी शांत नहीं रहता था और हर पल जीवंतता से फड़कता रहता था। वे हमेशा एक मशहूर दर्जी की दुकान से बने सूट पहनते थे। उन्हें दूसरों का खराब पहनावा बिल्कुल पसंद नहीं था। एक बार उन्होंने सुबह की अपनी सारी अपॉइंटमेंट रद्द कर दीं, मुझे अपने दर्जी के पास ले गए, कपड़ा चुना और मेरे लिए दो सूट नाप लिए। मुझे लगा कि वे मुझे तोहफे में दे रहे हैं और मैंने उनका बहुत-बहुत धन्यवाद किया। वे तोहफे नहीं थे; मुझे कई सौ पाउंड खर्च करने पड़े, लेकिन वे मेरे सबसे अच्छे सूट थे और बीस साल से ज़्यादा चले। मेनन पैसे के मामले में उदार नहीं थे, सिवाय अपनी महिला मित्रों और बच्चों के। उनके लिए भी, वे शायद ही कभी किसी एक को गुलाब के गुलदस्ते और दूसरे को सस्ते प्लास्टिक के खिलौने से ज़्यादा कुछ देते थे।
मेनन अपने दफ्तर के बगल वाले कमरे में सादगी से रहते थे। वे बहुत कम खाते थे, लेकिन मीठी चाय और नमकीन बिस्कुट से अपना पेट भर लेते थे। हालांकि, उन्हें उच्चायुक्त (स्वयं) के लिए रोल्स रॉयस और भारतीय आगंतुकों और इंडिया हाउस के अधिकारियों के लिए ऑस्टिन प्रिंसेस कारों का बेड़ा खरीदने में बड़ी रकम खर्च करने में कोई हिचक नहीं थी। उनकी सीमित ज़रूरतों को देखते हुए उन्हें धन जमा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर भी, उन्होंने ऐसा किया। उन्होंने अपने वेतन का एक पैसा भी खर्च नहीं किया, बल्कि अपनी इंडिया लीग के कई उप-संगठन स्थापित किए और धनी भारतीयों और अपने अंग्रेज़ मित्रों से अपने संगठनों के लिए दान के रूप में धन प्राप्त किया; बदले में, उन्होंने बाद वालों को भारत को

हथियार आपूर्ति करने के ठेके दिए। व्यापारिक मामलों में उन्हें कोई संकोच नहीं था। वे जन्मजात झूठे भी थे और सच को भोले-भाले लोगों के लिए पर्याप्त और झूठ को दिमाग के लिए सबसे अच्छा व्यायाम मानते थे।

मेनन की किसी भी प्रस्ताव पर पहली प्रतिक्रिया उसे अस्वीकार करना होती थी। जो लोग उन्हें बेहतर तरीके से जान लेते थे, वे अपने प्रस्तावों को नकारात्मक रूप में देना सीख जाते थे और हमेशा उनकी अस्वीकृति से ही उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेते थे। उन्होंने एक कर्मठ व्यक्ति के रूप में अपनी छवि बना ली थी। वे लंबे समय तक काम करते थे और अपना समय छोटी-मोटी बातों में बर्बाद करते थे, जैसे कैंटीन के मेनू की जाँच करना और कार्यालय की कारों द्वारा उपयोग किए जाने वाले पेट्रोल की मात्रा का हिसाब रखना। उन्होंने मुझे कई रातों तक कार्यालय में सोने के लिए मजबूर किया। इतना काम कभी नहीं होता था कि मुझे इस असुविधा के लिए मजबूर किया जाए। वे जानते थे कि मुझे खेलों का बहुत शौक है और मैं शनिवार की दोपहर का बेसब्री से इंतजार करता था, जब मैं टेनिस या हॉकी खेलता था। बिना चूके, वे शनिवार को दोपहर के भोजन से पहले मुझे फोन करते और दोपहर में होने वाली अपनी किसी बैठक में शामिल होने के लिए कहते। उनमें क्रूरता की प्रबल प्रवृत्ति थी।

मेनन के गुस्सैल स्वभाव और बदतमीज़ी को देखकर ही यकीन किया जा सकता था। कई लोगों की तरह, उनका गुस्सा भी सुबह के समय सबसे ज़्यादा होता था, जब उनके पेट में गैस बनना शुरू नहीं होती थी। मैंने उन्हें जगन्नाथ खोसला के चेहरे पर फाइल फेंकते और चिल्लाते हुए देखा, 'क्या तुम्हारे दिमाग में थोड़ी भी अक्ल है? निकल जाओ!' फिर उन्होंने अपना सिर हाथों के बीच रखकर खुद को शांत किया और मुझसे पूछा, 'मुझे उनसे इस तरह बात नहीं करनी चाहिए थी। क्या मुझे करनी चाहिए थी?' मैंने मान लिया कि उन्होंने एक वरिष्ठ अधिकारी के साथ थोड़ी बदतमीज़ी की थी। उन्होंने खोसला को वापस बुलाया और माफ़ी मांगी। खोसला ने जवाब दिया, 'महोदय, आपके हाथों डांट खाना मेरे लिए सम्मान की बात है।' एक सुबह जब मेनन को एक लंबी दूरी की कॉल नहीं लगी, तो वे ऑपरेटर पर चिल्लाए। उस साहसी अंग्रेज़ लड़की ने पलटकर कहा, 'मुझसे इस तरह बात करने की हिम्मत मत करना! मैं नौकरी छोड़ रही हूँ। तुम अपनी घटिया नौकरी अपने पास रखो।' मेनन सीढ़ियों से नीचे भागे, उस गुस्से वाली लड़की को गले लगाया और माफ़ी मांगी। एक बार मैं ऑब्ज़र्वर के मालिक डेविड एस्टोर और उनके सहायक विलियम क्लार्क को उनसे मिलवाने लाया। उन्होंने अंग्रेजों को लुटेरों की नस्ल कहा। लिफ्ट से नीचे आते समय डेविड ने मुझसे कहा, 'मेनन के लिए जनसंपर्क का काम करना तो आपके लिए बड़ा काम होगा!' उनके डिप्टी अशोक चंदा, मेनन की इस आदत को जानते हुए कि अगर बाद में उन्हें अपनी कही बात शर्मनाक लगे तो वे उसे नकार देते हैं, इस बात पर ज़ोर देते थे कि वे अपने सभी आदेश लिखित में दें। वे अक्सर मेरे दफ्तर में आते और गर्व से कहते, 'हम शाला को फैले में ऐसा मारा! भूलेगा नहीं' - मैंने उस आदमी को, जिसकी बहन के साथ मैंने संबंध बनाए,

फाइल में ऐसी बुरी तरह से लताड़ा कि वो इसे कभी नहीं भूलेगा। हमारे कानूनी सलाहकार सर धीरेन मित्रा कभी अपना आपा नहीं खोते थे। वे शांति से अपनी पाइप पीते रहते और मेनन को 'पागल है' कहकर टाल देते थे।

मेनन के नखरों को चुपचाप सहने वालों को भरपूर इनाम मिला। इनमें सबसे नाटकीय घटना ब्रिगेडियर हरनारायण सिंह और उनकी पत्नी रानी की थी। मेनन को ब्रिगेडियर से तुरंत नफरत हो गई। ब्रिगेडियर खुद को पंजाब के फिल्लौर के पास स्थित एक छोटी सी जमींदारी, मोरोन का मुखिया बताते थे। मेनन हमेशा उन्हें मोरोन का मुखिया कहकर ही संबोधित करते थे। ब्रिगेडियर को अंग्रेजी शब्द का अर्थ नहीं पता था और वे अपनी नाक से निकलने वाली कर्कश आवाज में कहते थे, 'महोदय, आजकल ऐसी उपाधियों की परवाह कौन करता है!' उनकी पत्नी रानी भी खुद को कुलीन कहलाना पसंद करती थीं। वे रावलपिंडी के एक धनी जमींदार सरदार सोहन सिंह की बेटी थीं। रानी नाम से ही उनके कुलीन होने की धारणा पुष्ट होती थी। मेनन को पता चला कि रानी कमला जसपाल के साथ उनके संबंध के बारे में अफवाहें फैला रही थीं। उन्होंने रानी को कार्यालय में बुलाया, उन्हें जमकर फटकारा और गाली दी। बहुत रोती हुई रानी ने माफी मांगी। इसके बाद, दंपति ने कमला जसपाल को रिझाने के लिए अथक प्रयास किए और मेनन के पसंदीदा बन गए। दो अन्य वरिष्ठ अधिकारी, कैप्टन श्रीनिवासन और प्रथम सचिव डी.एन. चटर्जी, जिनके साथ बेहद बुरा बर्ताव किया गया, लेकिन उन्होंने बिना किसी विरोध के इसे सहन कर लिया। श्रीनिवासन, जो विवाहित थे और उनके बच्चे थे, ने अपनी आकर्षक अंग्रेज़ स्टेनोग्राफर को गर्भवती कर दिया। मेनन ने जब उस बेचारे नौसेना कैप्टन से कई तरह की रिश्वतें लीं, तब जाकर उन्होंने उसे अपनी भारतीय पत्नी को तलाक देने, गर्भवती अंग्रेज़ लड़की से शादी करने और अपनी नौकरी बरकरार रखने की अनुमति दी। चटर्जी ने अपनी बंगाली पत्नी (जो लॉर्ड सिन्हा की संतान थीं) को तलाक दे दिया था और एक बेल्जियम की उत्तराधिकारी से शादी करना चाहते थे। विदेश सेवा के नियमों के अनुसार, उनके आवेदन पर विचार करने से पहले उन्हें अपना इस्तीफा देना आवश्यक था। मेनन द्वारा उनके आवेदन को स्वीकार करने की सिफारिश के साथ आगे बढ़ाने से पहले चटर्जी को महीनों तक अपमान सहना पड़ा। चटर्जी राजदूत के पद से सेवानिवृत्त हुए।

मेनन के लिए योग्यता का कोई खास महत्व नहीं था; उनके लिए अटूट वफादारी ही सबसे मायने रखती थी। उन्होंने प्रधानमंत्री को राजी कर लिया कि इंग्लैंड में रहने वाले विदेश सेवा के आवेदकों का साक्षात्कार लेने के लिए एक पैनल गठित किया जाए। उन्होंने हेरोल्ड लास्की को अपने साथ अध्यक्ष नियुक्त करवाया और एक अन्य व्यक्ति को पैनल का गठन करने के लिए नियुक्त किया। पैनल ने पी.एन. हक्सर (एकमात्र योग्य उम्मीदवार), जगन नाथ खोसला, कमला जसपाल और रुक्मिणी मेनन (एक क्लर्क और सैन्य परिचारिका विभाग में एक कनिष्ठ अधिकारी की बहन) का चयन किया। बाद में उन्होंने केकी दरशाह और पृथ्वी सिंह (जिनकी पत्नी अंग्रेज थीं) को भी अधीनस्थ विदेश सेवा में भर्ती करवा

दिया। उन्होंने मुझसे भी इसी तरह के वादे किए; वे मुझे संसद में निर्वाचित करवाएंगे और शायद सरकार में मंत्री भी बना देंगे। लेकिन मेनन के चहेते के रूप में मेरे दिन तेजी से समाप्त हो रहे थे।

मेनन ने मेरे साथ कभी भी बदतमीज़ी नहीं की। कई महीनों तक मुझे उनकी विशेष कृपा प्राप्त रही और मेरे सहकर्मी जो उनसे काम करवाना चाहते थे, वे मुझे माध्यम बनाकर इस्तेमाल करते थे। मैं उनके साथ इंग्लैंड के दूर-दराज के शहरों में गया जहाँ उन्हें भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया था। कमला जसपाल ने मुझे उनकी व्यक्तिगत ज़रूरतों के बारे में बताया था। मुझे जो सामान ले जाना पड़ता था, उनमें नींबू पानी की बोतलें भी शामिल थीं: वे रात को सोने से पहले एक गिलास पीते थे।

हालाँकि उनकी अंग्रेज़ी में मलयाली लहजा बहुत ज़्यादा था, फिर भी वे एक हास्य-व्यंग्यशील वक्ता थे। वे अंग्रेज़ों और उन लोगों के प्रति तीखे व्यंग्य और कटाक्ष से भरे रहते थे जो उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। इंग्लैंड में प्रशिक्षण ले रहे वरिष्ठ सेना, नौसेना और वायु सेना अधिकारियों के साथ अपनी पहली मुलाकात में, उन्होंने उन्हें 'मैकाले के बच्चे' कहकर संबोधित किया। उन्हें अन्य वक्ताओं का उनसे बेहतर प्रदर्शन करना पसंद नहीं था और उन्हें मात देने के लिए वे कभी-कभी बचकाना व्यवहार भी करते थे। एक बार, लीड्स में मास्टर कटलर्स के सम्मेलन में बोलते हुए, वे अपने तीखे अंदाज़ में थे और उन्होंने अपने श्रोताओं को खूब हंसाया: अंग्रेज़ों को खुद पर हंसना अच्छा लगता है। दुर्भाग्य से मेनन के लिए, धन्यवाद प्रस्ताव के लिए खड़े हुए मुख्य मेज़बान मेनन से बेहतर वक्ता निकले। उनके चुटकुलों और किस्सों पर तो और भी ज़ोरदार तालियाँ बजीं। मैंने मेनन को एक वेटर को इशारा करके एक और कप चाय माँगते हुए देखा। जैसे ही वक्ता अपने भाषण के चरम पर पहुँच रहे थे, मेनन ने काँपते हाथों से अपना कप उठाया। जैसे ही वक्ता अपना मुख्य भाषण देने वाले थे, मेनन के हाथ से प्याला गिर गया और चाय मेज पर फैल गई। मुख्य भाषण अधूरा रह गया और भोज अचानक समाप्त हो गया।

मेनन के साथ मेरा सबसे यादगार अनुभव डबलिन की यात्रा थी, जहाँ हमें एक दूतावास का उद्घाटन करना था - आयरलैंड का पहला पूर्ण राजनयिक मिशन। मेनन ने अपने रक्षा सहायकों और उनकी पत्नियों को साथ ले जाने का फैसला किया। मुझे भी उनके दल में शामिल किया गया और मेरी पत्नी को भी साथ लाने के लिए कहा गया। डबलिन हवाई अड्डे पर हमारे दल का गार्ड ऑफ ऑनर के साथ स्वागत किया गया। हमें डबलिन के सबसे आलीशान होटल में ठहराया गया। अगली सुबह मेनन को आयरलैंड के राष्ट्रपति को अपना परिचय पत्र प्रस्तुत करना था। सुबह-सुबह मेरा फोन बजा। बहुत बीमार लग रहे मेनन का फोन था, जो मुझे तुरंत अपने कमरे में आने के लिए कह रहे थे। मैंने उन्हें बिस्तर पर कराहते हुए पाया। 'मैं बहुत बीमार हूँ,' वे कराहते हुए बोले, 'आज के सारे कार्यक्रम रद्द कर दीजिए।' मैं दंग रह गया। 'महोदय, उन्होंने ज़रूर बहुत तैयारी की होगी। मैं होटल के डॉक्टर को बुलाता हूँ और देखता हूँ कि उनका क्या कहना है।'

‘क्या तुम्हें दिख नहीं रहा, मैं बीमार हूँ?’ वह गुर्राया। मैंने होटल के डॉक्टर को बुलाया। वह मेनन की बीमारी का कोई निदान नहीं कर सका, सिवाय इसके कि शायद वह थकावट से पीड़ित थे। मेनन को शांत करना असंभव था। ‘चीफ ऑफ प्रोटोकॉल को लाइन पर लाओ।’ जब मैं सही नंबर ढूंढने की कोशिश कर रहा था, तभी हमें खिड़की के नीचे मार्च करते कदमों की आहट सुनाई दी। ‘यह क्या है?’ मेनन ने पूछा। मैंने बाहर देखा। ‘सैनिक आ रहे हैं। मुझे लगता है कि वे आपको राष्ट्रपति भवन तक ले जाने वाले हैं।’ मेनन को थोड़ा बेहतर महसूस होने लगा। वह दाढ़ी बनाने और दांत साफ करने के लिए बाथरूम गए। जब वह बाहर आए तो हमें सड़क पर एक सैन्य बैंड की आवाज़ सुनाई दी जो होटल के बाहर आकर रुक गया। मेनन ने अपनी खिड़की से एक नज़र डाली। उन्होंने काली शेरवानी और चूड़ीदार पहने और मुझसे कहा, ‘सरदार, जाओ और कपड़े पहन लो। हमारे पास ज्यादा समय नहीं है।’

मेनन अब पूरे जोश में थे। हमें एक बैंड और सैनिकों की टुकड़ी के नेतृत्व में एक काफिले में ले जाया गया। उत्सुक डबलिनवासी सड़कों के किनारे खड़े थे और मेनन ने उन्हें हाथ हिलाकर अभिवादन किया। परिचय पत्र प्रस्तुत किए गए और स्वीकार कर लिए गए। राष्ट्रपति डगलस ने मेनन को दोपहर में अपने घर चाय पर आमंत्रित किया और मेनन ने मेरी पत्नी और मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा। हमें किताबों से भरे एक अध्ययन कक्ष में ले जाया गया, जहाँ अंगीठी में पीट की आग सुलग रही थी। राष्ट्रपति ने भारत के बारे में विनम्रतापूर्वक पूछताछ की। मेनन ने भारत के खनिज और जलविद्युत संसाधनों, उसके उद्योगों और कृषि क्षमता के बारे में एक लंबा भाषण दिया। राष्ट्रपति ने इसे चुपचाप सुना। अपने लंबे भाषण के अंत में, मेनन ने राष्ट्रपति से पूछा कि आयरलैंड कैसा चल रहा है। राष्ट्रपति ने धीमी आवाज में कहा, 'कुछ खास नहीं। हमारे पास कवियों, उपन्यासकारों और नाटककारों जैसी अदृश्य वस्तुओं के अलावा निर्यात करने के लिए कुछ खास नहीं है।'

उस शाम हमने आयरलैंड के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विपक्ष के नेताओं के लिए एक स्वागत समारोह आयोजित किया। उपस्थित लोगों में एमोन डी वैलेरा भी थे। स्वागत समारोह के बाद, हम यूरोपीय शास्त्रीय संगीत के एक संगीत कार्यक्रम में अतिथि थे। जब हमें हमारे बॉक्स की ओर ले जाया जा रहा था, तभी लाउडस्पीकर पर घोषणा हुई कि आयरलैंड के पहले विदेशी राजदूत आ गए हैं। दर्शक तालियाँ बजाने के लिए खड़े हो गए। एक प्रकाश किरण भीड़ भरे हॉल में मेनन को ढूंढने के लिए घूमी। लेकिन वह किरण उन पर नहीं, बल्कि मुझ पर पड़ी - अपनी पगड़ी और दाढ़ी के साथ, मैं अपने दल में किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में अधिक वास्तविक भारतीय दिख रहा था। मैंने पीछे की पंक्ति में जाकर किरण से बचने की कोशिश की, लेकिन किरण मेरा पीछा करती रही। मेनन मेरी बेचैनी का आनंद ले रहे थे और मुझे आगे धकेलते रहे। दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट का कोई जवाब नहीं दे पाया।

पहले तो इंडिया हाउस मुझे बहुत परेशान करता था, लेकिन कुछ अच्छे पलों की वजह से ऐसा नहीं हो पाया। मेरी पोस्टिंग के दौरान दो बार मेरे माता-पिता गर्मियों की छुट्टियां बिताने हमारे साथ बिताने आए। मैं उन्हें अपने परिवार के साथ आइल ऑफ वाइट ले गया। किसी महामारी के डर से होटल में लगभग हम ही थे। बैंड ने हमारी पसंद का संगीत बजाया; मेरा बेटा राहुल और बेटी माला मंच पर गए और बैंड के साथ गाना गाया। मेरी माँ के सबसे खुशी के पल एम्यूज़मेंट आर्केड में थे, जहाँ उन्होंने 'हंसते हुए नाविक' के स्लॉट में कई छह-पैसे के सिक्के डाले। जैसे ही वह ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा, मेरी माँ भी इतनी ज़ोर से हँसने लगीं कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। लंदन वापस आकर मैडम तुसाद जाना ज़रूरी था। मैंने उनके लिए बकिंघम पैलेस में चाय पर आमंत्रित होने का भी इंतज़ाम किया। मेरे पिता के लिए, इंग्लैंड की उनकी यात्रा का यह हमेशा सबसे यादगार पल होता था। वे अपने परिचित सेवानिवृत्त वायसराय, गवर्नरों और कमिश्नरों से मिले। मेरे पिता ने अंग्रेजी थिएटर की बहुत प्रशंसा सुनी थी और चाहते थे कि मैं उन्हें कोई नाटक दिखाने ले जाऊँ। तब तक उनके कान कमजोर हो चुके थे और मेरी माँ को अंग्रेज़ी बिल्कुल नहीं आती थी। मैं उन्हें विंडमिल थिएटर ले गया, जो अपने टॉपलेस डांसरों और अश्लील चुटकुलों के लिए मशहूर था। मेरी माँ प्रदर्शन के दौरान खाने के लिए अंगूरों से भरा एक थैला ले गई थीं। वह बार-बार अपने कागज़ के थैले को खड़काती रहीं और हमारे आस-पास बैठे लोगों को परेशान करती रहीं। कहानीकार के अपनी कहानी को चरम पर ले जाने के प्रयासों से बेखबर, वह ज़ोर से 'थू' की आवाज़ करते हुए अंगूरों की गुठलियाँ थैले में थूकती रहीं। आधा शो देखने के बाद, मैंने उन्हें घर ले जाने का फैसला किया। उन्होंने धन्यवाद के तौर पर मुझसे पूछा, 'क्या तुम हर हफ्ते इन बेशर्म (निर्लज्ज) नंगी लड़कियों को देखने आते हो?'
अगली बार जब वे आए, तो मैं उन्हें बॉर्नमाउथ के ब्रैंक्सोम टॉवर होटल ले गया। यह मेरे पिता को बहुत पसंद आया, क्योंकि उन्हें ऐसे उच्चवर्गीय स्थान पसंद थे जहाँ लोग खाने के लिए सज-धज कर आते थे और खाने के साथ फ्रेंच वाइन मंगाते थे।

मेनन के साथ मेरे संबंधों में खटास लाने वाली कोई खास घटना नहीं हुई थी। जिन दो महिलाओं से वह करीबी थे, उनमें से ब्रिजेट के साथ मेरी दोस्ती ज़्यादा गहरी हो गई थी। ब्रिजेट मेनन के कमला जसपाल के प्रति आसक्ति से बहुत परेशान थी। वह कमला को एक धूर्त औरत मानती थी जिसने मेनन का नाम खराब किया था। मैंने यह बात मेनन को बताकर गलती कर दी थी। उन्होंने मुझे नज़रअंदाज़ कर दिया और कहा कि मैं अपने काम से मतलब रखूँ। फिर मैनचेस्टर गार्जियन में कश्मीर पर एक टिप्पणी छपी। मेनन और हक्सर ने जवाब तैयार किया; प्रेस अटैची होने के नाते मेरे हस्ताक्षर के लिए भेजा गया। मैं भी ऐसा ही जवाब लिख सकती थी—और शायद बेहतर शब्दों में—लेकिन मुझसे सलाह तक नहीं ली गई। अखबार में पत्राचार जारी रहा। कुल मिलाकर, मैंने तीन ऐसे पत्रों पर हस्ताक्षर किए जो मैंने लिखे ही नहीं थे। मुझे अपमानित महसूस हुआ और मैंने कार्यालय में सभी को अपनी नाराज़गी ज़ाहिर कर दी। फिर, मुझसे सीधे बात करने के बजाय, मेनन ने कमला

जसपाल के माध्यम से अपने आदेश देने शुरू कर दिए। मैंने उनसे कहा कि वे मुझे संदेश न दें क्योंकि मैं हमेशा फोन पर उच्चायुक्त के लिए उपलब्ध थी। मेनन ने मुझ पर कमला के प्रति असभ्य व्यवहार करने का आरोप लगाया। उस समय उसका मोह कमला के प्रति चरम पर था।

मेरी पत्नी के साथ मेरे रिश्ते भी बिगड़ गए थे। लगभग हर शाम हमारा झगड़ा होता था। अगर वह मुझसे नाराज़ होती, तो मैं भी उससे नाराज़ हो जाता। बचने का एकमात्र रास्ता परिवार को वापस भारत भेजना था।

उस समय मेरी लघु कथाओं का पहला संग्रह, 'विष्णु का चिह्न और अन्य कहानियां', जो काफी हद तक लाहौर में वकील के रूप में बिताए मेरे दिनों पर आधारित था, सैटर्न प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ। इसकी बिक्री बहुत अच्छी नहीं हुई, लेकिन साहित्यिक पत्रिकाओं में इसकी खूब समीक्षाएं हुईं। हालांकि मेरे पास दो सौ प्रतियां बिना बिके रह गईं, फिर भी मुझे लगा कि यह प्रयास सफल रहा क्योंकि कई कहानियां 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' में इसके आयरिश संपादक, शॉन मैंडी द्वारा प्रकाशित की गईं। मेरे मन में और भी कई रचनाएं करने की इच्छा थी - सिख धर्मग्रंथों के कुछ अनुवाद, सिखों का एक संक्षिप्त इतिहास और भारत के विभाजन पर आधारित एक उपन्यास। मेरे पास इंग्लैंड में छह महीने बिताने के लिए पर्याप्त धन जमा था। मैंने अपनी पत्नी को नौकरी छोड़ने और इंग्लैंड में अकेले लेखन को अपना पेशा बनाने के अपने फैसले के बारे में बताया। उसने कोई टिप्पणी नहीं की।

मैंने परिवार और नौकरों के लिए बॉम्बे जाने वाली एक पी एंड ओ नाव में टिकट बुक कराया। गोविंद (ऑल अबाउट एच. हैटर) देसानी ने मुझे हैम्पस्टेड हीथ के एक छोर के पास हाईगेट में एक बेसमेंट फ्लैट दिलाया। मैंने अपना निजी सामान और किताबें इस फ्लैट में स्थानांतरित कर दीं और टिलबरी में परिवार को विदा किया। मुझे सरकार को तीन महीने का नोटिस देकर इस्तीफा देना था; तीन महीने की छुट्टी मेरी बाकी थी, इसलिए अगली सुबह मैंने छुट्टी के लिए आवेदन किया और मंजूरी का इंतजार किए बिना ही पद छोड़ दिया। मैं एक लंबे सप्ताहांत के लिए ब्रैंक्सोम टावर्स होटल चला गया, जहाँ मैं पहले अपने माता-पिता और परिवार को छुट्टी मनाने ले गया था। यह बहुत कष्टदायक प्रवास था। मुझे अपने बच्चों की लॉबी और बगीचे में दौड़-भाग की बहुत याद आ रही थी। मैं जानता था कि मैंने अंधेरे में छलांग लगाई है, मुझे नहीं पता कि मैं कहाँ पहुँचूँगा। मैंने एक अच्छी नौकरी छोड़ दी थी, जिससे मुझे अंततः किसी देश में राजदूत का पद मिल जाता। मुझे यह सोचने का कोई आधार नहीं था कि मैं लेखन से अपना जीवन यापन कर सकता हूँ। जब मेरा पैसा खत्म हो जाएगा, तो मुझे फिर से अपने पिता की दी हुई संपत्ति पर जीना पड़ेगा। मैं खुद को यह याद दिलाता रहता था कि मुझे जीने के लिए सिर्फ एक ही जीवन मिला है; कार्यालय में मैं जो कर रहा हूँ, वही मेरे उत्तराधिकारी भी करेंगे। उन्हें भी साल में एक बार बकिंघम पैलेस में आमंत्रित किया जाएगा, उन्हें 'महामहिम' कहकर संबोधित किया जाएगा, वे भी मुफ्त शराब पिएंगे और गुमनामी

में चले जाएंगे। हो सकता है मैं एक लेखक के रूप में असफल साबित हो जाऊं, लेकिन यह जोखिम उठाना उचित था। अब पीछे मुड़कर देखने का कोई फायदा नहीं था।

मैं अपने हाईगेट फ्लैट में बस गया और काम में जुट गया। मुझे एहसास हुआ कि लेखन की इस बेहद प्रतिस्पर्धी दुनिया में अपनी पहचान बनाने के लिए किसी एक विषय पर विशेषज्ञता हासिल करना ज़रूरी है। मैंने सिख धर्म और इतिहास को अपना सबसे अच्छा विषय चुना। इंग्लैंड या अमेरिका में किसी भी सिख ने इस विषय पर कुछ भी प्रकाशित नहीं किया था: सभी तथाकथित सिख विशेषज्ञ अंग्रेज़ थे। मेरा पालन-पोषण एक सिख परिवार में हुआ था और मुझे कई प्रार्थनाएँ रटी हुई थीं, भले ही मुझे उनके अर्थ नहीं पता थे। संत भाषा, जिसमें अधिकांश ग्रंथ लिखा गया था, की मेरी शब्दावली बहुत अपर्याप्त थी। मैंने ट्रम्प और मैकॉलिफ द्वारा किए गए पुराने अनुवादों वाला एक पंजाबी-अंग्रेज़ी शब्दकोश खरीदा और गुरु नानक की सुबह की प्रार्थना जपजी का पद्य में अनुवाद करना शुरू किया। जब यह पूरा हो गया, तो मैंने इसे अपने मित्र गाय विंट को दिखाया, जो ऑब्ज़र्वर और मैनचेस्टर गार्जियन दोनों के लिए फ्रीलांसिंग कर रहे थे और साथ ही ऑक्सफोर्ड के सेंट एंथोनी कॉलेज में पढ़ाते भी थे। उन्होंने न केवल इसे बेहतर बनाने के लिए कुछ सुझाव दिए, बल्कि प्रोबस्थैन को इसे प्रकाशित करने के लिए भी राजी कर लिया।

मैंने प्रकाशित रचनाओं पर आधारित सिखों का एक संक्षिप्त इतिहास लिखा, जिसे मैंने अद्यतन किया। मैंने इसमें अपनी भविष्यवाणी भी जोड़ी कि यदि युवा सिखों द्वारा खालसा धर्म के प्रतीकों (बाल और दाढ़ी न मुंडवाने) को छोड़ने की गति जारी रही, तो सदी के अंत तक सिख धर्म का खालसा स्वरूप लुप्त हो जाएगा और सिख, जैन और बौद्धों की तरह, हिंदू धर्म की मुख्यधारा में समाहित हो जाएंगे। इसे एलन एंड अनविन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह कोई गहन पुस्तक नहीं थी और इसमें कुछ ऐतिहासिक त्रुटियाँ और मुद्रण संबंधी कमियाँ भी थीं। हालाँकि, कई दशकों बाद इस विषय पर पहली पुस्तक होने के कारण, ब्रिटिश प्रेस में इसकी व्यापक समीक्षा हुई। इसने भारत में रूढ़िवादी सिख समुदायों में भी काफी हलचल मचा दी। मैं कौन होता हूँ यह कहने वाला कि सिख लुप्त हो जाएँगे, जबकि अंतिम सिख गुरु ने भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्य में दुनिया का अधिकांश भाग सिख धर्म को अपना लेगा?

अब मुझे एक लेखक के रूप में थोड़ा और आत्मविश्वास महसूस होने लगा था। मैंने नए दोस्त बनाए जिनसे मेरा मनोबल बढ़ा। उनमें से एक अमेरिकी महिला स्टेला अलेक्जेंडर थीं, जो एक ब्रिटिश राजनयिक की तलाकशुदा पत्नी थीं। वह प्रभावशाली लोगों से मेलजोल रखती थीं और मेरे द्वारा दी गई शैंपेन से पार्टियां आयोजित करती थीं ताकि मुझे अपने जान-पहचान वालों से मिलवा सकें। उनमें एडमंड लीच (बाद में किंग्स कॉलेज, कैम्ब्रिज के रेक्टर और नाइट की उपाधि प्राप्त करने वाले) और उनकी पत्नी सीलिया, जो एक चित्रकार और उपन्यासकार थीं, भी शामिल थे। उन्होंने मुझे हर्टफोर्डशायर में अपने कॉटेज में रहने के लिए आमंत्रित किया। मैं उनके साथ सप्ताहांत बिताने लगा और उनके दो बच्चों, लुइसा और

अलेक्जेंडर का चहेता बन गया। उनके घर में मेरी मुलाकात एलिजाबेथ बॉट से भी हुई, जो लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में समाजशास्त्र की पढ़ाई कर रही एक युवा कनाडाई लड़की थीं। हालांकि वह थोड़ी रूढ़िवादी थीं, मोटे चश्मे पहनती थीं और उनके बाल बिखरे हुए थे, फिर भी मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। वह बेहद बुद्धिमान थीं और उन्होंने मेरी कहानियां और सिख इतिहास पर लिखी पांडुलिपि पढ़ी। मैं अब दूसरों की तुलना में उनके निर्णय पर अधिक भरोसा करने लगा था। उन्हें अच्छे भोजन, वाइन और शास्त्रीय यूरोपीय संगीत की गहरी समझ थी। उन्होंने ही मुझे मनोचिकित्सा से परिचित कराया। मैंने एरेउड और जंग की पुस्तकें पढ़ी थीं, और उन्होंने मुझे मेलानी क्लेन की किताबें दीं। इनसे मेरे लिए नए रास्ते खुल गए। लीचेस और एलिजाबेथ बॉट ने मुझे निराशा और अनिश्चितता के महीनों से उबरने में सहारा दिया।

इंडिया हाउस को अंतिम विदाई देने का समय आ गया था। जमाल किदवई ने मेरी जगह ले ली थी। जब मैं उनसे विदा लेने गया, तो उन्होंने मुझे बताया कि मेनन मेरे लिए विदाई पार्टी देना चाहते हैं। मैंने उन्हें साफ-साफ कह दिया कि मुझे कोई पार्टी नहीं चाहिए और मैं मेनन से मिलना भी नहीं चाहता। उन्होंने मुझसे विनती की और कहा कि वे पार्टी दे देंगे और मेनन बस कुछ पलों के लिए ही आएंगे। मैं जानता था कि मेनन ऐसा कुछ नहीं करेंगे, फिर भी मैं किदवई की पार्टी में आने के लिए तैयार हो गया। अनिच्छा से ही सही, मैं भी मेनन से मिलने गया। वे विनम्र थे और उन्होंने कहा कि हमारी गलतफहमी के बावजूद वे मुझे अपना दोस्त मानते हैं। जाते समय मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया, 'तुम्हारे कोई दोस्त नहीं हैं।' जैसा कि मैंने अनुमान लगाया था, मेनन विदाई पार्टी में नहीं आए। किदवई ने उनकी ओर से माफी मांगते हुए कहा कि मेनन बीमार हैं और बिस्तर पर हैं। लेकिन मैंने उन्हें तेजी से सीढ़ियों से नीचे उतरते और अपनी रोल्स रॉयस में बैठते देखा: झूठ बोलना मेनन की दूसरी प्रकृति थी और यह उनके लिए असभ्यता की तरह ही आसान था।

पंडित नेहरू के संरक्षण में मेनन जिस मुकाम तक पहुंचे, वह आज भी अनसुलझा है और शायद आगे भी अनसुलझा ही रहेगा। पंडित जी ने उन्हें संसद के लिए निर्वाचित कराया और संयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करने के लिए भेजा। कश्मीर पर उनके तेरह घंटे के लंबे भाषण ने भारत को सर्वसम्मति से इसके खिलाफ मतदान करने के लिए राजी कर लिया। इसके बाद उन्हें मंत्रिमंडल के लगभग सभी सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध रक्षा मंत्री बनाया गया। उन्होंने वरिष्ठ अधिकारियों की अनदेखी करते हुए अपने चहेतों को पदोन्नत करके सेना के अनुशासन को ध्वस्त कर दिया। जो लोग उनके खिलाफ खड़े हुए, उनके प्रति वे प्रतिशोधी थे। 1962 में चीन के हाथों हमारी सेना की अपमानजनक पराजय के लिए वे सबसे अधिक जिम्मेदार थे। पंडित नेहरू अंत तक उनके साथ खड़े रहे।

मैंने मेनन से आखिरी बार फोन पर बात की थी। मैं उस समय लंदन में इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में काम कर रही थी। मैं शीला लाल के साथ एक फ्लैट में रहती थी। हमारा एक साझा टेलीफोन था। हर रात वह अपने कई प्रेमियों में से किसी एक के साथ बाहर होती थी। टेलीफोन की घंटी बजी, लेकिन जब मैंने उसे उठाया और 'हैलो' कहा, तो वह कट गया। मैंने शीला

से शिकायत की। उसने कहा, 'यह कृष्णा होगा। वह मुझे अपनी रखैल बनाना चाहता है - बिना किसी बंधन के।' अगली बार जब टेलीफोन की घंटी बजी, तो हमेशा की तरह 'हैलो' कहने के बजाय मैंने गुस्से से कहा, 'अरे हरामखोर, मैं जानती हूँ तू कौन है। इस समय फोन करना बंद कर, वरना और भी बुरा सुनेगा।' उसके बाद कोई फोन नहीं आया।

मेनन पर दो जीवनियाँ लिखी जा चुकी हैं और एक सड़क का नाम उनके नाम पर रखा गया है। मुझे लगता है कि अपने लंबे जीवन में मैं उन्हें उनके जीवनीकारों या उन वामपंथियों से कहीं बेहतर जान पाया, जो उन्हें भारत का महान सपूत मानते हैं। जनरल शिव वर्मा ने उनके बारे में बिल्कुल सटीक कहा था, 'मेनन अपने पिता की तरह अविवाहित थे।'

7. अतीत को मिटाकर भारत लौटना

चार साल के तनाव और अत्यधिक शराब पीने ने मेरे शरीर पर बुरा असर डाला। ऑफिस और घर दोनों जगह तनाव का माहौल था। जैसे माइग्रेन से पीड़ित व्यक्ति राहत के लिए एस्पिरिन लेता है, वैसे ही मैं शराब के सहारे राहत पाने की कोशिश करता था: दोपहर के भोजन से पहले शेरी, दोपहर के भोजन के साथ वाइन, और कॉफी के साथ शराब। लगभग हर दूसरी शाम कॉकटेल पार्टी होती थी। हर रात के खाने से पहले स्कॉच पीता था, और उसके साथ वाइन और कॉन्यैक या ड्राम्बुई पीकर उसे पूरा करता था। मेरी नींद खराब हो गई और मैं सुबह 3 से 5 बजे के बीच अजीब समय पर उठ जाता था, हैंगओवर से जूझता और अपनी बदहाली पर पछताता रहता था। जब मैंने इंडिया हाउस छोड़ा और अपने परिवार को घर भेजा, तब तक मेरी हालत बदहजमी से बुरी तरह बिगड़ चुकी थी। मैंने एक डॉक्टर से सलाह ली। उन्होंने मेरी पूरी जांच की और फिर अपना फैसला सुनाया: 'आपको कुछ भी नहीं हुआ है। मेरा सुझाव है कि आप काम और शराब की अपनी दिनचर्या से कुछ समय के लिए ब्रेक लें और ग्रामीण इलाके में घूमने जाएं। आपको दवा की नहीं, प्राकृतिक चिकित्सा की जरूरत है।' उन्होंने चैम्पनीज़ (हर्टफोर्डशायर) में एक प्राकृतिक चिकित्सा क्लिनिक का नाम बताया, जिसे डॉ. लीफ नाम के एक ऑस्ट्रियाई डॉक्टर चलाते थे।

मैंने डॉ. लीफ को पत्र लिखकर पूछा कि क्या मैं उनके अस्पताल में कुछ दिन बिता सकता हूँ। मुझे जाँच, उपचार, भोजन और आवास के शुल्कों की सूची वाला एक कैटलॉग प्राप्त हुआ। यह महँगा लग रहा था, लेकिन मैंने इसे आज़माने का फैसला किया। मैं शैम्पनीज़ के लिए रवाना हुआ। गर्मी का मौसम था। चारों ओर हरियाली छाई हुई थी और धूप से नहाया हुआ सा लग रहा था। शैम्पनीज़ एक पुराना महल था जो विशाल लॉन के बीच में स्थित था, जहाँ प्राचीन ओक, बीच और चेस्टनट के पेड़ खिले हुए थे। जो कभी अस्तबल और नौकरों के क्वार्टर रहे होंगे, उन्हें रोगियों के लिए छोटे-छोटे कमरों की कतारों में बदल दिया गया था।

मुझे एक छोटे से लकड़ी के कमरे में ले जाया गया, जिसमें एक बिस्तर, एक मेज और एक बेंत की कुर्सी के अलावा कुछ भी नहीं था। बारह कैदियों के लिए केवल एक ही शौचालय था। और कोई बाथरूम नहीं था। मुझे यह समझने में एक दिन लग गया कि दोनों की आवश्यकता क्यों नहीं थी।

डॉ. लीफ ने मुझे अपने कार्यालय में बुलाया। मेरी बात सुनने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं हर दिन क्या खाता-पीता हूँ, इसका पूरा ब्यौरा दें। उन्होंने मेरे नाश्ते, दोपहर के भोजन, शाम की चाय, कॉकटेल स्नैक्स और रात के खाने की सभी चीज़ों का हिसाब लगा लिया। उन्होंने मुझे अगली सुबह मिलने के लिए कहा। रात के खाने के समय मैं कैंटीन में अन्य कैदियों के साथ शामिल हो गया। वहाँ कई तरह के लोग थे: फिल्म स्टार, गायिकाएँ, व्यापारी, दुकानदार, सरकारी कर्मचारी और

वकील। उनमें लीड्स का एक दर्जी भी था, जो बार-बार अपनी पैंट आगे खींचकर दिखा रहा था कि उसका पेट कैसे गायब हो गया है और उसका वज़न कितना कम हो गया है। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि खाने के लिए सलाद और दही के अलावा कुछ नहीं था। मेरी मेज पर बैठे पुरुष और महिलाएँ दिए गए एक संतरे को बड़े चाव से खा रहे थे और गर्म पानी के घूंट ले रहे थे। वे अपने इलाज और उन पर लागू किए गए सख्त अनुशासन से बहुत खुश लग रहे थे। इलाज पूरा होने तक किसी को भी शैम्पनीज़ छोड़ने की अनुमति नहीं थी। स्थानीय लोग उन्हें अधनंगे होकर लॉन में घूमते या धूप सेंकते हुए देखकर शक की निगाहों से देखते और हँसते थे, जब वे अपनी तर्जनी उंगली सिर के एक तरफ रखकर मानसिक विकार का संकेत देते थे। वे हमें चैम्पनी के चिम्पैंजी या लीफ के पागल कहते थे।

अगली सुबह जब मैं डॉ. लीफ के क्लिनिक में पहुँचा, तो उनकी मेज पर एक कांच का कटोरा रखा था जो किसी की उल्टी जैसा लग रहा था। उन्होंने कहा, 'श्री सिंह, यह वही है जो आप हर दिन खाते हैं - अंडे, बेकन, टोस्ट, कॉफी, केक, बिस्कुट, स्टेक, सब्जियां, स्कॉच, वाइन और लिकर। आपने मुझे अपने दैनिक सेवन के बारे में बताया था, इसलिए मैंने ये सब कल शाम इस कटोरे में डाल दिए। अब इसे देखिए!' मैंने उस मिश्रण में बुलबुले उठते देखे। उन्होंने आदेश दिया, 'इसे सूंघिए।' मैं कटोरे के ऊपर झुका और अचानक पीछे हट गया। उन्होंने आगे कहा, 'बिल्कुल! अगर आप हर दिन इतना कचरा खाते हैं तो आप क्या उम्मीद करते हैं? सबसे पहले हमें आपको अंदर से पूरी तरह साफ करना होगा। फिर मैं आपको आहार और मालिश के बारे में बताऊंगा।' उन्होंने एक कागज पर कुछ लिखा और मुझे सफेद मेडिकल कोट पहने एक व्यक्ति के हवाले कर दिया।

मुझे इलाज कक्ष में ले जाया गया। 'मुझे आपको कोलोनिक इरिगेशन करना होगा,' उस आदमी ने कहा, जिसके हाथ में एक रस्सी से जुड़ा हुआ एक बड़ा लिंग जैसा कुछ था। उसने उस पर वैसलीन लगाई। उसने मुझे कपड़े उतारकर रबर की चादर से ढकी मेज पर पेट के बल लेटने का आदेश दिया। फिर उसने लिंग को मेरे गुदा में डाला। दर्द असहनीय था; मुझे समझ नहीं आ रहा था कि समलैंगिकों को गुदा मैथुन से क्या मिलता है। उसने किसी तरह लिंग को मेरे मलाशय में पूरी तरह से डाल दिया और गर्म पानी की एक धार मेरी आंतों में छोड़ दी। एक सक्शन पंप ने अंदर के पदार्थ को बाहर निकाला। फिर गर्म पानी पंप किया गया और बाहर निकाला गया। इरिगेशन लगभग पंद्रह मिनट तक चला जब तक कि मेरे अंदर कुछ भी नहीं बचा था।

मैंने गर्म पानी से स्नान किया। मुझे बाल्टियों में घुले नमक से शरीर को रगड़ने का आदेश दिया गया। नमक कीचड़ की तरह गाढ़ा था और मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं रेत से रगड़ रहा हूँ। नमक से मालिश के बाद तेल की मालिश की गई और फिर शरीर से तेल धोने के लिए गर्म पानी से स्नान कराया गया। मुझे कैंटीन में निर्धारित दोपहर का भोजन करने और दोपहर धूप में बिताने के लिए कहा गया। दोपहर के भोजन में एक संतरा था; पेय में शहद मिला हुआ एक गिलास गर्म पानी था। मैं

अपने कमरे में साफ-सुथरा और भूखा लौट आया। कोलोनिक इरिगेशन के बाद मुझे समझ आया कि किसी को शौचालय की आवश्यकता क्यों नहीं होती। मैंने पढ़ने की कोशिश की, लेकिन भूख के कारण ध्यान केंद्रित करना मुश्किल था। मैं बगीचे में गया। वह बिना ढक्कन वाले ताबूतों से भरा पड़ा था जिनमें पुरुष और महिलाएं नग्न अवस्था में धूप में लेटे हुए थे। मैं भी अपने शॉर्ट्स पहने हुए एक ताबूत में लेट गया: मैं नग्न महिलाओं के सामने खुद को शर्मिंदा नहीं कर सकता था। पहले चार दिन बहुत मुश्किल थे, दोपहर के खाने में सिर्फ एक संतरा, रात के खाने में एक संतरा और ढेर सारा गुनगुना पानी। मुझे कानों में भनभनाहट महसूस हो रही थी। मुझे यकीन दिलाया गया कि यह सामान्य है। खाने की लालसा और भनभनाहट जल्द ही गायब हो जाएगी। मैं खाने के अलावा और कुछ नहीं सोच रहा था। भोजन कक्ष में सिर्फ अच्छे रेस्टोरेंट, रसीले स्टेक और चॉकलेट सॉस से लबालब आइसक्रीम की ही बातें हो रही थीं। महिलाओं की कोई बात नहीं हो रही थी। आसपास बहुत सी खूबसूरत लड़कियां थीं, लेकिन हर कोई खाना चाहता था, सेक्स नहीं। पांचवें दिन मैंने उन लोगों के साथ टेनिस खेला जो दो हफ्ते से दिन में दो संतरे खा रहे थे। लीड्स का दर्जी मेरा अच्छा दोस्त बन गया। वह तीन हफ्ते से वहां था। उसने आने से पहले मुझे अपनी तस्वीर दिखाई; वह एक मोटे आदमी की तस्वीर थी जिसका तोंद बहुत बड़ा था। 'अब देखो!' उसने अपनी पैंट को न जाने कितनी बार आगे खींचते हुए कहा। 'सब गायब!' वह खुशी से मुस्कुराते हुए बोला। उसने मुझे अपनी उस महिला मित्र से मिलवाया जिसे उसने शैम्पनीज़ में पाया था। वह भी तीन हफ्ते से वहां थी। उसके सुनहरे बाल और भी सुनहरे लग रहे थे, उसकी कमर और कूल्हे रेतघड़ी की तरह पतले थे। 'यह देखकर आश्चर्य होता है कि असली भूख क्या कर सकती है! शरीर से सारे ज़हर निकाल देती है, और नतीजा देखो!' उसने मुस्कुराते हुए कहा। उन्होंने मुझे गठिया के रोगियों के बारे में बताया जिनके हाथ-पैर खुल गए थे; कान, नाक और गले की समस्याओं वाले लोगों के बारे में बताया जिनकी सुनने और देखने की क्षमता बेहतर हो गई थी और उनके साइनस खुल गए थे।

मामला उस दिन बिगड़ गया जब दर्जी और उसकी प्रेमिका को अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली थी। उन्होंने इसे शराब पीकर मनाने का फैसला किया। हंसमुख स्वभाव का होने के कारण दर्जी कर्मचारियों का चहेता बन गया था। क्लिनिक के नियमों के विपरीत, उन्होंने उसे और उसकी सहेली को परिसर से बाहर जाने दिया। दोनों कई पब में गए। खाली पेट होने के कारण शराब का उन पर बहुत बुरा असर हुआ। जब अस्पताल बंद होने का समय हुआ, तो उसने एक शराब की दुकान से स्कॉच की एक बोतल खरीदी और शैम्पनीज़ लौट आया। दोनों बुरी तरह नशे में थे। उन्होंने पूरी रात साथ बिताई। अगली सुबह भी वे नशे में चूर थे और हाथ में हाथ डालकर घूमते हुए दुनिया को गालियां दे रहे थे। कर्मचारियों ने उनके शरीर से शराब निकालने की पूरी कोशिश की। न तो कोलोनिक इरिगेशन, न नमक की मालिश, न ठंडे पानी से स्नान, न ही गर्म कॉफी का कोई असर हुआ। जब डॉक्टर लीफ को इसके बारे में पता चला तो वे बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने दर्जी और उसकी सहेली को तुरंत अस्पताल से निकालने का आदेश दिया और उन्हें बाहर जाने देने वाले कर्मचारियों पर जुर्माना लगाया। दंपति को इसकी

कोई परवाह नहीं थी। 'ये सब मेहनत रंग लाई,' दर्जी ने मुझसे हाथ मिलाते हुए हँसते हुए कहा। 'तीन हफ़्तों के इलाज में सबसे बढ़िया चीज़ थी वो जो हमने कल रात खुद के साथ की। है ना, जान?' उसने अपनी सहेली की ओर मुड़ते हुए कहा। 'हाँ, बिल्कुल,' उसने नींद में जवाब दिया। 'मैंने अपनी ज़िंदगी में कभी इतना आनंद नहीं लिया।' बाद में मुझे पता चला कि दर्जी की सहेली लंदन की एक वेश्या थी।

तीन हफ़्तों तक सिर्फ़ दो संतरे और एक गैलन गर्म पानी, जिसमें शहद मिला हो, पर गुज़ारा करने के बाद, मुझे पूरी तरह से साफ़ और हल्का महसूस हुआ। मुझे अपना उपवास एक कार्टन दही से तोड़ना पड़ा। कुछ चम्मच दही खाने में ही मेरी साँस फूलने लगी। डॉ. लीफ़ ने मुझे बताया कि मुझे अपने आहार में किन चीज़ों से परहेज़ करना चाहिए। तले हुए खाने से परहेज़ करो और शराब का सेवन कम करो। शैम्पनीज़ से निकलते समय मैं काफ़ी बेहतर महसूस कर रहा था, सिवाय इसके कि उस कठिन अनुभव ने मेरी नज़र को कमज़ोर कर दिया था। लंदन लौटते ही मैंने सबसे पहले एक नेत्र विशेषज्ञ से मुलाक़ात की। उन्होंने मेरी आँखों और मेरे चश्मे की जाँच की। उन्होंने मुझसे कहा, 'आपको अपने चश्मे बदलने की ज़रूरत है। किसी चमत्कार से आपकी नज़र में सुधार हो गया है।' मैं खुद से बहुत खुश था। मुझे पागल या सनकी कहे जाने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था।

लंदन लौटने के बाद, मैं गंभीरता से काम में जुट गया। मैंने सिखों का संक्षिप्त इतिहास पूरा किया और फिर एक उपन्यास लिखने का फैसला किया। मेरे मन में भारत के विभाजन और उसके साथ हुए भयानक नरसंहारों का विषय था। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इसे कैसे लिखा जाए। मैंने कई कथानकों पर विचार किया और कई पात्रों के बारे में सोचा। मैं इस विचार से ग्रस्त था कि प्रत्येक व्यक्ति में हिंदू देवताओं की त्रिमूर्ति समाहित है: ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता), विष्णु (संरक्षक) और शिव (संहारक)। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति में त्रिमूर्ति का कोई न कोई पहलू प्रमुख होता है। शायद ब्रह्मा के पहलू को एक किसान के माध्यम से, विष्णु के पहलू को कानून के रक्षक जैसे मजिस्ट्रेट के माध्यम से, और शिव के पहलू को एक ऐसे साम्यवादी के माध्यम से सबसे अच्छी तरह चित्रित किया जा सकता है जो बुराई को नष्ट करके एक बेहतर दुनिया का निर्माण करना चाहता हो। मैं अपनी नोटबुक लेकर इटली की शांत झीलों में एक मसौदा तैयार करने का फैसला किया। मैं पहले बेलागियो गया, लेकिन वहाँ बहुत शोरगुल वाले पर्यटक थे। संयोग से मुझे इटली-स्विट्जरलैंड सीमा पर पहाड़ों में स्थित लागो एलियो नामक एक छोटी झील मिली। वहाँ सिर्फ़ एक गेस्ट हाउस था जिसमें दो कमरे थे। मैं एलियो चला गया और एक महीने के लिए नाव किराए पर ली ताकि मैं चप्पू चलाकर और तैरकर व्यायाम कर सकूँ (आस-पास घूमने के लिए ज़्यादा रास्ते नहीं थे)। मैं दिन का ज़्यादातर समय उपन्यास लिखने में बिताता था। जल्दी खाना खाने के बाद, मैं नाव को झील के दूसरे छोर तक ले जाता जहाँ कोई बस्ती नहीं थी, अपने कपड़े उतारता और झील में कूद जाता। गर्मियों की शामें लंबी और गर्म होती थीं; रात 10 बजे के बाद ही होती थी। मेरी खिड़की से मुझे स्विट्ज़रलैंड की तरफ़ के गाँवों की रोशनी दिखाई देती थी। कई

दिनों तक उस छोटे से गाँव में एकमात्र रोमांच टूर डी फ़्रांस साइकिल रेस ही थी। हर शाम कुछ गाँववाले शराब पीने और रेडियो पर रेस की प्रगति सुनने के लिए आते थे। एक शाम मैंने स्विट्ज़रलैंड की तरफ़ के पूरे उत्तरी आकाश को आतिशबाजी से जगमगाते देखा: एक स्विस नागरिक ने साइकिल रेस जीत ली थी।

एक रात आसमान एकदम शांत और गर्म था। कुछ देर नाव चलाने के बाद मैंने एलियो नदी के पानी में डुबकी लगाने का फैसला किया। मैं अपनी नाव लेकर झील के बीचोंबीच गया, अपने सारे कपड़े उतार दिए (मेरे पास स्विमिंग ट्रंक नहीं थे) और पानी में कूद गया। नाव उत्तर दिशा की ओर बहने लगी। मैं उसके पीछे तैरने लगा। अचानक मुझे अपनी ओर आती हुई एक मोटरबोट की तेज़ आवाज़ सुनाई दी। उसकी तेज़ रोशनी मुझ पर पड़ रही थी। मैंने नाव में वापस चढ़ने की कोशिश की। लेकिन जितना ज़्यादा मैं चढ़ने की कोशिश करता, नाव उतनी ही ज़्यादा झुकती और मेरे हाथ से फिसल जाती। गश्ती नाव की रोशनी मुझ पर पड़ गई। ज़ाहिर है मैं स्विट्ज़रलैंड की सीमा के बहुत करीब पहुँच गया था और इतालवी सीमा शुल्क अधिकारी जानना चाहते थे कि मैं वहाँ क्या कर रहा हूँ। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था - एक सांवला आदमी जिसके लंबे बाल कंधों तक लटके हुए थे और दाढ़ी से पानी टपक रहा था। एलियो नदी ने किस तरह का इंसानी राक्षस पैदा कर दिया था? मैंने अविश्वास भरे कुछ भाव देखे — 'डेओस मेओस' ('हे भगवान'), 'कारा मेआ!' ('मेरी प्यारी')। सौभाग्य से, गश्ती दल के एक सदस्य ने अपनी छोटी बेटी से मेरे बारे में सुना था। वे मेरी नाव को खींचकर गेस्ट हाउस तक ले आए, मैं उसके पीछे लटकी हुई थी। मैं पानी से बाहर निकली, अपने सिर पर पगड़ी लपेटी और कपड़े पहने। मैंने अपनी टूटी-फूटी इतालवी भाषा में उन्हें धन्यवाद दिया और शुभ रात्रि कहा।

लागो एलियो में एक ठीक-ठाक फलदायी महीने के बाद, मैं बॉम्बे और घर जाने वाली नाव पकड़ने के लिए लंदन वापस आ गया। मैं 1950 में भारत लौटा था। इंग्लैंड में मेरी दो किताबें प्रकाशित होने से कोई प्रभावित नहीं हुआ। परिवार में कोई भी मेरे साथ लाए गए रिव्यूज को पढ़ना नहीं चाहता था। वे सब बस यही जानना चाहते थे कि मैंने रॉयल्टी से कितना कमाया। यह बहुत कम था। मेरे दोस्त और रिश्तेदार मेरी पीठ पीछे मेरा मज़ाक उड़ाते थे। वे कहते थे, 'परीक्षा पास नहीं कर सका, पर किताबें लिखना शुरू कर दिया।' मुझे निकहत्तू कहा जाता था - एक कामचोर, जो अपनी जीविका नहीं कमाता। एक दिन श्री राम साहब, जिनके घर मैं अक्सर जाता था क्योंकि मेरी पत्नी की उनके बेटे भरत और भरत की पत्नी शीला से स्कूल के दिनों की दोस्ती थी, ने मुझसे पूछा, 'क्या तुम कोई काम करते हो, या अपने पिता की कमाई पर जीते हो - बाप की कमाई का खाता हट?' ये बातें मुझे चुभ गईं क्योंकि ये सच थीं। मेरी पत्नी और बच्चे मेरे माता-पिता के साथ रहते थे; मेरी आमदनी स्थानीय अखबारों में लिखे गए छिटपुट लेखों या ऑल इंडिया रेडियो पर दिए गए भाषणों से ही होती थी। यह भी मुश्किल

से महीने के 1000 रुपये तक पहुँच पाती थी। मेरे बेटे की दून स्कूल की फीस मेरी पत्नी अपने पिता द्वारा दिए गए पैसों से भरती थी। वह मुझसे ज़्यादा मंगत राय और भरत राम से सलाह लेती थी। मेरा मनोबल बिल्कुल टूट चुका था।

मैंने दिल्ली से निकलने का फैसला किया। मेरे पिता की भोपाल में एक आइसक्रीम फैक्ट्री थी और झील के किनारे एक मकान था जो उन्होंने मैनेजर के लिए किराए पर लिया था। वह मकान खाली पड़ा था। मैंने एक नौकर रखा जो मेरे लिए खाना बनाता था और ट्रेन से भोपाल के लिए रवाना हो गया। रास्ते में मुझे एक और अपमान सहना पड़ा। मेरे डिब्बे में तीन सिंधी सज्जन थे। वे व्यापार की बातें कर रहे थे और मेरी तरफ ध्यान ही नहीं दे रहे थे। एक स्टेशन पर हमने अपने लिए चाय मंगाई। उनमें से एक ने बिस्कुट का एक बहुत ही बढ़िया डिब्बा खोला और मुझे एक बिस्कुट दिया। मैंने मना करने के लिए सिर हिलाया और उन्हें धन्यवाद दिया। तभी उनमें से एक ने मुझे डांटते हुए कहा, 'खुद सेठ तुम्हें अपना सामान दे रहे हैं और तुम मना कर रहे हो। तुम किस तरह के आदमी हो?'

मुझे एहसास हुआ कि ये व्यक्ति सेठ मंगहा राम थे, जो भारत में बिस्कुट के अग्रणी उत्पादक हैं। हमारी बातचीत शुरू हुई। उन्होंने मुझे बताया कि कैसे उन्होंने सुक्खुर (सिंध) में सड़क किनारे ठेले लगाकर अपना बिस्कुट का कारोबार खड़ा किया। उन्होंने कहा कि भगवान उन पर मेहरबान रहे हैं। अब वे करोड़पति हैं। मैंने उनसे उनके परिवार के बारे में पूछा। उन्होंने मुझे अपने बेटों के बारे में बताया। उन्हें खुशी थी कि उनके बेटों ने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली है और अब वे उनके साथ व्यापार करते हैं।

मैंने उनसे पूछा, 'आपने उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेश क्यों नहीं भेजा?'

‘किसलिए?’ उसने पलटकर जवाब दिया। ‘उन्हें बिस्कुट बनाना आता है। उन्हें कुछ सीखने के लिए विदेश जाने की जरूरत नहीं है।’

मैंने लगातार उससे अपने बच्चों के लिए नए अवसर खोलने के लिए आग्रह किया। उसे बुरा लगा और वह मुझ पर भड़क उठा।

‘आपने विदेश में शिक्षा प्राप्त की?’ मैंने स्वीकार किया। ‘आपने विलायत में कितना समय बिताया?’ उन्होंने पूछा।

मैंने जवाब दिया, 'लगभग पांच साल।'

उन्होंने पूछा, ‘आपकी तनख्वाह कितनी है?’ मैंने अपनी पिछली तनख्वाह बताई। सेठ मंगहा राम ने झटपट हिसाब लगाया और नाक सिकोड़ी।

‘Tumhaarey baap ka to sood bhee nahin nikla’ — your father has not even realized a reasonable interest on his investment.

आशियाना नाम का वह घर एक सादा, दो मंजिला इमारत थी। मैं ऊपरी मंजिल पर एक कमरे में रहता था। बालकनी से झील और उथले पानी में खेलते सारस पक्षियों के झुंड का शानदार नज़ारा दिखता था। अपने उपन्यास पर काम करते हुए, मैं दूरबीन से उनके प्रेमालाप नृत्य देखता था। सुबह के समय नहाने आने वाली नवाब के महल की नौकरानियों के अलावा और कोई ध्यान भटकाने वाली चीज़ नहीं थी। आमतौर पर पाँच-छह नौकरानियाँ सिर से पैर तक बुर्के में लिपटी होती थीं। आसपास कोई घर नहीं था और महल की ओर जाने वाली सड़क उस जगह से काफी दूर थी जहाँ वे अपने कपड़े उतारती थीं। आशियाना भी इंसानी नज़र से परे था। मेरी शक्तिशाली दूरबीन से वे लगभग हाथ की पहुँच में आ जाती थीं। यह एक मनमोहक दृश्य था! कपड़े उतारने के बाद वे औरतें पानी उछालतीं, एक-दूसरे पर पानी फेंकतीं, साबुन लगातीं, पानी में डुबकी लगातीं और फिर धूप में खुद को सुखातीं।

दोपहर के समय मैं जंगलों में लंबी सैर करता था या रेलवे स्टेशन जाकर ट्रेनों के विभिन्न प्लेटफार्मों पर जाने के तरीके और कर्मचारियों के कर्तव्यों से परिचित होता था। रेलवे स्टेशन मेरे उपन्यास का केंद्रबिंदु था।

जब मैं भोपाल में था, लंदन ऑब्जर्वर के रॉले नॉक्स और उनकी पत्नी हेलेन मुझसे मिलने आए। नवाब ने उन्हें साक्षात्कार का अवसर दिया था। अखबार को उनका लेख भेजने के बाद, मैं उन्हें सांची के बौद्ध स्तूप दिखाने ले गया। एक रात हम कुछ शिकारियों के साथ बाघ देखने की उम्मीद में जंगल में गए। हम एक तालाब के किनारे बने पुराने शिकार टावर में बैठे रहे और सुबह तक शराब पीते रहे। हमें बाघ देखने को नहीं मिला। शिकारी हमसे नाराज़ थे क्योंकि हमारी लगातार बातें करने से जानवर तालाब से दूर रहे। उन्होंने अपना गुस्सा कुछ सांभरों पर निकाला जो उनकी कार की हेडलाइट की तेज़ रोशनी से चकाचौंध हो गए थे।

महीने के अंत तक, मैंने अपने उपन्यास का मसौदा पूरा कर लिया था। मैंने इसका नाम 'मनो माजरा' रखा, उस गाँव के नाम पर जहाँ मैंने इसे आधारित किया था। दिल्ली लौटने पर, ब्रिटिश उच्चायोग के वाल्टर बेल की अमेरिकी पत्नी, टैटी बेल ने इसे टाइप करने की पेशकश की। काम पूरा होने के बाद उन्होंने मुझसे साफ-साफ कहा, 'यह अच्छा नहीं है! इसे कोई प्रकाशित नहीं करेगा।' मैं निराश हो गया और इसे फाड़ देना चाहता था। शुक्र है कि मैंने ऐसा नहीं किया। इसके बजाय, मैंने इसे भारत की सर्वश्रेष्ठ कथा कृति के लिए ग्रोव प्रेस को भेजा। मैंने इसे अपने मित्र आई.एम. वर्मा के नाम से भेजा क्योंकि निर्णायक मंडल में कृष्णा मेनन भी थे। इसे एक हजार डॉलर का प्रथम पुरस्कार और प्रकाशन का अनुबंध मिला। यह उपन्यास ब्रिटेन में 'ट्रेन टू पाकिस्तान' के नाम से प्रकाशित हुआ। सबसे पहले मैंने टैटी बेल को यह खबर सुनाई। उन्होंने मुझे एक चुंबन और एक कॉकटेल पार्टी देकर पुरस्कृत किया। वह बहुत ही मिलनसार और उदार मेजबान थीं।

मुझे लगा कि मुझे नौकरी कर लेनी चाहिए। एयर कॉमर्स की बाहरी सेवाओं के लिए कार्यक्रम निर्माता पदों का विज्ञापन निकला था। मैंने अंग्रेज़ी वाले पद के लिए आवेदन किया; प्रकाश शास्त्री, जिन्हें मैं लाहौर में एलायंस फ्रांसेज़ के संस्थापक

के रूप में जानता था और जिनकी पत्नी फ्रांसीसी थीं, ने फ्रांसीसी वाले पद के लिए आवेदन किया। हम दोनों का चयन हो गया। मेरे सीधे बॉस प्रोफेसर दारूवाला थे, जिन्होंने मुझे गवर्नमेंट कॉलेज में अंग्रेज़ी पढ़ाई थी। विभाग की प्रमुख मिस मेहरा मसानी थीं - जितनी सुंदर और कुशल महिला मैंने आज तक देखी हैं, वैसी ही थीं। हमारे सहकर्मियों में से एक नीरद सी. चौधरी थे। कुछ ही दिनों में मुझे पता चला कि मेरे पास करने के लिए बहुत कम काम था। मेरा कार्यक्रम, जो आधी रात के बाद प्रसारित होता था, उसमें समाचार (एक समाचार वाचक द्वारा पढ़े जाते थे), शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम (एक संगीत विशेषज्ञ द्वारा चुने गए) और दस मिनट से अधिक के छोटे-छोटे कार्यक्रम शामिल होते थे - जिन्हें आमतौर पर किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा लिखा और रिकॉर्ड किया जाता था। मुझे जो भी काम सौंपा जाता था, मैं उसे पंद्रह मिनट में पूरा कर लेता था। दफ्तर में बाकी का दिन दोस्तों के साथ गपशप करने में बीतता था— नीराद बाबू से, अपना लेख लिखने के बाद, या कृशन शुंग्लू से, जिनके पास मेरे जितना ही कम काम था, लेकिन वे दिखावा करते थे कि उन पर बहुत काम का बोझ है। वहाँ कई खूबसूरत लड़कियाँ भी थीं— कांता गुप्ता, फ्रेंच विभाग में काम करने वाली एक मुस्लिम स्टेनोग्राफर और कुछ अन्य। मैंने उन्हें समय बिताने के लिए अपने कमरे में बुलाया। इससे भी ज़्यादा निराशाजनक बात यह थी कि हमारे प्रसारण इतने कमज़ोर थे कि बहुत कम लोग ही उन्हें सुन पाते थे। एक रात हमें इसका पता तब चला जब प्रकाश शास्त्री, जो निर्माता और समाचार वाचक दोनों थे, अपने कार्यक्रम के प्रसारण के आधे घंटे बाद तक नहीं आए। प्रसारण प्रभारी इंजीनियर बहुत परेशान हो गए। हताशा में उन्होंने अपने ट्रांसमीटर चालू किए और घोषणा की: 'यह ऑल इंडिया रेडियो की फ्रेंच सेवा है। मुझे खेद है कि हमारे निर्माता नहीं आए हैं और मैं फ्रेंच नहीं बोल सकता। इसलिए यह रहा कुछ संगीत।' हमारे फ्रेंच श्रोताओं की ओर से कोई शिकायत नहीं आई। शास्त्री को नौकरी से निकाल दिया गया।

ऑल इंडिया रेडियो में दो साल बिताने के बाद भी कुछ खास उपलब्धि न मिलने पर मैं कुछ सार्थक काम करने के लिए बेताब हो गया। मेरा मौका तब आया जब यूनेस्को के महानिदेशक डॉ. लूथर इवांस भारत आए। मुझे घरेलू सेवाओं के लिए उनका साक्षात्कार लेने को कहा गया। साक्षात्कार अच्छा रहा और इवांस प्रभावित हुए। मैंने उन्हें अपने घर पर रात्रिभोज के लिए आमंत्रित किया। वे मेरे पिता की जीवनशैली (उनका नाइट होना इसमें बहुत मददगार साबित हुआ) और उनके आतिथ्य सत्कार से और भी अधिक प्रभावित हुए। मैंने अपने मित्र प्रेम किरपाल को पत्र लिखा, जो उस समय यूनेस्को के सांस्कृतिक मामलों के विभाग में उप निदेशक थे, ताकि उनके साथ जुड़ने की मेरी संभावनाओं का पता लगाया जा सके। एक महीने बाद मुझे जनसंचार विभाग में प्रेस, फिल्म और रेडियो का कार्यभार संभालने का प्रस्ताव मिला। मैंने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया। ऑल इंडिया रेडियो को दिए अपने इस्तीफे में मैंने लिखा कि मेरे पास करने के लिए बहुत कम काम है और मैंने इस पद को समाप्त करने का सुझाव दिया। मेरे मित्र कृशन शुंगलू, जो मेरी जगह लेने की उम्मीद कर रहे थे, के लिए यह बहुत निराशाजनक था कि पद समाप्त कर दिया गया।

8 पेरिसियन इंटरल्यूड

मैं पेरिस से अनजान नहीं था और यूनेस्को के कार्यों से कुछ हद तक परिचित था। लंदन में अपने छात्र जीवन के दौरान मैंने कई बार पेरिस की यात्रा की थी और लक्ज़मबर्ग गार्डन के पास स्थित इंस्टीट्यूट डू पैंथियन में तीन महीने का फ्रेंच भाषा का कोर्स किया था। लंदन में पी.आर.ओ. के रूप में, डॉ. राधाकृष्णन के नेतृत्व वाले भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सचिव प्रेम किरपाल ने फ्लोरेंस में यूनेस्को सम्मेलन के लिए मुझे प्रेस अधिकारी के रूप में शामिल करवा दिया। मैं अपनी पत्नी को भी साथ ले गया। हम फ्रांस और आल्प्स पर्वतमाला को पार करते हुए टस्कनी तक गए। मुझे 'संस्कृति की कोई सीमा नहीं होती' और 'मनुष्यों के मन में शांति के बीज बोने की आवश्यकता' जैसे विषयों पर लंबे-लंबे भाषण सुनने के अलावा और कुछ करने को नहीं था। मैंने डॉ. राधाकृष्णन को काफी समय तक देखा। उनका उद्घाटन भाषण भाषण कला का एक उत्कृष्ट नमूना था और उन्हें स्टैंडिंग ओवेशन मिला। कई प्रतिनिधि उनसे मिलना चाहते थे। उन्होंने अपने बिस्तर पर लेटकर उनसे मुलाकात की, जहां वे अपना अधिकांश समय पढ़ने और लिखने में बिताते थे। अन्य आगंतुकों में फिल्म अभिनेत्री म्यार्ना लॉय भी थीं। जब उसने उसे अपने पास बैठने के लिए कहा और वह तकिए पर लेट गया, तो वह बहुत शर्मा गई। उसने उसका हाथ पकड़कर और उससे उसके पतियों की संख्या पूछकर उसे सहज किया। यह ज्ञात था कि वह अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल के नेता डॉ. सार्जेंट से शादी करने की इच्छुक थी। जिन लोगों से मेरी दोस्ती हुई, उनमें कैरोल लैज़ भी थीं, जो अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल से जुड़ी थीं। बाद में उनकी तैनाती भारत में हुई, उन्होंने राजदूत बंकर से शादी की और स्वयं नेपाल की राजदूत बनीं।

फ्लोरेंस में बिताए तीन हफ्तों ने मुझे कला दीर्घाओं का दौरा करने, पीसा की झुकी हुई मीनार, सिएना के पालियो और कुछ इतालवी झीलों को देखने का अवसर दिया। गार्डा झील की यात्रा आज भी मेरे सपनों में आती है। हम दोपहर भर चिलचिलाती धूप में होटल की तलाश में गाड़ी चलाते रहे, जहाँ हम खाना खा सकें और रात बिता सकें। हम गार्डा झील पहुँचे - मीलों तक फैला पानी, तेज़ धूप में चमक रहा था। हम झील के बीच से गुज़रते एक संकरे रास्ते पर पहुँचे। साइनबोर्ड पर सैन सिमिओन लिखा था। हमने वहाँ रहने का फैसला किया। यह एक चट्टानी द्वीप पर बसा एक मछुआरा गाँव था, जिसमें कुछ छोटे होटल थे। हमने एक होटल में चेक-इन किया। नहाने के बाद मैंने द्वीप को देखने का फैसला किया। मैं एक धूल भरी सड़क पर गया जो चीड़ के पेड़ों से घिरे एक कब्रिस्तान में जाकर खत्म हुई। मैं चीड़ की पत्तियों के ढेर पर लेट गया और नीले आसमान को धीरे-धीरे अंधेरा होते हुए देखता रहा। मुझे घर लौटते मछुआरों के गाने की आवाज़ें पानी के पार सुनाई दे रही थीं। मैं सो गया। पता नहीं मैं कितनी देर तक गहरी नींद में सोता रहा, तभी मेरे सिर के ऊपर एक डाल पर बैठी बुलबुल की मधुर आवाज़ से मेरी नींद खुली। पूर्णिमा का चाँद निकल आया था, जो झील पर चाँदी की तरह चमक रहा था। मैं चाँदनी

रात में उस पक्षी के गीत में खोया हुआ था—कीट्स ने भी शायद इसी तरह का संगीत सुना होगा जब वे परमानंद की अवस्था में पहुँचे थे। उस जादू को तोड़ने की इच्छा से मैं वहीं लेटा रहा। मैंने साफ़ आसमान में चाँद को ऊपर चढ़ते देखा। बुलबुल को मेरी मौजूदगी का एहसास हुआ और वह उड़ गई। जादू टूट गया।

दो साल बाद, किरपाल ने एक बार फिर पेरिस में होने वाले सम्मेलन के लिए मौलाना आजाद के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधिमंडल में मेरा नाम शामिल करवा दिया। मौलाना ने मान लिया कि मैं पेरिस मौज-मस्ती करने आया हूँ और उन्होंने मुझे कोई काम नहीं सौंपा। जब भी मैं उनसे पूछता कि क्या मैं कुछ कर सकता हूँ, तो वे जवाब देते, 'सरदार साहब, मज़ा करिये'। एक बार जब एक वरिष्ठ प्रतिनिधि ने मुझसे किसी प्रस्ताव पर उनकी स्वीकृति लेने को कहा, तो मुझे शाम को उनके होटल जाकर उन्हें परेशान करना पड़ा। वे बहुत रूखे थे। उनकी शामें पवित्र थीं क्योंकि वे अकेले ही अपनी स्कॉच का आनंद लेते थे। वे अपनी शराब पीने की आदत को गुप्त रखना चाहते थे ताकि मुस्लिम भारत के विचारक इमाम-उल-हिंद की अपनी छवि को बनाए रख सकें। प्रतिनिधिमंडल में प्रोफेसर हबीब भी थे, जो एक आकर्षक विद्वान थे और कम्युनिस्ट चीन को भारत में शामिल करने के संबंध में भारत के रुख को लेकर कुछ हद तक असमंजस में थे। मतदान के समय, उन्होंने भारत के प्रस्ताव के विरुद्ध भारत का मत दिया। इसे सुधारना पड़ा।

यूनेस्को को कितनी गंभीरता से लिया जा सकता है? मुझे हमेशा से संस्कृति का ढोंग करने वाले लोगों से चिढ़ रही थी। किरपाल ने मुझसे कहा, 'नए विचार लाने होंगे।' उन्होंने कभी यह स्पष्ट नहीं किया कि किस तरह के विचार होने चाहिए। फिर भी, पेरिस कुछ समय के लिए रहने के लिए एक सुखद शहर था। मुझे वहाँ की सुखद यादें हैं और मुझे इस बात का अफसोस है कि मैं कभी किसी फ्रांसीसी पुरुष या महिला से दोस्ती नहीं कर पाया। केवल वही लोग दोस्ती का हाथ थामने को तैयार थे जो प्रवासी थे - श्वेत रूसी या अमेरिकी जो वहाँ बस गए थे, या यहूदी जो अक्सर दिखने वाले यहूदी-विरोधी माहौल में असुरक्षित महसूस करते थे। संस्कृति और कविता की बड़ी-बड़ी बातों के बावजूद, फ्रांसीसी लोग सबसे अधिक धन-प्रेमी राष्ट्र थे जिनसे मैं मिला था। आप जहाँ भी जाते - रेस्तरां, सिनेमा या पार्क में नाव किराए पर लेने - निर्धारित राशि का भुगतान करने के बाद हमेशा टिप के लिए हाथ बढ़ाया जाता था। और सभी झुकने, हाथ चूमने और शिष्टाचारपूर्ण भाषण के बावजूद, वे अविश्वसनीय रूप से असभ्य हो सकते थे। अगर फ्रांस में कोई फ्रांसीसी न रहता तो यह कितना खूबसूरत देश हो सकता था!

हालांकि, 1954 की गर्मियों में मैं एक बार फिर पेरिस में था, मेरे पास पाँच साल का अनुबंध था। स्टेशन पर हमारा स्वागत राजदूत के सचिव ने किया। संयोग से राजदूत मेरी पत्नी के चाचा, एच.एस. मलिक थे, जिनका कनाडा से फ्रांस तबादला हुआ था। मेरे लिए यूनेस्को के पास अस्थायी आवास की व्यवस्था की गई थी, जो उस समय होटल मैजेस्टिक था, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मन गुप्त पुलिस (गेस्टापो) का मुख्यालय। पहली शाम हमने मलिक परिवार के साथ भोजन किया।

उनका हमारे प्रति रवैया ठंडा था, जैसा कि हमारा उनके प्रति था। मैंने फ्रांस में अपने प्रवास के दौरान उनसे यथासंभव कम संपर्क रखने का निश्चय किया।

अगली सुबह मैंने यूनेस्को में अपना नाम दर्ज कराया और अपने तत्काल बॉस, श्नाइडर नामक एक अमेरिकी और उनके नंबर दो, एक फ्रांसीसी यहूदी से मुलाकात की, जिन्होंने फ्रांसीसी भूमिगत आंदोलन में शामिल होने पर अपना नाम फिलिप वोल्फ से बदलकर फिलिप डेसजार्डिन्स रख लिया था। दोनों अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों भाषाएँ समान रूप से धाराप्रवाह बोलते थे। मुझे आभास हुआ कि श्नाइडर के लूथर इवांस से अच्छे संबंध नहीं थे, जो उनके स्थान पर किसी और की तलाश कर रहे थे। श्नाइडर को मेरी नियुक्ति पर कुछ आपत्तियाँ थीं। डेसजार्डिन्स विभाग के उप निदेशकों में से एक बनने के लिए उत्सुक थे और उन्हें लगता था कि इवांस ने मुझे संगठन में इसलिए शामिल किया है ताकि मुझे दूसरा उप निदेशक बनाया जा सके। उन्होंने मुझसे दोस्ती बनाए रखने के लिए काफी प्रयास किए और एफिल टॉवर के पास एक व्यस्त सड़क से निकलने वाली एक संकरी गली, सिटे नेग्रियर में एक सुखद, एकांत, एक बेडरूम वाले फ्लैट में छह महीने के लिए अस्थायी आवास खोजने में मेरी मदद की। यह फ्लैट एक फ्रांसीसी राजनयिक की चीनी पत्नी का था।

हमारे बसने और मेरे बेटे का अमेरिकन इंटरनेशनल स्कूल में दाखिला होने के कुछ हफ़्तों बाद, इवांस ने मुझसे लंदन में ब्रिटिश अख़बारों के संपादकों से उनकी मुलाक़ात करवाने के लिए कहा। मैं लंदन गया और यूनेस्को के लिए अंग्रेज़ी आयोग के रिचर्ड पॉवेल की मदद से, अपने कुछ संपादक मित्रों को लंच पर आने के लिए राज़ी किया ताकि वे यूनेस्को के लिए इवांस की योजनाओं को सुन सकें। अंग्रेज़ यूनेस्को को लेकर संशय में थे और ब्रिटेन के योगदान को पैसे की बर्बादी मानते थे। हमारे मेहमान इतने विनम्र थे कि उन्होंने इवांस की बातों में दिलचस्पी दिखाई। दुर्भाग्य से, इवांस, कई अमेरिकियों की तरह, बहुत तेज़ और बुलंद आवाज़ वाले थे। उनकी आवाज़ उस बड़े हॉल के कोने-कोने तक सुनाई दे रही थी, जो लंच के समय असामान्य रूप से खचाखच भरा हुआ था। जब इवांस भविष्य के यूनेस्को के अपने दृष्टिकोण को ज़ोर-ज़ोर से बता रहे थे, तभी एक अमेरिकी महिला उनके पीछे आई और उनके कंधे पर थपथपाया। इवांस ने अपना भाषण रोक दिया और पीछे मुड़े। उन्होंने बहुत रूखेपन से कहा, 'मैं आपको बताना चाहती हूँ कि आपकी आवाज़ बहुत तेज़ है।' 'हॉल के दूसरे छोर पर, मैं आपकी कही हर बात सुन सकता था और मुझे आपकी बातों में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी।' इवांस बेहद निराश हो गया। पेरिस लौटने पर, इवांस ने मुझे बताया कि मुझे उरुग्वे के मोंटेवीडियो में आयोजित होने वाले एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए कर्मचारियों में से एक के रूप में चुना गया है और मुझे जनसंचार विभाग के बजट प्रस्तावों से परिचित होना चाहिए ताकि मैं प्रतिनिधियों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर दे सकूँ। यह स्पष्ट था कि वह मेरी योग्यता को परखना चाहते थे और यह देखना चाहते थे कि क्या मैं विभाग के उप निदेशक के पद को संभाल पाऊँगा। मुझे बजट के बारे में कुछ भी नहीं पता था और लेखांकन से जुड़ी किसी भी चीज़ से मेरी अरुचि के कारण प्रस्तावों का अर्थ समझना मेरे लिए कठिन था। फिर भी, मैंने

अटलांटिक महासागर के पार ब्राजील के रेसिफ़े के लिए चार्टर्ड विमान में उड़ान भरी। यह प्रोपेलर विमान द्वारा की गई एक लंबी रात भर की यात्रा थी। रियो डी जनेरियो में ईंधन भरने के लिए एक और छोटे से विश्राम के बाद, हम एक सुहावनी गर्मी की दोपहर में मोंटेवीडियो पहुँचे।

मोंटेवीडियो के लोगों ने इससे पहले कभी किसी सिख को नहीं देखा था। वे अविश्वास से मुझे घूर रहे थे। हमारे मेजबानों ने हमारे लिए दो शीर्ष उरुग्वे टीमों के बीच फुटबॉल मैच देखने के लिए सीटें लगाई थीं। जब मैं वहाँ पहुँचा तो सब लोग मुझे हैरानी से देखने लगे। खेल कुछ मिनटों के लिए रोक दिया गया, जब तक कि उन्हें यकीन नहीं हो गया कि मैं भी एक आम इंसान हूँ। अगले दिन सुबह के अखबारों के पहले पन्नों पर मेरी तस्वीरें छपीं। हालाँकि, अगर उरुग्वे के लोग भारत के बारे में कुछ नहीं जानते थे, तो कुछ महत्वपूर्ण भारतीय ऐसे भी थे जिन्हें उरुग्वे के अस्तित्व का ज्ञान नहीं था। इसका एक प्रमाण मुझे तत्कालीन रक्षा उप मंत्री सुरजीत सिंह मजीठिया का पत्र मिला। मैंने उन्हें पत्र लिखकर शिक्षा मंत्रालय के सचिव डॉ. हुमायूं कबीर से बात करने का अनुरोध किया था, ताकि विभिन्न देशों के साहित्य को प्रचारित करने के कार्यक्रम में सिखों के पवित्र भजनों के अनुवाद को शामिल करने के मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया जा सके। मजीठिया का जवाब मुझे 'यूनेस्को, पलासिओ नैशनल, मोंटेवीडियो, उरुग्वे, फ्रांस' के पते पर भेजे गए एक लिफाफे में आया। जब मेरी स्पेनिश सचिव ने इसे देखा तो वह परेशान हो गईं। ‘क्या आपके लोग यह भी नहीं जानते कि उरुग्वे नाम का कोई देश है?’ उसने पूछा। ‘आपको चिंता नहीं करनी चाहिए,’ मैंने उसे आश्वस्त किया। ‘यह हमारे रक्षा मंत्रालय की ओर से है। अगर उन्हें आपके अस्तित्व के बारे में पता ही नहीं है, तो वे आपके खिलाफ युद्ध नहीं कर सकते।’

शहर में अपने तीसरे दिन एक बेहद दिलचस्प घटना घटी। मैं अपने होटल के लॉबी में खड़ा था, तभी एक छोटा, झुर्रियों वाला, एक आँख वाला बूढ़ा आदमी मेरे पास आया और 'सत श्री अकाल, श्रीमान!' कहकर मेरा अभिवादन किया। मैंने भी उसका अभिवादन किया और पंजाबी में उससे पूछा कि क्या वह सिख है। उसने स्पेनिश में जवाब दिया, 'जी जी, श्रीमान।' इसे साबित करने के लिए उसने एक पुराना, फटा हुआ ब्रिटिश पासपोर्ट निकाला और उसमें लगी तस्वीर की ओर इशारा किया: वह एक युवा सिख की तस्वीर थी, जिसकी उम्र बीस के आसपास थी और उसकी एक आँख थी। उसने अपनी छाती की ओर इशारा करते हुए देहाती पंजाबी में कहा, "नाम: चंचल सिंह। पिता: सोहन सिंह; माता: गुरदीप कौर; गाँव: लाहौर जिले का कोई गाँव।" फिर वह दस तक गिनती गिनने लगा। इन शब्दों के आगे वह न तो मेरी पंजाबी में कही गई बात समझ पा रहा था और न ही अंग्रेजी में। मैंने अपनी स्पेनिश सचिव से मदद मांगी। यह एक अविश्वसनीय कहानी थी। चंचल सिंह युवावस्था में ही पंजाब छोड़कर कनाडा में बसने के इरादे से चले गए थे। उस समय उन्हें पंजाबी के अलावा कोई और भाषा नहीं आती थी। कनाडाई अधिकारियों ने उन्हें वहाँ रहने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। वे भागकर संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए। वहाँ भी उनका वही हाल हुआ और उन्हें कुछ ही दिनों में देश छोड़ने का आदेश दिया गया। वे लिफ्ट

मांगते हुए मैक्सिको और ब्राजील होते हुए दक्षिण की ओर बढ़े। उरुग्वे पहुँचने तक उन्हें किसी भी देश ने शरण नहीं दी, जहाँ उन्हें एक खेतिहर मजदूर के रूप में नौकरी मिल गई। उन्होंने एक स्पेनिश मजदूर की बेटी से विवाह किया और उनके कई बच्चे हुए। उनके सिख और स्पेनिश दोनों नाम रखे गए: दिलबाग डॉन पेड्रो सिंह, शांति कारमेलिता सिंह, इत्यादि। चंचल सिंह, जो बीस वर्ष की आयु तक केवल पंजाबी बोलते थे, अब उसका एक शब्द भी नहीं समझ पाते थे - पचास वर्षों ने पंजाबी को उनकी स्मृति से पूरी तरह मिटा दिया था।

मैंने पाया है कि अगर किसी व्यक्ति को किसी भाषा के मौखिक या दृश्य संपर्क में न लाया जाए, तो उसकी स्मृति को मिटाने में पचास साल से भी कम समय लगता है। एक पंजाबी मुस्लिम व्यापारी (मुझे लगता है उनका नाम अनवर था) ने मुझे और उनकी स्पेनिश पत्नी को भोजन पर आमंत्रित किया। दोनों धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते थे। जब उनकी पत्नी रसोई में व्यस्त थीं, तो मैंने अपने मेज़बान से पंजाबी में बात की। उन्हें मेरी बात समझने में कठिनाई हो रही थी। उन्होंने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, 'शब्द परिचित लग रहे हैं, लेकिन मुझे उनका अर्थ याद नहीं आ रहा है। मैं बारह साल से उरुग्वे में हूँ, मेरा काम पूरी तरह से स्पेनिश या अंग्रेजी में है। इन सभी वर्षों में मैंने किसी से भी हिंदुस्तानी या पंजाबी में बात नहीं की है और न ही किताबों या पत्रिकाओं के माध्यम से उनसे संपर्क रखा है। अब मैं न तो आपकी बात समझ पा रहा हूँ और न ही बोल पा रहा हूँ।' बारह वर्षों में उनकी मातृभाषा उनकी स्मृति से पूरी तरह मिट चुकी थी।

मॉन्टेवीडियो सम्मेलन को अंतरराष्ट्रीय प्रेस में बहुत कम प्रचार मिला। उरुग्वे विश्व मानचित्र पर न के बराबर था और यूनेस्को को एक उबाऊ संस्था माना जाता था। पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल के सचिव एम. शरीफ ने यूनेस्को में मेरे शामिल होने का विरोध न करने के कारण मुझसे विशेष ध्यान आकर्षित करने की मांग की। बदले में वह मुझसे ऐसी महिलाओं की मांग कर रहे थे जिनके साथ वह शारीरिक संबंध बना सकें और जब मैं ऐसा करने में असमर्थ रहा तो वे मुझसे बहुत निराश हुए। फिर उन्होंने मुझसे उनके लिए एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित करने को कहा। मैंने स्थानीय समाचार पत्रों में इसकी घोषणा करवाई और सभी प्रतिनिधियों को इसकी सूचना भेज दी। कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। शरीफ ने मुझसे अपना भाषण दिया। मैंने इसे पाकिस्तान भिजवाया जहाँ सभी समाचार पत्रों में यह प्रकाशित हुआ।

पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल के नेता शिक्षा मंत्री इश्तियाक हुसैन कुरैशी थे, जो मेरे दो साल के प्रवास के दौरान दिल्ली के सेंट स्टीफंस कॉलेज में शिक्षक थे। एक छोटे से औपचारिक भोज में एक मजेदार घटना घटी, जहाँ कई प्रतिनिधिमंडलों के प्रमुख उपस्थित थे। श्री कुरैशी मेरे बगल में बैठे थे; हमारे सामने ऑस्ट्रेलियाई प्रतिनिधिमंडल के नेता बैठे थे। कुरैशी कुछ उदास लग रहे थे क्योंकि उस सुबह उन्हें सूचना मिली थी कि उन्हें बर्खास्त कर दिया गया है। (शरीफ ने मुझे इसके बारे में बताया था।) हमारे सामने बैठे ऑस्ट्रेलियाई नेता ने कुरैशी का कार्ड उठाया और अपना परिचय दिया। 'महामहिम मंत्री जी, मेरा नाम फलां-फलां है: मैं ऑस्ट्रेलियाई शिक्षा मंत्रालय से हूँ।' उन्होंने हाथ मिलाया। बातचीत जारी रखने के लिए,

ऑस्ट्रेलियाई नेता ने बड़े उत्साह से कहा, 'महामहिम, आप और मुझ जैसे सरकारी कर्मचारी में एक ही अंतर है, कि मुझे पता है कि कैनबरा लौटने पर मेरी नौकरी मेरा इंतजार कर रही होगी। एक मंत्री कभी भी निश्चित नहीं हो सकता कि वह कितने समय तक पद पर रहेगा।' मुझे ऑस्ट्रेलियाई नेता को रोकने के लिए मेज के नीचे लात मारनी पड़ी। वह मेरी ओर मुड़ा और गुस्से से बोला। 'तुम मुझे लात क्यों मार रहे हो?' मुझे जो पता था, उसे स्वीकार करना पड़ा और मैंने जवाब दिया, 'क्योंकि तुम एक ऐसे मंत्री से बात कर रहे हो जिसने आज सुबह अपनी नौकरी खो दी है।'

मैं लूथर इवांस की उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा और बजट समिति के सामने पेश होने से इनकार कर दिया। अब वे मुझे विभाग का उप प्रमुख नहीं बना सकते थे। उन्होंने पदच्युत तमिल ईसाई पादरी मैल्कम आदिशेशिया को अपना द्वितीय सहायक महानिदेशक नियुक्त कर दिया, जो फ्रांसीसी रेने माहेउ के बराबर था, जिसे वे ज़्यादा पसंद नहीं करते थे। मोंटेवीडियो में मेरी एकमात्र उपलब्धि सिख धर्मग्रंथों के कुछ अंशों के अनुवाद को शामिल करने के मेरे प्रस्तावों को स्वीकार करवाना था।

मुझे उरुग्वे को ज़्यादा देखने का मौका नहीं मिला। मेरी स्पैनिश सेक्रेटरी मुझे अपने पिता के खेत पर ले गई, जहाँ मैंने गौचो (चरवाहों) को नंगे बदन घोड़े पर सवार होकर एक बछिया को फंदे से पकड़ते देखा। उन्होंने उसका गला चीरा, फिर उसका पेट चीरा ताकि उसके सारे अंदरूनी अंग बाहर निकल जाएँ। सिर और खाल समेत शव को स्टील की छड़ों से बने तिपाई पर रखा गया, जिसके नीचे सुलगती हुई आग थी। फिर लड़के-लड़कियाँ तब तक नाचते-गाते रहे जब तक कि बछिया पूरी तरह से भुन नहीं गई। उन्होंने अपने काउबॉय चाकूओं से उसके शरीर के बड़े-बड़े टुकड़े काटे और उन्हें कागज़ की प्लेटों में रखकर खाया। उनके गिलासों में घर की बनी वाइन (वाइन रोसो) डाली गई। सारा रस बरकरार था और मांस बहुत स्वादिष्ट था। वाइन भी लाजवाब थी। मैंने रियो नीग्रो नदी के पार बस की सवारी भी की और मोंटेवीडियो में कुछ पक्षी देखे। दो दक्षिण अमेरिकी पक्षी जो मुझे आज भी याद हैं, वे हैं ओर्नेइरो, जो हमारे बुनकर पक्षी बाया की तरह दो कक्षों वाला घोंसला बनाता है। और तिजेराटा, जिसे कैंची पक्षी भी कहा जाता है, जिसकी दो लंबी पूंछें होती हैं जो कैंची की तरह एक दूसरे को काटती हैं।

एक महीने बाद मैं पेरिस लौट आया। मोंटेवीडियो में नाकामयाबी से मैं बेहद निराश था। श्नाइडर सेवानिवृत्त हो चुके थे। इवांस ने उनकी जगह संयुक्त राष्ट्र जनसंपर्क विभाग से नॉर्वे के एक व्यक्ति, टोर गजेस्डाल को नियुक्त किया। गजेस्डाल अपने साथ न्यूयॉर्क से अपने सहायक भी ले आए। मेरे पास अपनी वफादार सचिव, यवोन ले रौघेटेल के अलावा लगभग कोई कर्मचारी नहीं बचा था। गजेस्डाल मेरी परवाह नहीं करते थे, और जब भी वे कर्मचारियों की बैठक बुलाते, गहरी आह भरते हुए कहते, 'श्री सिंह, मुझे सच में नहीं पता कि आपके साथ क्या करूं! शायद आप यूनेस्को पर कोई किताब लिख सकते हैं?' कई बार मैंने अपनी निराशा को शराब में डुबो दिया। शाम को मैं अपने साथ लाए भारतीय गाने सुनता था। लता

मंगेशकर का गाया गीत 'जोगी मत जा; पाऊं पड़ूं में तेरे' (योगी, मुझे मत छोड़ो, मैं तुमसे विनती करता हूं) इतना भावुक कर देने वाला था कि मैं बगीचे में जाकर आंसू बहाता था। जब मुझे ग्रोव प्रेस के बार्नी रॉसेट का टेलीग्राम मिला कि मेरे उपन्यास 'मनो माजरा' (जो अब 'ट्रेन टू पाकिस्तान' के नाम से ज़्यादा जाना जाता है) को उस वर्ष (1954) का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया गया है, तो मेरी निराशा कुछ हद तक दूर हुई। मैंने प्रेम किरपाल को ज़बरदस्ती पार्टी देने के लिए मना लिया और लूथर इवांस से पेरिस में आए सर रामास्वामी मुदलियार की उपस्थिति में मुझे चेक दिलवाया। इस पुरस्कार से मुझे इतनी रकम मिल गई कि मैं एक मर्सिडीज बेंज खरीद सका।

सिख धर्मग्रंथों के चुनिंदा अंशों के अनुवाद के लिए यूनेस्को परियोजना का संचालन मैंने राष्ट्रीय आयोग और यूनेस्को के माध्यम से लगभग अकेले ही किया था। मुझे अंशों के चयन और अनुवादकों के एक पैनल के चयन की व्यवस्था करने के लिए दिल्ली भेजा गया था। इससे मुझे सिख विद्वानों के स्वभाव का अनुभव प्राप्त हुआ। मैंने तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष हुकम सिंह से मुलाकात की। उन्होंने सुझाव दिया कि मैं लुधियाना के डॉ. तरलोचन सिंह को संयोजक और समन्वयक बनाऊं। मुझे संदेह है कि हुकम सिंह इस व्यक्ति के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते थे, सिवाय इसके कि वे स्वयं को धर्मशास्त्र में डॉक्टरेट (किसी को नहीं पता था कि कहाँ से) कहते थे और बहुत तंगहाली में थे। हुकम सिंह ने तरलोचन सिंह को फोन किया, जो अगले दिन दिल्ली पहुँच गए। वे लंबी दाढ़ी वाले ग्रंथी जैसे व्यक्ति थे, जिन्हें इस क्षेत्र के अन्य लोगों, विशेष रूप से डॉ. गोपाल सिंह दर्दी से सख्त नफरत थी। हमने चार अनुवादकों का एक पैनल तय किया: उन्होंने हठपूर्वक दर्दी का नाम शामिल करने से इनकार कर दिया। विद्वानों के एक अन्य पैनल को अंशों का चयन करने के लिए कहा गया। डॉ. राधाकृष्णन प्रस्तावना लिखने के लिए सहमत हुए। जब दरदी को पता चला कि पैनल में उनका नाम शामिल नहीं किया गया है, तो उन्होंने मुझे पत्र लिखकर विरोध जताया और मुझसे विनती की कि यूनेस्को के नामांकित व्यक्तियों की सूची में उनका नाम शामिल किया जाए। मैंने जवाब में लिखा कि चयन प्रक्रिया में मेरा कोई हाथ नहीं था, लेकिन मुझे आभास हो गया था कि तरलोचन सिंह और कपूर सिंह, जो कभी दरदी के घनिष्ठ मित्र थे, उनके प्रति गंभीर आपत्ति रखते थे। दरदी का गुस्सा फूट पड़ा। अपनी शान-शौकत के कारण उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू से इस मामले को उठाने की धमकी दी। मैंने भी उतने ही कठोर शब्दों में जवाब दिया और कहा कि वे जो चाहें कर सकते हैं। उनके जीवन के अंतिम वर्ष तक हमारे बीच संबंध पहले जैसे नहीं रहे।

कपूर सिंह भी एक उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। उनका दावा था कि उन्होंने ऑक्सफोर्ड से दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। सिख होने के नाते नामांकन के माध्यम से उन्हें भारतीय नौसेना सेवा (आईसीएस) में भर्ती किया गया। कुछ वर्षों की सेवा के बाद भ्रष्टाचार के आरोप में उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। उन्होंने इस अपमान के लिए भारत सरकार को कभी माफ नहीं किया। वे अकाली दल में शामिल हो गए, लोकसभा के लिए चुने गए और आनंदपुर साहिब प्रस्ताव के

प्रमुख रचनाकार थे, जिसमें सिखों को अन्य भारतीयों से अलग एक राष्ट्र बताया गया था और उनके लिए 'स्वयं निर्धारित दर्जा' की मांग की गई थी। उन्हें अपनी विद्वता पर बहुत अधिक गर्व था और वे अन्य अकाली नेताओं को बुद्धिहीन गंवार समझते थे। उनका स्वभाव भी अत्यंत प्रचंड था।
चयनित अंशों का अनुवाद करके मुझे भेजा गया। वे पढ़ने में नीरस थे। उन्हें अनुवादकों को वापस भेजने के बजाय, जिन्हें अच्छी खासी रकम दी गई थी, मैंने यूनेस्को को मना लिया कि मुझे एक अंग्रेज़ कवि को नियुक्त करने की अनुमति दी जाए ताकि वे उनका अनुवाद कर सकें। मैंने अपने मित्र गाय विंट द्वारा सुझाए गए एक कम प्रसिद्ध कवि गॉर्डन फ्रेज़र की सेवाएं लीं और उनके साथ लंदन में दो सप्ताह बिताए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे मूल पाठ में कोई अतिशयोक्ति न करें। डॉ. राधाकृष्णन द्वारा लिखित विद्वतापूर्ण प्रस्तावना सहित यह अनुवाद मेसर्स एलन एंड अनविन द्वारा 'सिखों के चयनित पवित्र ग्रंथ' शीर्षक से प्रकाशित किया गया।

प्रकाशन के बाद एक घटना घटी, जब तरलोचन सिंह मेरे प्रति अभद्र हो गए। एलन एंड अनविन कंपनी ने पुस्तक का विज्ञापन इस प्रकार किया कि अनुवादकों की सूची में मेरा नाम सबसे ऊपर था, क्योंकि उन्होंने पहले भी मेरी पुस्तकें प्रकाशित की थीं और मैं इंग्लैंड में अन्य अनुवादकों की तुलना में अधिक प्रसिद्ध था। उन्होंने इस बारे में किसी से परामर्श नहीं किया था। तरलोचन सिंह साहित्य अकादमी के सचिव कृष्ण कृपलानी के पास गए और डॉ. राधाकृष्णन को पत्र लिखकर मुझ पर आरोप लगाया कि मैंने अपना नाम सूची में सबसे ऊपर लाने के लिए हेराफेरी की है। मैंने अपनी निर्दोषता का खंडन किया। उन्होंने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। मैंने एलन एंड अनविन से उन्हें पत्र लिखवाया कि मेरा इससे कोई लेना-देना नहीं है और मेरे अनुरोध पर अब मेरा नाम अनुवादकों की सूची में सबसे नीचे कर दिया गया है। केवल कृपलानी ने मुझसे माफी मांगी। मैंने राधाकृष्णन और तरलोचन सिंह से कोई संबंध न रखने का निश्चय किया।
जब सिटे नेग्रियर अपार्टमेंट का मेरा किरायानामा समाप्त हुआ, तो यवोन ले रौघेटेल ने हमें पारे डे सियोक्स के पास बोर्ग ला रीन नामक उपनगर में एक छोटा सा प्यारा बंगला ढूंढ दिया। हम अपने नए घर में चले गए। हमने एक बहुत ही सुंदर अंग्रेज लड़की, मैरी को खाना बनाने और घर का काम संभालने के लिए रखा। मेरे बेटे को, उसकी नाराज़गी के बावजूद, अमेरिकन इंटरनेशनल स्कूल से लाइसी ला कैनाल में स्थानांतरित करना पड़ा और मेरी बेटी को एक फ्रांसीसी कॉन्वेंट में डे बोर्डर के रूप में भेज दिया गया। उस समय दोनों मुझसे बहुत नाराज़ थे। दोनों को फ्रेंच बोलना नहीं आता था और उन्हें अपने शिक्षकों की बात समझने में परेशानी होती थी। माला को नीग्रे (काली) कहे जाने पर बहुत बुरा लगता था और मेरे यह आश्वासन देने के बावजूद कि नीग्रे अच्छे लोग होते हैं, वह शांत नहीं हुई। बाद में, दोनों ने अनिच्छा से स्वीकार किया कि अगर मैंने उन्हें फ्रेंच स्कूलों में जाने के लिए मजबूर न किया होता, तो वे कभी भी फ्रेंच बोलना नहीं सीख पाते।

हमारा नया घर रू डू कर्नल कैंडेलॉट नाम की सड़क पर रेलवे ट्रैक के किनारे था। मैं पहली ट्रेन की हाइड्रोलिक ब्रेक लगने की सरसराहट से जागा, जो बोर्ग ला रीन (मेरे अंग्रेज़ दोस्तों के लिए 'बगर द क्वीन') स्टेशन पर रुकी थी। सुबह-सुबह मेरा सपना अक्सर झरने में डूबने का होता था। मैंने सुबह 9 बजे वाली ट्रेन पकड़ी, जिसने मुझे एटोइल में उतार दिया। सबसे पहले मैं कैफ़ेटेरिया गया, जहाँ मैंने मक्खन के साथ एक गरमा गरम क्रोइसैन्ट और एक कप गरमा गरम कॉफ़ी पी। फिर मैं अपने कमरे में गया, जहाँ मैंने यूनेस्को पर अपना ड्राफ्ट लिखा, यवोन को कुछ पत्र लिखवाए और अपनी पत्नी का इंतज़ार किया, जो दोपहर में मेरे साथ लंच करने आई। फिर किरपाल के साथ हम अच्छे खाने वाले और वाजिब दामों वाले रेस्टोरेंट ढूंढने निकले। पेरिस की एक खासियत यह थी कि लगभग हर रेस्टोरेंट में स्वादिष्ट खाना मिलता था। अगर मौसम खराब होता, तो हम यूनेस्को के कैफ़ेटेरिया या रेस्टोरेंट में लंच कर लेते। वाइन पीना तो ज़रूरी था। जब मैं अपने कमरे में लौटा, तब तक मेरा सिर शराब के नशे में चूर हो चुका था। एक अंग्रेज़ स्टेनोग्राफर, जो पूरी तरह से दृष्टिहीन थी, हमारे लिए दोपहर की चाय बनाती थी। फिर व्यस्त यातायात शुरू होने से पहले घर लौटने का समय हो जाता था। मुझे धीरे-धीरे एहसास होने लगा कि पेरिस में रहना सुखद तो था, लेकिन मैं अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ खास नहीं कर रहा था। फिर भी, मैं परिवार के साथ पारे दे सोक्स में सैर करने और हंसों को दाना चुगने से नहीं रुका। हमने सप्ताहांत में पेरिस से बाहर जाने का पक्का इरादा कर लिया था। किरपाल हमेशा हमारे साथ होता था। वह मेरी पत्नी और बच्चों के साथ मुझसे ज़्यादा नज़र आता था। पड़ोस में रहने वाले उनेस्का के लोग मुझसे पूछते थे कि क्या मैं सप्ताहांत किरपाल परिवार के साथ बिताता हूँ। हमारे यहाँ भारत से भी कभी-कभार मेहमान आते थे। सबसे पहले मेरे सबसे छोटे भाई दलजीत आए। उन्होंने सुंदर मैरी को देखते ही उसे बहकाने का फैसला कर लिया। मैरी उनके इरादों से डर गई और मेरी पत्नी की शरण में आ गई। मेरी पत्नी मैरी के शयनकक्ष में तब तक रहीं जब तक कि मेरे भाई को मैरी के साथ संबंध बनाने का इंतज़ार करते-करते नींद नहीं आ गई। फिर भरत राम परिवार आया। शीला मॉस्को से आई थीं, जहाँ वे भारतीय महिलाओं के एक प्रतिनिधिमंडल के साथ गई थीं। उन्हें अपने निजी गहने - मेरी राय में 12 लाख रुपये से अधिक मूल्य के - प्रदर्शनी के लिए ले जाने की अनुमति दी गई थी। उनके गहनों ने रूसी महिलाओं को भारतीय नर्तकियों और गायिकाओं से कहीं अधिक आकर्षित किया। घर में बहुत कम जगह थी, लेकिन उन्होंने होटल में रुकने से इनकार कर दिया। उनके पति, जो इंग्लैंड में थे, जल्द ही पेरिस में उनसे मिलने वाले थे। शीला भारत के लिए रवाना हो गई और भरत कुछ दिन और रुक गए। जाने से पहले उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या वे मेरी पत्नी को दोपहर के भोजन के लिए बाहर ले जा सकते हैं और खाने के लिए किसी अच्छी जगह का नाम बता सकते हैं। मैंने एक पर्ची पर पेरिस के सबसे महंगे रेस्तरां, टूर डी'अर्जेंट का नाम लिखा और उन्हें आश्वासन दिया कि हर टैक्सी चालक इसे जानता है। मैंने अपनी पत्नी से कहा, 'वहाँ खाने का यही आखिरी मौका है।' वे रेस्टोरेंट गए, भरत ने मेनू और कीमतों पर नज़र डाली। उन्होंने कहा, 'यहाँ शाकाहारियों के लिए कुछ भी नहीं है।' उन्होंने एक सस्ती जगह ढूंढ ली

जहाँ उन्हें दाल-भात मिल सके। अरबपति बनने के लिए सिर्फ़ व्यापारिक सूझबूझ ही काफ़ी नहीं होती। आपको विरासत में मिली चीज़ों को सहेज कर रखना भी आना चाहिए।

अपनी कमाई बचाने की बात करें तो, बलदून ढिंगरा इसका सबसे अच्छा जीता-जागता उदाहरण थे। मैं उन्हें लाहौर में तब से जानता था जब उन्होंने सरकारी कॉलेज में लेक्चरर के रूप में काम शुरू किया था। वे एक चुस्त-दुरुस्त, उत्साही और साहित्यिक महत्वाकांक्षाओं से भरे व्यक्ति थे। लाहौर में, उन्होंने एक निबंध प्रकाशित करवाया था जिसे उन्होंने किसी विश्वविद्यालय प्रतियोगिता में भेजा था। छपे हुए संस्करण में ऐसा लगा जैसे उन्होंने पुरस्कार जीत लिया हो। जबकि ऐसा नहीं था। विभाजन के बाद, वे पेरिस आए और धाराप्रवाह फ्रेंच बोलना सीख लिया। उन्होंने और उनकी पत्नी कमला ने डॉ. राधाकृष्णन से संपर्क किया और उनसे यूनेस्को के महानिदेशक को मनाकर नौकरी दिलवाई। उन्हें जनसंचार विभाग में अस्थायी रूप से एक मामूली पद दिया गया। उनकी पत्नी यूरोप के विभिन्न हिस्सों में व्याख्यान देकर उनकी आय में योगदान देती थीं। उनका एक छोटा सा एक कमरे का अपार्टमेंट था। जब उनकी दोनों बेटियाँ इंग्लैंड में स्कूल से छुट्टियों पर आती थीं, तो वे नीचे सड़क पर खड़ी अपने माता-पिता की कार में सोती थीं। उन्होंने मुफ्त भोजन पाने की भी एक योजना बना रखी थी। यूनेस्को हाउस में शाम को अक्सर एक-दो रिसेप्शन होते रहते थे। कमला भटकती हुई आती और मेजबानों से पूछती कि क्या उन्होंने उसके पति को कहीं देखा है। अगर वे नहीं देखते, तो क्या वह अपनी खोज जारी रखने से पहले एक पेय ले सकती है? फिर बलदून अपनी पत्नी को ढूंढते हुए आता और एक पेय के लिए रुकने को राजी हो जाता। कमला उसके कान में फुसफुसाती, 'मैंने घर पर कुछ नहीं पकाया है। आप यहाँ जो चाहें खा लें।' उन्होंने कैनपेस और कॉकटेल सॉसेज का भोजन किया। उन्होंने अपनी बेटियों को अच्छी तरह से पाला-पोसा था। कोई न कोई दोपहर के भोजन के समय बलदून के सहयोगियों से सलाह लेने आती और उनके साथ दोपहर का भोजन करने के लिए राजी हो जाती। मुझे यह समझने में कुछ समय लगा कि मैं कम से कम सप्ताह में एक बार लड़कियों को खाना खिला रही थी। किरपाल और अन्य भारतीय बाकी दिनों में उनकी देखभाल करते थे। ढिंगरा परिवार की सबसे बड़ी उपलब्धि उनकी बड़ी बेटी की शादी का आयोजन करने का तरीका था। उन्हें पता चला कि डॉ. राधाकृष्णन पेरिस कब आ रहे हैं और उन्होंने उन्हें पत्र लिखकर इस अवसर पर अपनी बेटी को आशीर्वाद देने का अनुरोध किया। आशीर्वाद देने की सहमति वाले पत्र के साथ, वे भारतीय राजदूत के पास गए, जिनके यहाँ डॉ. राधाकृष्णन ठहरने वाले थे, ताकि उन्हें अपने आवास पर विवाह समारोह आयोजित करने की अनुमति मिल सके, क्योंकि वे कहीं और हवन का आयोजन नहीं कर सकते थे। वे तुरंत सहमत हो गए। और उन्होंने शादी का स्वागत समारोह आयोजित करने की भी सहमति दे दी। कमला ने सिग्नोर मोंटेसरी (मैडम मोंटेसरी के पुत्र) को अपना धर्म भाई बना लिया था। उन्होंने उन्हें बताया कि भतीजी की शादी में माँ के भाई द्वारा सोने की चूड़ियाँ देना प्रथा है। उन्होंने लड़की के लिए सोने की चूड़ियाँ बनवाई। ढिंगरा परिवार ने उदारतापूर्वक निमंत्रण दिए। उन्होंने पेरिस और लंदन में अपने लगभग सभी

परिचितों को आमंत्रित किया। कार्डों में उल्लेख था कि भारत के उपराष्ट्रपति इस अवसर पर उपस्थित होकर दूल्हा-दुल्हन को आशीर्वाद देंगे। सभी ने निमंत्रण स्वीकार किए। सभी अपने साथ एक महंगा उपहार लेकर आए। ढिंगरा परिवार ने केवल कार्डों की छपाई और डाक खर्च का भुगतान किया। ढिंगरा परिवार की इस सूझबूझ ने मुझे लघु कहानी 'श्री कंजूस द ग्रेट मिरेकल' लिखने के लिए प्रेरित किया।

कमला अक्सर हमारे साथ भोजन करने आती थीं। मेरे परिवार के भारत लौटने के बाद, उन्होंने मुझे अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया, बशर्ते मैं उनके द्वारा पकाए जाने वाले भोजन की सामग्री लाऊं। मैंने कभी उनके साथ भोजन नहीं किया। यूनेस्को में बलदून ढिंगरा क्या करते थे, यह कोई ठीक से नहीं जानता था। जब भी कोई उनके कमरे में जाता, वे खाली दीवार को घूरते हुए पाए जाते। लोगों को उम्मीद थी कि एक दिन वे कोई क्रांतिकारी विचार लेकर आएंगे।

महानिदेशक का धैर्य टूटने लगा था। राधाकृष्णन के दबाव में उन्हें छह-छह महीने के दो कार्यकाल विस्तार दिए गए। फिर उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। पेरिस छोड़ने से पहले, कमला ने मुझे दिल्ली स्थित अपने घर के लिए खरीदी गई कुछ वस्तुओं को अपने निजी सामान के रूप में ले जाने के लिए मनाने की कोशिश की। इनमें एक बाथटब और उनके बाथरूम के लिए संगमरमर की टाइलें शामिल थीं। मैंने मना कर दिया। बलदून पेरिस में ही रुक गए, एक अंग्रेज़ महिला से संबंध बना लिया और उससे एक पुत्र को जन्म दिया। कमला बहुत क्रोधित हुई। उन्होंने अपनी बचत से दिल्ली में संपत्ति बनाई थी। अब उस पर दावा करने के लिए एक नाजायज बच्चा था। कुछ महीनों बाद, बलदून की पेरिस में तीव्र एनीमिया से मृत्यु हो गई।

यूनेस्को में आदिशेशिया, किरपाल और मेरे अलावा आधा दर्जन भारतीय थे। उनमें डॉ. नायडू भी थे, जो एक वैज्ञानिक थे और उनकी पत्नी यूरोपीय थीं और उनकी एक सुंदर बेटी लीला थी। एक बार वह स्कूल की वर्दी में और चेहरे पर स्याही के धब्बे लिए मेरे कार्यालय में मुझसे मिलने आई थीं। उनकी उम्र मुश्किल से पंद्रह साल थी। मुझे लगा कि वह बड़ी होकर बेहद खूबसूरत बनेंगी। और वह बनी भी। भारत के जाने-माने होटल व्यवसायी के बेटे टिक्की ओबेरॉय की नज़र उन पर पड़ी। उनका विवाह असफल रहा। उन्होंने टिक्की को जुड़वां बेटियां दीं और फिर उन्हें छोड़कर मुंबई फिल्म उद्योग में शामिल हो गईं। इसके बाद उन्होंने डोम मोरेस से शादी कर ली।

वहाँ एक युवा दक्षिण भारतीय दंपति भी थे। पति बजट अधिकारी थे और अपने काम में बेहद कुशल थे। दोनों संतान प्राप्ति के लिए बहुत उत्सुक थे। लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद उनकी पत्नी गर्भवती नहीं हो पा रही थीं। उन्होंने इधर-उधर भटकना शुरू कर दिया। हर सप्ताहांत उन्हें जिनेवा में किसी न किसी महत्वपूर्ण काम से जाना होता था। वे शुक्रवार शाम को पेरिस से निकलते और सोमवार को कार्यालय पहुँचने के लिए समय पर लौट आते। एक सोमवार की सुबह उनके पास बस इतना ही समय था कि वे जल्दी से शेव करें, कपड़े बदलें और कार्यालय के लिए निकल पड़ें। उनकी पत्नी ने सोचा कि वह उनके सूट पर इस्त्री कर देंगी। ऐसा करते समय उनकी नज़र सूट की अंदरूनी जेब में एक छोटे से पैकेट पर पड़ी। उसमें क्या

था, यह उन्हें समझ नहीं आया क्योंकि उन्होंने कभी ऐसी चीजों का इस्तेमाल नहीं किया था, लेकिन वह उन्हें बहुत संदिग्ध लगा। उन्होंने अपनी एक अमेरिकी पड़ोसी से पूछा कि यह क्या है। जब उन्हें बताया गया, तो वह स्वाभाविक रूप से बहुत परेशान हुईं और अपने पति को सबक सिखाने पर तुली रहीं। उनकी सहेली ने उन्हें ऐसा न करने के लिए समझाया। उन्होंने आश्वासन दिया, 'मैं उसे हमेशा के लिए सबक सिखा दूँगी।' उस महिला ने एलरमैन की एक बोतल खरीदी, जो घोड़ों की मांसपेशियों को आराम देने के लिए होती है, लेकिन इतनी तेज़ होती है कि इंसानी त्वचा में जलन पैदा कर सकती है। उसने जेब के अंदर के हिस्से पर वह लेप लगाया और उसे वापस पति के कोट की जेब में रख दिया। अगले सप्ताहांत जिनेवा की यात्रा पर उसने वही सूट पहना। यह जिनेवा की उसकी आखिरी यात्रा थी।

यूनेस्को में कुछ और घटनाएं भी हुईं जो मुझे आज तक याद हैं। उनमें से एक घटना चूहों की समस्या से जुड़ी थी। होटल मैजेस्टिक में भूमिगत सुरंगें थीं जो शहर के नीचे फैली विशाल सीवेज नहरों तक जाती थीं। ये नहरें विशालकाय चूहों से भरी हुई थीं। ये सुरंगें यूनेस्को के रेस्तरां और कैफेटेरिया के खाद्य भंडारों तक पहुंच जाती थीं और भारी नुकसान पहुंचाती थीं। यूनेस्को के रात्रि रक्षकों को चूहों को मारने के लिए टॉर्च और पिस्तौलें दी गईं। लेकिन वे उनसे निपटने में असमर्थ रहे और कुछ को चूहों ने काट लिया। लूथर इवांस को इस समस्या के बारे में बताया गया। एक समझदार व्यक्ति होने के नाते, उन्होंने सुझाव दिया कि यूनेस्को कुछ बिल्लियां खरीद ले और उन्हें इस समस्या से निपटने के लिए छोड़ दे। बिल्लियां चूहों को मारकर और खाकर खूब मजे कर रही थीं। जब तक चूहे गायब हुए, बिल्लियां बहुत बढ़ चुकी थीं और खूंखार छोटे बाघों जैसी हो गई थीं। चूहों की अनुपस्थिति में, वे यूनेस्को के खाद्य भंडारों में सेंध लगाने लगीं और पहले से कहीं अधिक नुकसान पहुंचाने लगीं। एक बार फिर लूथर इवांस मदद के लिए आगे आए। बिल्ली पकड़ने वालों की सेवाएं ली गईं। एक सप्ताहांत में, उन्होंने अस्सी से अधिक बिल्लियों को पकड़ा, उन्हें बोरियों में भरा और ट्रकों में लादकर पेरिस से दूर किसी स्थान पर सीन नदी में डुबोने के लिए ले गए। जब वे अपने गंतव्य पर पहुँचे, तो बिल्ली पकड़ने वालों को पछतावा हुआ। अस्सी निर्दोष बिल्लियों को डुबोना? उन्हें अपने हाल पर क्यों नहीं छोड़ दिया? उन्होंने ठीक यही किया। बिल्ली पकड़ने वाले यूनेस्को हाउस लौट आए और अपनी फीस ले ली। अगले कुछ दिनों में, एक-एक करके, बिल्लियाँ वापस होटल मैजेस्टिक पहुँच गईं। यह घटना मेरी कहानी 'संस्कृति भवन में चूहे और बिल्लियाँ' का विषय है।

जैसा कि किसी संगठन में उम्मीद की जा सकती है, जहाँ स्टेनोग्राफर और अन्य छोटे-मोटे कामगारों के अलावा बाकी लोगों के पास करने को बहुत कम काम होता है और इतना खाली समय होता है कि वे दिखावा करते रहते हैं कि उन पर काम का बोझ बहुत ज़्यादा है, वहाँ सनकी लोगों की संख्या सामान्य से कहीं ज़्यादा थी। एक उदाहरण ही काफी होगा। एक चेक लड़की थी, जिसका नाम मुझे याद नहीं, जो टेबल टेनिस की शौकीन थी। शाम को घर जाने से पहले वह एक घंटा या उससे ज़्यादा समय तक ज़ोर-शोर से टेबल टेनिस खेलती थी। मेरा बेटा, जो कभी-कभी अपनी माँ के साथ घर जाने के लिए आता

था, अक्सर उसके साथ खेलता था। वह शर्मीली और शांत स्वभाव की लड़की थी, जिसे सब पसंद करते थे। वह अकेली रहती थी और उसका कोई प्रेमी नहीं था। एक सुबह वह न तो घर आई और न ही उसने कोई सूचना भेजी कि वह क्यों नहीं आई। उसकी एक सहेली यह देखने के लिए उसके घर गई कि सब ठीक है या नहीं। उसे किसी तरह की हृदय संबंधी बीमारी थी और वह अक्सर जाँच के लिए जाती थी। जब वह महिला घर पहुँची, तो उसने देखा कि दरवाज़ा थोड़ा खुला हुआ है और लड़की अपने टेलीफोन के पास बेसुध पड़ी है। उसे अस्पताल ले जाया गया जहाँ डॉक्टर ने उसे मृत घोषित कर दिया। यूनेस्को में उसकी सहेलियों ने डॉक्टर के फैसले को मानने से इनकार कर दिया और कसम खाकर कहा कि लड़की किसी जादू के असर में थी। और उसे वास्तव में किसी ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत थी जो उस गुप्त मंत्र को जानता हो जिससे वह इस सम्मोहन से बाहर आ सके। मंत्रों के बारे में उस सांवले आदमी से ज़्यादा कौन जान सकता था जो पगड़ी और दाढ़ी रखता था और लड़की का दोस्त भी माना जाता था?

तीन महिलाओं का एक प्रतिनिधिमंडल मुझसे मिलने आया। क्या मैंने चेक लड़की के साथ हुई घटना के बारे में सुना था? मैंने जवाब दिया कि मैंने सुना था और यह जानकर मुझे बहुत दुख हुआ कि इतनी कम उम्र में इतनी प्यारी लड़की का इतना जल्दी देहांत हो गया। 'लेकिन श्रीमान सिंह, आप तो यह नहीं मानते कि वह मर गई है!' उन्होंने आपत्ति जताई। 'वह किसी बुरी शक्ति के प्रभाव में है। हम जानना चाहते थे कि क्या आपको उसे इस प्रभाव से मुक्त करने का सही मंत्र पता है।' मैं स्तब्ध रह गया। मैंने उनसे बहस करने की कोशिश की। 'डॉक्टर को पता होगा कि वह समाधि में है या मर गई है,' मैंने विरोध किया। 'डॉक्टरों को इन सब बातों का क्या पता?' उन्होंने कहा। 'अगर आपको मंत्र पता है तो हम आपको उसके पास ले जाएंगे और आप खुद देख लेंगे कि वह मरी नहीं है; बस गहरी नींद में है।' मैंने अनभिज्ञता जताते हुए कहा: हालांकि मैं पूर्वी मूल का था, लेकिन मुझे कोई गुप्त ज्ञान नहीं था। 'ढिंगरा या प्रेम कृपाल या किसी अन्य भारतीय या पाकिस्तानी से पूछ लीजिए,' मैंने सुझाव दिया। मुझे नहीं पता कि उन्हें इसमें सफलता मिली या नहीं, लेकिन अगले दिन कार्मिक विभाग के प्रमुख, विलियम फ़ार नाम के एक रूखे स्वभाव वाले अंग्रेज ने मुझे अपने कमरे में बुलाया। उनके प्रतीक्षालय में कई महिलाएं बैठी थीं, जिनमें वे महिलाएं भी शामिल थीं जो मुझसे मिलने आई थीं। मैं अंदर गई। बिल फ़ार ने अपने हाथों से अपना सिर थाम लिया और पूछा, 'अगर आप उस बेचारी चेक लड़की के लिए कुछ कर सकें, तो हम आपके बहुत आभारी होंगे। देखिए, आज शाम उसका अंतिम संस्कार होना है। हम उसे जिंदा दफनाना नहीं चाहते।' उस निर्मम अंग्रेज के इस अनुरोध से मुझे और भी दुख हुआ। 'बिल, क्या तुम पागल हो गए हो? तुम उन सभी पागल औरतों की बात सुनते हो और मुझसे मुर्दों को जिंदा करने की उम्मीद करते हो! ये किस तरह का पागलखाना है?'

इससे वह आदमी थोड़ा चौंक गया। 'मुझे पता है यह अजीब लग रहा है, लेकिन चूंकि ये महिलाएं इस बात पर जोर दे रही हैं कि आपको सही मंत्र पता होना चाहिए, इसलिए मैंने सोचा कि आपसे कोशिश करने के लिए कहने में कोई हर्ज नहीं है।'

मुझे यूनेस्को पर किताब लिखने की कोई खास इच्छा नहीं थी; मुझे पता था कि मैं वहाँ ज्यादा दिन नहीं रुकूँगा। मेरा पाँच साल का अनुबंध था: केवल निकम्मे लोगों के अनुबंध ही नवीनीकृत नहीं होते थे। मैं अभी उस श्रेणी में नहीं आया था। और पाँच साल तक अच्छे खाने-पीने का आनंद लेने और लोइरे नदी के किनारे स्थित महलों का दौरा करने के अलावा कुछ खास न करना बहुत लंबा समय था। मुझे जल्द ही वहाँ से निकलना होगा। मुझे सेंट जीन औ बोइस (सेंट जॉन्स वुड) नामक एक गाँव में एक प्यारा सा छोटा पब मिला, जो कॉम्पीएग्ने के पास एक घने जंगल में स्थित था, जहाँ प्रथम विश्व युद्ध को समाप्त करने के लिए फ्रांसीसियों और जर्मनी के बीच युद्धविराम संधि पर हस्ताक्षर किए गए थे। यह बोर्ग ला रीन से मुश्किल से चालीस मिनट की दूरी पर था, लेकिन ऐसा लगता था जैसे यह आबादी से लाखों मील दूर है। जंगल इतना घना और अंधेरा था कि दिन के उजाले में भी अकेले चलना मुझे एक अजीब सा एहसास देता था। खाना पौष्टिक था। शराब पीने लायक थी। कुछ लकड़हारे, किसान और महल के रखवाले शाम को पब में अपनी शराब पीने आए। हमने एक-दूसरे का अभिवादन किया। उन्होंने मुझे अकेला छोड़ दिया। उन्हें पता चल गया था कि मैं वहाँ किस लिए गया था: फ्रांसीसी लोग लेखकों का बहुत सम्मान करते हैं। यह अपने विचारों के साथ अकेले समय बिताने और उन्हें कागज़ पर उतारने के लिए एक अच्छी जगह थी। मैंने अपने दूसरे उपन्यास, 'आई शैल नॉट हियर द नाइटिंगेल' पर काम शुरू किया।

यूनेस्को में मेरे वैसे तो नीरस कार्यकाल में एक सुखद विराम मैड्रिड में यूनेस्को की कार्यकारी बोर्ड की बैठक को कवर करने का था। मैं स्पेन जाना चाहता था: स्पेन में गृहयुद्ध छिड़ने पर अंतर्राष्ट्रीय ब्रिगेड के सदस्य के रूप में वहाँ जाने का मेरा पिछला प्रयास लंदन में एक फॉर्म पर अपना नाम दर्ज कराने से आगे नहीं बढ़ पाया था। (केवल सी.आई.ए. के अधिकारियों को ही वह फॉर्म मिला था। मुझे कम्युनिस्ट समर्थक करार दिया गया, अमेरिकी वीजा पाने में मुझे अंतहीन परेशानियाँ हुईं और 1970 के दशक तक मैं उनकी अलर्ट सूची में बना रहा)। किरपाल और मैंने कार से जाने का फैसला किया। मेरी सचिव, यवोन ले रूगेटेल, हमारे साथ मुफ्त में यात्रा करने को तैयार हो गई। मुझे ही गाड़ी चलानी पड़ी क्योंकि किरपाल एक कुख्यात लापरवाह ड्राइवर थे। हम आराम से प्रतिदिन कुछ सौ मील की दूरी तय करते हुए छोटे होटलों में रात बिताते रहे। मुझे स्पेन की सीमा पर परेशानी की आशंका थी, लेकिन हमारे पास राजनयिक पासपोर्ट होने के कारण हमें बिना किसी झंझट के जाने दिया गया। स्पेन में प्रवेश करते ही मैंने दोनों देशों के परिदृश्य और जीवन स्तर में अंतर देखा। स्पेन के हर कस्बे से गुजरते समय सब खस्ताहाल और लोगों से भरे हुए लग रहे थे, जिनमें ज्यादातर बच्चे थे। रेस्तरां में खाने-पीने की चीजें सीमित थीं, और शराब (शेरी को छोड़कर) घटिया दर्जे की थी। हालांकि, मैड्रिड के होटल यूरोप के अन्य अच्छे होटलों जैसे ही थे।

किरपाल को कार्यकारी बोर्ड में कुछ काम था; मेरे पास कोई काम नहीं था। मैंने अपना समय गैलरी और संग्रहालयों का दौरा करने में बिताया। मैंने किरपाल को अपने साथ प्राडो संग्रहालय चलने के लिए मनाने की कोशिश की। उन्होंने कहा, 'मैंने लूव्र संग्रहालय देखा है; वहाँ दुनिया के हर कलाकार की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं। मैं मैड्रिड में अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहता।' प्राडो संग्रहालय की अपनी दूसरी यात्रा के बाद, मैंने किरपाल से कहा कि प्राडो का संग्रह लूव्र से बेहतर है (जो सच नहीं था) और जब वे पेरिस लौटेंगे तो उनके सहकर्मी उनसे ज़रूर पूछेंगे कि क्या वे वहाँ गए थे। अगर उन्हें महान कलाकारों के नाम तक नहीं पता तो वे किस तरह के सांस्कृतिक विभाग के प्रमुख हैं? उन्हें लगा कि मेरी बात सही है। अगले दिन वे प्राडो के गलियारों में घूमे और पंद्रह मिनट में ही उस प्रसिद्ध कला गैलरी को देख लिया। पेरिस में अपने सहकर्मियों द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने प्राडो के संग्रह की प्रशंसा करते हुए कहा कि शायद यह लूव्र से भी अधिक समृद्ध है। उनकी इस टिप्पणी से वे निराश हो गए: 'डॉक्टर किरपाल, आप ऐसा कैसे कह सकते हैं?' लूव्र संग्रहालय प्राडो संग्रहालय से तीन गुना बड़ा है और कला संग्रहों के लिहाज से दुनिया का सबसे समृद्ध संग्रहालय है।' बाद में किरपाल ने आपत्ति जताते हुए कहा, 'के. सिंह, आप हमेशा मुझे गुमराह करते हैं।' मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि उन्हें गैलरी में लाने का यही एकमात्र तरीका था।

एक शाम जब हम अपने होटल के भीड़ भरे रिसेप्शन हॉल में चाय पी रहे थे, किरपाल ने एलिज़ाबेथ आदिशेशिया को फोन करके रात के खाने पर आमंत्रित करने का फैसला किया। वह दीवार पर लगे गेस्ट हाउस के टेलीफोन के पास गया और फोन किया। जब एलिज़ाबेथ का फोन उठा, तो वह ज़ोर से चिल्लाया, 'लिज़बेथ, मैं किरपाल बोल रहा हूँ। कैसी हो?' हॉल में मौजूद सभी लोग चुप हो गए, सबकी निगाहें उस पर टिक गईं। उसने आगे कहा, 'लिज़बेथ, रात के खाने पर क्या कर रही हो? हमारे होटल में आ जाओ और हमारे साथ खाना खाओ। मैल्कम किसी औपचारिक भोज में जा रहा है।' वह विजयी भाव से मेज पर लौटा और घोषणा की, 'एलिज़ाबेथ हमारे साथ रात के खाने पर आएगी।' मैंने जवाब दिया, 'मुझे पता है: हॉल में मौजूद सभी को भी पता है। फोन इस्तेमाल करते समय आपको चिल्लाने की क्या ज़रूरत है?' वह शर्मिंदा सा हो गया। उसने उत्तर दिया, 'उसका होटल यहाँ से पाँच मील दूर है।'

इससे मुझे विंस्टन चर्चिल की अपने कैबिनेट सहयोगी श्री ब्राउन पर की गई टिप्पणी याद आ गई, जो युद्ध के दौरान बगल वाले केबिन में रहते थे। एक दिन वे फोन पर बहुत जोर से बात कर रहे थे। चर्चिल ने अपने सचिव को श्री ब्राउन से यह कहने के लिए भेजा कि वे इतनी जोर से बात न करें। सचिव ने लौटकर चर्चिल को बताया, 'महोदय, मंत्री जी स्कॉटलैंड से बात कर रहे हैं।' चर्चिल ने तीखे लहजे में जवाब दिया, 'मुझे यकीन है कि वे बात कर रहे हैं, लेकिन उनसे कहिए कि वे फोन का इस्तेमाल करें।'

मुझे यह स्वीकार करते हुए शर्म आ रही है कि स्पेन में मुझे सबसे ज़्यादा आनंद बुलफाइट में आया। बुलफाइट देखने के लिए अपनी पहली यात्रा पर, मेरे साथ एक बहुत ही कमज़ोर अंग्रेज़ महिला, श्रीमती पॉवेल, और यूनेस्को के कर्मचारी एक बड़े,

तगड़े फ्रांसीसी महिला थीं। किसी भी बुलफाइट का सबसे आकर्षक दृश्य वह होता है जब बैंडेरिलरो, मैटाडोर, पिकाडोर और टोरेडोर अपनी चौड़ी काली टोपी और लाल कुर्ते में घोड़ों पर सवार होकर अखाड़े में प्रवेश करते हैं, जजों को सलाम करते हैं और शुरू करने की अनुमति मांगते हैं। लड़ाई तब शुरू होती है जब एक विशाल काले बैल को अंदर छोड़ा जाता है। अपने अंधेरे पिंजरे से धूप से जगमगाते अखाड़े में अचानक बदलाव और ज़ोरदार तालियों की गड़गड़ाहट से वह चकित हो जाता है और यह देखने के लिए चारों ओर देखता है कि आखिर यह सब क्या हो रहा है। वह अखाड़े के दूसरे छोर पर घोड़े पर सवार एक आदमी को देखता है; उसका आश्चर्य क्रोध में बदल जाता है और वह घोड़े और सवार की ओर दौड़ पड़ता है। घुड़सवार (बैंडेरिलरो) आने वाले बैल की ओर सरपट दौड़ता है। ऐसा लगता है कि घोड़ा और बैल एक भयानक टक्कर में टकराएंगे। उनके आमने-सामने आने से ठीक एक पल पहले घोड़ा कुछ इंच मुड़ता है और सवार बैल की गर्दन में दो नुकीले भाले गाड़ देता है। यह एक बेहद भयावह दृश्य है। इसके बाद जो होता है वह बेहद क्रूर है। लंबे भालों से लैस पिकेडोर खून बहते बैल को उकसाते हैं; बैल घोड़ों पर झपटता है और संभवतः उनकी पसलियां तोड़ देता है। लड़ाई में उतरने से पहले ही घोड़े की स्वर रज्जु काट दी जाती है ताकि उसकी दर्द भरी हिनहिनाहट सुनाई न दे। अंत में एक बार फिर बड़ी कुशलता का प्रदर्शन होता है। लाल लबादा और घुमावदार तलवार लिए एक मैटडोर थके हुए और खून से लथपथ बैल के पास आता है। हर बार जब बैल लाल लबादे पर हमला करता है, तो मैटडोर चतुराई से एक तरफ हट जाता है। यह भयानक मौत का नाच तब तक चलता रहता है जब तक बैल पूरी तरह थक नहीं जाता। उसका सिर झुक जाता है और जीभ बाहर लटक जाती है। फिर, बैल के सींगों से मुश्किल से एक फुट की दूरी पर अपने पंजों पर खड़े होकर, मैटडोर अपनी तलवार बैल के सिर और गर्दन के बीच एक जगह पर निशाना साधता है। भीड़ 'अब' की गर्जना करती है। वह तलवार को ऐसे चलाता है मानो किसी डार्ट बोर्ड पर निशाना साधते हुए डार्ट चला रहा हो। अगर निशाना सही हो तो तलवार मक्खन में चाकू की तरह आसानी से घुस जाती है। बैल ज़मीन पर गिर पड़ता है - मर जाता है।

पहले मुकाबले में इतना खून देखकर मेरी तबीयत खराब हो गई और उल्टी आने लगी। सख्त दिखने वाली फ्रांसीसी महिला फूट-फूटकर रोने लगी और यह कहते हुए बाहर चली गई कि वह अब और ऐसी क्रूरता बर्दाश्त नहीं कर सकती। कमजोर सी दिखने वाली श्रीमती पॉवेल बहुत उत्साहित थीं और हर वार पर खुशी जता रही थीं। शुरू में घृणा होने के बाद, मुझे आगे के मुकाबलों में मजा आने लगा और मुझे इस क्रूर खेल का आनंद लेने पर अपराधबोध भी हुआ। सत्र का समापन जजों द्वारा मैटाडोरों को पुरस्कार देने के साथ हुआ। अच्छे प्रदर्शन के लिए मारे गए बैल के कान इनाम में दिए जाते थे। अगर प्रदर्शन असाधारण होता था, तो जज उसे बैल की पूंछ हमेशा के लिए दे देते थे। बुलफाइटिंग की तकनीकी बारीकियों को समझाने वाले अंग्रेजी ब्रोशर में गंभीरता से लिखा था कि अगर जज मैटाडोर के कौशल से बहुत खुश होते हैं, तो वे उसे बैल का पिछला हिस्सा इनाम में दे सकते हैं। खेल चाहे कितना भी क्रूर और खूनी क्यों न हो, इसमें एक अच्छी बात थी: मारे गए बैल

का मांस स्टेडियम के बाहर बिक्री के लिए रखा जाता था। अगर मैं बैल होता तो कसाईखाने में मारे जाने की बजाय एक असमान लड़ाई लड़ते हुए मरना पसंद करता।

फ्लेमेंको नृत्य बिलकुल अलग था। लंदन में मैंने महान एंटोनियो को मंच पर देखा था। रूसी बैले की तुलना में इसे समझना और इसका आनंद लेना कहीं अधिक आसान था। शायद इसकी मूरिश उत्पत्ति और कथक से समानता के कारण ही मुझे इससे जुड़ाव महसूस हुआ। फ्लेमेंको के साथ गाया जाने वाला संगीत भी मुझे जाना-पहचाना सा लगा।

पेरिस लौटकर, मुझे पता चल गया था कि यूनेस्को और पेरिस में मेरे दिन अब समाप्त होने वाले हैं। सच्चाई का पल तब आया जब टोर गजेस्डाल के सचिव मुझे वह रिपोर्ट देने आए जो उन्होंने (गेज्डाल ने) मेरे बारे में बनाई थी। नियमों के अनुसार मुझे उसे पढ़ना था और अपनी कोई भी टिप्पणी लिखनी थी। मैंने उनके सचिव से कहा, 'मुझे गजेस्डाल की राय में कोई दिलचस्पी नहीं है,' और लिफाफा खोलने से इनकार कर दिया। सचिव ने जोर दिया कि मैं उसे पढ़ूं और उस पर हस्ताक्षर करूं। मैंने लिफाफा फाड़ दिया और उसे कूड़ेदान में फेंक दिया। जब सचिव खाली हाथ वापस गए और गजेस्डाल को मेरी हरकत के बारे में बताया, तो उन्होंने मुझे बुलवाया। मैं देख सकता था कि वे घबराए हुए थे। उन्होंने कहा, 'तुम्हें कम से कम वह तो पढ़ लेना चाहिए था जो मैंने लिखा था; तुम्हें यह मानने का कोई अधिकार नहीं था कि यह मेरे खिलाफ रिपोर्ट है।'

'श्री गजेस्डाल, मुझे आपके विचार जानने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मैंने इस्तीफा देने का फैसला कर लिया है क्योंकि मेरे लिए यहां करने को कुछ नहीं है।'

मैंने गजेस्डाल को तीन महीने का अनिवार्य नोटिस भेज दिया, जिसे महानिदेशक को भेजा जाना था। लूथर इवांस अब गजेस्डाल और न्यूयॉर्क से अपने साथ लाए उनके साथियों के प्रति अपनी प्रशंसा खो चुके थे। उन्होंने गजेस्डाल को बुलाया और उनसे कहा कि मेरे इस्तीफे के लिए वे उन्हें ही जिम्मेदार मानते हैं। गजेस्डाल ने मुझसे सुलह करने की कोशिश की। उन्होंने मुझे जिनेवा में आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघों की एक बैठक में शामिल होने के लिए कहा, ताकि मैं यूनेस्को की गतिविधियों के बारे में प्रतिनिधियों द्वारा पूछे जाने वाले किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकूँ। वह बैठक अब तक की सबसे निरर्थक बैठक थी जिसमें मैं शामिल हुआ था। प्रतिनिधियों में ज्यादातर बड़ी-बड़ी टोपियाँ पहने अमेरिकी और यूरोपीय महिलाएँ थीं, जिनके दिलों में दुनिया की भलाई बसी थी। पहले तीन दिन उन्होंने यूनिसेफ, डब्ल्यूएचओ और आईएलओ जैसे अन्य संयुक्त राष्ट्र संगठनों पर चर्चा की। यूनेस्को में किसी की कोई दिलचस्पी नहीं दिखी। मैंने अपना समय द टाइम्स के क्रॉसवर्ड को हल करने में बिताया। किसी से भी व्यवधान न हो, इसलिए मैंने अपने ईयरफोन को स्पेनिश में बदल दिया, जिसे मैं समझ नहीं पाता था। एक दोपहर जब मैं क्रॉसवर्ड में मग्न था, मैंने यूनेस्को के लिए स्पेनिश शब्द 'उनेथको' का उच्चारण सुना। मैंने झटपट अंग्रेज़ी चालू की, तभी अध्यक्ष ने घोषणा की कि यूनेस्को के श्री सिंह का हमारे बीच होना उनके लिए सौभाग्य की बात है और अब वे मुझे प्रतिनिधियों द्वारा उस संगठन से संबंधित पूछे गए सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए

आमंत्रित करेंगे। मैंने उनमें से एक भी प्रश्न नहीं सुना था और मेरे पास उन्हें दोहराने के लिए कहने की सूझबूझ भी नहीं थी। एक मिनट तक सन्नाटा छाया रहा, प्रतिनिधि मुझे देखते रहे और मैं उन्हें देखता रहा, और इस दौरान मेरे माथे से पसीना बहने लगा। अध्यक्ष ने शायद मुझे पागल समझ लिया होगा। उन्होंने घोषणा की, 'श्री सिंह के पास कहने के लिए कुछ नहीं है, इसलिए हम एजेंडा के अगले विषय पर आगे बढ़ सकते हैं।'

मैं पेरिस लौट आया और गजेस्डाल को बताया कि यूनेस्को के बारे में किसी ने कोई सवाल नहीं पूछा है। कुछ दिनों बाद उन्हें अध्यक्ष से एक रिपोर्ट मिली कि यूनेस्को से संबंधित सवालों का कोई जवाब नहीं मिला है।

गजेस्डाल ने मुझे आखिरी बार यह दिलासा दिया कि मुझे डेनमार्क और स्वीडन भेजा जाए ताकि मैं यूनेस्को की गतिविधियों में रुचि रखने वाले लोगों से मिल सकूँ। मैंने कोपेनहेगन में कुछ दिन बिताए, कुछ संपादकों से मुलाकात की और शामें टिवोली गार्डन में बिताईं, जो अपने बार और वेश्याओं के लिए मशहूर हैं। किसी ने भी यूनेस्को में खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। स्टॉकहोम में भी यही हाल था। वहाँ, एक परिवार के अलावा, जिसमें गोरी और सुडौल महिलाएँ थीं जिन्होंने मुझे अपने घर में मेहमान नवाज़ी की, मैंने पहली बार मीलों लंबा समुद्र तट देखा जहाँ किसी ने भी कपड़े नहीं पहने थे। यह कोई खास अच्छा नज़ारा नहीं था: बूढ़े पुरुषों, महिलाओं और मोटे लोगों को कपड़ों में देखना ही बेहतर होता है।

मेरी अगली मंज़िल माल्मो का विश्वविद्यालय शहर था। मैं सुबह तड़के ट्रेन से वहाँ पहुँचा। मैंने अपना बुक किया हुआ होटल ढूँढ लिया। शीशे की खिड़की से मैंने देखा कि होटल का गार्ड सोफे पर गहरी नींद में सो रहा था। मैंने घंटी बजाई और दरवाज़े पर कई बार थपथपाया, लेकिन वह नहीं जागा। मैंने अपना सूटकेस दरवाज़े पर रख दिया और शहर घूमने का फैसला किया। मैं ठंडी, सुनसान सड़कों पर एक घंटे से ज़्यादा चलता रहा, तब जाकर लोग अपने घरों से बाहर निकले। मुझे बहुत भूख लगी थी और मैं एक कैफे ढूँढ रहा था जहाँ मुझे एक कप गर्म कॉफी और एक क्रोइसैन मिल सके। एक इमारत के पास पहुँचकर, जिसके तहखाने में अच्छी रोशनी थी और एक कैफेटेरिया था, मैं बाहर लगी कतार में शामिल हो गया। लोगों की घूरती निगाहों से शर्मिंदगी छिपाने के लिए, मैं अपना अखबार अपने सामने पकड़े धीरे-धीरे चलता रहा। जब मैं काउंटर पर पहुँचा और चारों ओर देखा, तो पाया कि हॉल में मैं अकेला आदमी था। यह एक लड़कियों का स्कूल था और मैं भी उन छात्राओं के साथ कतार में खड़ा था जो नाश्ते के लिए लगी थीं। मैं बहुत बेवकूफ लग रहा था, लेकिन मैंने अपना चेहरा गंभीर बनाए रखा। मैंने एक मग कॉफी और एक बन लिया। वहाँ कोई कैश काउंटर नहीं था जहाँ मैं भुगतान कर सकूँ। मैंने अपनी हथेली में स्वीडिश सिक्के भरकर उस वेट्रेस को दिए जिसने मुझे खाना परोसा था। वह मुस्कुराई और अंग्रेजी में बोली, 'स्कूल, मुफ्त।' मैंने जल्दी से अपना बन और कॉफी खाई और अपने होटल की ओर भागा। माल्मो में भी यूनेस्को के लिए कोई इच्छुक नहीं था, और मैं पेरिस लौट आया।

मैंने अपने परिवार को घर भेज दिया और छुट्टी का इस्तेमाल अपने उपन्यास पर काम करने के लिए करने का फैसला किया। मुझे विदाई और मेल-मिलाप की पार्टियों में कभी विश्वास नहीं रहा। यूनेस्को में केवल पॉलेट मैथ्यूज को ही पता था कि मैं जा रही हूँ। वह साठ वर्षीय विधवा थीं, जिनके माता-पिता एंग्लो-फ्रेंच मूल के थे और पेरिस और वर्साय के बीच स्थित हौदान नामक एक छोटे से कस्बे के पास, फेवियर्स गाँव में उनका एक छोटा सा घर था। उन्होंने मुझे अपने उस घर में रहने की पेशकश की जहाँ उनकी नब्बे वर्षीय माँ एक जर्मन आया की देखरेख में रहती थीं। उनका एकमात्र दूसरा कर्मचारी जैक्स नाम का एक लंगड़ा माली था, जो दिनभर उनके फूलों और फलों के पेड़ों की देखभाल करने आता था। बगीचे में एक छोटा सा घर था जिसे हौदान में काम करने वाले एक बैंक क्लर्क ने किराए पर लिया था। उनकी एक साल की बेटी थी; उनकी पत्नी कुछ महीनों में दूसरे बच्चे को जन्म देने वाली थीं। उनके अलावा, उनके पास जुंटा नाम का एक छोटा कुत्ता भी था। तो एक शाम मैं होटल मैजेस्टिक से बाहर निकला, जैसा कि मैं पिछले दो वर्षों में अन्य शामों को करता था, लेकिन बगर द क्वीन (बोर्ग ला रीन) जाने के बजाय मैं पॉलेट मैथ्यूज की फेवियर्स स्थित कुटिया की ओर चला गया।

मुझे काम में रमने में ज़्यादा समय नहीं लगा। मैंने अपना नाश्ता खुद बनाया और फलों से लदे एक विशाल नाशपाती के पेड़ की छाँव में बैठकर अपने उपन्यास पर काम करने लगी। पॉलेट की बूढ़ी माँ देर से उठती थीं और उनकी देखभाल के लिए उनके कमरे में मैरिएन नाम की एक आया रहती थी; मैं उन्हें बहुत कम ही देख पाती थी। मैरिएन दिन भर व्यस्त रहती थी, फर्श साफ करती, फर्नीचर से धूल झाड़ती और माली की मदद करती। मैं देख सकती थी कि माली को उस जर्मन लड़की पर क्रश था और उसे घर में मेरी मौजूदगी से चिढ़ होती थी। बैंक क्लर्क जल्दी निकल जाता और बहुत देर से घर आता। उसकी पत्नी को दूसरी गर्भावस्था में परेशानी हो रही थी और वह अपनी एक साल की बेटी की देखभाल नहीं कर सकती थी। बच्ची मुझसे ही प्यार करती थी। वह अपना ज़्यादातर समय मेरे साथ बगीचे में बिताती और थक जाने पर मेरी गोद में सो जाती। मैं उसे उसकी प्रैम में लेकर बाहर जाती, जुंटा हमारे आगे-आगे खेतों में दौड़ता रहता, जहाँ खसखस के फूलों से सजे मक्के के खेत थे और नीले आसमान में चिड़िया चहचहा रही थीं। पॉलेट शाम को देर से घर लौटती, ताकि हम ड्रिंक्स और डिनर कर सकें। वह केवल सप्ताहांत में ही हर समय मौजूद रहती थी। रविवार को मैं उसे और मैरिएन को चर्च ले जाता था (दोनों कैथोलिक थीं) और उन्हें वापस लाता था। कभी-कभी, मैरिएन और मैं सुबह-सुबह मशरूम तोड़ने जाते थे। मैं उसे चार्ट्रेस गिरजाघर और वर्साय भी ले जाता था।

इन महीनों के दौरान यूनेस्को से मेरा एकमात्र संपर्क प्रेम किरपाल के माध्यम से था। मैं सप्ताह में एक बार उनके एक कमरे वाले अपार्टमेंट में जाता था। हम उनकी तत्कालीन प्रेमिका, रेमंड सोकोलोव्स्की के साथ रात के खाने पर जाते थे। रेमंड एक छोटी कद की फ्रांसीसी-यहूदी लड़की थी, जो अध्यात्मवाद, ओस्पेंस्की और गुरजिएफ में रुचि रखती थी। कुछ शामों को वह हमें अपने अपार्टमेंट में आमंत्रित करती, पियानो बजाती और हमें भोजन कराती। प्रेम अक्सर उससे प्रेम निवेदन करता, वह

जवाब देती और आशा करती कि वह किसी दिन उसे शादी का प्रस्ताव देगा या उसके साथ बिस्तर पर जाएगा। किरपाल की आदत थी कि जब बिस्तर या शादी की अंगूठी का ख्याल आता, तो वह प्रेम निवेदन करता और पीछे हट जाता। अपनी निराशा में, रेमंड सांत्वना के लिए मेरे पास आती थी।

फेवियर्स में दो-तीन महीने का प्रवास काफी फलदायी रहा। मैं अपने दूसरे उपन्यास का पहला मसौदा पूरा कर पाया और रेमंड और मैरिएन से दोस्ती हो गई। यूनेस्को सम्मेलन के दौरान रेमंड दिल्ली में हमारे साथ रहने आई थीं: मैरिएन पत्रों के माध्यम से संपर्क में रहीं। जब भी मैं जर्मनी में होता, मैं वुप्पर्टल में उनके और उनके पति और बेटियों के साथ ठहरता था। उनके पति से तलाक के बाद भी हमारी दोस्ती बनी रही। बाद में, जब वह किसी हिंदू पंथ में शामिल हो गई, अपने बाल मुंडवा लिए और भगवा वस्त्र धारण करने लगीं, तब हमारा संपर्क टूट गया। मैं उन्हें कट्टर कैथोलिक धर्म और चर्च जाने से दूर करने में सफल रहा था; लेकिन हरिद्वार के पास एक अज्ञात आश्रम के प्रति उनके नए उत्साह को कम करने में असफल रहा। अपनी पहली दिल्ली यात्रा पर वह हमारे साथ रुकीं। मैंने यह समझने की पूरी कोशिश की कि गंगा में स्नान करने, उन देवताओं की पूजा करने जिनके नाम वह नहीं जानती थीं और उन भजनों को गाने से उन्हें क्या मिल रहा था जिन्हें वह समझ नहीं पाती थीं। पेरिस की मेरी एक यात्रा के दौरान बैंक मैनेजर की पत्नी, बेटी और बेटा पॉलेट के साथ मुझसे मिलने आए। जिस एक साल की बच्ची को मैं जानती थी, वह अब एक खूबसूरत पंद्रह साल की स्कूली छात्रा बन चुकी थी। कुछ साल बाद उसने मुझे अपनी शादी की तस्वीरें भेजीं।

मैंने अपनी मर्सिडीज बेंज (घाटे में) बेच दी और लंदन जाने वाली रात की ट्रेन पकड़ने के लिए पेरिस आ गया। मैंने किसी को भी अपने जाने की तारीख नहीं बताई थी। लेकिन स्टेशन पर मुझे विदाई देने के लिए यूनेस्को की तीन महिलाएं मौजूद थीं, जिनसे काम करते समय मेरा बहुत कम वास्ता रहा था।

मैं दिल्ली लौट आया। एक बार फिर मैं बेरोजगार था और मेरे पास जेब या बैंक खाते में बहुत कम पैसे थे। मेरे पास क्रेडिट पर सिर्फ लघु कथाओं का एक संग्रह था, जिससे मुझे कुछ अच्छी समीक्षाएँ तो मिलीं, लेकिन कोई कमाई नहीं हुई; सिखों का संक्षिप्त इतिहास नामक एक छोटी और असंतोषजनक रचना थी, जिसकी रूढ़िवादी सिखों ने निंदा की थी; और एक उपन्यास था, जिससे मुझे कुछ पैसे मिले थे, जो मैंने खर्च कर दिए थे। इसके अलावा, मेरे दूसरे उपन्यास की पांडुलिपि भी थी, जिसे अभी तक किसी प्रकाशक ने स्वीकार नहीं किया था।

घर पर मेरा स्वागत करने वालों में एक महीने का अल्सेशियन पिल्ला भी था, जिसे मेरे पिता के एक मित्र ने मेरी बेटी माला को उपहार स्वरूप दिया था। शुरुआत में, वह मुझे अपने छोटे से परिवार में एक बाहरी व्यक्ति समझकर नाराज़ था, जिसमें मेरी पत्नी और हमारे दो बच्चे शामिल थे। वह मेरे पिता के घर के ऊपरी मंज़िल के उसी बेडरूम में सोता था और बरामदे की छत को शौचालय के रूप में इस्तेमाल करता था। तब तक उसका कोई नाम नहीं था। मैंने उसका नाम सिम्बा रखा, उस

नारंगी रंग की बिल्ली के नाम पर जिसे हमने पेरिस में छोड़ दिया था। अधिकांश अल्सेशियन कुत्तों की तरह, सिम्बा एक ही व्यक्ति से लगाव रखता था। वह मेरी बेटी का था, मेरी पत्नी उसे खाना खिलाती थी, उसे टीके लगवाने और किसी भी बीमारी के लिए पशु चिकित्सक के पास ले जाती थी, लेकिन उसने मुझे अपना मालिक मान लिया था। वह मेरे अब तक के सबसे मानवीय कुत्तों में से एक था और उसने हमारे सुख-दुखों में साथ दिया। जब तक हम सुजान सिंह पार्क में अपने भूतल के अपार्टमेंट में रहने आए, तब तक वह अपने चंचल पिल्लेपन से बाहर निकल चुका था और एक शक्तिशाली, पूर्ण आकार के जर्मन शेफर्ड में बदल चुका था। वह अब भी हमारे साथ हमारे ही शयनकक्ष में सोता था, जहाँ उसका अपना पलंग था। और हमारी बजाय उसकी खातिर हमने कमरे में एयर कंडीशनर लगवा लिया था। अक्सर रात में वह मेरे कानों में सूंघता और मुझसे अपने लिए जगह बनाने को कहता। मैं बना देता। वह कृतज्ञता की गहरी साँस लेते हुए बिस्तर पर चढ़ जाता और रात भर मेरे बिस्तर के आधे से ज़्यादा हिस्से पर कब्ज़ा कर लेता।

हम उससे बातें करते थे। अगर हम रोने का नाटक करते, तो वह हमारे कानों में प्यार से सूंघता और हमारे साथ रोने लगता: बू, ऊ ऊ। अगर वह शरारत करता, तो हम उसे कोने में जाने का आदेश देते। वह पश्चाताप में सिर झुकाए वहीं बैठा रहता, जब तक हम यह नहीं कहते, 'ठीक है, अब तुम वापस आ सकते हो।'

सिम्बा का माला की आया, पचहत्तर वर्षीय मायी के साथ एक विशेष रिश्ता बन गया था। जब वह सिम्बा को बगीचे में बाहर जाने के लिए दरवाजा खोलतीं, तो 'वे शंबिया!' कहकर उसका अभिवादन करतीं। बगीचे में उसके शौच करने के बाद ही वह पास के गुरुद्वारे में नमाज पढ़ने जातीं। सिम्बा जानता था कि उसे गुरुद्वारे के अंदर जाने की अनुमति नहीं है, इसलिए वह बाहर बैठकर मायी की चप्पलों की रखवाली करता था। सुबह की नमाज खत्म होने से ठीक पहले, वह मायी की एक चप्पल मुंह में लेकर घर भागता और उसे पलंग के नीचे छिपा देता। मायी उसके पीछे-पीछे गिड़गिड़ाते हुए कहतीं, 'वे शंबिया! तुमने मेरी चप्पल कहाँ छिपाई है?' वह पूंछ हिलाते हुए उसके पीछे-पीछे कमरे-कमरे जाता, जब तक कि उसे खोई हुई चप्पल मिल नहीं जाती।

सिम्बा को शाम की सैर का हमेशा बेसब्री से इंतज़ार रहता था। वह अपना सिर मेरी गोद में रख देता और मुझसे विनती भरी निगाहों से पूछता, ‘क्या समय नहीं हो गया?’ मैं जवाब देती, ‘अभी नहीं।’ फिर वह अपनी रस्सी लाकर मेरे पैरों के पास रख देता। ‘अब?’ मैं उसे कहती कि इतना बेसब्र मत बनो। इसके बाद वह मेरी छड़ी लाकर मेरी किताब पर रख देता। ‘अब तो ज़रूर!’ अब बचने का कोई रास्ता नहीं था। जैसे ही हम निकले, वह उत्साह से कांपने लगा और रोने लगा। जैसे ही वह कार की पिछली सीट पर कूदा, उसका रोना और तेज़ हो गया। उसे खिड़की से सिर बाहर निकालकर सड़क पर दिखने वाले हर कुत्ते, गाय या बैल को चुनौती देते हुए भौंकना अच्छा लगता था। उसे लोधी उद्यान के प्रवेश द्वार पर उतारना पड़ता था। वह कार के पीछे दौड़ता, थोड़ी देर शौच करने के लिए रुकता और फिर पार्किंग की ओर दौड़ पड़ता। उस समय पार्क में कुछ

खरगोश भी हुआ करते थे। वह झाड़ियों में से उन्हें सूंघकर पहचान लेता और फिर उनका पीछा करने लगता, उन्हें पकड़ने की कोशिश में भौंकता रहता। वे उसके लिए बहुत तेज़ और फुर्तीली थीं। लेकिन वह गिलहरियों का शिकार करने में काफी माहिर हो गया था। उसने सीख लिया था कि गिलहरियाँ पास के पेड़ पर भागती हैं और पीछा छुड़ाने के लिए उसके तने के चारों ओर घूमती हैं। वह चुपके से पेड़ तक जाता और फिर उन पर हमला कर देता। खुले मैदान में उनके पास बचने का कोई रास्ता नहीं था। चाहे मैं उसे कितना भी डांटता और यहाँ तक कि पीटता भी, वह बेगुनाह गिलहरियों को मारने से खुद को नहीं रोक पाता था।

शनिवार की शाम को पिकनिक की टोकरी पैक होते देख उसे समझ आ जाता था कि अगला दिन लगभग उसी के लिए समर्पित होगा। भोर होने से बहुत पहले ही वह उत्साह से रोने लगता और सबको जगा देता। कार में उसे संभालना मुश्किल था। जब हम सूरज कुंड या तिलपत के पास खुले ग्रामीण इलाके में पहुँचते, तो हमें उसे कार से बाहर कूदने से रोकने के लिए उतारना पड़ता था। वह गायों के झुंड का पीछा करता और उन्हें खेतों में तितर-बितर कर देता। एक बार तो गाय की लात से उसका चेहरा बुरी तरह घायल होते-होते बचा। और एक बार तो उसने लगभग एक बकरी को मार ही डाला था।

तीन से चार घंटे खुले मैदान में खरगोश, हिरण या मोर का पीछा करने से वह खुशी-खुशी थक जाता था। रविवार की सुबह पिकनिक से लौटने पर सिम्बा नींद में डूबा हुआ था। अब वह शाम की सैर के लिए उतना बेचैन नहीं था।

वह फिर से खान मार्केट में पान लेने के लिए रात के खाने के बाद टहलने के लिए बेचैन था। वह आइसक्रीम वाले के पास रुककर हमसे उसके लिए एक आइसक्रीम खरीदने की ज़िद करता। उसे आइसक्रीम का बहुत शौक था। वह बहुत ही अधिकार जताने वाला भी था। एक बार किसी ने बाज़ार में एक पेड़ के नीचे दो प्यारे पिल्ले बेचने के लिए रखे थे। उसे हमारा उन पर ध्यान देना पसंद नहीं था। जब भी हम उस पेड़ के पास रुकते, वह बेरहमी से उसके तने को काटता। सुजान सिंह पार्क और उसके आसपास के सभी लोग सिम्बा को जानते थे। मोहल्ले के बच्चे हमें सिम्बा के माता-पिता के रूप में जानने लगे थे।

सिम्बा से भी लोग डरते थे। एक बार जब मैं अपनी पत्नी और बेटी के साथ लोधी गार्डन में घूमने गया था, तो एक साइकिल सवार ने मेरी बेटी की पीठ पर थप्पड़ मारा और तेज़ी से भाग गया। मेरी पत्नी चिल्लाई, 'सिम्बा, इसे पकड़ो!' सिम्बा ने उस आदमी का पीछा किया, उसे साइकिल से गिरा दिया और उसके ऊपर खड़े होकर अपने दांत दिखाने लगा। बेचारा हाथ जोड़कर माफी मांगने लगा। एक और बार, जब मैं रात के खाने के बाद अपने फ्लैट से बाहर निकल रहा था, तो मैंने एक लड़की को मदद के लिए चिल्लाते सुना। दो लड़के उसे छेड़ने की कोशिश कर रहे थे। मैं उसकी तरफ दौड़ा और सिम्बा मेरे पीछे-पीछे आया। लड़के भागने की कोशिश करने लगे। मैंने सिम्बा को उन्हें पकड़ने का आदेश दिया। वह दौड़ा और एक लड़के को ज़मीन पर गिरा दिया। वह बड़ा और मुझसे कहीं ज़्यादा ताकतवर था। लेकिन सिम्बा मेरे साथ था, इसलिए मुझे

उस आदमी के चेहरे पर कई थप्पड़ मारने और उसे खूब गालियां देने में कोई झिझक नहीं हुई, उसे गुंडा और बदतमीज़ कहा। उसने माफी मांगी और कसम खाई कि वह फिर कभी किसी औरत को छेड़ने की कोशिश नहीं करेगा।

हम हमेशा सिम्बा को अपने साथ मशोबरा या कसौली ले जाते थे। पहाड़ों में वह सबसे ज़्यादा खुश रहता था। मैं अक्सर उसे पट्टा पहनाकर खड़ी चढ़ाइयों पर चढ़ाने के लिए कहता था। उसे शिमला से ज़्यादा कसौली पसंद था क्योंकि वहाँ रीसस बंदरों और लंगूरों के झुंड थे। वह उनसे और पहाड़ी कौवों से लगातार लड़ता रहता था, जो उसके दोपहर के भोजन के समय उसके चारों ओर जमा हो जाते थे।

अधिकांश कुत्तों में छठी इंद्री होती है। हमारे सिम्बा में सातवीं और आठवीं इंद्री भी थी। इसे साबित करने के लिए मैं सिर्फ एक घटना का जिक्र करूंगा। मुझे और मेरी पत्नी को कुछ महीनों के लिए विदेश जाना पड़ा। हमारे बच्चे बोर्डिंग स्कूल में थे। हमने अपने नौकरों को छुट्टी देने और अपना फ्लैट बंद करने का फैसला किया। सिम्बा को प्रेम किरपाल के पास रखा जाना था: दोनों के बीच बहुत अच्छे संबंध थे, क्योंकि प्रेम रविवार को हमारे साथ घूमने जाते थे और हमारे घर नियमित रूप से आते थे। उन्होंने खुशी-खुशी सिम्बा को अपने पास रखने की सहमति दे दी। एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी होने के नाते, कैनिंग लेन पर उनका एक बड़ा बगीचा वाला बंगला था। सिम्बा वहां कई बार जा चुका था और उसे अंदाजा हो गया था कि हम उसे वहीं छोड़ने वाले हैं। उसे इससे कोई खास आपत्ति नहीं हुई।

मेरी पत्नी मुझसे कुछ दिन पहले दिल्ली लौट आई। वह सिम्बा को लेने कैनिंग लेन गई। सिम्बा ने उसका खुशी से स्वागत किया, लेकिन उसकी कार में बैठने से इनकार कर दिया। प्रेम सिम्बा का दिल जीतने में अपनी सफलता से बहुत खुश था। मेरी पत्नी अनिच्छा से मान गई। उसने कहा, 'अगर वह तुम्हारे साथ खुश है, तो वह यहीं रह सकता है।' जाहिर है, उन्होंने मेरे लौटने की तारीख का जिक्र किया था, और सिम्बा ने सुन लिया था। मेरे दिल्ली लौटने से एक शाम पहले, सिम्बा कैनिंग लेन से सुजान सिंह पार्क तक पैदल चलकर गया और अपने पंजों से दरवाजे पर खरोंचकर अपने आने की सूचना दी। उसे पता था कि मैं अगली सुबह आ रहा हूँ। प्रेम सिम्बा के उसे छोड़कर जाने से उतना ही दुखी था जितना कि अगर मैं उसकी प्रेमिका को उससे छीन लेता।

सिम्बा उम्र के साथ-साथ गरिमापूर्ण ढंग से बढ़ता गया। उसके मुंह के आसपास के बाल सफेद हो गए। उसकी आंखों में मोतियाबिंद हो गया। कभी-कभी उसे बुखार आ जाता था: कई बार मेरी पत्नी पूरी रात उसका सिर अपनी गोद में रखकर उसके सिर पर हाथ फेरती रहती थी। तब वह तेरह साल से अधिक उम्र का हो चुका था। जब मुझे स्वार्थमोर कॉलेज में तीन महीने के लिए पढ़ाने का काम मिला, तो हमें उसे उसकी असली मालकिन, मेरी बेटी माला की देखभाल में छोड़ना पड़ा। उसे लगभग हर दिन उसे पशु चिकित्सक के पास ले जाना पड़ता था। उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। उसके पैर जवाब

देने लगे। उसने हमें एक तार भेजा, 'तुरंत लौट आओ, सिम्बा बहुत बीमार है।' अगले दिन, हमें माला से एक और तार मिला: 'सिम्बा शांतिपूर्वक चल बसा।'

ऐसा लगता है कि पशुचिकित्सक ने माला को बताया कि सिम्बा दर्द में था, उसके पैर लकवाग्रस्त हो गए थे और वह ज़्यादा दिन जीवित नहीं रह सकता था। माला की अनुमति से पशुचिकित्सक ने उसे किसी ऐसी दवा की घातक खुराक दी जिससे वह बेहोश हो गया। अगर मुझे अपनी घनिष्ठ दोस्ती के बारे में बात करनी हो, तो सिम्बा मेरी सूची में सबसे ऊपर होगा। हमने फिर कभी कोई दूसरा कुत्ता नहीं पाला। दोस्तों की जगह कोई नहीं ले सकता।

9 भारत की खोज

जब मैं यूनेस्को में था, योजना आयोग के तरलोक सिंह ने मुझे पंचवर्षीय योजनाओं के प्रचार-प्रसार के लिए प्रस्तावित 'योजना' पत्रिका का संपादक बनने का प्रस्ताव दिया। शुरुआत में यह अंग्रेजी और हिंदी में एक साप्ताहिक पत्रिका होगी, और बाद में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रकाशित की जाएगी। इससे मुझे भारत भर में यात्रा करने, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को देखने, बांधों, कारखानों, ग्रामीण क्लीनिकों का दौरा करने और छोटे कस्बों और गांवों में रहने का अवसर मिलेगा। वेतन बहुत अधिक नहीं था, लेकिन अपने देश को जानने का अवसर बहुत लुभावना था। मेरे पिता ने मुझे सुजान सिंह पार्क में भूतल का एक फ्लैट और एक कार दी थी। फ्लैट में कालीन और फर्नीचर थे जो मेरी पत्नी दहेज में लाई थी। मेरे पास केवल मेरी किताबें और लंदन से खरीदी गई कुछ पुरानी छपी हुई प्रतियां थीं। मुझे इससे अधिक की आवश्यकता नहीं थी और मैं फिर से निकहत्तू कहलाना नहीं चाहता था। मैंने प्रस्ताव स्वीकार करने का निर्णय लिया।

मेरे दो दफ्तर थे, एक प्रकाशन विभाग में, पुराने सचिवालय में, मेटकाफ हाउस के पास और यमुना नदी के पश्चिमी किनारे के करीब, और दूसरा नई दिल्ली में योजना आयोग के दफ्तर में। इसका एक बड़ा फायदा यह था कि मैं दिखावा कर सकता था कि मैं दूसरे दफ्तर में हूँ, जबकि मैं न तो किसी दफ्तर में होता था। मुझे आउटर रिंग रोड पर छह मील गाड़ी चलानी पड़ती थी, जो कोटला फिरोज शाह से होकर गुजरती थी, जहाँ अशोक स्तंभ, गांधी जी की समाधि, मुगल दिल्ली की पुरानी दीवारें, जीनत मस्जिद, लाल किला और निगमबोध घाट थे। हर सुबह मुझे दिल्ली के इतिहास का एक रिवीजन मिलता था। लौटते समय मैं अक्सर निगमबोध घाट पर कुछ देर रुकता था और शवों को चिताओं पर रखकर जलाते हुए देखता था। इस अनुभव से मुझे बहुत सुकून मिलता था और मेरे मन से बहुत सी छोटी-छोटी बातें दूर हो जाती थीं। मुझे हल्कापन महसूस होता था।

प्रकाशन विभाग के निदेशक यू.एस. मोहन राव नाम के एक मैसूरी निवासी थे। शुरुआत में वे मुझसे असहज थे। तकनीकी रूप से वे मेरे बॉस थे, लेकिन मेरी तनख्वाह उनसे अधिक थी। वे स्वदेशी थे और उनके तौर-तरीके और बोलने का तरीका उनके पैतृक शहर उडुपी से गहराई से जुड़ा हुआ था, जो अपने दक्षिण भारतीय व्यंजनों के लिए प्रसिद्ध है। उन्होंने मैसूर, बॉम्बे और दिल्ली के अलावा दुनिया का कुछ खास दौरा नहीं किया था और उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि वे उस व्यक्ति से कैसे निपटेंगे जिसने इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त की थी, कुछ किताबें लिखी थीं और अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा विदेशों में बिताया था। वे मुझे अपने कार्यालय ले गए ताकि मुझे योजना पत्रिका के प्रकाशन के लिए विशेष रूप से चुने गए कर्मचारियों से मिलवा सकें। हिंदी संस्करण का संपादन मनमथ नाथ गुप्ता करने वाले थे, जो एक बंगाली थे और आतंकवादी होने के आरोप में जेल जा चुके थे। वे शुरू से ही हिंदी संस्करण को अंग्रेजी संस्करण से स्वतंत्र रखना चाहते थे;

मैंने उनके इस प्रयास का विरोध किया। मेरे अपने कर्मचारियों में दो मैसूरी निवासी, श्रीनिवासाचार और एक युवा फोटोग्राफर, टी.एस. नागराजन और दिल्ली में जन्मी शीला धर शामिल थे। अंग्रेजी और हिंदी संस्करणों में कई अन्य लोग भी थे जिनके नाम अब मुझे याद नहीं हैं।

तरलोक सिंह की सलाह पर, मैंने सबसे पहले नागराजन को साथ लेकर भारत दर्शन यात्रा की। एक महीने में हमने लगभग पूरे देश का भ्रमण कर लिया। मैंने जो कुछ भी देखा और जिन लोगों से मिला, उन सबका विस्तृत विवरण लिखा। नागराजन ने सैकड़ों ब्लैक एंड व्हाइट फ़िल्में खींचीं। योजना के शुभारंभ के लिए पर्याप्त सामग्री लेकर हम दिल्ली लौट आए।

मुझे पत्रिका चलाने का बहुत कम अनुभव था। इंडिया न्यूज़, जिसका संपादन मैंने लंदन स्थित इंडिया हाउस के लिए किया था, पूरी तरह से विदेश मंत्रालय द्वारा दिल्ली से भेजी गई सामग्री से युक्त थी। जमाल किदवई ने अधिकांश काम किया था। मैं बस उसे मुद्रण के लिए मंजूरी दे देता था। योजना पत्रिका के साथ मामला अलग था। मुझसे अपेक्षा की गई थी कि मैं अधिकांश लेखन कार्य स्वयं करूँ या दूसरों से लिखवाऊँ। हमने कई परीक्षण नमूने तैयार किए और उपयुक्त फ़ॉन्ट चुने। मैंने दरियागंज स्थित टाइम्स ऑफ़ इंडिया के प्रेस में कई रातें बिताईं, गैली पन्ने पढ़े और उनमें सुधार किए। एक सच्ची भारतीय पत्रिका का संपादन करने को लेकर मैं बहुत उत्साहित था।

मैंने योजना पत्रिका के शुभारंभ के लिए एक शानदार पार्टी रखी। शराबबंदी के लिए प्रतिबद्ध देश में ऐसा होना बिल्कुल अनसुना था। आए हुए संपादकों (भारतीय पत्रकार दूसरों की शराब के प्रति उदार होते हैं) ने शुभारंभ और पहले अंक पर तीखी टिप्पणियाँ लिखीं। उनकी प्रतिक्रियाओं से मुझे बहुत दुख हुआ क्योंकि योजना पत्रिका मेरी अपनी रचना थी और मुझे इसके प्रकाशन और विषयवस्तु की प्रशंसा की उम्मीद थी। लेकिन मुझे और भी निराशाओं का सामना करना पड़ा। मैं अखबार विक्रेताओं के चक्कर लगाता रहा। उनमें से अधिकांश ने योजना पत्रिका के बारे में सुना भी नहीं था। प्रकाशन विभाग में मेरे खिलाफ खूब चर्चा हुई। लंदन या पेरिस से लाए गए इस होनहार संपादक ने तो मानो नामुमकिन ही कर दिया! वितरण विभाग का प्रभारी, एक बदतमीज़ पंजाबी, सबको बताता फिरता था कि उसके गोदामों में बिना बिके प्रतियों का बड़ा भंडार पड़ा है और उसे कूड़ा बीनने वालों को फेंकना पड़ेगा। मुझे पता चला कि भारत के दूर-दराज के इलाकों में भेजी जाने वाली हजारों प्रतियाँ पहले अंक के छपने के एक हफ्ते बाद भी कार्यालय के गोदाम में पड़ी थीं। यह जानबूझकर की गई साज़िश थी। मैं मोहन राव के दफ्तर में घुस गया, जो हमेशा उनके चहेतों और आगंतुकों से भरा रहता था, और मैंने इस्तीफा देने की धमकी दी। मेरे पास त्यागपत्र था, जिसमें पत्रिका के विपणन में प्रकाशन विभाग की लापरवाही का जिक्र था। मेरे नौकरी शुरू करने के एक महीने बाद ही इस्तीफा देने से मोहन राव के करियर पर बुरा असर पड़ता। वह भोले-भाले लेकिन नेक दिल इंसान थे। उन्होंने मुझे शांत किया। 'अगर योजना की प्रतियां समय पर नहीं भेजी गईं तो आसमान नहीं गिर जाएगा [उनका तकिया कलाम - एक ऐसा शब्द जिसका वे हमेशा इस्तेमाल करते थे]। मैं तुरंत इस पर ध्यान दूंगा,' उन्होंने

मुझे आश्वासन दिया। मैं हार मानने को तैयार नहीं था। 'वितरण विभाग के प्रभारी उस पंजाबी को जाना होगा। या मैं जाऊंगा,' मैंने उनसे दृढ़ता से कहा। 'जो कोई भी योजना को रद्दी की तरह बेचकर गर्व करता है, वह इसे हाथ नहीं लगाएगा।' मोहन राव उस आदमी से खुश नहीं थे और उसे नौकरी से निकालने के लिए उन्होंने मेरी धमकी का इस्तेमाल किया। उसे निलंबित कर दिया गया। एक सच्चे हिंदू की तरह, उसने अपनी गलती का कारण बताने के बजाय, अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए एक गाय दान करने की कोशिश की। न तो गाय और न ही उसके देवता उसकी मदद के लिए आगे आए। उसे नौकरी से निकाल दिया गया।

योजना पूरी तरह नाकाम साबित हुई: सरकारी प्रकाशन तो हमेशा ही नाकाम रहते हैं। लोग उन्हें प्रचार समझते हैं; सरकार द्वारा जारी आंकड़ों पर आसानी से विश्वास नहीं करते। वैसे भी, वन महोत्सव में लगाए गए पेड़ों, खोदे गए खाद के गड्ढों की संख्या और उत्पादित बिजली के मेगावाट के बारे में कौन पढ़ना चाहेगा? मुझे मंत्रियों के नीरस भाषण भी छापने पड़े। मेरे लिखे लेख सरकारी कचरे के नीचे दब गए।

सरकारी आंकड़ों में हेराफेरी का एक हास्यास्पद उदाहरण अखिल भारतीय प्रतियोगिता थी, जिसका उद्देश्य ग्रामीणों को खाद के गड्ढे खोदने के लिए प्रोत्साहित करना था। प्रत्येक गाँव, दस गाँवों के समूह, ज़िले और राज्य के लिए नकद पुरस्कार दिए गए। ग्राम स्तरीय अधिकारियों ने खाद के गड्ढों की संख्या मनगढ़ंत बताई, ज़िला अधिकारियों ने उन्हें दोगुना कर दिया; राज्य स्तरीय अधिकारियों ने उन्हें फिर से दोगुना कर दिया। कुल मिलाकर, खाद के गड्ढों की कुल संख्या राज्य के क्षेत्रफल से भी अधिक हो गई। यदि सरकारी मीडिया द्वारा वन महोत्सवों में लगाए गए वृक्षों की संख्या सही होती, तो अब तक पूरा भारत एक विशाल जंगल बन चुका होता।

योजना आयोग के भीतर भी तनाव था। इसके प्रमुख (उपाध्यक्ष) दयालु और सक्षम सर वी.टी. कृष्णमाचारी थे। अधिकांश भार तरलोक सिंह के कंधों पर था, जो दिन-रात काम करते थे और विद्वतापूर्ण रिपोर्ट लिखने में माहिर थे। आम तौर पर कहा जाता था कि भारत तीन विधायी निकायों - लोकसभा, राज्यसभा और तरलोक सभा (योजना आयोग) द्वारा चलाया जाता है। वित्त मंत्री, तीक्ष्ण बुद्धि वाले टी.टी. कृष्णमाचारी ने तरलोक सिंह पर कटाक्ष किया। उन्होंने कहा कि योजना आयोग द्वारा बर्बाद किए गए कागज़ के बदले भारत एक और जहाज़ बना सकता था। मुझे पता नहीं था कि शांत दिखने वाले तरलोक सिंह को भी नापसंद था। उनमें से एक थे अत्यंत भावुक और उग्र स्वभाव वाले एस.के. डे, जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम के जनक थे। मैंने उन्हें मसूरी में एक संगोष्ठी में बोलते हुए सुना, जहाँ उन्होंने भारतीयों की खान-पान की आदतों को बदलने की आवश्यकता पर एक जोशीला भाषण दिया। भारत में लाखों आवारा, अधमरे मवेशी थे और उससे भी कहीं अधिक लाखों अधमरे इंसान थे: उनका समाधान यह था कि हिंदू गोमांस खाना शुरू कर दें। मैं उनकी इस धृष्टता पर

चकित रह गया। और मैंने योजना पत्रिका में उनके भाषण को व्यापक प्रचार दिया। पत्रिका के प्रकाशित होने के अगले दिन तरलोक सिंह ने मुझे फोन किया और एक बेकार के व्यक्ति पर इतना अधिक स्थान बर्बाद होते देखकर अपनी तीव्र नाराजगी व्यक्त की।

मुझे एहसास हो गया था कि योजना से मुझे कोई फायदा नहीं हो रहा था, क्योंकि इससे कोई प्रगति नहीं हो रही थी। इसकी प्रतियां देश भर के सामुदायिक विकास कार्यालयों और सरकारी विभागों को भेजी गईं। मुझे कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली क्योंकि कुछ ही अधिकारियों ने इसे पढ़ने की जहमत उठाई। समाचार एजेंटों ने इसे लेने से इनकार कर दिया; और कुछ ने तो बेचने या वापस करने के आधार पर प्रतियां लीं भी, लेकिन आमतौर पर उन्हें भेजी गई प्रतियां लौटा दीं। मेरा एकमात्र सहारा मेरे सहयोगियों का समर्पण था, जिन्होंने मेरे लिए काम किया। शीला धर मेरी घनिष्ठ मित्र बन गईं। वह एक गर्मजोशी वाली, उदार हृदय वाली, सुगठित और हाजिरजवाब महिला थीं। वह एक बेहतरीन मिमिक्री आर्टिस्ट थीं: मुझे दूसरों के लहजे और हाव-भाव की नकल करना बेहद पसंद है। वह शास्त्रीय हिंदुस्तानी संगीत की बहुत अच्छी गायिका भी थीं और उस्तादों में गिनी जाने लगी थीं। मुझे शास्त्रीय संगीत की समझ नहीं थी, लेकिन मैं कभी-कभी उनके उस्ताद प्राण नाथ से उनके पाठ सुनने उनके साथ जाता था। ज़मीन पर बैठना हमेशा से मेरे लिए असुविधाजनक रहा है, लेकिन मैं घंटों शीला की मधुर, भारी आवाज़ में विभिन्न रागों को सुनता रहता था। नागराजन मुझे अपने पिता के समान मानते थे और मेरे परिवार के सदस्य की तरह हो गए थे। जब उन्होंने मीनाक्षी से विवाह किया और उन्हें हमसे मिलवाने के लिए लाए, तो एक आज्ञाकारी बहू की तरह उन्होंने मेरे पैर छूने के लिए कालीन पर लेट गईं। मुझे समझ नहीं आया कि इस भाव पर क्या प्रतिक्रिया दूं, सिवाय इसके कि उन्हें उठने में मदद करूं और उनके दोनों गालों पर चुंबन दूं - यह एक ऐसी स्वतंत्रता है जो तमिल ससुर अपने बेटों की पत्नियों के साथ नहीं बरतते।

कुछ समय बाद मुझे मोहन राव भी पसंद आने लगे। हालाँकि उनके विभाग को चलाने का तरीका अव्यवस्थित था, फिर भी वे सबको खुश रखने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। वे दिखावा नहीं करते थे और दफ्तर के कई अन्य लोगों के विपरीत, पैसों के मामलों में पूरी तरह ईमानदार थे। मैं अक्सर उनके कमरे में उनके साथ दोपहर का भोजन करता था और अपने टिफिन बॉक्स का खाना आपस में बाँटता था, और खाने के बाद रिज पर टहलने भी जाता था। मुझे सबसे ज़्यादा उनकी दक्षिण भारतीय बोली पसंद थी। एक सुबह जब मैं उनके साथ कॉफ़ी पी रहा था, तभी उनका फ़ोन बज उठा। उन्होंने फ़ोन उठाया और जल्दी से माइक्रोफ़ोन पर हाथ रखकर मुझे बताया कि दूसरी तरफ कौन है - 'यह यम यम यामीर, यम्पी [एम.एम. आमिर, सांसद] हैं। वे मुझसे कुछ निजी बात करना चाहते हैं।'

योजना के संपादन के साथ-साथ, मुझे जो भी काम मिलते थे, मैं उन्हें करता था। एक काम यूनिसेफ की तरफ से था, जिसमें मुझे अफगानिस्तान में उनके काम पर एक पुस्तिका लिखनी थी। वे चाहते थे कि फोटोग्राफर पी.एन. शर्मा मेरे साथ

जाएं। मैंने खुद तस्वीरें खींचकर खर्च कम करने का प्रस्ताव रखा। मैंने भरत राम के पास ज़ीस आइकॉन कैमरे का नवीनतम मॉडल देखा था। उसमें एक बिल्ट-इन एक्सपोज़र मीटर और फोकसिंग डिवाइस था। बस कैमरे को निशाना लगाकर क्लिक करना था: यह बिल्कुल आसान था। मैंने भरत से कुछ दिनों के लिए कैमरा उधार मांगा। यूनिसेफ के निदेशक ने मुझे आज़माने की अनुमति दे दी। मुझे पहले दिन पूरी रील शूट करनी थी और उसे दिल्ली वापस भेजना था। अगर तस्वीरों की गुणवत्ता ठीक-ठाक होती, तो मैं सारी तस्वीरें खुद खींचकर पैसे कमा सकता था। मैं काबुल पहुंचा; मैंने फटाफट तस्वीरें खींचीं और रील को दिल्ली जाने वाले विमान में रख दिया। अगले दिन पी.एन. शर्मा काबुल पहुंचे। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे द्वारा भेजी गई पूरी रील खाली थी। मैं लेंस कैप हटाना भूल गया था। कोई भी कैमरा पूरी तरह से सुरक्षित नहीं होता। काश मैं एक फोटोग्राफर के तौर पर बेहतर कर पाता। बुरी तरह नाकाम होने के बाद, मुझे काबुल होटल में शर्मा के साथ कमरा शेयर करना पड़ा, जो उस समय शहर का इकलौता होटल था। वह एक अच्छा फोटोग्राफर था और महिलाओं को रिझाने में अपनी महारत का बड़ा-बड़ा दावा करता था। गंजा और छोटी-छोटी आँखों वाला होने के बावजूद, उसे खूबसूरत लड़कियों को रिझाने में कोई दिक्कत नहीं होती थी और अगर उसकी बात मानी जाए तो वह उन्हें कई बार चरम सुख तक पहुँचा देता था। वह एक कट्टर ब्राह्मण था जो मांस की हल्की सी भी गंध वाली कोई भी चीज़ नहीं खाता था। उसके लिए बदकिस्मती से, और मेरे लिए ज़्यादा खुशकिस्मती से, अफ़ग़ान खाना पकाने के लिए सिर्फ़ भेड़ की चर्बी से बना रौघन इस्तेमाल करते थे। इसलिए शर्मा के लिए चावल का पुलाव भी नामुमकिन था। वह सिर्फ़ ताज़े फल खा सकता था - रसीले तरबूज़, स्वादिष्ट कंधारी अंगूर और अनार। ये उसकी सेहत के लिए बेशक बहुत अच्छे थे, लेकिन खाली पेट खाने पर इनसे बहुत ज़्यादा गैस बनती थी। जब तक हम अपने-अपने बिस्तर पर वापस लौटे, शर्मा एकदम जेट प्लेन की तरह गर्म हो चुका था। उसने इतनी ज़ोरदार गैस छोड़ी कि मैंने आज तक ऐसी गैस कभी नहीं सुनी थी। जब मैंने विरोध किया, तो उसने मुझे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित गैसों के प्रकारों पर लंबा-चौड़ा व्याख्यान दिया। उसने मुझे यकीन दिलाया कि उसकी छोड़ी हुई गैसें उत्तम पद्धी थीं - सर्वोच्च कोटि की और पूरी तरह गंधहीन।

अगले दिन हम यूनिसेफ द्वारा संचालित यौन रोगों के क्लिनिक में गए, जिसके प्रमुख मुंबई के भारतीय डॉक्टर परंजपे थे। एक साल पहले यूनिसेफ द्वारा अफगानिस्तान में बीमारियों के प्रसार की जांच के लिए भेजे गए एक यूरोपीय विशेषज्ञ ने रिपोर्ट दी थी कि सिफलिस और गोनोरिया जैसी बीमारियां बड़े पैमाने पर फैली हुई हैं। जाहिर तौर पर वे अपने होटल से बाहर नहीं निकले थे और न ही उन्होंने अफगान डॉक्टरों से सलाह ली थी, बल्कि उन्होंने अपने अनुमान अफगानिस्तान के इतिहास के अध्ययन पर आधारित किए थे: अफगानिस्तान मध्य एशिया से भारत तक अनगिनत आक्रमणों का मार्ग रहा है, और आक्रमणकारी सेनाएं यौन रोगों को फैलाने के लिए कुख्यात थीं। वास्तव में, वहां यौन रोग बहुत कम थे। वेश्यावृत्ति

निषिद्ध थी। कुछ महिलाएं बुर्का पहनकर मस्जिदों के आसपास घूमती और नमाजियों को लुभाती थीं। पकड़े जाने पर उन्हें जेल में डाल दिया जाता था।

मैंने क्लिनिक में केवल दो मामले देखे — एक अधेड़ उम्र की महिला, दूसरा बीस साल का एक युवक। महिला काबुल और पेशावर के बीच ट्रक चलाने वाले एक ट्रक ड्राइवर की पत्नी थी। उसके छह से ज़्यादा बच्चे थे जब उसे गुप्तांगों में खुजली होने लगी। उसे लगा कि यह उसके पति की ज़रूरतों के कारण है। महिला ने पुरुष डॉक्टर, अफ़ग़ान नर्स और हम दोनों के सामने अपना बुर्का और सलवार उतारने में ज़रा भी संकोच नहीं किया। डॉक्टर ने हमारी मौजूदगी में उसकी जाँच की और बताया कि उसे सिफलिस है। और यह भी बताया कि उसका इलाज तभी होगा जब वह अपने पति को क्लिनिक लाएगी। उसे बताया गया कि उसके पति को शायद पेशावर के किसी वेश्यालय में यह संक्रमण हुआ था और उसने उसे भी संक्रमित कर दिया था। महिला बहुत गुस्से में थी; उसे अपनी खुजली से ज़्यादा अपने पति का गला पकड़ने की तीव्र इच्छा थी। उसका पति उससे कहता था कि जब वह दूर होता है तो उसे उसकी कितनी याद आती है।

जब मैं क्लिनिक आया तो मैंने उस युवक अफगान को गली में इधर-उधर घूमते देखा। वह यह सुनिश्चित करना चाहता था कि अंदर आते ही कोई उसे पहचान न ले। वह सीढ़ियों से ऊपर भागा, डॉक्टर के सामने पेश हुआ और अपनी रहस्यमय बीमारी के बारे में बताया। 'अपनी सलवार उतारो,' डॉक्टर परंजपे ने आदेश दिया। वह हिचकिचाया। 'इन सभी लोगों के सामने? और उस औरत के सामने!' उसने नर्स की ओर इशारा करते हुए कहा। 'जी हां,' परंजपे ने जवाब दिया, 'ये डॉक्टर हैं।' बेचारा शर्म से लाल हो गया। आखिरकार उसने अपनी लंबी कमीज ऊपर खींची और सलवार की डोरी खोलने से पहले अपना चेहरा ढक लिया। परंजपे ने उसके ढीले लिंग पर मौजूद घाव की जांच की। 'तुम्हें सिफलिस है,' उन्होंने युवक से कहा। 'मैं तुम्हारा इलाज तभी करूंगा जब तुम उस औरत को क्लिनिक लाओगे जिसके साथ तुमने संबंध बनाया था।' युवक ने कसम खाकर कहा कि वह किसी औरत के पास नहीं गया था, यहां तक कि वेश्या के भी नहीं। डॉक्टर ने उसका इलाज करने से इनकार कर दिया। आखिरकार वह हकलाते हुए बोला, 'मुझे किसी लड़के से यह बीमारी लगी होगी।' मैंने कुछ दिन पहले एक के साथ गुदा मैथुन किया था।' यह झूठ था; परंजपे ने उसे झूठ बताया और बाहर जाने का आदेश दिया। अफगानिस्तान में किसी अजनबी महिला के साथ यौन संबंध की तुलना में गुदा मैथुन सामाजिक रूप से अधिक स्वीकार्य था।

यौन रोगों से भी ज़्यादा मलेरिया, टाइफाइड, टाइफस और तपेदिक प्रचलित थे। हमें देश भर में यात्रा करके सोवियत सीमा के पास, ऑक्सस नदी पर स्थित कुंदुज़ और मज़हर-ए-शरीफ़ जाना था। स्वास्थ्य मंत्री ने स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक, एक बेहद गुस्सैल स्वभाव वाले डॉ. हकीमी (जो बाद में स्वास्थ्य मंत्री बने) को हमारे साथ चलने का आदेश दिया। हमारे साथ दो

यूरोपीय डॉक्टर, एक फ़िनिश महिला (जिनकी उम्र का अंदाज़ा लगाना मुश्किल है) जो पश्तो और फ़ारसी बोलती थीं, और एक स्वीडिश डॉक्टर थे। एक सुबह हम एक बिल्कुल नई स्टेशन वैगन में निकल पड़े। ग्रामीण इलाका अद्भुत विरोधाभासों से भरा था: बंजर पहाड़ अचानक चावल और फलों से भरी हरी-भरी घाटियों में बदल जाते थे। वहाँ क्रिस्टल जैसे साफ़ पानी की कई नदियाँ थीं। रास्ते में पड़ने वाले चायखाने, जहाँ हम खाने के लिए रुकते थे, आमतौर पर बहती नदियों के किनारे स्थित थे, उनके आँगन अंगूर की बेलों से ढके हुए थे। अफ़गान लोग बहुत मिलनसार थे। मुझे बस एक ही बात खटकती थी, वो था उनका मुझे संबोधित करने का तरीका। उनके लिए मैं लाला (व्यापारी या साहूकार) था, जैसा कि ज़्यादातर अफ़गान सिखों के लिए था।

जिन विश्राम गृहों में हम रात बिताना पसंद करते थे, वहाँ एक समस्या थी। हर किसी के लिए पर्याप्त कमरे नहीं होते थे। फिनलैंड की महिला डॉक्टर ने मुझसे पूछा कि क्या मुझे उनके साथ कमरा साझा करने में कोई आपत्ति है। मैं मान गया क्योंकि इससे मैं शर्मा की गैस की बदबू से बच जाता। हालाँकि, इससे एक और समस्या खड़ी हो गई। मैंने कभी भी किसी वयस्क महिला के साथ कमरा साझा नहीं किया था। क्या वह मुझसे उम्मीद करेगी कि मैं उसके पास जाऊँ? मैं इस बारे में सोचकर सो नहीं पाया। अगली सुबह शर्मा मुझे ताना मारने के लिए आ गया, 'लाले! मेम दी पुद्दी लाए के नहीं' - क्या तुमने उस गोरी औरत की योनि में संभोग किया? जब मैंने स्वीकार किया कि मैंने नहीं किया, तो उसने मुझे 'पुद्दू' कहा। यही बात अगली दो रातों और मजहर-ए-शरीफ में भी हुई। वापस आते समय हम बामियान में रुके, जहाँ हमने अजंता जैसी बौद्ध गुफाओं के अवशेष देखे, जिनमें ठोस चट्टान से तराशी गई बुद्ध की दो विशाल प्रतिमाएँ थीं। वहाँ बहुत गर्मी थी। महिला डॉक्टर ने मुझसे पूछा कि क्या मैं उनके साथ घाटी से बहने वाली चौड़ी नदी में स्नान करने चलना चाहूँगा। मैं मान गया। हमने एक सुनसान जगह ढूँढी। मैंने अपने अंडरवियर नहीं पहने थे; उन्होंने अपने सारे कपड़े उतार दिए और नदी में खूब मस्ती की। वह मुझसे उम्र में थोड़ी बड़ी थीं, लेकिन अच्छी सेहत वाली थीं। अगर उनका कोई संदेश देने का इरादा था, तो मैं समझ नहीं पाया। हम वापस विश्राम गृह गए और अपने साथियों के साथ मिल गए। उस शाम उन्होंने मुझसे कहा, 'अगर आपको कोई आपत्ति न हो, श्रीमान सिंह, तो इस बार मैं स्वीडिश डॉक्टर के साथ अपना कमरा साझा करूँगी।' और अगले तीन रातों तक उन्होंने ऐसा ही किया। शर्मा ने मुझे भोला-भाला कहकर जो वर्णन किया था, वह ज़्यादा गलत नहीं था।

देश में तीन सप्ताह बिताने के बाद, मैंने 'अरयाना से अफ़गानिस्तान तक' शीर्षक से एक पुस्तिका लिखी, जिसे यूनिसेफ ने प्रकाशित किया। मेरी मेहनत के फलस्वरूप अफ़गान सरकार ने मुझे मुट्ठी भर नीलमणि भेंट की। नियमों के अनुसार, मुझे यह उपहार स्वीकार करने के लिए अपनी सरकार से अनुमति लेनी थी। मैंने संबंधित मंत्रालय के सचिव से मुलाकात की और उनसे पूछा कि यह प्रक्रिया कैसे पूरी की जाए। उन्होंने पत्थरों को देखा और मुझसे कहा: 'यदि आप इन्हें सरकार को

सौंप देंगे, तो आप इन्हें फिर कभी नहीं देख पाएंगे। मेरा सुझाव है कि आप इन्हें अपनी जेब में रख लें और सरकार के बारे में भूल जाएं।' मैंने वैसा ही किया।

दूसरा काम मुझे भारत सरकार से मिला। उस समय लाखों हिंदू, बौद्ध और ईसाई पूर्वी पाकिस्तान से पश्चिम बंगाल भाग रहे थे। सरकार इस बड़े पैमाने पर हो रहे पलायन को अंग्रेजी जानने वाले लोगों के बीच प्रचारित करने के लिए उत्सुक थी। एक सुबह मुझे वित्त मंत्रालय के सचिव एच.एम. पटेल का फोन आया और उन्होंने मुझे वित्त मंत्री टी.टी. कृष्णमाचारी से मिलने के लिए कहा। अगले दिन मैं एच.एम. पटेल के कमरे में गया और उनसे पूछा कि मंत्री जी मुझसे क्या चाहते हैं। पटेल ने मुझे अपने बड़े से कमरे में ले जाते हुए कहा, 'वे खुद ही बता देंगे। मुझे इंग्लैंड और अमेरिका में जाने-माने किसी लेखक की जरूरत है जो पूर्वी पाकिस्तान से भाग रहे शरणार्थियों पर एक पुस्तिका लिखे। यह काम तुरंत होना चाहिए। हमने तीन नामों पर विचार किया है - श्रीमती झबवाला, नीरद चौधरी और आपका - इसी क्रम में।'

‘सर, श्रीमती झबवाला बहुत गर्भवती हैं और उन्हें बंगाली नहीं आती। मुझे भी नहीं आती। आपके लिए सबसे अच्छा विकल्प नीरद चौधरी हैं। उनका जन्म पूर्वी बंगाल में हुआ था और अंग्रेजी भाषी दुनिया में वे रूथ या मुझसे कहीं अधिक प्रसिद्ध हैं।’

'क्या आप उससे बात कर सकते हैं? वह जो चाहे मांग सकता है। पैसे की कोई समस्या नहीं है।'

मैंने उनसे कहा, 'सर, डॉ. केसकर [सूचना एवं प्रसारण मंत्री] ने नीरद के किसी भी सरकारी संगठन के लिए लिखने पर प्रतिबंध लगा दिया है।'

वित्त मंत्री ने उपहास उड़ाते हुए कहा, 'केसकर कौन है? तुम चौधरी को बता दो कि प्रतिबंध हटा लिया गया है। वह जितनी चाहे उतनी रकम मांग सकता है।'

मुझे बहुत खुशी हुई। नीरद बहुत मुश्किल दौर से गुज़र रहा था। उसे अपनी पत्नी और दो बेटों का पालन-पोषण करना था। साथ ही, एक गोद लिया हुआ बेटा और एक जवान, भूखा अल्सेशियन कुत्ता भी था, जिन्हें खाना खिलाना पड़ता था। नीरद के पास टेलीफोन नहीं था। मैंने अपने चपरासी को निकोलसन रोड स्थित उसके घर एक पत्र के साथ भेजा, जिसमें मैंने उससे जल्द से जल्द मुझसे मिलने का अनुरोध किया था, क्योंकि मेरे पास उसके लिए एक खुशखबरी थी।

अगली सुबह नीराद मेरे दफ्तर आया। मैंने उसे वित्त मंत्री और मेरे बीच हुई सारी बातचीत बताई। मैंने उससे कहा, 'प्रतिबंध हट गया है; तुम्हारी पैसों की परेशानी भी खत्म हो गई है।'

उन्होंने मेरी आंखों में सीधे देखते हुए पूछा, 'तो क्या भारत सरकार ने मुझ पर लगे प्रतिबंध को हटाने का फैसला किया है?'

‘हां,’ मैंने उत्साहपूर्वक उत्तर दिया।

‘लेकिन नीराद चौधरी ने भारत सरकार पर लगे प्रतिबंध को हटाने का फैसला नहीं किया है,’ उन्होंने जवाब दिया और मुझे अचंभित छोड़कर मेरे कार्यालय से बाहर निकल गए। वे ऐसे ही व्यक्ति थे: गरीबी उन्हें अपने आत्मसम्मान से समझौता करने के लिए मजबूर नहीं करती थी।

मुझे यह काम खुद करना पड़ा। एक दुभाषिया और एक फोटोग्राफर के साथ, मैंने दर्जनों शरणार्थी शिविरों का दौरा किया और उन सैकड़ों पुरुषों और महिलाओं से बात की, जिन्होंने पूर्वी पाकिस्तान में अपने घर और ज़मीनें छोड़कर भारत में एक रुपये प्रतिदिन प्रति परिवार के दयनीय गुजारे पर गुज़ारा किया था। शारीरिक हिंसा का कोई मामला नहीं था, लेकिन कई हिंदू लड़कियों को अगवा करके इस्लाम में परिवर्तित किया जा रहा था और मुसलमानों से उनकी शादी कराई जा रही थी। मैंने लगभग हर किसी से पूछा कि उन्होंने पाकिस्तान क्यों छोड़ा, तो हर किसी ने एक ही शब्द में जवाब दिया, 'भोय' - डर। मैंने बंगालियों की अपनी स्थिति सुधारने की अनिच्छा भी देखी। पुरुष अपना दिन आपस में गपशप करते हुए बिताते थे या तालाबों के किनारे मछली पकड़ने की उम्मीद में कांटा लिए बैठे रहते थे ताकि चावल और दाल के राशन में कुछ और जोड़ सकें। उनमें एक बीस साल का युवक था, जो कॉलेज गया था और अंग्रेजी बोलता था। मैंने उसे एक स्टूल पर बैठे हुए खालीपन से आसमान की ओर देखते हुए पाया। तंबू के अंदर उसकी सुडौल, आकर्षक पत्नी बर्तन धो रही थी और उसके चारों ओर चार-पाँच छोटे बच्चे थे। 'क्या आप अंग्रेजी बोलते हैं?' मैंने उस युवक से पूछा। वह अपनी कुर्सी से उठे बिना ऊपर देखने लगा और सिर हिलाया। मैंने पूछा, 'आप इस शिविर में कितने समय से हैं?' उसने एक पल सोचा और जवाब दिया, 'दो महीने! तीन महीने!' मैंने झुंझलाहट में उससे पूछा, 'क्या आपने कलकत्ता में नौकरी ढूंढने की कोशिश की? आप तो पढ़े-लिखे आदमी हैं।'

उन्होंने पूर्ण उदासीनता से उत्तर दिया, 'मैंने किया। मुझे अपने स्वभाव के अनुकूल कुछ भी नहीं मिला।'

यह स्थिति पंजाब के उन दस लाख हिंदू और सिख शरणार्थियों से कितनी अलग थी जो 1947 में पाकिस्तान से आए थे! आप युवा लड़कियों को तांगा चलाते हुए और बेहतर दिन देख चुके बूढ़े पुरुषों को साइकिल रिक्शा चलाते हुए देख सकते थे। शायद ही कभी कोई पंजाबी भीख मांगने के लिए हाथ फैलाता दिखाई देता था।

मैंने जो पुस्तिका लिखी थी, उसका शीर्षक था 'पाकिस्तान में नहीं चाहिए'। इसे एक निजी प्रकाशन गृह के नाम से प्रकाशित किया गया था ताकि ऐसा लगे कि यह किसी स्वतंत्र लेखक और प्रकाशक का काम है। इसके प्रकाशन के अगले दिन किसी ने मुझे फोन किया और पूछा कि इसे लिखने का काम मुझे किसने सौंपा था। मैंने बिना पूछे ही बता दिया कि वह पाकिस्तान उच्चायोग से कोई व्यक्ति था। अगले दिन मुझे पाकिस्तान के उच्चायुक्त अरशद हुसैन का एक तीखा पत्र मिला। शेक्सपियर शैली की अंग्रेज़ी में उन्होंने लिखा, 'अफ़सोस! धिक्कार है! आप जो पाकिस्तान के इतने बड़े मित्र होने का दावा करते हैं, मेरी

सरकार के विरुद्ध ऐसी निंदात्मक बातें लिखते हैं।' यह कहना व्यर्थ था कि मैंने अपनी आँखों से लाखों शरणार्थियों को उनके देश से भागते देखा था क्योंकि वे खुद को असुरक्षित महसूस कर रहे थे।

योजना पत्रिका में काम करते हुए मुझे एक साल से ज़्यादा हो गया था, तभी बेनेट कोलमैन के प्रबंध निदेशक जे.सी. जैन ने मुझे 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के सेवानिवृत्त आयरिश संपादक सी.आर. मैंडी से संपादन का पदभार संभालने का प्रस्ताव दिया। मैं बॉम्बे गया, मैंडी से मिला और नौकरी की शर्तों पर चर्चा की। मैं अपनी पत्नी और तरलोक सिंह से सलाह लेने के लिए दिल्ली लौट आया। मेरी पत्नी अपनी बात पर अड़ी रही। उसने ज़ोर देकर कहा कि बॉम्बे रहने के लिए बहुत ही अस्वस्थ जगह है और वह अपने परिवार को गर्म-नम जलवायु के खतरों से बचाना चाहती है, जिससे हर तरह की बीमारियाँ फैलती हैं। तरलोक सिंह ने 'द वीकली' का मज़ाक उड़ाया। उन्होंने पूछा, 'इसे कौन गंभीरता से लेता है? यह तो बस नवविवाहित जोड़ों की तस्वीरों और कार्टूनों वाली एक चित्र पत्रिका है। योजना पत्रिका के ज़रिए आप अपने देश के लिए कुछ कर रहे हैं।' मैं अपनी पत्नी के तर्क से प्रभावित नहीं हुआ - मैंने उससे कहा कि लाखों लोग बॉम्बे में खुशी से रहते हैं। न ही तरलोक सिंह के देशभक्ति के उपदेश से। मैं वह नौकरी स्वीकार कर लेता, लेकिन संयोगवश मेरी मुलाकात रॉकफेलर फाउंडेशन के एक प्रोजेक्ट स्काउट से हुई जो दिल्ली में थे। वे मुझसे मिलने आए और बताया कि उन्होंने मेरी छोटी सी किताब, 'द सिख्स' पढ़ी है और उन्हें वह बहुत पसंद आई है। उन्होंने पूछा, 'क्या आप इस विषय पर कुछ अधिक ठोस और विस्तृत लिखना चाहेंगे, बजाय उस छोटी सी किताब के जो गौण स्रोतों पर आधारित है?' मुझे यह विचार बहुत अच्छा लगा। मैंने उन्हें बताया कि इसके लिए मुझे अपनी नौकरी छोड़नी पड़ेगी और बहुत यात्रा करनी पड़ेगी। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया, 'हम सब कुछ संभाल लेंगे। आप प्रोजेक्ट और उसकी लागत बता दीजिए, मैं देख लूंगा कि फाउंडेशन उसे स्वीकार कर ले।' मैंने प्रोजेक्ट की रूपरेखा तैयार करना शुरू किया। दिल्ली और लंदन (इंडिया हाउस लाइब्रेरी) में शोध करने, कनाडा और अमेरिका में ग़दर आंदोलन से संबंधित मूल दस्तावेज़ देखने और आईएनए पर सामग्री इकट्ठा करने के लिए जापान, सिंगापुर और बर्मा में लोगों से मिलने में मुझे तीन साल लगेंगे। उन्होंने मेरा प्रस्ताव न्यूयॉर्क भेज दिया और उसे स्वीकार करने की सिफ़ारिश की। मैंने उन्हें रात के खाने पर आमंत्रित किया। उन्हें प्रभावित करने के लिए मैंने अमेरिकी दूतावास में तत्कालीन प्रथम सचिव कैरोल लैज़ को भी उनसे मिलने के लिए कहा। वह रात का खाना एक आपदा साबित हुआ। कैरोल गर्मियों के महीनों में बहुत कम कपड़े पहनने और बैठते समय अपने पैर चौड़े करके बैठने की आदी थीं, जिससे उनकी जांघें और उससे भी ज़्यादा हिस्सा दिखता था। रॉकफेलर के इस व्यवहार से वह बेहद नाराज़ हो गए। अगली सुबह उन्होंने कैरोल लैज़ से मिलकर स्थानीय लोगों के सामने इस तरह बेशर्मी से खुद को नंगा करने पर अपनी कड़ी नाराज़गी ज़ाहिर की। कैरोल ने उन्हें अपने कमरे से बाहर निकाल दिया और मुझे फ़ोन करके सारी घटना बताई। मैंने रॉकफेलर के प्रोजेक्ट स्काउट से कहा कि

उन्हें एक करीबी दोस्त से इस तरह बात करने का कोई अधिकार नहीं था। उन्होंने मुझे अपने काम से मतलब रखने को कहा। प्रोजेक्ट को मंजूरी मिल गई, लेकिन उस व्यक्ति ने मेरी राह में जितना हो सके उतनी बाधाएं डालने की पूरी कोशिश की। मुझे इस परियोजना के लिए एक प्रायोजक संस्था ढूंढनी थी। मुझे लगा कि दिल्ली विश्वविद्यालय सबसे उपयुक्त रहेगा। मैंने कुलपति डॉ. वी.के.आर.वी. राव से मुलाकात की, जो कई अन्य दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों की तरह ही अपने आप को बहुत बड़ा समझते थे। उनकी प्रतिक्रिया सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। उन्होंने कहा, 'श्री सिंह, मैं आपको अपने विश्वविद्यालय का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करने की अनुमति नहीं दूंगा।'

उनकी बदतमीज़ी से मैं स्तब्ध रह गया। मेरा अगला विकल्प अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय था। मैंने सोचा कि सिख धर्म और इतिहास पर एक परियोजना को प्रायोजित करने के लिए एक मुस्लिम संस्थान का होना एक अच्छा कदम होगा, और इस तरह सिखों और मुसलमानों के बीच पारंपरिक शत्रुता की गलत धारणा को खत्म करने में मैं अपना छोटा सा योगदान दे सकूंगा। कुलपति कर्नल बी.एम. जैदी ने मुझे अलीगढ़ में अपने इतिहास विभाग के शिक्षकों से इस विषय पर चर्चा करने के लिए आमंत्रित किया। वहाँ मुझे डॉ. नूरुल हसन (जो बाद में कुलपति और पश्चिम बंगाल के राज्यपाल बने) के रूप में एक और बाधा का सामना करना पड़ा। इतिहासकार के रूप में नूरुल हसन की प्रतिष्ठा खोखली थी। उन्होंने ऐतिहासिक शोध पर आधारित बहुत कम प्रकाशित सामग्री तैयार की थी और ऐसा करने वालों से वे नाराज़ थे। उन्होंने बड़े दृढ़ता से कहा, 'आप इतने विशाल विषय पर तीन साल में कोई वास्तविक शोध नहीं कर सकते।' उनके सहयोगी प्रोफेसर राशिद खान, जिन्होंने कभी सरगोधा के खालसा स्कूल में इतिहास पढ़ाया था, ने असहमति जताई। 'अमेरिकी पैसा दे रहे हैं; उन्हें लगता है कि वे शोध और लेखन कर सकते हैं।' उन्होंने विनती करते हुए कहा, 'हमें बस अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का नाम देना होगा।' कुलपति ने नूरुल हसन की बात अनसुनी कर दी और रॉकफेलर फाउंडेशन को एक औपचारिक पत्र जारी कर परियोजना को प्रायोजित करने की सहमति दे दी।

मैंने जे.सी. जैन को पत्र लिखकर 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक पद को ठुकरा दिया और 'योजना' के संपादक पद से इस्तीफा दे दिया। मैंने ग्रंथ साहिब का अध्ययन करने के लिए एक ग्रंथी को नियुक्त किया और मॉडर्न स्कूल के दिनों के अपने उर्दू शिक्षक, मौलवी शफीउद्दीन नैयर, जो उस समय जामिया मिलिया इस्लामिया में थे, से फारसी सिखाने का अनुरोध किया ताकि मैं सिख दरबार के अभिलेखों को पढ़ सकूँ जो उस भाषा में थे। इस प्रकार दो साल के अंत में मैं एक नौकरी से निकलकर दूसरी नौकरी में लग गया।

10 सिख धर्म और इतिहास

मैंने पहले भी बताया है कि जब मैंने लेखन को अपना करियर बनाने का फैसला किया, तो मुझे एहसास हुआ कि रचनात्मक लेखन की अत्यधिक प्रतिस्पर्धी दुनिया में पहचान बनाने का मेरा एकमात्र मौका किसी एक विषय में विशेषज्ञता हासिल करना और यह प्रभाव डालना था कि मैं उसे दूसरों से बेहतर जानता हूँ। मैंने अपने समुदाय को चुना। मेरा पालन-पोषण एक रूढ़िवादी सिख परिवार में हुआ था, मुझे निर्धारित पाँचों दैनिक प्रार्थनाएँ कंठस्थ थीं और मैं खालसा परंपराओं से परिचित था। हालाँकि जब मैंने यह निर्णय लिया, तब तक मैं अपने धर्म सहित सभी धर्मों से निराश हो चुका था, फिर भी सिख समुदाय से मेरा गहरा जुड़ाव था और मैं इसके उतार-चढ़ावों से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ था। सिखों के इतिहास पर मेरी पहली संक्षिप्त पुस्तक बेशक औसत दर्जे की थी, लेकिन सुबह की प्रार्थना जपजी के मेरे अनुवाद ने मुझे संतुष्टि और बेहतर करने की उम्मीद दी। फिर सिख धर्मग्रंथों के चयनित अंशों के अनुवाद के लिए यूनेस्को की परियोजना आई, जिसके साथ अपने जुड़ाव का मैं पहले ही वर्णन कर चुका हूँ।

मुझे जो रॉकफेलर अनुदान मिला, उससे एक शोध सहायक और एक स्टेनोटाइपिस्ट की व्यवस्था हो गई। स्टेनोटाइपिस्ट के बारे में मैंने ज़रा भी संकोच नहीं किया। मैंने यवोन ले रूगेटेल को पत्र लिखा। यह महिला, हालांकि बहुत साधारण परिवार से थी, लेकिन पैसों की परवाह नहीं करती थी; उसने मेरी दी हुई मामूली रकम सहर्ष स्वीकार कर ली और अपने खर्च पर दिल्ली आ गई। शोध सहायक के बारे में मैं थोड़ा असमंजस में था। कलकत्ता के सिख रिव्यू के संपादक कैप्टन भाग सिंह ने सुझाव दिया कि मैं तरलोचन सिंह को, जिसने चयन प्रक्रिया को लेकर मुझसे झगड़ा किया था, एक और मौका दूं, क्योंकि वह आर्थिक तंगी से जूझ रहा था और उसे कुछ वर्षों तक एक स्थिर आय की आवश्यकता थी। अनिच्छा से ही सही, मैंने उसे एक और मौका देने के लिए सहमति दी और उसे मुझसे मिलने के लिए दिल्ली बुलाया। मुझे अपने इस निर्णय पर पछतावा हुआ।

तरलोचन सिंह को रात्रिभोज का निमंत्रण मिला था। संयोगवश, अमेरिकी दूतावास में वरिष्ठ परामर्शदाता कैरोल लैज़ भी वहाँ आ गईं। मुझे कुछ ही दिनों में ऑक्सफोर्ड के लिए रवाना होना था, जहाँ मुझे स्पैल्डिंग फाउंडेशन के तत्वावधान में सिख धर्म पर व्याख्यानों की एक श्रृंखला देनी थी। मैंने तरलोचन सिंह को बताया कि मैं उनकी क्या सहायता कर सकता हूँ - मुझे केवल शास्त्रों के अनुवादों की सटीकता की जाँच करने और लिप्यंतरण में चिह्नों को जोड़ने में सहायता की आवश्यकता होगी। मैंने उन्हें ऑक्सफोर्ड में भाषण देने के निमंत्रण के बारे में भी बताया। उन्होंने चुपचाप सुना और मुझसे रॉकफेलर और स्पैल्डिंग फाउंडेशन के पते प्राप्त किए। कुछ दिनों बाद जब मैंने ऑक्सफोर्ड में अपना पहला व्याख्यान दिया (श्रोता छह से अधिक नहीं थे), तो मैंने यह कहकर शुरुआत की कि सिख धर्म की मेरी व्याख्या कई सिख विद्वानों द्वारा स्वीकार नहीं की

जाती है। व्याख्यान के अंत में, फाउंडेशन के सचिव ने मुझसे कहा, 'मुझे खुशी है कि आपने इस तरह से शुरुआत की। इसे देखिए!' उन्होंने मुझे भारत से प्राप्त एक टेलीग्राम दिया। उसमें ठीक वही लिखा था जो मैंने कहा था—कि सिख धर्म पर मेरे विचार सिख विद्वानों को स्वीकार्य नहीं हैं और इसलिए मुझे इस विषय पर बोलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हस्ताक्षर: तरलोचन सिंह। मैंने टेलीग्राम को अनदेखा कर दिया और अगले दिन अपना दूसरा व्याख्यान देने चला गया। कुछ समय बाद, रॉकफेलर फाउंडेशन ने मुझे एक पत्र की फोटोकॉपी भेजी जो उन्हें प्राप्त हुआ था। उसमें लिखा था कि फाउंडेशन को मुझे अनुदान देने के अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए, जो स्पष्ट रूप से अमेरिकी दूतावास के एक वरिष्ठ अधिकारी कैरोल लेज़ (उन्होंने उपनाम सही नहीं लिखा था) के साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता से प्रभावित था, और पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति ने सिख धर्म और इतिहास पर पहले ही डेटा संकलित कर लिया है और उन्हें आगे के शोध और प्रकाशन के लिए अनुदान प्राप्त होना चाहिए। हस्ताक्षर: तरलोचन सिंह।

स्पैल्डिंग फाउंडेशन और रॉकफेलर दोनों ने ही इन संदेशों पर कोई ध्यान नहीं दिया। तरलोचन सिंह जैसे लोग भारत में आम हैं। घनी सफेद दाढ़ी और श्लोकों के आवरण के पीछे वे द्वेष और ईर्ष्या छिपाए रखते हैं। तरलोचन सिंह की मृत्यु 1993 में घोर गरीबी में हुई।

मेरे जीवन का सबसे संतोषजनक कार्य सिख धर्म और इतिहास पर काम करना रहा है। यही एकमात्र ऐसा समय था जब मैंने हाथ में पेंसिल लेकर ग्रंथ साहिब का अध्ययन किया और उन शब्दों को चिह्नित किया जिन्हें मैं समझ नहीं पाया। मैंने स्वयं कुछ अंश चुने और उन्हें अपनी समझ के अनुसार अनुवाद किया, मूल पाठ की लय को बनाए रखने का प्रयास किया। मैंने पुराने नियम की भाषा को अपना आदर्श बनाया। मैंने लंदन में इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में कई महीने बिताए। इस दौरान, जिन पुस्तकों को मैं लिखने की योजना बना रहा था, उनके लिए सामग्री एकत्र करने के अलावा, मैंने महाराजा रणजीत सिंह की जीवनी का मसौदा भी पूरा किया (जिसे बाद में एलन एंड अनविन, ब्लैकीज़ और ओरिएंट लॉन्गमैन ने प्रकाशित किया), साथ ही महाराजा की मृत्यु के बाद के दस वर्षों की अराजकता, एंग्लो-सिख युद्धों और पंजाब के विलय पर एक पुस्तक भी लिखी। यह पुस्तक भी ओरिएंट लॉन्गमैन द्वारा प्रकाशित की गई थी।

लंदन में रहने से मुझे और मेरी पत्नी को पुरानी दोस्ती को फिर से ताज़ा करने का मौका मिला। एलेनोर सिंक्लेयर और सुसान हिकलिन ने हमें अपर बर्कले स्ट्रीट पर एक छोटा सा फ्लैट दिलाया था। सोफे की खस्ता हालत और पुलिस की बार-बार आने वाली कॉल्स से लगता था कि पिछला किराएदार एक वेश्या थी। मंज़ूर कादिर अपने दूसरे बेटे, असगर का इलाज करवाने के लिए लंदन में थे। हमने अपनी ज़्यादातर शामें साथ बिताईं। इसी दौरान एक बार मंज़ूर और मैं एक घंटे के लिए न्यूज़रील सिनेमा देखने गए (उन दिनों लंदन में ऐसे कई सिनेमाघर थे)। उनमें से एक शॉर्ट फिल्म डॉ. सन यात सेन की जयंती पर बीजिंग में हुई परेड की थी। मैंने उनके बारे में कुछ कहा कि वे कितने महान व्यक्ति थे। मंज़ूर ने पूछा, 'वे कौन

थे?' जो कानून की किताबों और उर्दू कविता के अलावा कुछ नहीं पढ़ते थे। मैंने उनसे कहा, 'कहीं ऐसा तो नहीं कि तुमने डॉ. सन यात सेन के बारे में कभी नहीं सुना?' वे चिढ़ गए और बोले, 'कोई होगा साला बंगाली डॉक्टर' - ज़रूर कोई खास तरह का बंगाली डॉक्टर रहा होगा। उस शाम उनके घर पर भोजन करते समय, मैंने उनकी बेटी शिरीन को उसके पिता की टिप्पणी के बारे में बताया। “अरे पिताजी! आप एशिया के महानतम नेताओं में से एक के बारे में ऐसी बात कैसे कह सकते हैं!” बेचारे मंज़ूर बुरी तरह आहत हुए। उन्होंने मुझसे विनती की, “भगवान के लिए, इस कहानी को मत फैलाओ।” जब फील्ड मार्शल अयूब खान ने उन्हें पाकिस्तान का विदेश मंत्री नियुक्त किया, तो मैंने उन्हें एक टेलीग्राम भेजा, “प्रसिद्ध बंगाली डॉक्टर डॉ. सन यात सेन की ओर से बधाई।”

इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में मेरी जिन लोगों से दोस्ती हुई, उनमें प्रोफेसर रॉबर्ट क्रेन भी थे, जिन्हें भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर शोध करने के लिए एक अमेरिकी विश्वविद्यालय से अनुदान मिला हुआ था। वे तीन सहायकों के साथ लाइब्रेरी आते थे। वे एक घंटे तक एक वेटिंग रूम में बैठकर सिगरेट पीते और उन दस्तावेजों और किताबों की सूचियाँ बनाते थे जिन्हें वे देखना चाहते थे। सूचियाँ लाइब्रेरियन को सौंप दी जाती थीं। फिर क्रेन और उनके सहायक कॉफी पीने के लिए कैफेटेरिया चले जाते थे। एक घंटे बाद वे लाइब्रेरी लौटकर यह सुनिश्चित करते थे कि उन्हें जो चाहिए था वह मिल गया है। उन्हें किताबें और दस्तावेज दिए जाते थे जिन्हें वे फोटोकॉपी करवाने के लिए फोटोस्टेट सेक्शन में दे देते थे। फिर वे दोपहर के भोजन के लिए चले जाते थे, जहाँ मैं अक्सर उनके साथ जाता था। उन्होंने मुझे सलाह दी, 'डॉक्टर सिंह, मेरी बात का बुरा न मानें, लेकिन आप यहाँ की पुरानी सामग्री पढ़कर बहुत समय बर्बाद कर रहे हैं। आपको बस इनकी फोटोकॉपी करवाकर घर ले जाना चाहिए और आराम से पढ़ना चाहिए।' उनकी बात में दम था, लेकिन पुराने ख्यालों का होने के कारण मैं अपनी आदतें नहीं बदल सका। कई वर्षों बाद मुझे क्रेन से मिलने का अवसर मिला जब मैं प्रिंसटन में था और वह ड्यूक में। हमने हवाई विश्वविद्यालय में ग्रीष्मकालीन अवकाश पाठ्यक्रम भी पढ़ाया, और उनका परिवार कुछ दिनों के लिए हमारे साथ कसौली में रुका। डॉ. क्रेन की आधुनिक शोध पद्धतियों से कोई लाभ नहीं हुआ।

मेरी पत्नी के भारत लौटने के बाद, गाइ विंट अक्सर लंदन में रहने के दौरान मेरे फ्लैट में रात बिताने आते थे। वे मेरे बिस्तर पर सोते थे, मैं खस्ताहाल सोफे पर सोता था। एक शाम जब मैं उनके आने की उम्मीद कर रहा था और खाना तैयार था, वे नहीं आए। अगले दिन भी उनकी कोई खबर नहीं मिली, न ही उसके अगले दिन। फिर उनकी पत्नी फ्रेडा ने ऑक्सफोर्ड से फोन करके मुझे बताया कि ऐसा क्यों हुआ। ऑक्सफोर्ड से लंदन जाने वाली ट्रेन में गाइ को स्ट्रोक आ गया। उन्हें आभास हो गया था कि उनके साथ कुछ गड़बड़ हो रही है। उन्होंने अपना विजिटिंग कार्ड एक सहयात्री को दे दिया। उस व्यक्ति ने तुरंत गार्ड को सूचना दी, जिसने मैरीलेबोन स्टेशन पर संदेश भेजा। एक एम्बुलेंस उनका इंतजार कर रही थी। उन्हें बेहोशी की हालत में अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टर ने फ्रेडा को सूचना दी, जिन्होंने मुझे फोन किया। गाइ की जान बच गई, लेकिन

उन्हें आंशिक लकवा हो गया। जब वे पूरी तरह स्वस्थ थे तब भी वे बहुत स्पष्ट नहीं बोल पाते थे; लेकिन अब जब उन्हें होश आया, तो उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी और वे थोड़ा लंगड़ा रहे थे।

लंदन में अपना सारा काम निपटाने के बाद, मैं ग़दर पार्टी के बारे में जानकारी इकट्ठा करने के लिए कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका चला गया। मैंने वैंकूवर में दो सप्ताह गुरुद्वारों के अभिलेखों का अध्ययन करने में बिताए। कामगाता मारू प्रकरण के समय वहाँ मौजूद कुछ बुजुर्ग सिखों ने मेरी बहुत मदद की। उन्होंने मुझे लगभग आधी सदी से जमा किए हुए पर्चे और तस्वीरें सौंप दीं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनमें से कई, जिन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय कनाडा में बिताया था, ने अंग्रेज़ी सीखने की ज़हमत नहीं उठाई थी। उन्होंने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा, 'घास काटना, झाड़ियाँ छाँटना और सर्दियों में घरों के सामने से बर्फ़ हटाना जैसे छोटे-मोटे काम करने के लिए हमें अंग्रेज़ी जानने की ज़रूरत नहीं है। पाँच-छह शब्द जैसे "मैडम, छोटा-मोटा काम! ज़रूर! धन्यवाद और ठीक है" ही काफ़ी हैं।' वैंकूवर सन की पुरानी फाइलों से रोजमर्रा की घटनाओं का खजाना मिला, जब कामागाटा मारू को बरार्ड इनलेट में रोक दिया गया था, उसके जाने के बाद सिखों के बीच हिंसा भड़की जिसमें गुरुद्वारे में हत्याएं हुईं, पुलिस इंस्पेक्टर हॉपकिंस की अदालत में हत्या हुई, और भाई मेवा सिंह पर हत्या का मुकदमा चला और उन्हें फांसी दी गई।

वैंकूवर से मैं सैन फ्रांसिस्को गया, ताकि उन शुरुआती बैठकों के रिकॉर्ड खोज सकूँ जो बाद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनी। मैं बर्कले विश्वविद्यालय के परिसर में रुका। भारतीय अध्ययन विभाग की प्रमुख दो महिला प्रोफेसरों, मिस फिशर और मार्गरिट बोंडुरेंट ने मुझे स्थानीय संपर्क दिए और कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय (मुख्य रूप से सिख) प्रवास, उनके साथ होने वाले भेदभाव और जर्मन कौंसुल फ्रांज बोप्प के लंबे मुकदमे के रिकॉर्ड पर लिखी गई थीसिस उधार दीं। फ्रांज बोप्प ने भारतीय प्रवासियों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह संगठित करने के लिए प्रोत्साहित और वित्त पोषित किया था। मैंने अब तक वफादार रहे सिख समुदाय में ब्रिटिश विरोधी भावना की शुरुआत पर बहुत सारी अनछुई सामग्री एकत्र की।

सैन फ्रांसिस्को से मैं टोक्यो के लिए रवाना हुआ ताकि राश बिहारी बोस, 'जनरल' मोहन सिंह और बाद में सुभाष चंद्र बोस द्वारा संगठित भारतीय राष्ट्रीय सेना के बारे में जानकारी जुटा सकूँ। मैं नव वर्ष की पूर्व संध्या पर वहाँ पहुँचा और अंतर्राष्ट्रीय केंद्र में ठहरा। मैं अपने पढ़ने-लिखने पर ध्यान केंद्रित नहीं कर पा रहा था क्योंकि बगल वाले कमरे में एक अधेड़ उम्र के, लेकिन चुस्त-दुरुस्त अमेरिकी प्रोफेसर और उनकी युवा अंग्रेज़ प्रेमिका ठहरे हुए थे। विभाजन की दीवार बहुत पतली थी; मैं उनकी हर बात सुन सकता था, उनके चुंबन की आवाज़, उनके बिस्तर की चरमराहट और प्रेम करते समय उनकी चीखें। मुझे प्रोफेसर की ऊर्जा से ईर्ष्या हो रही थी; केंद्र में अपने दस दिनों के प्रवास के दौरान मैं उन्हें सुबह सबसे पहले, दोपहर के आराम के समय और रात को सोने से पहले सुनता था।

मैंने जापानी रक्षा मंत्रालय को पत्र लिखकर अपनी खोज के बारे में बताया था। मुझे उनके कार्यालय में उपस्थित होने के लिए कहा गया। यह एक विचित्र साक्षात्कार था। एक सैनिक मुझे एक ठंडे, सादे ढंग से सजाए गए कमरे में ले गया। मेज पर वर्दी पहने तीन जापानी अधिकारी बैठे थे, जो बिल्कुल एक जैसे दिखते थे। वे खड़े हुए और मुझे प्रणाम किया। मैंने भी उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया। उनमें से एक ने दुभाषिए के माध्यम से मुझसे मेरे काम के बारे में पूछा। मैंने विस्तार से बताया कि मैं रॉकफेलर स्कॉलर हूँ और भारतीय नौसेना (आईएनए) से संबंधित सामग्री की तलाश में हूँ। इसके बाद पूछे गए कुछ अटपटे सवालों से मुझे समझ आ गया कि वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि मैं जीआईए या भारतीय खुफिया एजेंसी का एजेंट तो नहीं हूँ। एक घंटे की पूछताछ के बाद उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास आईएनए का कोई रिकॉर्ड नहीं है, सिवाय एक पुस्तिका के, जो उन्होंने मेरे सामने रख दी। वह जापानी भाषा में थी। मैंने उन्हें बताया कि मैं जापानी नहीं पढ़ सकता। उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे मुझे उन जापानी अधिकारियों से मिलवा सकते हैं जिनका मोहन सिंह, नरिंजन सिंह गिल या सुभाष चंद्र बोस से संपर्क था। सबसे ज़्यादा मैं मेजर फुजिवारा से मिलना चाहता था, जो भारतीय नौसेना के संपर्क अधिकारी थे। जब मेरे अनुरोध का अनुवाद हो रहा था, मैंने पुस्तिका के पन्ने पलटे और उसमें भारतीय अधिकारियों की कुछ तस्वीरें देखीं, जिनमें मेजर फुजिवारा बीच में बैठे थे। मैंने अपने एक पूछताछकर्ता के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान देखी। मेरे सामने स्वयं मेजर फुजिवारा बैठे थे। वे धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलते थे और थोड़ी-बहुत हिंदुस्तानी भी सीख चुके थे। मुझे कभी पता नहीं चला कि उन्होंने मुझे इस नाटक में क्यों फंसाया। मेजर से मिलने के मेरे अनुरोध को अंग्रेज़ी में दो शब्दों में अचानक ठुकरा दिया गया: 'अनुमति नहीं है।' निरर्थक साक्षात्कार समाप्त हो गया। मुझे बस जापानी भाषा में वह पुस्तिका मिली।

हालांकि, मुझे राश बिहारी बोस के घर जाने का मौका मिला, जहां उनकी जापानी विधवा, बेटी और उसके पति रह रहे थे। उन्होंने मुझे बहुत कम बताया क्योंकि बोस ज्यादातर समय घर से बाहर रहते थे। उनकी बेटी ने उनके जीवन के आखिरी साल तक उन्हें मुश्किल से ही देखा था। मैंने उनसे पूछा कि उनके पिता की मृत्यु कहां हुई थी। चेहरे पर कोई भाव दिखाए बिना उन्होंने अपने पैरों के पास लकड़ी के फर्श की ओर इशारा करते हुए जवाब दिया, 'यहां।'

टोक्यो में निराशा हाथ लगने पर मैं हांगकांग चला गया। वहाँ एक पहाड़ी पर समुद्र के किनारे एक सुंदर गुरुद्वारा था। इमारत एक पारसी ने दान की थी; सिंधी सिखों और खालसा ने आपस में पूजा-अर्चना का समय बाँट रखा था। एक पति-पत्नी द्वारा गाया जाने वाला सुबह का कीर्तन बहुत ही मधुर था। उन्होंने मुझे जो सरोपा दिया था, उसके लिए धन्यवाद देते हुए मैंने उनके द्वारा गुरुद्वारे के इतने सौहार्दपूर्ण संचालन की प्रशंसा की। बाद में, समिति के अध्यक्ष ने मुझे बताया कि चीजें उतनी सुचारू नहीं हैं जितनी दिखती हैं और हर साल चुनाव के समय उन्हें व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस बुलानी पड़ती है। उन्होंने मुझे सिख धर्म पर एक पुस्तिका भी दी। यह पुस्तिका मंदारिन और अंग्रेजी में थी और कथित तौर पर एक स्थानीय

सिख द्वारा चीनी लोगों में वितरित करने के लिए लिखी गई थी। अपने होटल के कमरे में मुझे पता चला कि अंग्रेजी पाठ पूरी तरह से मेरी पुस्तक 'द सिख्स टुडे' से लिया गया था, जिसे ओरिएंट लॉन्गमैन ने प्रकाशित किया था। मैंने अध्यक्ष से कहा कि यह स्पष्ट रूप से साहित्यिक चोरी है। उन्होंने स्वीकार किया कि जब डाकघर में काम करने वाले एक व्यक्ति ने उन्हें पांडुलिपि दी थी, तो वे भी आश्चर्यचकित हुए थे। उन्होंने कथित लेखक से स्पष्टीकरण मांगने का वादा किया। उसी शाम वह व्यक्ति मुझसे मिलने आया और उसने अपने किए का सच कबूल कर लिया। 'मुझे लगा था कि आपकी मृत्यु बहुत पहले हो गई थी। मुझे कैसे पता चलता कि आप हांगकांग में आकर यह किताब देखेंगे? मैं आपको अपने परिवार के साथ भोजन कराए बिना भारत वापस नहीं जाने दूंगा। तभी मुझे विश्वास होगा कि आपने मुझे माफ कर दिया है।' मैंने उनके परिवार के साथ बहुत ही सुखद भोजन किया। कुल मिलाकर हांगकांग की यात्रा उपयोगी रही क्योंकि मैं कई भारतीय व्यापारियों से मिला जिन्होंने मोहन सिंह और सुभाष चंद्र बोस की मदद की थी।

हांगकांग में एक सिख साथी से हुई मेरी मुलाकात आज भी मुझे याद है। मैं अपने कंधे पर कैमरा टांगे सड़क पर चल रहा था। सफेद दाढ़ी वाला एक सिख एक चीनी आभूषण की दुकान की रखवाली कर रहा था, जिसके हाथ में बंदूक थी। जैसे ही उसने मुझे आते देखा, वह अपना सिर हिलाने लगा। 'सरदारजी देसन आए हो?' - क्या आप गांव से आए हैं? मैंने हां में सिर हिलाया। उसने और जोर से अपना सिर हिलाया। 'तुमने हमारी नाकें काट दी हैं - नक वड्ढा दित्ता। तुमने इन चीनियों को अपनी गांड मरवाने दी है - चीनियां तुन बंद मारवा लाई।' (यह 1962 के भारत-चीन युद्ध के तुरंत बाद की बात है।) 'मेरी चीनी पत्नी अब मुझे हर समय ताना मारती है। कुक्कड़ खान जोगे हो - तुम सिर्फ तंदूरी चिकन खा सकते हो। तुम लड़ नहीं सकते। हम शंघाई पुलिस में थे; हम छह चीनियों को उनकी चोटी से पकड़कर पुलिस स्टेशन ले जाते थे।' अब हम उनकी आंखों में आंखें डालकर बात नहीं कर सकते।' मैं इस बात से सहमत हुए बिना नहीं रह सका कि चीनियों ने हमें बुरी तरह हरा दिया था।

मैंने सिंगापुर का भी दौरा किया और वहाँ की जेल और उससे सटे अस्पताल को देखा। अस्पताल के बाहर मैंने एक छोटा सा मंदिर देखा जिसकी देखभाल एक तमिलियन करता था। संगमरमर की एक पट्टिका पर गुरुमुखी लिपि में लिखा था: समाधि करनी वाला बाबा - मनोकामना पूरी करने वाले संत का मंदिर। इलाज के लिए अस्पताल आने वाले लोग सौभाग्य के लिए यहाँ चढ़ावा चढ़ाते थे। स्वयंभू तमिलियन देखभालकर्ता चढ़ावे पर ही अपना जीवन यापन करता था। जब मैंने उससे बाबा के बारे में पूछा, तो उसे कुछ भी पता नहीं था; उसे यह पद अपने पिता से विरासत में मिला था, जिन्होंने उसे बताया था कि यह उस प्रसिद्ध सिख के अंतिम संस्कार का स्थान है, जिनकी मृत्यु सौ साल से भी अधिक समय पहले इसी जेल में हुई थी। मैंने तुरंत अनुमान लगाया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि शायद यही वह स्थान था जहाँ भाई महाराज सिंह का अंतिम संस्कार किया गया था। इस व्यक्ति ने 1849 में सिख राज्य के विलय के बाद भी अंग्रेजों से लड़ना जारी रखा था। पकड़े जाने के

बाद, उन्हें सिंगापुर भेज दिया गया था। मुझे सौ साल से भी अधिक समय पहले वहाँ मरने वाले किसी अन्य प्रख्यात सिख का नाम याद नहीं आ रहा था। अपनी इस बेतुकी अटकल को एक सिख पत्रिका में प्रकाशित करने की मेरी मूर्खता थी। सिंगापुर का सिख समुदाय, जो पहले से ही कई गुटों में बंटा हुआ था (जाति और क्षेत्रीय मतभेदों के आधार पर उनके नौ गुरुद्वारे थे), को झगड़े का एक और मुद्दा मिल गया। कट्टरपंथी गुरु गोविंद सिंह के उन लेखों का हवाला देते थे जिनमें मंदिरों और समाधियों की पूजा वर्जित थी। वहीं दूसरी ओर, अन्य लोगों का मानना था कि संगमरमर की पट्टिका पर लिखे लेखों से स्पष्ट होता है कि यह एक पवित्र स्थान है। मेरे लेख ने मंदिर में पूजा करने वालों के पक्ष में पलड़ा झुकाया। उन्होंने आगे बढ़कर उसके चारों ओर एक गुरुद्वारा बनवा दिया। सतही शोध के यही परिणाम होते हैं। एक और गुरुद्वारे के निर्माण का कारण मैं ही बना। इससे पहले मैंने अनुमान लगाया था कि आगरा के पास सिकंदरा में अकबर के मकबरे के नजदीक स्थित एक जीर्ण-शीर्ण स्मारक वह स्थान हो सकता है जहां नौवें गुरु, तेग बहादुर, दिल्ली आने से पहले रुके होंगे, जहां 1675 में उन्हें फांसी दी गई थी। आगरा के सिख समुदाय ने तुरंत उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनवा दिया।

मैं रंगून के लिए रवाना हुआ। वहाँ मेरी मुलाकात एक बार फिर कई भारतीय व्यापारियों से हुई जिन्होंने आई.एन.ए. के साथ सहयोग किया था। मैंने उनके कार्यों और युद्धक्षेत्र में आई.एन.ए. के प्रदर्शन के बारे में उनके विचारों को विस्तार से नोट किया। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ग़दर पार्टी की तरह, आई.एन.ए. ने भारतीय राष्ट्रवादी प्रचार को तो हवा दी, लेकिन उपलब्धियों के नाम पर कुछ ठोस सबूत नहीं दिए। लगभग एक साल तक दुनिया का चक्कर लगाने के बाद मैं दिल्ली लौट आया। अब सारी जानकारी को कागज़ पर उतारने का असली काम शुरू होना बाकी था।

मुझे उन लोगों से ईर्ष्या होती है जो कहते हैं कि उन्हें लिखना अच्छा लगता है: मुझे तो हमेशा से यह एक झंझट भरा काम लगा है। अगर मैं प्रेरणा का इंतज़ार करता, तो मैं कुछ भी नहीं लिख पाता। मुझे खुद पर कड़ा अनुशासन लागू करना पड़ा। इन्हीं सालों में मुझे सुबह जल्दी उठने की आदत पड़ गई—सुबह 4 से 5 बजे के बीच, जिनसेंग का एक मग बनाकर अपने नोट्स को देखने और सामग्री को व्यवस्थित करने में जुट जाता। मेरे पिता ने मुझे अपना खूबसूरत सागौन की लकड़ी से बना स्टडी रूम दिया था, जिसमें एक अनोखा फ़ारसी कालीन और एक चिमनी थी। यवोन पास के ही एक कमरे में मेरे चचेरे भाई कुलबीर (जिन्हें यवोन आखिरी दिन तक 'कुलबर' ही बोलती थीं) के साथ बैठी रहती थीं, जो मेरे पिता के सचिव के रूप में काम करते थे। मैंने कसम खाई थी कि जब तक मैं अपनी मेज पर रखे खाली पन्ने नहीं भर लेता, तब तक अपनी कुर्सी से नहीं उठूंगा। अक्सर, जो मैं लिखता था वह इतना खराब होता था कि पढ़ा ही नहीं जा सकता था। मैं उसे टाइप करवाता, फिर दोबारा लिखता। कभी-कभी तो मैं हर पंक्ति को पांच-छह बार तब तक लिखता जब तक वह पढ़ने में आसान न हो जाए। मैंने कॉफी ब्रेक लिया। मेरे माता-पिता के घर में दोपहर के नाश्ते के बाद कॉफी पीना एक परंपरा बन गई थी। मेरी माँ

इस परंपरा की देखरेख करती थीं और सबके लिए कॉफी, क्रीम और चीनी डालती थीं। कई मेहमान भी आकर हमारे साथ कॉफी पीने लगते थे।

रविवार और छुट्टियों के दिन, कृशन शुंगलू और उनकी पत्नी सरोजिनी (बिट्टो) कनॉट प्लेस के किसी रेस्तरां में मेरी पत्नी और मेरे साथ कॉफी पीने आते थे। मुझे शुंगलू परिवार के साथ समय बिताना अच्छा लगता था। कृशन बहुत पढ़े-लिखे थे और लाहौर में उनकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ था। वे हमेशा उपन्यास लिखने की योजना बनाते रहते थे। एक-दो बार उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो से दो महीने की छुट्टी लेकर इस पर काम शुरू किया था। उस समय वे बहुत तनाव में रहते थे। वे अपने लिए एक नई नोटबुक और पेंसिलों का ढेर खरीदते थे। वे उपन्यास लिखना शुरू करने से पहले मुझसे उस पर चर्चा करने पर जोर देते थे। हम चारों अक्सर वोल्गा रेस्तरां में मिलते थे। सिगरेट जलाते हुए उनका चेहरा उत्साह से लाल हो जाता था और वे मुझसे पूछते थे, 'के. सिंह, उपन्यास के लिए यह शीर्षक कैसा रहेगा: 'सुनहरे स्तनों वाली महिला?' मुझे मानना पड़ा कि यह उत्तेजक लगता है और एक बहुत ही लोकप्रिय शीर्षक होगा। 'लेकिन यह किस बारे में होगा?' मैं पूछता। वे आराम से बैठ जाते और कहते, 'यह तो मैंने अभी तय नहीं किया है।' सबसे पहले, किसी भी किताब का शीर्षक ही वह पहली चीज़ होती है जिसे कोई भी पढ़ता है।' शुंग्लू कभी भी शीर्षक को मोटे अक्षरों में लिखने और उसके नीचे अपना नाम लिखने से आगे नहीं बढ़ पाया। सुनहरे स्तनों वाली उस महिला ने कभी भी उन्हें किसी इंसान की नज़र के सामने ज़ाहिर नहीं किया। शुंग्लू से ही मैंने सीखा कि जो लेखक किताब लिखना शुरू करने से पहले ही उसके शीर्षक के बारे में सोच लेते हैं, वे शायद ही कभी आगे बढ़ पाते हैं।

लाहौर में शुंगलू से मेरी पहली मुलाकात के दिन से ही मैं उन्हें पसंद करने लगा था। वे ऑक्सफोर्ड से अभी-अभी लौटे थे। वे लंबे, सुरुचिपूर्ण ढंग से कपड़े पहनने वाले और बेदाग शिष्टाचार वाले व्यक्ति थे। ऐसा लगता था कि वे किताबों को पढ़ने और कविता लिखने के अलावा कुछ नहीं करते थे। वे एक संयुक्त परिवार में रहते थे और जाहिर तौर पर उन्हें अपनी आजीविका कमाने की जरूरत नहीं थी। विभाजन के बाद हालात बदल गए जब परिवार ने लाहौर में अपनी संपत्ति खो दी। उन्हें नौकरी ढूंढनी पड़ी और उन्हें ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी मिल गई। उन्होंने एक कश्मीरी महिला, सरोजिनी (बिट्टो) सप्रू से शादी की। उन्होंने एक नर्सरी स्कूल में शिक्षिका के रूप में नौकरी कर ली। वे उनके माता-पिता के साथ ही रहते रहे। दिल्ली में हमारी दोस्ती फिर से शुरू हुई। हम एक-दूसरे से सबसे ज्यादा मिलते-जुलते थे। हम एक-दूसरे के घर खाना खाने जाते थे ताकि साथ में बैठकर बातें कर सकें, गपशप कर सकें और खाना खा सकें। वे बेहद आलसी थे। जहाँ तक मुझे याद है, ऑल इंडिया रेडियो में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने केवल एक ही कार्यक्रम लिखा और निर्मित किया था, जिसका नाम था 'ड्रम', जो भारतीय संगीत में प्रयुक्त विभिन्न ताल वाद्ययंत्रों पर आधारित था। वे इस बात पर लंबे समय तक गर्व करते रहे।

एक बार शुंगलू ने मुझे कश्मीर पर एक कार्यक्रम का सह-निर्माण करने का काम सौंपा। हमने ट्रेन और बस से साथ यात्रा की। हमें एक रात सड़क किनारे बने डाक बंगले में एक कमरा साझा करना पड़ा। उनकी तेज़ खर्राटों की वजह से मुझे ज़्यादा नींद नहीं आई। मैंने पहले कभी ऐसी स्टाइलिश खर्राटे नहीं सुनी थीं। कर्कश नाक से निकलने वाली आवाज़ों के बीच-बीच में अंग्रेज़ी में कुछ शब्द सुनाई देते थे: 'ओह, नो नो! - ओह यस! यस! बाय ऑल मीन्स', आदि। हमारी एक सप्ताह की यात्रा के अंत में हमने तय किया कि हम दोनों मिलकर जो कार्यक्रम लिखेंगे और निर्मित करेंगे, उन्हें बराबर बाँट लेंगे। अंत में मुझे ही सारे कार्यक्रम लिखने पड़े। मैं शुंगलू की सुस्ती और गंभीर काम करने में असमर्थता का आदी हो चुका था।

मुझे लेखन के नियमित कार्यक्रम का पालन करने के लिए प्रेरित करने वाली एक अस्पष्ट आशंका थी कि शायद मैं इसे समय पर पूरा न कर पाऊं। असमय मृत्यु का भय अधिकांश लेखकों को सताता है। मेरे साथ एक अतिरिक्त भय यह भी था कि लेखन के बाद मुझे कोई प्रकाशक न मिले। दूसरा भय पहले की तुलना में जल्दी दूर हो गया। दिल्ली में एक युवा अमेरिकी दंपति ने हमसे दोस्ती कर ली। जैक कुरेन, एक लंबा, आकर्षक व्यक्ति और प्रिंसटन का छात्र, आरएसएस पर शोध प्रबंध कर चुका था और अमेरिकी दूतावास में द्वितीय सचिव था। उसकी पत्नी कैथी, जो किसी फिल्म स्टार जैसी दिखती थी, प्रॉक्टर एंड गैंबल परिवार की उत्तराधिकारी थी। जैक का प्रिंसटन से संपर्क बना हुआ था और जाहिर तौर पर उसने संकाय के कुछ सदस्यों को मेरे शोध परियोजना के बारे में बताया था। जब मैं सिखों के इतिहास के अपने पहले खंड को अंतिम रूप दे रहा था, तभी मुझे प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस से एक पत्र मिला जिसमें बताया गया था कि वे मेरे काम पर विचार करने में रुचि रखते हैं। मैंने उन्हें पहला खंड भेजा। इसे स्वीकार कर लिया गया। इससे मेरा मनोबल बढ़ा और मैं अधिक आत्मविश्वास के साथ दूसरे खंड पर काम करने में जुट गया। मेरी तीन साल की ग्रांट खत्म होने वाली थी। प्रोजेक्ट पूरा करने के लिए मुझे एक साल और चाहिए था, इसलिए मैंने रॉकफेलर फाउंडेशन से ग्रांट को एक साल और बढ़ाने का अनुरोध किया। मेरा अनुरोध तुरंत ठुकरा दिया गया - निस्संदेह उसी व्यक्ति ने ठुकराया जिसने पहले यह अनुरोध शुरू किया था और बाद में मुझसे झगड़ा कर लिया था। मुझे दूसरा खंड पूरा करने के लिए एक साल और अकेले काम करना पड़ा। मुझे यवोन ले रूगेटेल से अप्रत्याशित प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। वह बंधी हुई पांडुलिपि को देने को तैयार नहीं थी; उसने उसे ऐसे गले लगाया जैसे वह उसका बच्चा हो। उससे पांडुलिपि लेने और उसे प्रिंसटन भेजने से पहले हमारा एक अप्रिय टकराव हुआ।

मैंने दोनों खंड अपने माता-पिता को समर्पित करके उनके प्रति अपना आभार व्यक्त किया। मैंने यवोन ले रूगेटेल के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त की, जिन्होंने दिल्ली में मेरे साथ चार साल तक काम किया और उन्हें वह वेतन मिला जिसे एक भारतीय टाइपिस्ट ठुकरा देता। और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का भी आभार व्यक्त किया, जिसने इसे प्रायोजित करने पर सहमति जताई। खंड दो के अंत में मैंने लैटिन में दो शब्द जोड़े: ओपस एक्सेगी - मेरे जीवन का कार्य पूरा हो गया है। सिख

धर्म और इतिहास पर लिखना मेरे जीवन का लक्ष्य था। इसे पूरा करने के बाद मुझे ऐसा लगा जैसे मैं उधार के समय पर जी रहा हूँ, स्वयं से और दुनिया से शांति में। मुझे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं इसके बाद और कुछ न लिखूँ।

प्रिंसटन और ऑक्सफोर्ड, दो प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय प्रकाशन गृहों द्वारा मेरी दो पुस्तकों के प्रकाशन ने मेरे लिए शिक्षा जगत के द्वार खोल दिए। वह लड़का जो स्कूल और कॉलेज की परीक्षाएं पास नहीं कर सका, प्रोफेसर बन गया और बिना डॉक्टरेट किए ही उसे डॉक्टर सिंह के नाम से पुकारा जाने लगा। मुझे सबसे पहले रोचेस्टर विश्वविद्यालय ने आमंत्रित किया। मैं वहां सर्दियों में पहुंचा, जब पूरा इलाका बर्फ की चादर से ढका हुआ था। मैंने हॉलिडे इन में दो सप्ताह बिताए, जो मुझे दिए गए अनुदान से कहीं अधिक महंगा था। मैं कमरे में उपलब्ध ब्रेड, बटर और कॉफी पर ही गुजारा करता रहा। फिर मुझे छात्रों के छात्रावास ब्लॉक में अतिथि व्याख्याताओं के लिए आरक्षित एक कमरा दिया गया। मुझे कोई पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाना था, लेकिन विभिन्न संस्थानों में मेरे लिए कुछ व्याख्यान आयोजित किए गए। मैंने अपना अधिकांश समय औद्योगिक शहर की खोज में बिताया, जो कोडक और ज़ेरॉक्स कारखानों का केंद्र था। यह एक बदसूरत, साधारण सा कस्बा था, जिसमें लंबी सीधी सड़कें, टूटे-फूटे घर, पेट्रोल पंप और ट्रक चालकों के लिए खाने-पीने की जगहें थीं। वहाँ के दो ही सुखद स्थान थे: हाइलैंड पार्क, जो अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था, और एक विशाल कब्रिस्तान जहाँ कस्बे के पूर्वज दफन थे—जिनमें कुख्यात गैंगस्टर बफेलो बिल कोडी भी शामिल था। खरीदारी और मनोरंजन के लिए एकमात्र सुखद स्थान एक विशाल शॉपिंग प्लाजा था, जिसके केंद्रीय हॉल में एक घूमने वाली, बजने वाली घड़ी लगी थी जो दुनिया के विभिन्न हिस्सों का समय दिखाती थी। मैंने कई दोपहरें वहाँ दिल्ली का समय देखते हुए बिताईं।

रोचेस्टर का एक यादगार अनुभव पेरिस में मेरे छात्र जीवन की अश्वेत मित्र हेज़ल मैरी स्टोक्स का एक रविवार का दौरा था। पेरिस में मेरी यादों में उनकी छवि एक लंबी, पतली, बेहद मिलनसार महिला की थी, जिनके सिर पर घने घुंघराले बाल थे और होंठ चूमने लायक थे। हम पत्रों और क्रिसमस कार्डों के ज़रिए संपर्क में थे। वह एक स्कूल शिक्षिका बन गई थीं, दो पतियों से शादी और तलाक ले चुकी थीं, लेकिन उनकी कोई संतान नहीं थी। वह डेट्रॉइट में अपनी नेत्रहीन माँ के साथ रहती थीं। वह ग्रेहाउंड बस से रोचेस्टर पहुँचने के लिए रात भर का सफर तय करके आई। मैं उन्हें लेने के लिए बस स्टेशन पर मौजूद था। मैं सोच रहा था कि तीस साल बाद वह कैसी दिखेंगी। वह बस से उतरीं, भूरे रंग के मांस का एक विशालकाय ढांचा। उन्होंने मुझे बड़े प्यार से गले लगाया और कहा, 'हनी! तुम तो मोटी और बूढ़ी हो गई हो।'

मैंने उसकी तारीफ करते हुए कहा: 'मैरी, तुम बिल्कुल भी नहीं बदली हो। तुम्हें पहचानने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई।'

वह ठहाका लगाकर हंस पड़ी। 'झूठे! मुझे पता है मेरा थोड़ा वजन बढ़ गया है।'

हम टैक्सी से मेरे अपार्टमेंट गए। वह बहुत कम सोई थी और थकी हुई व भूखी थी। उसने कहा, 'मैं जल्दी से नहा लेती हूँ, कपड़े बदल लेती हूँ और फिर तुम मुझे नाश्ते के लिए बाहर ले जा सकते हो।' वह बाथरूम में गई, लेकिन मुझसे बात करने

के लिए दरवाज़ा खुला रखा। अगर मैंने कुछ ऐसा कह दिया जो उसे समझ नहीं आया, तो वह साबुन लगाते हुए बाहर आती और पूछती, 'डार्लिंग, तुमने क्या कहा?' मुझे समझ नहीं आ रहा था कि उसके मन में क्या चल रहा है। नहाने के बाद वह बिल्कुल नग्न होकर तौलिए से खुद को पोंछने लगी और मुझे अपने पति, अपनी माँ और अपने काम के बारे में बताती रही। मैं अपनी कुर्सी से उठा, उसे चूमा और उसे अपने बिस्तर पर ले गया। उसने कहा, 'डार्लिंग, तुम मेरे साथ बिस्तर पर नहीं जाना चाहते। तो चलो बस पुरानी बातें करते हैं। ठीक है?' मुझे राहत मिली। मैं सच में उसके साथ बिस्तर पर नहीं जाना चाहता था, लेकिन मुझे लगा कि शायद वह ऐसा चाहती होगी और अगर मैंने कोशिश नहीं की तो उसे बुरा लगेगा। उसने बैंगनी रंग की ड्रेस पहनी - भड़कीले और चटख कपड़ों के प्रति उसका शौक नहीं बदला था। मैं उसे शॉपिंग प्लाज़ा ले गया जो रविवार को खुला रहता था। उसने नाश्ते में अंडे, बेकन, वफ़ल और कॉफ़ी खाई। उसने खुशी से कहा, 'बड़ी औरत को बड़ा नाश्ता चाहिए।' 'अब मुझे कुछ नए कपड़े खरीदने हैं; मुझे शॉपिंग बहुत पसंद है।' हम दुकानों में घूमने लगे। उसने नए जूते और कपड़े देखे। कुछ भी उसे फिट नहीं आया। उसने पूछा कि क्या बड़े साइज़ के पुरुषों और महिलाओं के लिए कोई खास दुकानें हैं। थीं। उसने बाकी की सुबह अलग-अलग कपड़ों को आज़माते हुए बिताई और मेरी राय लेने के लिए बाहर आती रही। 'क्या आपको नहीं लगता कि यह मुझ पर अच्छा लग रहा है?' उसने नए कपड़े, नए जूते, नकली गहने और जो कुछ भी उसे पसंद आया, सब खरीद लिया। अपनी अब सेक्सलेस ज़िंदगी में उसे ज़रूरत से ज़्यादा खाने और जमकर खर्च करने की ज़रूरत थी। दोपहर के खाने में उसने मक्खन से लदे एक बड़े स्टेक, प्याज के छल्ले और खट्टी क्रीम से भरे आलू खाए। इसके बाद उसने हॉट चॉकलेट सॉस के साथ आइसक्रीम खाई। जब तक दोपहर का खाना खत्म हुआ, तब तक शाम हो चुकी थी और उसके डेट्रॉइट लौटने का समय हो गया था। मैंने उसे बस स्टेशन तक छोड़ा और उसे प्यार से विदाई दी। उसने मेरे दिन को खुशियों और बातों से भर दिया था। जब मैं अपने अपार्टमेंट में लौटा तो वह वीरान और बेहद शांत लग रहा था।

अगला निमंत्रण प्रिंसटन विश्वविद्यालय से आया। मुझे जनवरी से अप्रैल तक तीन महीने के लिए तुलनात्मक धर्मों पर एक पाठ्यक्रम पढ़ाना था। मैंने सोचा कि पत्नी के एक महीने बाद आने से पहले मैं वहाँ थोड़ा आराम कर लूँ। मैं न्यूयॉर्क के लिए रवाना हुआ और प्रोफेसर हैज़र्ड और उनकी पत्नी सुसान के साथ कुछ दिन बिताए। वारसॉ की एक सप्ताह की यात्रा के दौरान मेरी उनसे दोस्ती हो गई थी और मैंने उन्हें सोवियत कानून पर बोलते हुए सुना था, जिसे वे कोलंबिया विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि कोई सोवियत कानून जैसे नीरस विषय को इतनी स्पष्टता और हास्य के साथ कैसे समझा सकता है। उन्होंने मुझे मैनहट्टन स्थित अपने घर तक पहुँचने का सटीक निर्देश दिया था और टैक्सी का किराया भी बताया था। उस मुलाकात ने मुझे सिखाया कि लोगों के बारे में बनी-बनाई धारणाएँ कितनी मूर्खतापूर्ण हो सकती हैं। आम तौर पर यह माना जाता है कि दुनिया भर के टैक्सी चालक बेईमान होते हैं। न्यूयॉर्क के टैक्सी चालकों की प्रतिष्ठा

दूसरों की तुलना में कहीं अधिक खराब है। कैनेडी हवाई अड्डे पर टैक्सी में बैठते ही मेरी नज़र मीटर पर टिकी रही। टैक्सी चालक एक इतालवी था और बहुत बातूनी था। उसने देखा कि मैं जिन इमारतों के पास से गुज़र रहा था, उन्हें बड़ी-बड़ी आँखों से देख रहा था। उसने मुझसे पूछा, 'क्या आप न्यूयॉर्क में हैं?' 'लगभग पहली बार,' मैंने जवाब दिया। 'कनाडा जाते समय मैंने यहाँ आधा दिन बिताया था,' मैंने कहा। 'यह न्यूयॉर्क कितना बड़ा शहर है,' वह बोला और अलग-अलग इमारतों की ओर इशारा करने लगा। मुझे शक होने लगा कि वह मुझे बेवकूफ बना रहा है। मैं मीटर पर पैनी नज़र रखे हुए था, जो लगातार चल रहा था। 'क्यों न आप मेरे घर पर थोड़ी देर रुक जाएँ – यह हमारे रास्ते में ही है, मेरी पत्नी से मिलें और एक कप चाय वगैरह पी लें?' मुझे लगा कि वह चालाकी कर रहा है, लेकिन मैं उसे ऐसा करने नहीं देना चाहता था। 'नहीं, धन्यवाद,' मैंने दृढ़ता से जवाब दिया। 'मेरे मेज़बान दरवाज़े पर मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे। मैंने उन्हें हवाई अड्डे से फ़ोन करके बता दिया था कि मैं पहुँच गया हूँ।' उसे मेरी इस बेरुखी का बुरा नहीं लगा और वह मज़े से बातें करता रहा। 'रहने के लिए दुनिया का सबसे अच्छा देश,' उसने आगे कहा। 'देखो, मैं इटैलियन हूँ, लेकिन मुझे यहाँ ज़्यादा अच्छा लगता है: अच्छी कमाई, अच्छे लोग।' जब हम प्रोफ़ेसर हैज़र्ड के घर पहुँचे, तो उन्होंने मीटर पर ज़ोर से हाथ पटका और एक के बाद एक ज़ीरो दिखाए। मैंने वो आंकड़ा देख लिया था; ये बिल्कुल वही था जो हैज़र्ड ने मुझे बताया था। 'कितना?' मैंने उनसे पूछा। 'कुछ नहीं,' उन्होंने जवाब दिया। 'आज मेरे देश में तुम्हारा पहला दिन है। तुम्हारा प्रवास सुखद हो।' और वे गाड़ी चलाकर चले गए। मुझे अपने आप पर बहुत शर्म आई।

हैज़र्ड परिवार का रामकृष्ण मिशन के सामने एक विशाल तीन मंजिला मकान था, जिसके एक तरफ हार्लेम और दूसरी तरफ सेंट्रल पार्क था। सबसे ऊपरी मंजिल पर एक पोलिश छात्र रहता था जो अपने खर्चे के लिए घर के कामों में मदद करता था। जाहिर तौर पर वे काफी संपन्न थे। मुझे बताया गया था कि जब भी मैं न्यूयॉर्क में रहूँ, तो उनके घर को अपना घर ही समझूँ। अगली शाम मैंने ट्रेन से प्रिंसटन के लिए प्रस्थान किया। कड़ाके की ठंड थी। मैंने अपने ठहरने के लिए दिए गए अपार्टमेंट के पते तक टैक्सी ली। मुझे दिए गए निर्देशों वाले पत्र में दो चाबियाँ थीं। टैक्सी ने मुझे और मेरे दो सूटकेस को एक सुनसान सड़क पर उतार दिया, जहाँ खिड़कियों से तेज़ रोशनी आ रही थी। सड़क से मेरे दरवाजे तक के रास्ते पर तीन फुट बर्फ जमी हुई थी। मैंने अपने दोनों सूटकेस बर्फ में घसीटते हुए ले गया। जब तक मैं दरवाजे तक पहुँचा, मेरे जूते और मोज़े पूरी तरह भीग चुके थे और मेरी उंगलियाँ ठंड से अकड़ गई थीं। मैंने चाबियों से जूझना शुरू किया: हर देश के अपने तरह के ताले और चाबियाँ होती हैं और उन्हें समझने में थोड़ा समय लगता है। आखिरकार, मैंने दरवाजा खोल दिया। फिर मैंने लाइट स्विच ढूंढने के लिए दीवारों को टटोला: अलग-अलग देशों में अलग-अलग तरह के स्विच होते हैं: भारत में उन्हें नीचे दबाना पड़ता है; अमेरिका में उन्हें ऊपर धकेलना पड़ता है। मैंने एक स्विच को ऊपर धकेलने से पहले उसे और नीचे दबाने की कोशिश की और तेज़ रोशनी से मेरी आँखें चौंधिया गईं। गलियारे में मेज पर एक तख्ती रखी थी जिस पर लिखा था 'प्रिंसटन में आपका

स्वागत है।' वाकई! मैंने जल्दी से अपना सामान समेटते हुए और गीले जूते-मोजे उतारते हुए मन ही मन सोचा। शनिवार का दिन था और स्टेशन से आते समय मुझे रास्ते में कोई कैफे नहीं दिखा था। मैं रात का खाना कहाँ खाऊँगा? मैंने बैठक में देखा। मेज पर रात के खाने का इंतजाम था, एक पाव रोटी और उसके बगल में एक चाकू रखा था। स्कॉच की एक बोतल भी थी। मैंने फ्रिज खोला। वह अंडों, दूध, शराब, सोडा की बोतलों, शहद, जैम और चॉकलेट से भरा हुआ था। रैक पर सूप और सब्जियों के डिब्बे रखे थे। मैं सीढ़ियों से ऊपर शयनकक्ष में गया। बिस्तर मेरे लिए तैयार था। बाथरूम में टॉयलेट पेपर के रोल, साबुन की टिकिया और इत्र की एक बोतल थी। आज तक मुझे नहीं पता कि ये सब मेरे लिए किसने किया था, और न ही मैं इन सब चीजों का भुगतान कर पाया।

मैं दर्शन और धर्म विभाग से जुड़ा हुआ था। अतीत में इस विभाग में प्रोफ़ेसर हिट्टी जैसे प्रख्यात विद्वान इस्लाम पढ़ाते थे। उस समय, वाल्टर कॉफ़मैन, जिन्होंने अपनी पुस्तकों के अलावा कई जर्मन क्लासिक्स का अनुवाद किया था, दर्शन विभाग के प्रमुख थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'फेथ ऑफ़ अ नॉन-बिलीविंग ज्यू', जर्मन कविता के अनुवाद और दर्शन पर पुस्तकों से काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। डॉ. फिलिप एशबी धर्म विभाग के प्रमुख थे। उनके सहयोगियों में यहूदी धर्म के एक प्रतिष्ठित विद्वान, प्रोफ़ेसर डायमंड्स भी थे। वे अवकाश पर थे। प्रिंसटन में अपने तीन महीने के प्रवास के लिए मुझे उनका कमरा दिया गया था। दोनों विभाग एक ही इमारत में थे, लेकिन लाउंज के अलावा उनके बीच कोई और संबंध नहीं था, जहाँ वे गरमागरम कॉफ़ी और बिस्कुट का आनंद लेते थे। दार्शनिक धर्म के शिक्षकों को पुजारी समझकर नीचा देखते थे; धर्म के शिक्षक दार्शनिकों को घमंडी समझते थे, जिनके पास घमंड करने का कोई कारण नहीं था। अन्य संकायों के सदस्यों, विशेषकर अर्थशास्त्रियों द्वारा, दार्शनिकों और धर्म के शिक्षकों को नीची दृष्टि से देखा जाता था। अर्थशास्त्रियों के पास सड़क के उस पार एक जापानी वास्तुकार द्वारा डिज़ाइन की गई एक बिल्कुल नई, सफेद बहुमंजिला इमारत थी। प्रिंसटन के छात्रों के मन में आज भी ताजा सबसे प्रसिद्ध नाम अल्बर्ट आइंस्टीन का था, जिनका उन्नत अध्ययन संस्थान में स्थित घर एक पूजा स्थल बन गया था। उस समय संकाय में केवल दो अन्य भारतीय थे, दोनों गणितज्ञ, डॉ. हरीश चंद्र और डॉ. भानु मूर्ति। कोई भारतीय छात्र नहीं था। प्रिंसटन पूरी तरह से पुरुषों का संस्थान था। हालांकि, मेरी सोलह छात्रों की कक्षा में दो महिलाओं को बैठने की अनुमति दी गई थी।

प्रिंसटन विश्वविद्यालय की मर्दाना छवि को बढ़ावा देने के प्रयास में कुछ हल्के-फुल्के पल भी थे। छात्रों को सप्ताहांत में अपने छात्रावासों में महिलाओं के साथ समय बिताने की अनुमति थी। संपन्न परिवारों से आने वाले अधिकांश छात्रों के पास अपनी कारें भी थीं, जिससे परिसर में भीड़भाड़ रहती थी। पुलिस चाहती थी कि विश्वविद्यालय छात्रों द्वारा कार लाने पर प्रतिबंध लगाए। राष्ट्रपति गोहीन (जो बाद में भारत में राजदूत बने) ने छात्रों को दो विकल्प दिए: या तो वे अपनी कारें अपने पास रखें या सप्ताहांत में अपनी महिला मित्रों के साथ समय बिताएं। स्वस्थ और सभ्य होने के कारण छात्रों ने लड़कियों को

चुना। नियमों के अनुसार महिलाओं को आधी रात से पहले पुरुषों के छात्रावास छोड़ देने होते थे। हालांकि, एक सर्दी की रात को सुबह 3 बजे एक छात्रावास में आग लग गई। अग्निशमन दल को ऊपरी मंजिलों में रहने वाले छात्रों को बचाने के लिए अपनी लंबी सीढ़ियों का इस्तेमाल करना पड़ा। जिन लोगों की जान बचाई गई उनमें कई महिलाएं भी थीं जो अलग-अलग अवस्थाओं में थीं।

यह सोचना गलत होगा कि अमेरिकी विश्वविद्यालय परिसर में जीवन केवल मौज-मस्ती और खेल-कूद से भरा होता है। कई बार जब मैं न्यूयॉर्क से बस से लौटता था, तो देखता था कि पूरा परिसर, पुस्तकालयों सहित, आधी रात के बाद तक जगमगा रहा होता था। छात्र काम में लगे रहते थे। मेरे शिक्षण के अनुभव ने मुझे सिखाया कि अपने व्याख्यानों को गंभीरता से लेना चाहिए। मैं पढ़ने के लिए जिस भी पुस्तक की अनुशंसा करता था, अगली व्याख्यान देने से पहले ही छात्र उसे पढ़ चुके होते थे। मुझे छात्रों के साथ तालमेल बिठाना मुश्किल लगता था और अक्सर मैं उनके गहन प्रश्नों का उत्तर देने में असफल रहता था। सत्र के अंत में उन्होंने मुझे तालियाँ बजाकर सम्मानित किया, लेकिन मन ही मन मैं जानता था कि मैं उनकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाया।

मुझे दोस्त बनाने में ज़्यादा समय नहीं लगा। हेफ़लफ़िंगर परिवार ने अपने रिश्तेदार लूसिया बैलांटाइन को चिट्ठी लिखी थी, जिनकी शादी ट्रेंटन में पढ़ाने वाले एक आकर्षक प्रोफ़ेसर से हुई थी। उन्हें हेफ़लफ़िंगर परिवार की कुछ संपत्ति विरासत में मिली थी और वे एक बड़े तीन मंज़िला घर में रसोइया और नौकरानी के साथ बड़े ठाठ-बाठ से रहती थीं - जो अमेरिका में दुर्लभ चीज़ें थीं। वे परोपकारी भी थीं और जेल से छूटने पर युवा कैदियों - ज़्यादातर अश्वेतों - को सप्ताहांत के लिए अपने घर बुलाती थीं। जैसे ही उन्हें पता चला कि मैं कहाँ ठहरी हूँ, उन्होंने मुझे भी अपने घर बुला लिया। उन्होंने एक बेहद आकर्षक गोरी महिला, जॉर्जीन हॉल को भी आमंत्रित किया, जो तलाकशुदा थीं और उनके दो प्यारे बच्चे थे - एक पंद्रह साल की लड़की और एक बारह साल का लड़का। जॉर्जीन अक्सर टीवी पर आती थीं और जहाँ भी जाती थीं, लोग उन्हें पहचान लेते थे। हमारी तुरंत दोस्ती हो गई। उन्होंने मुझे लूसिया से अपने घर बुला लिया और अक्सर मुझे और मेरे बच्चों को अपने साथ खाने पर बुलाती थीं। वे मुझे ग्रामीण इलाकों में लंबी ड्राइव पर भी ले जाती थीं। लोग हमें इतनी बार साथ देखकर हैरान रह जाते थे। तब तक मैं भी काफ़ी मशहूर हो चुकी थी, क्योंकि मेरे कई लेख द न्यूयॉर्क टाइम्स में छप चुके थे। यहां तक कि संकाय सदस्य भी मुझे मेरी योग्यता से अधिक गंभीरता से लेने लगे। जॉर्जीन की नजरों में मैं एक सेलिब्रिटी की तरह हो गया। मुझे उसका ध्यान आकर्षित करना बहुत अच्छा लगता था। एक शाम उसने मुझे फोन किया और तुरंत प्रिंसटन अस्पताल आने को कहा, जहां उसकी बेटी को कार दुर्घटना में लगी चोटों और खरोंचों के साथ भर्ती कराया गया था। लड़की को बहुत खून बह रहा था और वह दर्द से चीख रही थी; जॉर्जीन लड़की के पिता को सूचित करने के लिए उनसे संपर्क करने की पूरी कोशिश कर रही थी। लड़की उनसे मिलना नहीं चाहती थी: उसने डॉक्टर से विनती की कि जब उसकी सफाई और

टांके लगाए जा रहे हों, तब मुझे ऑपरेशन थिएटर में उसके साथ रहने दें। डॉक्टर को समझ नहीं आ रहा था कि पगड़ी और दाढ़ी वाला एक सांवला आदमी वहां कहां फिट बैठता है। फिर भी उन्होंने मुझे उसके पास रहने दिया। जैसे ही नर्स ने उसके कपड़े उतारे और उसे टेबल पर लिटाया गया, लड़की ने मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया। वह एक सुंदर लड़की थी जिसकी त्वचा चिकनी थी। मैं खुद को बार-बार याद दिला रहा था कि मैं उसकी मां का दोस्त हूं और इसलिए मुझे उसे एक पिता की तरह देखना चाहिए। लड़की को बेहोशी की दवा दी गई और वह जल्द ही गहरी नींद में सो गई। थिएटर से बाहर निकलते ही मेरी लड़की के पिता से थोड़ी देर के लिए मुलाकात हुई। मैंने उन्हें और जॉर्जीन को आश्वस्त किया कि सब ठीक है और वे अपने-अपने घर जाकर सो सकते हैं।

जिन लोगों ने मुझसे दोस्ती का हाथ बढ़ाया, उनमें दार्शनिक वाल्टर कॉफ़मैन भी थे। वे अक्सर मुझे अपने घर बुलाते थे, जहाँ वे मशहूर हस्तियों, खासकर यहूदी हस्तियों का स्वागत करते थे। मेरी पत्नी के आने के बाद, हमारे दोस्तों का दायरा और भी बढ़ गया। सर्दी का मौसम खत्म होकर बसंत का मौसम आ गया, बर्फ हटकर हरे-भरे मैदान और मैग्नोलिया के फूल खिलने लगे। जिसने भी संयुक्त राज्य अमेरिका में मैग्नोलिया के फूल खिलते नहीं देखे, उसने दुनिया के सबसे खूबसूरत नज़ारों में से एक को देखने से चूक गया है। जब मैं दूसरे विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए बाहर नहीं होता था (इससे मुझे मेरी तनख्वाह से ज़्यादा पैसे मिलते थे), तो हम किसी न किसी परिवार के साथ बाहर घूमने जाते थे। हमारे पड़ोस में रहने वाली मशहूर हस्तियों में लुई फिशर भी थे, जिन्होंने महात्मा गांधी की जीवनी लिखी थी। विश्वविद्यालय में उनका कोई अध्यापन कार्य नहीं था, लेकिन वे हमेशा विश्वविद्यालय की कैंटीन में ही दोपहर का भोजन करते थे। हम अक्सर साथ-साथ वापस आते थे। एक बार मैंने एक दवा की दुकान से आइसक्रीम का एक डिब्बा खरीदा; हम दोनों को आइसक्रीम बहुत पसंद थी, लेकिन हम सबसे सस्ती वाली ही खरीदते थे। लुई फिशर सबसे महंगी वाली आइसक्रीम खरीदते थे और मेरी पत्नी के लिए मुझे दे देते थे। वह बहाना बनाते हुए मुझसे कहता, 'उसका चेहरा बहुत दिलचस्प है। मुझे आइसक्रीम बहुत पसंद है, लेकिन मधुमेह होने के कारण मुझे इसे खाने की मनाही है। मुझे अपने प्रिय लोगों को आइसक्रीम देना अच्छा लगता है।'

प्रिंसटन में एक घटना का नतीजा बड़ा ही मजेदार रहा। एक गर्मी के दिन मैं अपने पिछवाड़े के बगीचे में लकड़ी की बेंच पर धूप सेंक रहा था। तभी लकड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा मेरे अंगूठे में घुस गया। मैंने इस पर तब तक ध्यान नहीं दिया जब तक कि उसमें संक्रमण नहीं हो गया। फिल एशबी ने मेरे हाथ में सूजन देखी और मुझे सोचने का समय दिए बिना ही मुझे विश्वविद्यालय के क्लिनिक ले गए। डॉक्टर ने मुझे सर्जरी के लिए अस्पताल भेजने का फैसला किया। मुझे दो अश्वेत विश्वविद्यालय पुलिसकर्मियों के हवाले कर सर्जरी के लिए ले जाया गया।

अपनी बारी का इंतज़ार करते हुए मैंने सर्जन को पुलिसकर्मियों से बात करते सुना: 'आपके साथ कौन है? क्या यह अपराधी है या इस पर किसी अपराध का आरोप है?' पुलिसकर्मियों ने अपनी आवाज़ धीमी कर ली और मैं उनकी प्रतिक्रिया नहीं

सुन पाया। मुझे सर्जरी कक्ष में ले जाया गया। डॉक्टर ने मुझसे पूछा कि मैंने क्या किया और क्या हुआ था। उनका लहजा बदल गया। उन्होंने मुझे डॉक्टर या प्रोफेसर कहकर संबोधित करना शुरू कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा, 'यह एक मामूली अपराधी है। मैं इसे निकाल दूंगा, लेकिन आपको कुछ दिन विश्वविद्यालय अस्पताल में बिताने होंगे।' अपराधी को काटकर निकाल दिया गया, मेरे हाथ पर पट्टी बांधी गई और मुझे वापस उन काले पुलिसकर्मियों को सौंप दिया गया। डॉक्टर ने कहा, 'डॉक्टर सिंह, मैं आपसे और मिलना चाहूंगा। मेरी पत्नी आपसे मिलकर बहुत खुश होंगी।'

मुझे दो दिन और दो रात अस्पताल में बितानी पड़ी। मुझे बेहोशी की दवा दी गई, जिसकी कोई ज़रूरत नहीं थी क्योंकि मुझे कोई दर्द नहीं हो रहा था। राष्ट्रपति की पत्नी श्रीमती गोहीन समेत कई लोग मेरे लिए चॉकलेट और फूल लाए - जिनका मैंने स्वागत किया। अमेरिका में लोग छोटी-छोटी बातों पर बहुत ध्यान देते हैं।

हर साल अप्रैल के महीने में न्यूयॉर्क के एक होटल में व्याख्याताओं और प्रोफेसरों की एक भव्य नीलामी होती है। बड़ी संख्या में ऐसे शिक्षाविद वहां पहुंचते हैं जो अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं या बेहतर पद के हकदार समझते हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों के अध्ययन विभाग के डीन भी वहां आते हैं। वे पेय पदार्थों, दोपहर के भोजन और रात के खाने पर मिलते हैं। नए विभागों की स्थापना में लगे या नए पद तलाश रहे डीन उपलब्ध उम्मीदवारों के बायोडाटा की जांच करते हैं और उन्हें प्रस्ताव देते हैं। रोजगार की शर्तों पर खूब मोलभाव होता है। यह सचमुच एक दास बाजार जैसा होता है, जहां दिखावट से ज्यादा आवेदकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों या शोध पत्रों की संख्या को महत्व दिया जाता है। रॉबर्ट क्रेन ने मुझे वहां आने का सुझाव दिया, यदि नौकरी के लिए नहीं तो कम से कम अन्य भारतविदों, प्राच्यविदों और अन्य विषयों के विशेषज्ञों से मिलने के लिए।

मुझे संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्वविद्यालय की नौकरी में कोई दिलचस्पी नहीं थी: हालाँकि वेतन अच्छा था, लेकिन उससे मुझे संतुष्टि नहीं मिलती थी। जब मैं इस सभा में था, हवाई विश्वविद्यालय के अध्ययन विभाग के डीन, जो एक जापानी निसेई थे, ने मुझे भारतीय धर्मों और समकालीन भारतीय इतिहास पर छह सप्ताह के ग्रीष्मकालीन शिक्षण पाठ्यक्रम का प्रस्ताव दिया। इसका मतलब था कि हवाई जाने से पहले एक महीने के लिए प्रिंसटन या किसी अन्य स्थान पर रुकना। डीन ने इसके लिए मुआवज़ा, मेरी पत्नी और मेरे लिए हवाई और फिर आगे भारत जाने का हवाई किराया देने का वादा किया। अपनी पत्नी से सलाह लेने के बाद, मैंने प्रस्ताव स्वीकार करने का फैसला किया। इससे मुझे अपनी बेटी माला के हवाई यात्रा के लिए पर्याप्त धन मिल जाएगा, जो उस समय न्यू हॉल, कैम्ब्रिज (इंग्लैंड) में पढ़ रही थी; वह फिर हमारे साथ हवाई में अपनी ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ बिता सकती थी। मुझे एक धनी सिंधी व्यापारी की अमेरिकी पत्नी, श्रीमती एलेन वाटुमुल का एक पत्र भी मिला, जिसमें उन्होंने मुझे समुद्र तट पर स्थित अपने सुसज्जित अपार्टमेंट में से एक बहुत कम किराए पर देने की बात कही थी। न्यूयॉर्क, फिलाडेल्फिया, शिकागो, वाशिंगटन में अमेरिकी दोस्तों के साथ रहने और मैरी स्टोक्स और

उनकी माँ के साथ कुछ दिन बिताने के बाद, साथ ही विस्कॉन्सिन, ड्यूक और रोचेस्टर में व्याख्यान देकर कुछ और पैसे कमाने के बाद, हम हवाई के लिए रवाना हो गए। कुछ दिनों बाद माला हमसे आकर मिली। वह बहुत उदास थी। उसकी पढ़ाई में प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा था और उसे कैम्ब्रिज से नफरत थी। उसने अपने खराब प्रदर्शन के लिए मुझे जिम्मेदार ठहराया क्योंकि मैंने उसे दिल्ली से लंदन, ओटावा, पेरिस और वापस दिल्ली तक अपने साथ घसीटा था और उसे कहीं भी बसने नहीं दिया था। उसने कहा कि मैंने उसे कैम्ब्रिज सिर्फ इसलिए भेजा था ताकि मैं अपने दोस्तों को दिखा सकूँ कि मेरी बेटी वहाँ पढ़ रही है। उसकी उदासी ने मुझे भी दुखी कर दिया। मुझे खुशी थी कि मैं दिन का अधिकांश समय विश्वविद्यालय में बिताता था और केवल शाम को ही परिवार के साथ समय बिताता था।

हवाई में मुझे काफी बड़ी कक्षाओं को पढ़ाना पड़ता था। उनमें से अधिकतर गंभीर छात्र नहीं थे, बल्कि सर्फिंग, समुद्र और धूप सेंकने के साथ-साथ कुछ अकादमिक ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक थे। उनमें से काफी युवा महिलाएं थीं जो डिपार्टमेंट स्टोर, कैफे और रेस्तरां में काम करती थीं। मेरी भारतीय धर्मों की कक्षा में, जिसमें माला नि:शुल्क शामिल होती थी, दो नन भी थीं।

विश्वविद्यालय में मेरा एक छोटा सा प्यारा कमरा था। यह एक भारतीय विद्वान शर्मा का था, जिनकी पत्नी की तस्वीर मेरी वर्किंग टेबल पर रखी रहती थी। वह बहुत ही खूबसूरत रही होंगी। शर्मा की किताबें तो मैंने एक शेल्फ में रख दीं, लेकिन उनकी पत्नी की तस्वीर वहीं रहने दी। हवाई में मुझे प्रिंसटन में दिए गए धर्म संबंधी व्याख्यानों को और बेहतर बनाने का समय मिल गया। मैंने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता के बाद भारत के प्रदर्शन का इतिहास भी पढ़ा। स्वादिष्ट भोजन का आनंद लेने के लिए भी खूब समय था। सप्ताह में एक बार, रॉबर्ट क्रेन सहित संकाय के सदस्य चीनी रेस्तरां में जाते थे। जब हमारे चीनी विशेषज्ञ भोजन का ऑर्डर देते थे, तो हमारी मेज पर बर्फ के टुकड़ों से भरी बाल्टी और राई व्हिस्की की बोतल रख दी जाती थी। भोजन समाप्त होने तक हम चॉप सुए और अमेरिकी व्हिस्की से तृप्त हो चुके होते थे। दोपहर में मेरे साथी प्रोफेसर किस तरह की पढ़ाई करते थे, इसका अंदाजा कोई भी लगा सकता है। ऐसे दो-तीन लंच के बाद, मैं खाना खाने से कतराता और ईस्ट-वेस्ट सेंटर जाकर कैंटीन में खाना खाना पसंद करता था। केंद्र का माहौल बेहद उदासीन था। वहां के अधिकांश फेलो प्रतिष्ठित विद्वान नहीं थे और असुरक्षित होने के कारण अतिथि व्याख्याताओं को संदेह और शत्रुता की दृष्टि से देखते थे। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मुझे केंद्र में नौकरी करने में कोई दिलचस्पी नहीं है।

मुझे अपने छात्रों से खुद ही परेशानी थी। उनमें से किसी को भी भारत, उसके इतिहास या धर्म का ज़रा सा भी ज्ञान नहीं था। मुझे अपने व्याख्यान बहुत सरल रखने पड़ते थे और उनमें जितना हो सके उतने किस्से-कहानियाँ शामिल करनी पड़ती थीं। खासकर दो निसेई जापानी लड़कियाँ बहुत परेशान करती थीं, जो मेरे बोलना शुरू करते ही नींद से ऊंघने लगती थीं। उन्हें

जगाए रखना एक चुनौती बन गया था। मैं इसमें नाकाम रहा। मैंने उन लड़कियों से बदला लेने के लिए उन्हें मिड-टर्म परीक्षा में फेल कर दिया। जब वे मेरे दफ्तर में मुझसे मिलने आईं, तो मैंने उन्हें जमकर डांटा। 'अगर कोई आपसे बात करते-करते सो जाए, तो आपको कैसा लगेगा? यह बहुत बुरा लगता है।' उन्होंने माफी मांगी और बताया कि वे एक नाइट क्लब में सुबह 3 बजे तक काम करती थीं। मेरे व्याख्यान में आने से पहले उन्हें मुश्किल से तीन घंटे की नींद मिली थी। उन्होंने कोर्स छोड़ दिया।

मैं अपनी सुबह कैंपस में बिताता था, जबकि मेरी पत्नी और बेटी खरीदारी के लिए दुकानों में जाती थीं। घर लौटने पर मैं एक घंटे समुद्र में नहाता था। होनोलूलू अपने खूबसूरत समुद्र तटों के अलावा, छुपकर देखने वालों के लिए भी एक बेहतरीन जगह है। वहाँ हर कोई कम कपड़े पहने होता है, और समुद्र की ठंडी हवा अंदर आने देने के लिए सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खुली रहती हैं। आप जिस भी ऊँची इमारत पर नज़र डालें, आपको नग्न अवस्था में पुरुष और महिलाएं दिखाई देंगी। जब मेरी पत्नी और बेटी वहाँ नहीं होती थीं, तो मैं कई सुखद घंटे ईश्वर का शुक्रिया अदा करते हुए बिताता था कि उन्होंने इतने सुंदर लोगों को बनाया है।

हवाई में और भी बहुत कुछ देखने लायक है। यहाँ सबसे मीठे और रसीले खरबूजे, अनानास, एवोकाडो नाशपाती और सबसे बढ़कर मैकाडेमिया नट्स उगाए जाते हैं। इनके अलावा, हमें दलदलों में उगने वाले और रेड इंडियंस द्वारा इकट्ठा किए गए जंगली चावल से भी परिचित कराया गया। यह बेहतरीन बासमती चावल से भी कहीं अधिक रसीला होता है और इसे बिना कुछ मिलाए खाना सबसे अच्छा होता है। यह काफी महंगा भी होता है।

हवाई का मुख्य द्वीप हिलो, होनोलूलू से थोड़ी ही दूरी पर हवाई जहाज़ से पहुँचा जा सकता है। यहाँ एक सक्रिय ज्वालामुखी है जिसके आसपास की वनस्पति और जीव-जंतु अन्य जगहों से काफ़ी अलग हैं। भारत जाने वाले पीस कोर के छात्रों को प्रशिक्षण दे रही दो भारतीय महिला शिक्षकों ने हमें भारतीय भोजन परोसा। भोजन के अंत में एक आश्चर्यजनक चीज़ मिली: उन्होंने अपने बगीचे में पान की लताएँ उगाई थीं और हिलो के सुनसान इलाके में हमें मगही पान बनाकर खिलाए। अपने अध्यापन कार्यकाल के अंत में, मैंने खुद को एक तोहफ़ा देने का फैसला किया: मैं एक ऐसे नाइट क्लब में खाना खाने गया जहाँ नग्न वक्षस्थल वाली वेट्रेस खाना परोसती थीं। मेरी बेटी ने मुझसे कहा, 'पापा, अपनी उम्र के हिसाब से ही काम करें।' मेरी पत्नी ने कहा, 'आप बूढ़े हो रहे हैं, लगता है मेरी याददाश्त कमजोर हो रही है।' मैं अपने इरादे पर अडिग रहा। आखिरकार वे दोनों मेरे साथ चलने को तैयार हो गईं। नाइट क्लब का यह दौरा बिल्कुल भी सार्थक नहीं रहा। जैसे ही हम अंदर गए, एक नग्न वक्षस्थल वाली वेट्रेस मेरा रेनकोट उतारने में मेरी मदद करने आई। उसने एक अर्थपूर्ण मुस्कान के साथ मुझसे कहा, 'आपको यहाँ देखकर बहुत अच्छा लगा प्रोफेसर।' वह मेरी ही एक छात्रा थी।

एक जगह जहाँ मेरी पत्नी और बेटी ने मेरा पीछा नहीं किया, वह था हेल्थ क्लब जहाँ मैं नियमित रूप से सौना बाथ के लिए जाता था। वहाँ मालिश करने वाली महिलाओं में एक युवा, आकर्षक, एथलेटिक अश्वेत लड़की थी। हर बार जब मैं वहाँ जाता, वह आँखों में शरारत लिए कहती, 'डार्लिंग, क्या तुम नहीं चाहोगे कि मैं तुम्हें अच्छी मालिश दूँ?' 'नहीं, मैं नहीं चाहूँगा,' मैं जवाब देता। 'क्यों? क्या मुझमें कुछ गड़बड़ है?' वह बड़े ही नखरे से पूछती। 'इसके विपरीत, तुममें सब कुछ बहुत अच्छा है। इसीलिए मुझे तुम पर भरोसा नहीं होता कि तुम मेरे शरीर को छूओगी।' वह खिलखिलाकर हंस पड़ती। मूल हवाईयन लोग ज़्यादा काम करने में विश्वास नहीं रखते। मैंने उन्हें दिन भर अपने बरामदे की लकड़ी की सीढ़ियों पर बैठकर बीयर पीते और बैंजो बजाते हुए देखा। ऐसा लगता था कि उन्हें सेक्स को लेकर भी कोई झिझक नहीं थी। एक शाम जब मैं हेल्थ क्लब से निकला, तो मेरी पत्नी और बेटी मेरे साथ बीच पर टहलने आईं। वे आगे चल रही थीं। मेरा ध्यान एक अमेरिकी महिला पर गया जो अपने पूडल कुत्ते को बाहर ले जा रही थी। जैसे ही छोटे कुत्ते ने शौच किया, महिला ने अपने पर्स से टॉयलेट पेपर निकाला और उसके पिछले हिस्से को साफ किया। जब मैं यह नज़ारा देख रहा था, तभी एक हवाईयन लड़की, जो साफ़ तौर पर बीयर से लथपथ थी, आई और बोली, 'हैलो।' वह मेरे साथ चलने लगी और मुझसे पूछा कि मैं हवाई में क्या कर रहा हूँ। मैंने जवाब दिया, 'मज़े कर रहा हूँ।' उसने पूछा, 'आप यहीं क्यों नहीं बस जाते? आप मुझसे शादी कर सकते हैं और हम एक अच्छा घर बसा लेंगे।' उसके इस खुलेआम प्रस्ताव से मैं चौंक गया; वह वेश्या जैसी नहीं लग रही थी। 'मैं आपसे शादी कैसे कर सकता हूँ? मेरे साथ मेरी पत्नी और बेटी हैं।' और घर पर एक बेटा है। क्या आपने उन्हें सड़क के अंत में आगे चलते देखा?' उसने उन दोनों की ओर देखा और जवाब दिया, 'लेकिन वे आगे निकल गए हैं; आप उन्हें छोड़कर मेरे साथ आ सकते हैं।' मैंने उसके उदार प्रस्ताव के लिए उसे धन्यवाद दिया, अपनी उम्र के लिए माफी मांगी और अपने कदम तेज़ कर दिए।

हम हांगकांग में थे जब हमें रुपये के अवमूल्यन के बारे में पता चला। डॉलर में जमा मेरी बचत रुपये में दोगुनी हो गई थी। हमने वे सभी पेन, घड़ियाँ और मोतियों के हार खरीद लिए जिन्हें भारतीय सीमा शुल्क द्वारा अंदर ले जाने की अनुमति थी। लगभग एक साल बाद मुझे फिर से प्रिंसटन जाना था, इस बार तीन प्रोफेसरों में से एक के रूप में, जो अमेरिकी छात्रों के एक समूह को विश्व भ्रमण पर ले जाने वाले थे। अन्य प्रोफेसरों में से एक समाजशास्त्री फेलिक्स मूस थे, जो नाज़ी विचारधारा से हटकर अति-देशभक्त अमेरिकी बन गए थे और सी.आई.ए. में कार्यरत थे; उनके साथ उनकी जापानी पत्नी फुसा और दस वर्षीय बेटी भी थीं। दूसरे प्रोफेसर जॉर्ज स्टोनी थे, जो न्यूयॉर्क के एक फिल्म निर्माता थे, जिनका दो बार तलाक हो चुका था और एक प्रेमिका भी थी; मैं तीसरा प्रोफेसर था। हमें जर्मनी, भारत और जापान में दो-दो महीने बिताने थे। मुझे इन युवाओं को जर्मन, भारतीय और जापानी साहित्य से परिचित कराना था और उन्हें रचनात्मक लेखन के लिए प्रेरित करना था। स्टोनी को उन्हें फिल्म निर्माण से परिचित कराना था; मूस को समग्र प्रभारी बनाया गया था और जापान में

हमारे रहने की व्यवस्था करनी थी। उन्होंने अपने काम में बहुत कम रुचि दिखाई और जर्मनी में हमारे अधिकांश प्रवास के दौरान अपने छात्रों के समूह को अकेला छोड़ दिया। मुझे याद नहीं कि स्टोनी ने क्या किया। लेकिन इससे मुझे ब्रॉक्टी, मनु, इटेसगे से लेकर ब्रेख्त और गुंटर ग्रास तक, अंग्रेजी में अनुवादित आधुनिक जर्मन क्लासिक्स को पढ़ने का दुर्लभ अवसर मिला। हमारा भारतीय प्रवास दिल्ली और हैदराबाद में बराबर-बराबर बंटा हुआ था। छात्र नई दिल्ली में परिवारों के साथ रुके। मूस, जिसे जापान में हमारे रहने-खाने का इंतजाम करना था, उसने हमें अपने हाल पर छोड़ दिया। स्टोनी और मैं मूस से बहुत तंग आ चुके थे और जब तक हमारा असाइनमेंट खत्म हुआ, तब तक हमारा उससे कोई वास्ता नहीं रह गया था।
अमेरिका में मुझे एक और शिक्षण कार्य मिला। यह फिलाडेल्फिया से लगभग चालीस मील पश्चिम में स्थित एक क्वेकर संस्थान, स्वार्थमोर कॉलेज में था। यह एक छोटा कॉलेज था, लेकिन प्रतिष्ठित आइवी लीग के सदस्य के रूप में मान्यता प्राप्त था। यहाँ के छात्रों का स्तर उतना ही उच्च था जितना मैंने प्रिंसटन में देखा था। मुझे दो कक्षाएं पढ़ानी थीं - भारतीय धर्म और समकालीन राजनीति। व्याख्यान देना मेरे काम का एक छोटा सा हिस्सा था, अधिकांश समय सेमिनारों, छात्रों द्वारा चुने गए विषयों पर लेखन करवाने और मेरे घर पर होने वाली चर्चाओं में व्यतीत होता था। यह बहुत ही फलदायी साबित हुआ। मेरी एक छात्रा ने चितपावन ब्राह्मणों का अध्ययन करने का विकल्प चुना। उसके निबंध ने उसे पुणे में छात्रवृत्ति दिलाई। मैंने उसे इस समुदाय पर एक लेख लिखने के लिए प्रेरित किया, जो 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' में प्रकाशित होने वाली श्रृंखला का पहला लेख था और जिसने पत्रिका के प्रसार में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। व्याख्यानों और चर्चाओं के बाद, मैंने जो कुछ कहा और सुना, उसे लिख लिया। इससे मुझे 'इंट्रोडक्शन टू इंडिया' (विजन बुक्स) नामक एक छोटी पुस्तिका के लिए आवश्यक सामग्री मिल गई, जिसके कई संस्करण प्रकाशित हुए।
स्वार्थमोर में अपने तीन महीनों के प्रवास के दौरान, हमारी दोस्ती केवल एक डच-ऑस्ट्रियाई दंपति, वैन ओम्स से हुई। उनके दो छोटे बच्चे थे। हमने आपसी सहमति से एक समझौता किया। सप्ताह में एक या दो बार हम उनके साथ भोजन करते और वे मेरी पत्नी को फिल्म दिखाने ले जाते। मैं बच्चों की देखभाल करता, उन्हें सुलाता, उन्हें कहानियां सुनाता और यहाँ तक कि जब तक वे यह मानने को तैयार नहीं हो गए कि सोना मेरे गाने सुनने से बेहतर है, तब तक लोरी गाने के लिए मजबूर होता रहा। फिर मैं अपने व्याख्यान के नोट्स पर काम कर पाता था।

11 बॉम्बे, द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया (1969-79) और उसके बाद के घटनाक्रम

आपको बताया जाएगा कि बॉम्बे भारत का एकमात्र ऐसा शहर है, जिसे पश्चिमी देशों में शहर की परिभाषा के अनुसार शहर कहा जा सकता है। कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली जैसे अन्य भारतीय महानगर तो बड़े-बड़े गाँवों जैसे लगते हैं। यह सच है कि बॉम्बे में अन्य किसी भी भारतीय शहर की तुलना में कहीं अधिक ऊँची इमारतें हैं: जब आप समुद्र के रास्ते इसके पास पहुँचते हैं तो यह एक छोटे न्यूयॉर्क जैसा दिखता है। इसके शहर होने के कई और कारण भी हैं: यह भीड़भाड़ वाला शहर है, यहाँ दिन भर ट्रैफिक जाम रहता है, यह अत्यधिक प्रदूषित है और इसके कई हिस्सों में दुर्गंध आती है। आर्थर कोस्टलर ने सांता क्रूज़ हवाई अड्डे पर अपने आगमन की तुलना किसी बच्चे के गंदे डायपर के उनके चेहरे पर फेंके जाने से की थी। बॉम्बे अपने दस मिलियन से अधिक निवासियों का मल-मूत्र समुद्र में इतनी करीब बहाता है कि ज्वार के साथ इसका एक बड़ा हिस्सा वापस ज़मीन पर आ जाता है: उथले पानी में इस्तेमाल किए गए कंडोम भी मिल सकते हैं। समुद्र तट के कुछ हिस्सों में मानव मल की दुर्गंध फैली रहती है। सार्वजनिक शौचालयों की कमी के कारण इसके बाज़ारों में बासी पेशाब की बदबू आती है। साल में दो बार, बसंत और पतझड़ की शुरुआत में, तट के किनारे लाखों मछलियाँ मर जाती हैं और सड़ती मछलियों की तीखी गंध असहनीय हो जाती है। मुंबई में कहने लायक कोई पार्क या बगीचा नहीं है: बस कुछ छोटे-छोटे पार्क हैं जहाँ लोग पिंजरे में बंद जानवरों की तरह संकरे रास्तों पर चक्कर लगाते रहते हैं। आमतौर पर टहलने के लिए एकमात्र जगह मरीन ड्राइव है, जो चौपाटी के रेतीले इलाके से नरीमन पॉइंट तक जाती है। इसके एक तरफ तेज़ रफ़्तार कारों और बसों से भरा एक डबल लेन राजमार्ग है, और दूसरी तरफ समुद्र के किनारे बने पैदल मार्ग को आगे बढ़ने से रोकने के लिए सीमेंट-कंक्रीट के बड़े-बड़े खंभे लगे हैं। ये खंभे सुविधाजनक कोणों पर लगाए गए हैं ताकि नागरिकों को पैर रखने, पैंट उतारने या शौच करने के लिए धोती ऊपर खींचने में आसानी हो। फिर भी, मुंबईवासी सुबह-शाम हजारों की संख्या में मरीन ड्राइव पर उमड़ पड़ते हैं और भीड़ में से रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ते हैं। बुजुर्ग लोग रास्ते में लगी बेंचों पर बैठकर समुद्री हवा का आनंद लेते हैं और गपशप करते हैं। मरीन ड्राइव मुंबई का गौरव और आनंद है। सूर्यास्त के बाद, जैसे ही स्ट्रीट लाइटें चालू होती हैं, लोग इसे आश्चर्य से देखते हैं और इसे रानी का हीरे का हार कहते हैं।

हालांकि, बंबई के पक्ष में कुछ बातें भी हैं। यहाँ विभिन्न नस्लों, धर्मों और भाषाई समूहों के लोग रहते हैं। वे अपने काम से काम रखते हैं और पड़ोसियों के मामलों में दखल नहीं देते, न ही उन्हें इस बात की कोई खास चिंता होती है कि वे सुखी वैवाहिक जीवन जी रहे हैं, तलाकशुदा हैं, प्रेम संबंध में हैं या लिव-इन रिलेशनशिप में हैं। विभिन्न जातीय और धार्मिक पृष्ठभूमि के लोग आपस में काफी अच्छे से घुलमिल जाते हैं। 1982 तक बंबई में सांप्रदायिक दंगे ज्यादा नहीं हुए थे, लेकिन यह कहना गलत होगा कि विभिन्न समुदायों के बीच आपसी स्नेह है। हर समुदाय खुद को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है

और पीठ पीछे उनकी बुराई करता है। पारसी खुद को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं। वे वास्तव में सबसे समृद्ध हैं और उन्होंने बंबई को अन्य समुदायों से कहीं अधिक योगदान दिया है। वे अपनी श्रेष्ठता के प्रति सचेत हैं और बाकियों को नीचा समझते हैं। कुछ लोग पारसियों को नपुंसक, बूढ़े बावजी मानते हैं, जिनमें से अधिकतर बेहद सनकी और पागलपन की कगार पर हैं। अपनी वाचालता के कारण इन्हें 'कौआ खाने वाले' भी कहा जाता है। फिर आते हैं गुजराती, जो मुख्य रूप से व्यापार, वाणिज्य और उद्योग में कार्यरत हैं। इनकी भाषा गुजराती, महाराष्ट्रियों की मातृभाषा मराठी से कहीं अधिक बोली जाती है। गुजराती आम तौर पर शांतिप्रिय, कानून का पालन करने वाले और शाकाहारी होते हैं। पीठ पीछे इन्हें 'गुज्जू' कहा जाता है। बंबई में विभिन्न प्रकार के मुसलमान रहते हैं, हालांकि उनका आपस में कोई खास संबंध नहीं है, लेकिन मुस्लिम विरोधी हिंसा होने पर वे एकजुट हो जाते हैं। सुन्नी और शिया के मुख्य विभाजनों के अलावा, यहाँ इस्माइली (दो प्रकार के), बोहरा (दो प्रकार के) और मेमन (कच्छी और हलाई) भी हैं। इन्हें सामूहिक रूप से 'मियां भाई' कहा जाता है। यहाँ ईसाइयों का भी एक बड़ा समुदाय है, जिनमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों शामिल हैं, जिन्हें बाकी लोग 'मकापाओ' (पुर्तगाली भाषा में रोटी के लिए 'पाओ' शब्द का प्रयोग) कहते हैं। हाल ही में आए लोग सिंधी और पंजाबी हैं। धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से उन्होंने शहर के व्यापार और अचल संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा हथिया लिया है और परिणामस्वरूप उन्हें हड़पने वालों के रूप में संदेह की नजर से देखा जाता है। लेकिन बॉम्बे के बाहरी लोगों की संख्या उन स्वघोषित अंदरूनी लोगों से कहीं अधिक है जो खुद को 'भूमिपुत्र' कहते हैं और बॉम्बे को उसके मूल नाम मुंबई से पुकारने पर जोर देते हैं, जो उसकी संरक्षक देवी महा अम्बा के नाम पर रखा गया है। कोई भी शिक्षित भारतीय इसे बॉम्बे के अलावा किसी और नाम से नहीं पुकारता।

भारत का सबसे समृद्ध शहर बॉम्बे है। भारत के कुल आयकर का आधे से अधिक हिस्सा इसी शहर से आता है। बॉम्बे भारत का सबसे भ्रष्ट शहर भी है: प्रचलन में मौजूद काले धन का आधे से अधिक हिस्सा बॉम्बे में ही उत्पन्न होता है। यहाँ अन्य तीन महानगरों को मिलाकर जितने करोड़पति हैं, उससे कहीं अधिक करोड़पति हैं। यह शहर लगातार बाहर से आने वाले लोगों को आकर्षित करता है जो यहाँ अपना भाग्य आजमाने की उम्मीद रखते हैं। संभवतः यहाँ दुनिया के किसी भी शहर से अधिक वेश्याएँ और वेश्याएँ हैं। बॉम्बे के अमीर लोग बहुत ही आलीशान जीवन जीते हैं: समुद्र के सामने स्थित बड़े-बड़े वातानुकूलित अपार्टमेंटों में, जिनमें छत पर बगीचे और स्नानघर हैं। एक सिंधी करोड़पति के बार-कम-सिटिंग रूम के ऊपर कांच की तली वाला स्विमिंग पूल है। जब भी वह पार्टियाँ आयोजित करता है, वह युवा लड़कियों को नग्न स्नान करने के लिए किराए पर लेता है ताकि उसके मेहमान स्कॉच पीते हुए नीचे से उन्हें देख सकें। बॉम्बे भारत का सबसे अच्छा भोजन प्रदान करता है: मुगलई, यूरोपीय, चीनी और शाकाहारी। यहाँ किसी भी अन्य भारतीय शहर की तुलना में अधिक अच्छे और सस्ते रेस्तरां हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो, मुंबई भारत का सबसे आनंददायक शहर है - बशर्ते आपको वहां रहने के लिए जगह मिल जाए।

जब मुझे पहली बार 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के संपादक पद का कार्यभार संभालने का निमंत्रण मिला, तब मुझे बॉम्बे के बारे में ये सब जानकारी थी। उस समय मैंने सिखों के इतिहास पर एक पुस्तक लिखने के लिए रॉकफेलर अनुदान स्वीकार करने के पक्ष में इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। 1969 की वसंत ऋतु में, जब मैं स्वार्थमोर विश्वविद्यालय में था, मुझे 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रकाशक बेनेट कोलमैन एंड कंपनी के महाप्रबंधक जे.सी. जैन का एक और पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या अब मैं 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' का कार्यभार संभालने में रुचि रखता हूँ। मैंने जैन को पत्र लिखकर इस पद के लिए अपनी रुचि व्यक्त की, लेकिन यह जानना चाहता था कि वर्तमान संपादक रमन का क्या हुआ। उन्होंने जवाब में लिखा कि चाहे मैं उनका प्रस्ताव स्वीकार करूँ या न करूँ, रमन को बर्खास्त किया जा रहा है। जब तक मैं दिल्ली लौटा, जैन को स्वयं बर्खास्त कर दिया गया था, लेकिन यह प्रस्ताव मेरे लिए अभी भी खुला था।

दिल्ली में अपने माता-पिता के साथ कुछ दिन बिताने के बाद, मैं ट्रेन से मुंबई के लिए रवाना हो गया। मेरी पत्नी ने दिल्ली में ही रुकने का फैसला किया। मेरे बेटे राहुल ने मेरे लिए चीज़ें आसान कर दीं। वह टाइम्स ऑफ इंडिया में सहायक संपादक थे। उन्होंने अपने पिता के साथ एक ही संस्थान में काम न करने का फैसला किया और इसके बजाय रीडर्स डाइजेस्ट के भारतीय संस्करण के पहले संपादक बन गए। उन्होंने एक युवा पारसी दंपति, फिरदौस और एमी जहांगीर के साथ अपने रहने-खाने का इंतज़ाम भी मुझे सौंप दिया। उसी दोपहर मैं चर्चगेट स्टेशन के पास जहांगीर के तीसरी मंज़िल के अपार्टमेंट में रहने चला गया और उनके एक साल के बेटे और छह महीने के बॉक्सर पिल्ले बेला से दोस्ती कर ली।
अगली सुबह मैं टाइम्स ऑफ इंडिया के दफ्तर गया। मैंने गार्डों और लिफ्टकर्मियों से अपना परिचय दिया। मुझे तीसरी मंजिल पर मेरे कमरे तक ले जाया गया। दफ्तर के समय से आधा घंटा पहले का समय था। वहां मौजूद स्टाफ का एकमात्र सदस्य सहायक संपादक सुब्रतो बनर्जी थे, जिन्होंने रमन की बर्खास्तगी के बाद से कार्यभार संभाला हुआ था। मैंने उनसे पूछा कि रमन ने क्यों छोड़ा। उन्होंने जवाब दिया, 'अपनी मर्जी से नहीं। उन्हें निकाल दिया गया था। संपादक का पद उनके सिर पर चढ़ गया था। उनका लंच ब्रेक दोपहर बाद तक चलता था। वे अक्सर नशे में धुत होकर लौटते और उल्टी करते थे। एक बार जब वे नशा उतारने की कोशिश कर रहे थे, तभी उनका फोन बज उठा। उन्होंने फोन को फर्श पर पटक दिया और वह टूट गया। उसे अरलडाइट से जोड़ना पड़ा।' उन्होंने मुझे फोन पर पड़ी दरारें दिखाईं। 'फिर उन्होंने विदेश जाने का कोई निमंत्रण स्वीकार कर लिया और प्रबंधन की अनुमति लिए बिना ही चले गए। जब वे लौटे, तो उन्हें बर्खास्तगी का नोटिस थमा दिया गया।'
मैंने अपने भावी सहयोगियों के नाम और उनके काम के बारे में पूछा। मैंने बैनर्जी से कहा कि पत्रिका के कुछ पुराने अंक देखने के बाद मैं उन्हें बारी-बारी से बुलवा लूँगा। पिछले बारह महीनों के अंक मेरी मेज पर रख दिए गए। साप्ताहिक पत्रिका

का प्रसार लगभग 80,000 था, जिसका एकमात्र कारण यह था कि इसकी कोई प्रतिद्वंदी पत्रिका नहीं थी। चित्रकार, कवि, कथाकार और नर्तक इसके पन्नों में छपने के लिए उत्सुक रहते थे। जब मैंने इसकी पुरानी प्रतियों का बारीकी से अध्ययन किया, तो मुझे पढ़ने लायक बहुत कम सामग्री मिली और इसकी विषयवस्तु में एकरसता साफ झलकती थी। रमन से पहले बेहद सम्मानित संपादक रहे मैंडी को अपना साप्ताहिक स्तंभ 'गैलीमौफ्री' लिखना बहुत पसंद था। उनके सिवा किसी को भी इस शब्द का अर्थ नहीं पता था। इसका अर्थ है विभिन्न व्यंजनों का बेमेल मिश्रण - खिचड़ी। 'द वीकली' ठीक यही था - बिना किसी केंद्रीय विषय के लेखों का एक बेमेल संग्रह। इसमें पारसी महिलाओं द्वारा आयोजित कॉकटेल पार्टियों की गपशप होती थी, जिनके नाम अजीबोगरीब होते थे, जैसे लेडी निम्बू पावनी। इसी गपशप ने मैंडी को बॉम्बे के पारसी-बहुल सामाजिक हलकों का बादशाह बना दिया था। कुछ पृष्ठ 'उनकी शादी हो गई' शीर्षक से समर्पित थे, जिनमें भारत के विभिन्न हिस्सों से नवविवाहित जोड़ों की तस्वीरें होती थीं, जो सभी बेहद गंभीर, उदास और दुखी दिखते थे। एक 'पारिवारिक पत्रिका' होने के नाते, इसमें बच्चों के लिए भी कुछ पृष्ठ थे, जिनमें 'आंटी वेंडी का स्तंभ' भी शामिल था, जिसमें कई आंटी वेंडी अपने भतीजों और भांजियों को प्यार भरे उपदेश देती थीं। बाकी में संयुक्त राज्य अमेरिका से खरीदे गए सिंडिकेटेड फीचर और स्ट्रिप कार्टून शामिल थे ('सुपरमैन' सबसे लोकप्रिय था)। पाठकों द्वारा पलटा जाने वाला पहला और अक्सर एकमात्र पृष्ठ 'व्हाट द स्टार्स फोरटेल' था, जो भविष्य की घटनाओं का साप्ताहिक पूर्वानुमान था, जिसे एक विदेशी सिंडिकेट से खरीदा गया था।

रमन का योगदान पत्रिका को भारतीय रूप देने में था, जिसके लिए उन्होंने भारतीय कला, शास्त्रीय भारतीय संगीत की समीक्षाएँ और गायकों व नर्तकों के चित्र प्रकाशित किए। वे धर्म में भी गहरी रुचि रखते थे—और ज़्यादातर स्वयं में। सत्य साई बाबा पर एक अंक में, जिन्हें वे साक्षात भगवान मानते थे, उन्होंने स्वयं, अपनी पत्नी और पुत्र की आठ तस्वीरें प्रकाशित कीं, जिनमें वे बाबा को नमन कर रहे थे। रमन के आने से साप्ताहिक पत्रिका के प्रसार में मामूली वृद्धि हुई। लेकिन यह पहले की तरह ही नीरस बनी रही और अक्सर डॉक्टरों, हेयरड्रेसरों और दंत चिकित्सकों के प्रतीक्षा कक्षों में देखी जाती थी। अगर मैं इसे चमकीला नहीं बना सका, तो इससे ज़्यादा नीरस तो नहीं बना सकता था। मेरे मन में तीन स्पष्ट उद्देश्य थे: जानकारी देना, मनोरंजन करना और चिढ़ाना। मैं इसका उपयोग भारतीयों को उनके अपने देश के बारे में बताने के लिए करूँगा; मैं विवादास्पद लेख प्रकाशित करके उनकी मानसिक सुस्ती को दूर करने और उन्हें सोचने पर मजबूर करने का प्रयास करूँगा; और, थोड़ा मज़ाकिया होने के नाते, मैं उनका मनोरंजन करने का प्रयास करूँगा। इस तीनहरे सूत्र के साथ मुझे विश्वास था कि मैं असफल नहीं हो सकता।

मुझे सुब्रतो बनर्जी द्वारा नासा के साथ अंतरिक्ष अनुसंधान पर और एक भारतीय लेखक के साथ गांधी की स्ट्रिप-कार्टून जीवनी पर किए गए दीर्घकालिक अनुबंधों से निपटना पड़ा। प्रत्येक अनुबंध लगभग छह पृष्ठों का था और अगले छह महीनों

तक चलने वाला था। बदलाव की प्रक्रिया धीमी होनी ही थी। मैंने कवर पेज के लिए एक नया डिज़ाइन बनवाया, जो पुराने से काफी मिलता-जुलता था, लेकिन उससे बेहतर था। मैंने 'उनकी शादी हो गई थी' शीर्षक हटा दिया और आंटी वेंडी को सूचित कर दिया कि मैं बच्चों के पृष्ठ बंद करने जा रहा हूँ। मैंने स्टाफ के फोटोग्राफरों से मुलाकात की और मुंबई के बाहर के अन्य फोटोग्राफरों को पत्र लिखकर उनसे समकालीन विषयों पर अधिक स्पष्ट और सजीव तस्वीरें भेजने का अनुरोध किया। मेरे स्टाफ के सदस्य बारी-बारी से मुझसे मिलने आए। सुब्रतो बनर्जी मुझे बहुत मिलनसार लगे, लेकिन एक अच्छे बंगाली की तरह वे चीजों को यथास्थिति में रहने देने में संतुष्ट थे और उन्होंने यह समझाने के लिए तर्कसंगत कारण बताए कि वे बेहतर क्यों नहीं हो सकतीं। बाकी लोगों की बात करें तो, मुझे उनमें से एक को दूसरे से अलग पहचानने में कुछ दिन लग गए, और उन्हें परखने में उससे भी अधिक समय लगा।

मेरे पास एक सचिव था, जो सिर्फ मेरे लिए ही था - स्वामी, एक तमिलियन। स्वामी जितना दयालु था, उतना ही अपने काम में कुशल भी। लेकिन वह रूढ़िवादी था। एक बार जब न्यूयॉर्क में रहने वाले मेरे एक मित्र ने मुझे 'स्क्रू' नाम की एक पत्रिका की प्रतियां भेजीं, जो अश्लील सामग्री से भरी थी, तो स्वामी ने अपनी आदत के अनुसार उसे खोलकर मेरी मेज पर रख दिया। बीच के पृष्ठ को देखकर वह चौंक गया। उसमें आठ महिलाओं के जननांगों की तस्वीरें थीं और कैप्शन था, 'किसने कहा कि सभी योनियां एक जैसी होती हैं?' इस घटना का एक मजेदार उपसंहार भी था। मैं बॉम्बे सीमा शुल्क प्रमुख से मिला और उन्हें बताया कि जहां मेरी 'प्लेबॉय' की प्रतियां अश्लीलता के कारण नियमित रूप से जब्त की जाती थीं, वहीं 'स्क्रू' नाम की एक बेहद अश्लील पत्रिका उनकी नजरों से बच निकली। उन्होंने जांच की और पता चला कि संबंधित अधिकारी ने 'स्क्रू' को इंजीनियरिंग पत्रिका समझ लिया था।

मेरे द्वारा साक्षात्कार लिए जाने वाली अंतिम कर्मचारी 'आंटी वेंडी' थीं। ये फातिमा थीं, जो महाराष्ट्र सरकार में तत्कालीन वरिष्ठ मंत्री रफीक ज़कारिया की पत्नी थीं। वह 'द वीकली' के वेतनभोगी कर्मचारी नहीं थीं, लेकिन सप्ताह में एक बार अपना योगदान देती थीं और उसकी प्रूफरीडिंग करती थीं। उन्हें बताया गया था कि मैं 'आंटी वेंडी' को बंद करने वाला हूँ, इसलिए वह एक पत्र लेकर आई थीं जिसमें लिखा था कि वह अब पत्रिका के लिए नहीं लिखेंगी। मैंने उसे पढ़ा और फाड़ दिया। मैंने कहा, 'मैं 'आंटी वेंडी' को बर्खास्त कर रहा हूँ, आपको नहीं। यदि आप 'द वीकली' से अपना जुड़ाव जारी रखना चाहती हैं, तो हम आपके लिए अन्य कार्यों पर विचार कर सकते हैं।' उन्होंने सिर हिलाकर सहमति दी। उन्होंने मुझे अपने पति और बच्चों से मिलवाने के लिए अपने घर पर रात के खाने पर आमंत्रित किया।

ज़कारिया परिवार ने मुझे पूरी तरह से झकझोर दिया। वे एक उग्र परिवार थे, जहाँ आपसी झगड़े के बाद कुछ समय के लिए शांति छा जाती थी। उनका स्वभाव बेकाबू था: कोई नहीं जानता था कि वे कब भड़क उठेंगे। उनकी पत्नी शांत स्वभाव की

थीं, लेकिन अपनी बात मनवाने के लिए लगातार दबाव बनाने में लगी रहती थीं। वे खूब मेहमाननवाज़ी करते थे, लेकिन केवल उन्हीं लोगों को आमंत्रित करते थे जो उनके करियर को आगे बढ़ा सकते थे। उन्हें महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री मोरारजी देसाई ने राजनीति में लाया था। कई वर्षों तक ज़कारिया के बैठक कक्ष में देसाई का चित्र सम्मानपूर्वक रखा गया था। जब मोरारजी का प्रभाव कम हुआ, तो उनका चित्र हटाकर महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंत राव चव्हाण का चित्र लगा दिया गया। उनकी पत्नी ने उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में उनकी मदद की। वे उनके कार्यक्रम तय करती थीं, हर सुबह उनकी पुष्टि करती थीं और उनकी फाइलों को व्यवस्थित रखती थीं। ज़कारिया अपने साथियों से अलग दिखना चाहते थे और एक विद्वान के रूप में अपनी छवि बनाना चाहते थे। यहाँ भी उनकी पत्नी ने उन्हें सामग्री जुटाने और उनके लेखन को संपादित करने में मदद की। भारतीय इस्लाम पर एक पुस्तक लिखने के बाद, उन्होंने और उनकी पत्नी ने सुल्ताना रज़िया की एक काल्पनिक जीवनी लिखी। मैंने इसकी नकारात्मक समीक्षा की थी; उन्हें लगा कि मैंने इसकी प्रशंसा की है। ज़कारिया को पता नहीं क्यों, उसे मुझ पर मुसलमानों के प्रति पूर्वाग्रह होने का शक था: उसे लगा कि 'आंटी वेंडी' को हटाना एक मुस्लिम की अंशकालिक सेवाओं को हटाने जैसा था। लड़कों को सिखों के बारे में रूढ़िवादी धारणाओं के साथ पाला-पोसा गया था, कि वे मुसलमानों से नफरत करते हैं और दोपहर में बेकाबू हो जाते हैं, आदि। फातिमा की माँ, एक बड़ी, मोटी महिला जो उनके साथ रह रही थी, ने उन्हें सिखों द्वारा चलाई जाने वाली टैक्सियों का उपयोग न करने की चेतावनी दी थी। वह ठीक से समझ नहीं पा रही थी कि मैं उनके घर में क्या कर रहा हूँ और अपने आखिरी दिन तक मुझे छपेवाला कहकर बुलाती रही - प्रिंटिंग प्रेस वाला आदमी। घर के अन्य सदस्यों में पास्कल लोबो नाम का एक गोवा का नौकर, वसंथी नाम की एक दुबली-पतली, बाहर निकले दाँतों वाली महाराष्ट्रीयन नौकरानी और एक रसोइया शामिल था जिसने मुझसे कभी बात नहीं की। मैं उसे 'हत्यारा' कहता था क्योंकि वह ऐसा दिखता था मानो मेरे खाने में ज़हर मिला सकता हो। वे एक बड़े सरकारी बंगले में रहते थे, जिसकी सुरक्षा सशस्त्र पुलिसकर्मी और एक आवारा कुत्ता करते थे, जिसने वहीं अपना डेरा जमा लिया था। रसोइए और कुत्ते को छोड़कर बाकी सभी से मेरी अच्छी बनती थी। रसोइया मुझसे कभी बात नहीं करता था; कुत्ता मेरे आने-जाने पर अपने दांत दिखाता था।

ज़कारिया परिवार के साथ मेरी पहली शाम में हमने एक-दूसरे को परखा। उन्होंने मुझे स्कॉच पिलाई; ज़कारिया ने यह दिखावा जारी रखा कि कांग्रेस पार्टी का सदस्य होने के नाते वे शराब को हाथ नहीं लगाते। मुझे कहा गया था कि मैं किसी को न बताऊं कि मुझे उनके घर में व्हिस्की पिलाई गई थी। तीनों लड़के, मंसूर (ज़कारिया की पहली पत्नी से), अरशद और फरीद, अविश्वास से मेरी ओर देखते रहे। ज़कारिया ने अपना दबाव बनाना शुरू कर दिया। मैंने उनकी पत्नी को स्थायी नौकरी क्यों नहीं दी? वे कंपनी के चेयरमैन, सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति के.टी. देसाई और महाप्रबंधक तरनेजा से बात करेंगे, लेकिन पहल मुझे ही करनी थी। मुझे नहीं पता था कि फातिमा कितनी अच्छी या बुरी कर्मचारी साबित होगी, लेकिन मुझ पर

डाले गए दबाव का मैं विरोध नहीं कर सका। मैं उसे एक सहायक के रूप में आज़मा सकता था और देख सकता था कि वह कैसा प्रदर्शन करती है। लेकिन ज़कारिया ने ही वह प्रस्ताव तय किया जो मैंने प्रबंधन को भेजा। फातिमा ज़कारिया को तीन सहायक संपादकों में से एक बनाया जाना था। ज़कारिया ने देसाई और तारनेजा से बात की। प्रस्ताव तुरंत स्वीकार कर लिया गया। कुछ ही दिनों में फातिमा को सहायक संपादक बना दिया गया और उन्होंने चुपचाप मेरे सबसे वरिष्ठ सहयोगी की सारी शक्तियाँ ग्रहण कर लीं। उनकी अनुमति के बिना कोई मुझसे मिल नहीं सकता था; मुझे आने वाले सभी फ़ोन कॉल पहले वही उठाती थीं। यहाँ तक कि मेरा सामाजिक जीवन भी उन्हीं के नियंत्रण में आ गया था। सप्ताह में कम से कम दो बार मैं उनके साथ भोजन करता था; बाकी दिनों में, अगर मुझे बाहर आमंत्रित नहीं किया जाता था, तो मेरे अपार्टमेंट में खाना भेजा जाता था। वह एक बेहद अधिकार जताने वाली महिला साबित हुई, जो मेरी उन महिलाओं या पुरुषों से दोस्ती बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं जिन्हें वह पसंद नहीं करती थीं। हालाँकि, उनके चरित्र का एक बहुत ही सकारात्मक पहलू भी था। हालाँकि वह लिख नहीं सकती थीं, फिर भी उन्होंने लेखों को प्रकाशित करवाने और प्रकाशित करवाने का काम किया। वह एक उत्कृष्ट सहायक संपादक थीं और 'द वीकली' को सफल बनाने के लिए उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। अपने काम और मेरे प्रति उनकी निष्ठा पूर्ण थी। उनके बिना मैं पत्रिका नहीं चला सकता था।

कुछ ही दिनों में मेरी दिनचर्या पक्की हो गई। मैंने यह नियम बना लिया कि मैं हर किसी से एक घंटा पहले दफ्तर पहुँचूँ। जब तक बाकी लोग आने लगते, मैं अपना पत्राचार निपटा चुका होता और नए अंक के लिए लिखे गए लेखों को संपादित कर चुका होता। मेरे यहाँ आने-जाने वालों की कमी नहीं थी। कार्टूनिस्ट आर.के. लक्ष्मण बड़ी सहजता से आते, कॉफ़ी मंगवाते और सुबह का अच्छा-खासा समय गपशप में बिताते। फातिमा हमेशा उनके साथ आती थीं, और कभी-कभी जब उनका मन करता, तब भी। लक्ष्मण, जिन्हें दूसरों का समय बर्बाद करने में कोई हिचक नहीं होती थी, काम करते समय किसी को भी अपने केबिन में नहीं आने देते थे। मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं थी क्योंकि वे एक अच्छे कहानीकार थे और निस्संदेह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे; मेरी राय में वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कार्टूनिस्ट थे। दूसरे कार्टूनिस्ट, मारियो मिरांडा, और भी ज़्यादा विचारशील थे। उन्होंने मेरे लिए काम करने के लिए बहुत मेहनत की और बल्ब का लोगो डिज़ाइन किया, जिसमें मैं तब से कैद हूँ।

वहाँ हमेशा की तरह समाजसेवी और देश के प्रति चिंतित लोगों की एक निश्चित संख्या मौजूद थी। बिना किसी अपवाद के, वे बातचीत की शुरुआत इस सवाल से करते थे, 'यह देश कहाँ जा रहा है?' मैं आमतौर पर अन्य संपादकों के साथ लंच रूम में बैठता था। मैंने मेनू में आर्टिचोक और एवोकाडो नाशपाती जैसी नई चीज़ें शामिल कीं और कभी-कभी फिल्म जगत, राजनीति और सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण हस्तियों को भी हमारे साथ शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। दोपहर का अधिकांश समय प्रूफ रीडिंग में बीतता था। शुरुआत में मैंने 'द वीकली' के लिए तस्वीरें खुद चुनने और उनके कैप्शन लिखने

का काम किया। बाची कांगा ने बहुत जल्दी यह काम सीख लिया और मैंने यह काम उन्हें सौंपना शुरू कर दिया। अपने शुरुआती कुछ महीनों में मैं ऑफिस से सबसे आखिर में निकलने वालों में से था। मैं भीड़भाड़ वाली सड़कों से होते हुए, पारसी कुएँ के पास से चर्चगेट तक पैदल घर जाता था। फुटपाथ पर अखबार और पत्रिकाएँ बेचने वाले बिहारी भैयाओं से मेरी दोस्ती हो गई और मैं उनसे पूछता था कि 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' की बिक्री कैसी चल रही है। जहांगीर के फ्लैट में वापस आते ही बेला ने मेरा स्वागत किया—वह हांफ रही थी, मुंह से लार टपका रही थी और अपनी छोटी पूंछ की कमी को पूरा करने के लिए अपना पिछला हिस्सा हिला रही थी। मैं उसके साथ तब तक खेलता रहा जब तक कि अचानक उसके कान खड़े नहीं हो गए और उसने यह सुनिश्चित करने के लिए अपना सिर एक तरफ झुकाया कि वह सही सुन रही है। नीचे सड़क पर दौड़ती सैकड़ों कारों में से, वह अपने मालिक की गाड़ी के इंजन की आवाज़ पहचान लेती थी। वह खुशी से भौंकती और दरवाजे की ओर दौड़ती, अपना सिर तब तक झुकाए रखती जब तक कि लिफ्ट रुक न जाती और दरवाजा खुल कर उसे बाहर न निकाल देती। उसके बाद उसे मेरी कोई ज़रूरत नहीं रही।

समय बीतने के साथ-साथ, सड़क पर, अक्सर कैफे में मिलने वाले लोगों से, साथ ही नारियल बेचने वालों, पानवालों, कुत्तों, भिखारियों और सड़क पर घूमने वाली महिलाओं से भी मेरी अच्छी जान-पहचान हो गई। मुझे ताज़ा नारियल पानी का स्वाद अच्छा लगने लगा - मुंह का स्वाद ताज़ा करने या मूत्राशय को साफ करने के लिए दुनिया में इसकी कोई बराबरी नहीं है। पान एक बुरी लत बन गई: मैं हर भोजन के बाद इसके बिना नहीं रह सकता था और काम पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मुझे कुछ चबाना ज़रूरी था। मैंने दंत चिकित्सकों की चेतावनियों को नज़रअंदाज़ कर दिया कि मैं अपने दांत खराब कर रहा हूं और खुद को मुंह और गले के कैंसर के खतरे में डाल रहा हूं।

चर्चगेट एक उच्च-मध्यम वर्गीय इलाका होने के कारण, वहाँ ज़्यादा वेश्याएँ नहीं थीं। अगर कोई होती भी तो मैं उन्हें पहचानने में देर लगाता था। एक शाम खाना खाने के बाद घर लौटते समय, एक महिला ने स्ट्रीट लैंप के नीचे खड़े होकर मुझसे समय पूछा। राजबाई टावर की घड़ी हमारे सामने थी, लेकिन मैंने अपनी घड़ी देखी और उसे सही समय बताया। उसने मुझे साफ़ उर्दू में धन्यवाद दिया: 'बहुत शुक्रिया, सरदार साहब!' लिफ्ट में ऊपर जाते समय मुझे समझ आया कि वह महिला मुझसे कुछ गलत प्रस्ताव रखना चाहती थी। एक और लड़की जिसने मेरा ध्यान खींचा, वह एक पेट्रोल पंप के पास फुटपाथ पर रहती थी, जहाँ कुछ पानवाले और एक भेलपुरी बेचने वाला भी था। वह लगभग पच्चीस साल की थी और भेलपुरी बेचने वाले से उसकी अच्छी दोस्ती थी, जो उसे अपना बचा हुआ भेलपुरी दे देता था। मैंने उसे कभी किसी से भीख मांगते या अजनबियों की तरफ देखते हुए नहीं देखा। वह मानसिक रूप से अस्थिर थी और जाहिरा तौर पर उसके पति ने उसे घर से निकाल दिया था। पानवाले या भेलपुरी बेचने वाले से बातचीत के दौरान मैंने उसे अपनी ओर आकर्षित करने की बहुत कोशिश की, लेकिन उसने मेरी मौजूदगी को अनसुना कर दिया। जून के दूसरे सप्ताह में मुंबई में मानसून शुरू होने के बाद ही

मुझे उसका असली रूप देखने को मिला। मानसून का आगमन एक ऐसा अनुभव है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। मानसून आने से हफ़्तों पहले ही चर्चगेट के आसपास के फुटपाथों पर लोग छाते और गमबूट बेचते नज़र आने लगते हैं। अंत में, जब मानसून आता है तो सड़कें घुटनों तक पानी से भर जाती हैं। मैं यह जानने के लिए उत्सुक था कि वह भीख मांगने वाली महिला इस खराब मौसम का सामना कैसे करती होगी। ऐसे दिनों में भेलपुरीवाले के पास ज़्यादा ग्राहक नहीं होते होंगे, और मैंने सोचा कि शायद मैं उस लड़की के लिए शाम का खाना खरीद सकूँ। जब मैं अपना पान लेने गया तो वहाँ भेलपुरीवाला नहीं था। वह लड़की एक दुकान की सीढ़ियों पर दुबकी हुई थी, जो बहते हुए बारिश के पानी से बस एक इंच ऊपर थी। ज़ाहिर है, उसके पास न तो कोई सामान था और न ही बदलने के लिए कपड़े। वह रात भर मेरे मन में बसी रही।

अगली सुबह जब मैं उठा, तो राजबाई टावर की घड़ी में सुबह के 5 बज रहे थे। रात भर बारिश होती रही और मैदान में पानी भर गया था, जिससे वह किसी झील जैसा लग रहा था। अब बारिश हल्की फुहार में बदल गई थी, लेकिन आसमान में बादल छाए हुए थे। भोर की धुंधली रोशनी में मैंने मैदान के बीचोंबीच एक महिला को गंदी सफेद धोती पहने देखा। वह घुटनों के बल बैठी थी और एक टिन के डिब्बे से अपनी जांघों के बीच पानी उछाल रही थी। जाहिर है, वह झाड़ियों के पीछे शौच करने के बाद खुद को साफ कर रही थी। मैंने अपनी दूरबीन निकाली और उस पर फोकस किया। शौच करने के बाद, उसने चारों ओर देखा ताकि उसे यकीन हो जाए कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है। फिर उसने अपनी धोती उतार दी और अपने ऊपर गंदा बारिश का पानी डाला, खासकर अपने स्तनों और कमर पर। यह वही भीख मांगने वाली महिला थी। मैंने उसे तब तक देखा जब तक उसने वही गंदी धोती अपने गीले शरीर पर नहीं पहनी और चर्चगेट स्टेशन के पास अपने घर की ओर वापस नहीं चली गई। इस बुराई से भरे शहर में इस भीख मांगने वाली नौकरानी को किसी ने कैसे नहीं देखा? कुछ दिनों बाद मुझे इसका जवाब मिल गया। मैं हर रात उसके फुटपाथ वाले घर के पास से गुजरता था, लेकिन उसे वहाँ नहीं देखा था। क्या उसके पति ने उसे वापस ले लिया था? मेरी जिज्ञासा शांत नहीं हुई और भेल खरीदते समय, जिसे खाने का मेरा कोई इरादा नहीं था, मैंने दुकानदार से जितना हो सके सहज भाव से पूछा कि उस औरत का क्या हुआ। उसकी आवाज भर्रा गई और उसने जवाब दिया: 'कुछ मत पूछो सरदारजी' - 'भरोसे फुसलाकर ले गए' - दलाल उसे बहला-फुसलाकर ले गए। बेचारी शायद कामातीपुरा के किसी वेश्यालय में पहुँच गई होगी।

मानसून अपने साथ कई और अनुभव लेकर आया। अक्सर मुझे ऑफिस में एक अतिरिक्त कमीज ले जानी पड़ती थी और कीचड़ भरे पानी में चलते समय चप्पलें हाथों में उठानी पड़ती थीं। जब मूसलाधार बारिश होती थी, तो छाता भी मेरी पगड़ी को भीगने से मुश्किल से बचा पाता था। कुछ और अप्रत्याशित खतरे भी थे। एक सुबह, जब मैं फ्लोरा फाउंटेन के पास पहुंचा, तो मैंने एक बड़े नाले के चूहे को अपनी ओर आते देखा, जिसके पीछे चीलें और कौवे झपट्टा मार रहे थे। मुझे लगा कि दूसरी तरफ जाना ज्यादा सुरक्षित होगा। नाले के चूहे ने भी यही सोचा। मैं सड़क के बीच में था जब वह मेरे पीछे भागा

और अपने हमलावरों से बचने के लिए कोई और जगह न पाकर मेरी टांगों के बीच शरण ली। उसने मेरे ट्राउजर पर चढ़ने की कोशिश की। मैं घबराकर इधर-उधर उछलने लगा और चूहे को अपनी टांग से हटाने की कोशिश करने लगा और अपने सिर के ऊपर मंडरा रही चीलों और कौवों को भगाने के लिए छाता लहराने लगा। फुटपाथ पर भीड़ जमा हो गई थी यह तमाशा देखने के लिए। मैं किसी तरह नाले के चूहे को गिराने में कामयाब रहा और भागकर सुरक्षित जगह पर पहुंच गया। दर्शकों की सहानुभूति बटोरने के बजाय, एक ने मुझे ताना मारा, 'अरे, सरदारजी चूहे से डर गया!' — देखो, यह बड़ा सिख चूहे से डर रहा है! मैंने समझाने की कोशिश की कि यह चूहा नहीं, बल्कि एक बड़ा गटर का चूहा था। तब मुझे एहसास हुआ कि हिंदी में चूहे और गिलहरी में अंतर करने के लिए कोई शब्द नहीं है। और बाद में, मुझे पता चला कि किसी भी भारतीय भाषा में छोटे चूहे और मूंछों वाले बिल्ली के आकार के चूहे में कोई अंतर नहीं होता। कृंतक प्रजातियों में वे केवल चूहे और बंदिकूट को ही जानते थे। हमारी भाषाओं में बर्फ और हिम में भी कोई अंतर नहीं है — दोनों बर्फ हैं। उनके पास सीगल के लिए कोई शब्द नहीं है — इसे केवल जल कौवा कहते हैं — एक जलीय कौवा, जबकि हमारे तटों पर सीगल की एक दर्जन से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं।

दफ्तर में भी कुछ मज़ेदार घटनाएँ घटीं। एक दोपहर मूर्तिकार फ्रेडा ब्रिलियंट और उनके पति हर्बर्ट मार्शल मुझसे मिलने आए। वे कृष्णा मेनन के करीबी दोस्त थे: फ्रेडा ने मेनन की कांसे की एक बेहद खूबसूरत प्रतिमा बनाई थी। हर्बर्ट मार्शल खुद को रूसी विद्वान बताते थे और उन्होंने मायाकोवस्की की कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया था। मुझे उनका व्यवहार कुछ ज़्यादा ही ज़ोरदार लगा और मैंने उनसे दूरी बनाए रखी थी। ज़ाहिर है, उन्हें इसका एहसास नहीं हुआ। फ्रेडा ने खुले हाथों से मेरा स्वागत किया और प्यार भरे शब्दों की बौछार कर दी। 'डार्लिंग, डार्लिंग खुशी! कैसी हो?' मैंने विनम्रता से पूछा कि वे भारत में क्या कर रहे हैं और उनके लिए चाय मंगवाई। वे नेहरू और मेनन की प्रतिमाओं को नेशनल आर्ट गैलरी में बेचने के लिए बातचीत कर रही थीं और यह देखने की कोशिश कर रही थीं कि क्या उन्हें कोई और काम मिल सकता है। वे भारतीय हथकरघा की एक प्रदर्शनी में गए थे और वहाँ से उन्होंने छोटे-छोटे गोल दर्पणों से जड़ी एक चमकीले रंग की कमीज़ खरीदी थी। उन्होंने मुझे उसे दिखाते हुए कहा कि मैं उसकी तारीफ़ करूँ। 'क्या आपको नहीं लगता कि यह मुझ पर अच्छा लगेगा?' मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि लगेगा। 'मैं इसे पहनकर दिखा देती हूँ,' उन्होंने कहा। 'आप दोनों दीवार की तरफ मुँह कर लीजिए और मैं अपनी कमीज़ बदल लेती हूँ।' उनके पति और मैंने आज्ञा का पालन करते हुए दीवार की तरफ मुँह कर लिया। अचानक फ्रेडा चीखी, 'बाहर निकलो!' उनकी चीख के साथ ही बर्तनों के गिरने की आवाज़ आई। हम देखने के लिए मुड़े कि क्या हुआ है। फ्रेडा अपने नंगे सीने को हाथों से ढकने की कोशिश कर रही थीं। चाय लाने वाले नौकर ने अधनंगी मेमसाहिब को देखा और घबराकर ट्रे गिरा दी। यह कहानी कई दिनों तक दफ्तर में चर्चा का विषय बनी रही।

कुछ ऐसी ही घटना तब घटी जब पैगी होलरॉयडे मेरे साथ दोपहर बिताने आई थीं। वह दिल्ली से ट्रेन से आई थीं और उन्हें ऑस्ट्रेलिया में अपने घर वापस जाने के लिए रात की फ्लाइट पकड़नी थी। मैंने उन्हें बॉम्बे सेंट्रल स्टेशन से लिया, अपने अपार्टमेंट में छोड़ा (मैं उस समय कोलाबा के सेंटिनल हाउस में रहता था) और ऑफिस लौट गया। कुछ देर आराम करने के बाद पैगी नहाने के लिए बाथरूम में गई। तभी दरवाजे की घंटी बजी। उन्होंने तौलिया उठाया और खुद को सुखाते हुए दरवाजा खोला। सामने फात्मा ज़कारिया का नौकर पास्कल लोबो था, जो मेरे लिए टिफिन बॉक्स में रात का खाना लेकर आया था। पास्कल चौंक गया। लेकिन पैगी नहीं। वह खुद को सुखाती रहीं जबकि पास्कल ने टिफिन बॉक्स मेरी रसोई में रखा और जल्दी से वहां से निकल गया। मुझे ज़कारिया परिवार के सामने बहुत कुछ जवाब देना था: आखिर कैसे नग्न श्रीमती होलरॉयडे ने मुझे देखकर दरवाजा खोला? मैं उन्हें कितना जानता था? इत्यादि। मेरे द्वारा इस बात का विरोध करने का कोई मतलब नहीं था कि पैगी उस तरह की लड़की थी - या बल्कि, उस तरह की लड़की नहीं थी।

फिर वहाँ एक सुंदर इतालवी लड़की, मार्सिया ग्राज़ियानो थी, जो आचार्य रजनीश की शिष्या थी। वह युवा, दुबली-पतली, मटमैले सुनहरे बालों और बड़ी-बड़ी धूसर आँखों वाली थी। उसने अपने सिर पर केसरिया रंग का बंदना बाँधा हुआ था, कमीज़ और तेहमद पहने हुए थी। साध्वी के वेश में वह बेहद आकर्षक लग रही थी; वह गंभीर स्वभाव की थी और शायद ही कभी मुस्कुराती थी, और चाहती थी कि मैं उसके गुरु से मिलूँ, उनके मुद्रित उपदेश पढ़ूँ और उसका शिष्य बन जाऊँ। उसने मेरे पास कुछ पुस्तिकाओं का एक बंडल छोड़ दिया। अपनी दूसरी या तीसरी मुलाकात में मैंने उससे संबंध बनाने की कोशिश की। 'मार्सिया, तुम मुझे अपने धर्म में परिवर्तित करना चाहती हो? मैं पूरी तरह से तैयार हूँ। मुझे तुम्हारे गुरु से मिलने और तुम्हारे द्वारा लाई गई सभी पुस्तकें पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। मेरी कीमत अलग है।' उसने ऐसा दिखाया जैसे उसे मेरी बात समझ ही नहीं आई हो। जब वह अपनी अगली मुलाकातों में फिर से धर्म परिवर्तन का प्रस्ताव लेकर आई, तो उसने अपनी धूसर आँखों से मुझे घूरते हुए पूछा: 'तुम मेरे साथ सोना चाहते हो, है ना? अगर तुम्हें मेरा शरीर पसंद है तो तुम इसे पा सकते हो। शरीर कुछ भी नहीं है; 'मन और आत्मा ही मायने रखते हैं।' निर्मम यौन संबंध बनाने के सीधे-सादे प्रस्ताव ने मेरी वासना को शांत कर दिया। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं था कि अगर मैं उसे बिस्तर पर ले जाना चाहता, तो वह अपना वादा निभाती। लेकिन वह मुझे यह भी साबित कर देती कि शारीरिक संबंध बनाने की आत्मा के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं होता। मार्सिया मेरी दोस्त बन गई। जब वह इटली लौटी, तो हम एक-दूसरे को पत्र लिखते रहे। बेलागियो जाते समय उसने रोम में मेरी पत्नी और मुझे एक शानदार इतालवी रात्रिभोज दिया। जब मैं उससे अगली बार लॉस एंजिल्स में मिला, तो उसने एक टीवी फिल्म निर्माता से शादी कर ली थी और जाहिर तौर पर उसका वैवाहिक जीवन सुखमय था।

बॉम्बे में मेरे जीवन में आए दो पात्र उपन्यासों के लिए बेहतरीन विषय बन सकते हैं: अनीस जंग और ए.जी. नूरानी। अनीस से मेरी मुलाकात पहले तब हुई थी जब मैं अमेरिकी छात्रों के एक समूह को विश्व भ्रमण पर ले जा रहा था। उन्होंने अपना

परिचय देते हुए बताया कि वह साहित्य में डिग्री लेकर अमेरिका से लौटी हैं, बॉम्बे में हमारे बेटे राहुल से मिली हैं और राहुल ने उन्हें हमसे संपर्क करने के लिए कहा है। अनीस का लोगों से मिलने का यही तरीका था - मेरी पत्नी के लिए राहुल का हर दोस्त परिवार का दोस्त होता था। उन्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया गया। वह एक आकर्षक वार्ताकार निकलीं - बिना किसी अमेरिकी लहजे के अंग्रेजी बोलती थीं और हैदराबादी लहजे में उर्दू बोलती थीं, जो मुझे बहुत प्यारा लगा। अनीस को नाम गिनाने की बुरी आदत थी। और संयोग से, वह उन लोगों को जानती भी थी जिनके नाम वह गिनाती थी। वह कल्पनाओं की दुनिया में जीती थी और खुद को बहुत महान समझती थी। उसने मुझे हैदराबाद के कुलीन वर्ग के बारे में बताया—जह, दौलह और जंग परिवारों के बारे में, और अपने पिता नवाब होशियार जंग के बारे में भी, जिनके बारे में उसने कहा कि वे निज़ाम की सरकार में मंत्री थे। असल में, वे केवल एक मुसाहिब (साथी) थे, जिनकी बातें निज़ाम को बहुत पसंद थीं। मुझे यकीन है कि अनीस को यह गुण अपने पिता से विरासत में मिला था, क्योंकि वह जितनी भी महिलाओं से मिली थी, उनमें सबसे ज़्यादा दिलचस्प बातें करती थी। उसने मुझे उन आलीशान घरों के बारे में बताया जिनमें वे रहते थे और उन अंग्रेज़ शादियाँ करने वाली महिलाओं के बारे में भी बताया जिन्हें उन्होंने रखा था। परिवार की सारी दौलत कहाँ चली गई, यह मुझे कभी नहीं बताया गया।

जब मैं इलस्ट्रेटेड वीकली का संपादन कर रहा था, तब अनीस मेरे जीवन में फिर से आई। उन्होंने यूथ टाइम्स के संपादक पद के लिए आवेदन किया था, जो टाइम्स ऑफ इंडिया समूह द्वारा दिल्ली से शुरू की जाने वाली एक नई मासिक पत्रिका थी। साक्षात्कार समिति में अध्यक्ष, न्यायमूर्ति देसाई, रजनी पटेल, राम तरनेजा, प्रबंधक और मैं शामिल थे। वह पटेल और तरनेजा से तो मिल चुकी थीं, लेकिन देसाई से नहीं मिल पाई थीं। पटेल और तरनेजा ने सुझाव दिया कि दर्जन भर उम्मीदवारों का साक्षात्कार समिति द्वारा लेने के बजाय, निर्णय मुझ पर छोड़ दिया जाए - उस समय प्रबंधन में मेरा प्रभाव बहुत अधिक था। मैंने अनीस को चुना। उन्होंने दिल्ली में टाइम्स ऑफ इंडिया भवन में अपना कार्यालय स्थापित किया। कुछ ही हफ्तों में वह राम तरनेजा की चहेती बन गई, जो सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। जल्द ही महाप्रबंधक भी उनके प्रिय बन गए: पहले वह उन्हें तरनेजा, फिर राम और अंत में तनु कहकर पुकारने लगीं। वह जब चाहे मुंबई आती-जाती रहती थीं। वह मुझसे संपर्क में रहीं, लेकिन फातिमा जकारिया को बिल्कुल पसंद नहीं करती थीं; फातिमा भी उन्हें पसंद नहीं करती थीं। जब वह बॉम्बे में होती थी, तो हर शाम वह जानबूझकर बरामदे में खड़ी तारनेजा की कार में बैठती थी, ताकि दफ्तर से घर जाने वाले लोग उसे जनरल मैनेजर की कार में देख सकें और सही संदेश समझ सकें। वह महत्वपूर्ण थी। यह अजीब बात है कि अनीस के नाम गिनाने की आदत, ऊँचे ओहदे वालों से दोस्ती करने, सिर्फ़ ऊँचे लोगों से मेलजोल रखने, मेरी पत्नी समेत ज़्यादातर महिलाओं की बुराई करने और मुझे ऊँचे-ऊँचे लोगों पर अपने प्रेम प्रसंगों की अंतहीन कहानियाँ सुनाने और फिर उन्हें पूरी

तरह से नकार देने के बावजूद, मैं न सिर्फ़ उससे दोस्ती बनाए रख पाया, बल्कि बुढ़ापे में तो मैं उसके साथ समय बिताने के लिए दूसरी महिलाओं से ज़्यादा उत्सुक रहता था।

ए.जी. नूरानी एक बिलकुल अलग तरह के इंसान थे। वे वकील और पत्रकार थे। साथ ही, मेरी मुलाकातों में सबसे चिड़चिड़े और गुस्सैल व्यक्ति भी। कानून के ज्ञान के बावजूद, उनका वकालत का काम ज़्यादा नहीं चला क्योंकि वे अपने मुवक्किलों, वकीलों और जजों से अक्सर झगड़े करते रहते थे। हालांकि, राजनीति, संविधान और उच्च पदों पर भ्रष्टाचार पर लिखने वाले पत्रकार के तौर पर उन्होंने अपनी पहचान बनानी शुरू कर दी थी। वे तथ्यों की जाँच-पड़ताल में बेहद सतर्क रहते थे और असाधारण स्पष्टता से लिखते थे। हम दोस्त बन गए। उनका मानना था कि जीवन में उनकी सिर्फ़ दो ही रुचियाँ थीं - वकालत और राजनीति। उनकी एक और रुचि भी थी।

हमारी दोस्ती एक-दो साल तक चली। हम लगभग हर शाम मरीन ड्राइव पर टहलने के लिए मिलते थे। मेरे फ्लैट में आकर, वह संतरे का रस पीते (वह शराब बिल्कुल नहीं पीते थे) जबकि मैं अपनी स्कॉच की खुराक लेता था। फिर हम बाहर खाना खाने जाते, आस-पड़ोस के अलग-अलग रेस्टोरेंट में जाकर। शुरुआत में, वह बहुत ही सलीकेदार और संकोची थे। वह यूरोपीय कपड़े पहनते थे, और गर्म दिनों में भी टाई, मोज़े और जूते पहनते थे। वह अपने पहनावे को लेकर बहुत सतर्क रहते थे और हमेशा अपने तेल लगे बालों को हाथ से संवारते थे और बाहर निकलने से पहले शीशे में खुद को निहारते थे। वह खुद को मोहम्मद अली जिन्ना का आधुनिक रूप मानते थे, उन्हीं की तरह अपने व्यवहार में भी वही कठोर गंभीरता और विचारों में वही स्पष्टता रखते थे। लेकिन जल्द ही मेरी बेबाकी से उनका दिल पिघल गया। उनके अश्लील गीतों और चुटकुलों के संग्रह से मैं सुखद रूप से आश्चर्यचकित हुआ। यह उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा पहलू था जिसे उन्होंने किसी और के सामने ज़ाहिर नहीं किया था। न ही गोरी महिलाओं के प्रति उनके आकर्षण को। वह बेहद भोले भी हो सकते थे। जब दो कनाडाई लड़कियाँ, दोनों फिल्म निर्माता, मुझसे परिचय पत्र लेकर मिलने आईं, तो हम उन्हें रात के खाने पर ले गए। खाने के बाद हम उनके साथ उनके होटल तक गए—छह फुट लंबी सू डेक्सटर और मैं आगे, और छोटी और कम उम्र की लड़की नूरानी के साथ हमसे कुछ कदम पीछे। उन्हें शुभ रात्रि कहने के बाद मैंने नूरानी को बहुत उत्साहित पाया। 'यार, तुम्हें पता है उस लड़की ने मुझसे क्या कहा? जब मैंने उससे पूछा कि क्या वह शादीशुदा है, तो उसने जवाब दिया, "हाँ, मैं शादीशुदा हूँ, लेकिन मैं व्यभिचार करती हूँ।" अब इसका क्या मतलब निकालो, सिवाय बिस्तर पर आने के खुले निमंत्रण के?'

अगले कुछ दिनों तक नूरानी ने उस लड़की को घेर लिया, उसे बार-बार फोन करके अपने एकांतवास में बुलाया। अंततः लड़की नूरानी की ज़िद से तंग आकर मुझे फोन किया और नूरानी से पीछा छुड़ाने को कहा। मैंने उससे पूछा, 'क्या तुमने उसे बताया कि तुम व्यभिचार करती हो?'

'हां, मैंने किया था, लेकिन मेरा उसके साथ ऐसा करने का इरादा नहीं था।'

इस असफलता से निराश न होकर, उसने मेरी मिलवाई हुई एक बेल्जियम की तलाकशुदा महिला को पटाने का फैसला किया। उसके पास एक बड़ी कार थी और वह नूरानी को जुहू बीच पर लंबी ड्राइव पर ले जाती थी। हालांकि, हर बार घर लौटते समय, उसकी कार का पेट्रोल खत्म हो जाता और वह बहाना बनाती कि वह अपना पर्स लाना भूल गई थी। नूरानी ने कई बार पेट्रोल का पैसा दिया, लेकिन उस महिला के साथ उसका कोई संबंध नहीं बन पाया। दूतावास में काम करने वाली एक बेहद आकर्षक जर्मन सेक्रेटरी के साथ भी ऐसा ही हुआ। उसने उसका तब तक पीछा किया जब तक वह उससे तंग नहीं आ गई। कुछ समय के लिए उसने मेरे अपार्टमेंट के पीछे एक गेस्ट हाउस में कमरा लिया। मैंने नूरानी को यह कहकर परेशान किया कि मैंने उसे अक्सर नग्न अवस्था में बाथरूम में आते-जाते देखा है। आखिरकार, एक अमीर गुजराती व्यापारी ने उस जर्मन लड़की के साथ संबंध बना लिया, और नूरानी को अकेला छोड़ दिया।

मुझे लगा था कि अनीस जंग और नूरानी एक अच्छी जोड़ी बनेंगे। उन्होंने एक-दूसरे के बारे में सुना था, एक-दूसरे के लेख पढ़े थे, लेकिन कभी मिले नहीं थे। किसी दयालु व्यक्ति ने शादी के इरादे से दिल्ली में उनकी मुलाकात करवाई।

उन्होंने ओबेरॉय होटल में सुबह की कॉफी पर बातचीत करने का फैसला किया। नूरानी समय को लेकर बहुत सतर्क था। अनीस को इतनी परवाह नहीं थी। ओबेरॉय होटल में कई रेस्तरां थे और उन्होंने अभी तक यह तय नहीं किया था कि उनकी मुलाकात कहाँ होगी। नूरानी एक मंजिल पर एक रेस्तरां में बेसब्री से इंतजार कर रहा था, अनीस दूसरी मंजिल पर शांति से बैठी थी, किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश में जो नूरानी जैसा हो। आधे घंटे बाद नूरानी ने निष्कर्ष निकाला कि जो महिला उसे इतनी देर तक इंतजार करा सकती है, वह जानने लायक नहीं है। उसी समय अनीस ने भी तय कर लिया कि उसका इंतजार काफी लंबा हो चुका है। दोनों एक ही लिफ्ट में थे। नूरानी गुस्से में था और उसने अनीस को खरी-खोटी सुनाने का मौका नहीं छोड़ा: 'क्या आप मिस जंग हैं?' उसने जानबूझकर उसका नाम 'जूंग' बोलते हुए पूछा।

‘जी हां, मैं अनीस जंग हूं,’ उसने जवाब दिया।

उसने अपनी कलाई घड़ी उठाकर समय दिखाया। ‘तुम्हें मुझसे सुबह 11 बजे मिलना था। अब 11:30 बज चुके हैं।’

अनीस ने समझाने की कोशिश की कि वह दूसरे रेस्टोरेंट में उसका इंतज़ार कर रही थी। नूरानी का गुस्सा शांत नहीं हुआ। दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। प्रेमियों की पहली मुलाकात का अंत तीखी बहस और बिना कॉफी पिए रूखे विदाई के साथ हुआ।

चलिए अब मैं 'द वीकली' पर वापस आता हूँ।

मुझे लगा कि बेहतर होगा कि मैं खुद कुछ लिखूं ताकि मेरे सहकर्मियों को मेरे विचारों की बेहतर समझ हो सके। मैंने लेखकों द्वारा भेजे गए लेखों में काफी बदलाव किए, कई बार तो उन्हें लगभग दोबारा ही लिखा। वे अपने नाम छपे देखकर और अन्य पत्रिकाओं की तुलना में अधिक पारिश्रमिक पाकर खुश थे। संपादक के रूप में मैंने जो पहली कहानी खुद लिखी, वह रमन

राघव के मुकदमे पर थी। इस व्यक्ति ने लोहे की रॉड से तीस से चालीस झुग्गीवासियों - पुरुषों, महिलाओं और बच्चों - के सिर फोड़ दिए थे। उस पर बॉम्बे के एक सत्र न्यायाधीश की अदालत में मुकदमा चलना था। मैंने अभियोजन पक्ष के वकील से संपर्क किया और उनसे फाइलें उधार लेने में सफल रहा। मैंने पुलिस से राघव की अदालत में पेशी के दौरान उसकी तस्वीरें लेने की अनुमति भी प्राप्त की। फोटोग्राफर जितेंद्र आर्य मेरे साथ आए थे।

जब राघव को हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़कर ब्लैक मारिया से बाहर निकाला गया, तो मैंने आर्य को अपना कैमरा तैयार रखने को कहा। राघव लगभग चालीस वर्ष का, सांवला, गठीला और ताकतवर आदमी था। जैसे ही उसने फोटोग्राफर को देखा, वह चीखने-चिल्लाने और उछलने-कूदने लगा और सबको गालियां देने लगा। मैंने आर्य से चिल्लाकर कहा, 'इसे अभी ले जाओ!' आर्य ने जवाब दिया, 'इसे शांत होने दो।' मुझे समझ आ गया कि आर्य कभी क्राइम फोटोग्राफर नहीं बन सकता और उसे मशहूर हस्तियों और नग्न लड़कियों के पोर्ट्रेट ही खींचने चाहिए। आखिरकार उसने जो तस्वीर खींची, वह बहुत ही साधारण थी। मैं तीन दिन तक चली सेशंस कोर्ट की सुनवाई में बैठा रहा। राघव अपने जुर्म कबूल करने के लिए पूरी तरह तैयार था और उसने पुलिस और मजिस्ट्रेट के सामने किए गए अपने कबूलनामे को दोहराया। उसे वह भारी लोहे की छड़ दिखाई गई जिसका इस्तेमाल उसने हथियार के तौर पर किया था। उसने उसे ऐसे प्यार से पकड़ा जैसे वह उसका कोई करीबी दोस्त हो। एक पल के लिए अदालत में मौजूद हर कोई घबरा गया। ‘डरो मत,’ उसने हमें आश्वस्त किया, ‘मैं तुममें से किसी को नहीं मारूंगा।’ जज के प्रति उसका रवैया बिल्कुल बेपरवाह था। जब उसके द्वारा मारे गए लोगों के नाम उसे पढ़कर सुनाए गए और उससे पूछा गया कि क्या उसने ही उनकी हत्या की है, तो उसने जवाब दिया, ‘हाँ, मैंने ही की है। मैंने उन सभी को मार डाला है और आप मुझे फांसी दे सकते हैं। मुझे मरने से डर नहीं लगता।’ यह स्पष्ट था कि वह मनोरोगी था और उसके बचाव पक्ष के वकील को पागलपन का तर्क देना चाहिए था। जब सत्र न्यायाधीश ने उसे मृत्युदंड सुनाया, तो रमन राघव ने कोई भावना नहीं दिखाई। उच्च न्यायालय, जिसे मृत्युदंड की पुष्टि करनी थी, ने उसकी चिकित्सकीय जांच कराई और उसे पागल घोषित कर दिया। मरने से पहले उसने कई साल पागलखाने में जंजीरों में बंधे हुए बिताए।

किसी अन्य समाचार पत्र या पत्रिका ने रमन राघव मुकदमे को 'द वीकली' जितना विस्तृत रूप से प्रकाशित नहीं किया। हमारी बिक्री बढ़ने लगी। इसके बाद, मैंने ग़ज़ल गायिका शकीला बानो भोपाली के बारे में लिखा। मैंने उन्हें दिल्ली में गाते हुए सुना था। वह तीस वर्ष की आयु की गोरी, गोल चेहरे वाली महिला थीं, जिनमें उच्च वर्ग की दरबारी जैसी चंचलता थी। उनकी आवाज़ बहुत दमदार नहीं थी, लेकिन उन्होंने अपने गीतों में भरपूर चुटकुलों और व्यंग्यात्मक टिप्पणियों से इसकी भरपाई कर दी। वह साधारण थीं और उर्दू कविता के पारखी समझे जाने वाले आम लोगों की चहेती थीं। एक अंग्रेजी पत्रिका में अपने बारे में छपने से वह खुश थीं। आर्य ने उनकी गायन करते हुए कई तस्वीरें लीं। मैंने उनकी तस्वीर मुखपृष्ठ पर लगाई और उनके बारे में एक लंबा लेख लिखा, जिसमें उनकी पृष्ठभूमि और उनकी मां जमीला बानो से मिली शिक्षा का वर्णन था।

शकीला बहुत खुश हुई; ग़ज़ल गायिकाओं के बाज़ार में उनकी लोकप्रियता बढ़ी और वह अपनी फीस दोगुनी करने में सक्षम हो गईं। कई पाठकों ने इसका विरोध किया। उस प्रतिष्ठित पारिवारिक पत्रिका को क्या हो रहा था— उसमें हत्यारों और गायिकाओं के बारे में प्रमुख लेख छप रहे थे!

इसके बाद मैंने अश्लील कैबरे पर एक लेख प्रकाशित किया। एक तस्वीर में कम कपड़े पहने एक जोड़ा इतनी नज़दीकी से टैंगो नृत्य कर रहा था कि मानो वे शारीरिक संबंध बना रहे हों। कार्यवाहक महाप्रबंधक, मानकेकर ने मुझे अपने कमरे में बुलाकर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। मैंने उन्हें चुप रहने को कहा। मैंने 'द वीकली' को अपने तरीके से प्रकाशित करना जारी रखा, हर अंक में कम से कम एक तस्वीर होती थी जिसमें एक नग्न स्तन वाली आदिवासी लड़की या गोवा के समुद्र तट पर समुद्र से बाहर निकलते हुए एक श्वेत हिप्पी की तस्वीर होती थी। मैंने कैप्शन को यथासंभव सरल और जानकारीपूर्ण रखने का पूरा ध्यान रखा: आदिवासी लड़कियों के मामले में उनके स्तनों या नितंबों के आकार का कोई ज़िक्र नहीं होता था, केवल जनजातियों के नाम, उनकी संख्या, उनके निवास स्थान आदि का उल्लेख होता था। हिप्पियों के मामले में, कैप्शन में मादक पदार्थों के खतरे और किशोरों को प्रलोभनों के संपर्क में आने से रोकने के लिए रूढ़िवादियों की नाराज़गी का ज़िक्र होता था। ब्लिट्ज़ और करेंट जैसे प्रतिद्वंद्वी साप्ताहिक अखबार, जिनमें इसी तरह की तस्वीरें छपती थीं, अक्सर लड़की की शारीरिक जानकारी का उल्लेख करने के अलावा कुछ नहीं करते थे और वो भी कोष्ठक में ('और यह उसका फ़ोन नंबर नहीं है'), या फिर कैप्शन में कोई बेतुकी कविता लिख देते थे। मुझ पर कभी अश्लीलता का आरोप नहीं लगा।

द वीकली को सबसे बड़ी सफलता भारत के विभिन्न समुदायों - चितपावन, अय्यंगार, अय्यर, लिंगायत, वोकलिग्गा, मेमन, बोहरा, माहेश्वरी, कायस्थ, जाट, अग्रवाल - लगभग हर धर्म, जाति, नस्ल या उपजाति के बारे में लिखे गए लेखों की श्रृंखला से मिली। इन लेखों में संबंधित समुदायों की उत्पत्ति, उनके परिवेश और उनके महान पुत्र-पुत्रियों की उपलब्धियों का वर्णन किया गया था। हर अंक को समुदाय के सदस्य खरीदते थे। हमारी बिक्री में ज़बरदस्त उछाल आया। बेनेट और कोलमैन के प्रकाशनों की सूची में सबसे नीचे होने से लेकर, हमने उन्हें एक-एक करके पीछे छोड़ दिया और उनसे काफी आगे निकल गए। मैं हर जीत का जश्न मिठाई की टोकरियाँ मंगवाकर कार्यालय में सभी को बाँटने में काफी मशगूल था। बोर्ड रूम में, जहाँ संपादकों को कभी-कभी निदेशकों से मिलने के लिए बुलाया जाता था, हमारी पत्रिकाओं के प्रसार को दर्शाने वाले चार्ट लगे रहते थे। अन्य पत्रिकाओं के उतार-चढ़ाव आते रहे या वे स्थिर रहीं, लेकिन 'द वीकली' का ग्राफ लगातार ऊपर की ओर बढ़ता रहा, मानो किसी विजयी लिंग की तरह अश्लील कोण पर खड़ा हो। मैं अपने प्रसार पर गर्व करता था। इससे मैं अपने साथी संपादकों के बीच लोकप्रिय नहीं हुआ। जिस आखिरी पत्रिका को हमने पीछे छोड़ा, वह थी 'हिंदी धर्मयुग', जिसके संपादक साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती थे। जब मेरे एक कर्मचारी ने हमारी इस उपलब्धि के उपलक्ष्य में उन्हें लड्डू भेंट करने उनके केबिन में गया, तो वे काफी नाराज हो गए।

बांग्लादेश की मुक्ति के लिए लड़े गए भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान हमारे प्रकाशनों की संख्या में अगली उछाल आई। मुझे न्यूयॉर्क टाइम्स द्वारा इस युद्ध को कवर करने का काम सौंपा गया था; मैंने उन्हीं लेखों को कई और चित्रों के साथ द इलस्ट्रेटेड वीकली के लिए इस्तेमाल किया। सौभाग्य से मैं युद्ध के शुरू होने और उसके परिणाम का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम था। हालांकि, मुझे यह स्वीकार करना होगा कि अपराधियों, वेश्याओं, कैबरे नर्तकियों, समुदायों, फिल्म सितारों या राजनीति पर लिखे मेरे लेखों ने नहीं, बल्कि क्रिकेट पर लिखे लेखों ने, जिन्हें लगभग पूरी तरह से राजू भरतन ने तैयार किया था और उनके निजी संग्रह से चित्रों का उपयोग किया था, सबसे अधिक लोकप्रियता हासिल की। हमारा प्रकाशन अब तक के उच्चतम स्तर पर पहुँच गया, 410,000 प्रतियां। हम इससे भी अधिक प्रतियां बेच सकते थे, लेकिन विज्ञापन-संपादकीय अनुपात के कारण हमें प्रकाशन सीमित करना पड़ा क्योंकि अधिक प्रकाशन का मतलब लाभ से अधिक हानि था। मुझे गर्व करने का पूरा कारण था: पांच वर्षों के भीतर द वीकली का प्रकाशन चार गुना से भी अधिक हो गया था।
बांग्लादेश युद्ध समाप्त होने के बाद, मैंने दो बार पाकिस्तान का दौरा किया ताकि जुल्फिकार अली भुट्टो का हालचाल जान सकूँ और यह देख सकूँ कि पराजित पाकिस्तान अपनी सेना की करारी हार को कैसे स्वीकार कर रहा है। अपने पहले दौरे में मैं कराची और फिर इस्लामाबाद में भुट्टो से मिला। दूसरा दौरा अधिक लाभदायक रहा, क्योंकि कराची में मेरी मुलाकात बेगम पारा और उनके बच्चों से हुई, और इस्लामाबाद में भुट्टो और जनरल टिक्का खान से हुई। भुट्टो से हुई मुलाकात के बारे में मुझे 'द वीकली' में छपी बातों के अलावा और कुछ खास नहीं कहना है, सिवाय इसके कि मैंने श्रीमती गांधी को उनका एक निजी संदेश दिया। उन्होंने इसे तिरस्कारपूर्वक अनदेखा करते हुए कहा, 'वह सरासर झूठा है।' बेगम पारा और टिक्का खान से हुई मुलाकातें काफी यादगार रहीं।
भारतीय सिनेमा की कभी की सुपरस्टार बेगम पारा का वजन नासिर खान (सुपरस्टार यूसुफ उर्फ दिलीप कुमार के भाई) से शादी के बाद काफी बढ़ गया था। नासिर खान से उन्हें दो प्यारे बच्चे हुए थे - एक बेटी और एक बेटा। उनके पति की मृत्यु हो गई और उनके पास बांद्रा में एक फ्लैट और कुछ फिल्मों के अलावा कुछ खास नहीं बचा था। उन्हें लगता था कि उनके देवर की लाखों की कमाई में उनका भी हक है। पाकिस्तान में भी उनकी काफी संपत्ति थी जिस पर उनका दावा होना बाकी था। मेरी मुलाकात उनकी बहन की बेटी रुखसाना सुल्ताना के जरिए हुई। मैंने बेगम पारा और उनके बच्चों को अक्सर मुंबई में देखा। कई रविवार की सुबह परिवार मेरे साथ जिमखाना क्लब के स्विमिंग पूल में तैरने और नाश्ता करने आता था। बेगम पारा अक्सर पैसों की बात करती थीं। अगर कोई उन्हें 40-50,000 रुपये उधार दे दे तो वे अपनी पुरानी फिल्मों को दोबारा दिखाकर खूब पैसा कमा सकती हैं। मैंने उनकी बात नहीं समझी। हताशा में आकर वे अपनी संपत्ति पर दावा करने के लिए पाकिस्तान चली गईं। उनके दो भाई ऊंचे पदों पर थे, जिनमें से एक भुट्टो की सरकार में मंत्री था। उन्हें जल्द ही पता चल गया कि उनके रिश्तेदार कुछ भी देने को तैयार नहीं थे, और भारत जाने का फैसला लेने के कारण उनकी स्थिति

कमजोर थी। उन्होंने अपने साथ लाई फिल्मों को बेचकर और टीवी पर आकर थोड़ी-बहुत कमाई की। उनके बच्चे नाखुश थे। बंबई के मुक्त और सहज वातावरण के बाद, तेजी से एक खूबसूरत युवती बन रही उस लड़की को पाकिस्तान का रूढ़िवादी माहौल बहुत घुटन भरा लगा। बेगम पारा ने मुझे कई पत्र लिखकर भारत लौटने में मदद मांगी। मैंने जवाब में लिखा कि मैं जल्द ही कराची आ रही हूँ और हम इस मामले पर बात कर सकते हैं।

मैं शाम को कराची पहुंचा। बेगम पारा और उनके बच्चे मुझे लेने हवाई अड्डे पर मौजूद थे। प्रोटोकॉल प्रमुख भी वहां थे, क्योंकि मैं सरकार का अतिथि था। हमें वीआईपी लाउंज में ले जाया गया। बच्चों ने जी भर के केक और बिस्कुट खाए और उन्हें घर भेज दिया गया। बेगम पारा ने मेरे साथ होटल में रात का खाना खाने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया, जहां मुझे इस्लामाबाद के लिए सुबह की उड़ान पकड़ने से पहले रात बितानी थी। प्रोटोकॉल प्रमुख ने हमें मेरे होटल तक छोड़ दिया। बेगम पारा मेरे साथ मेरे कमरे में आईं। मैंने सोडा और बर्फ मंगवाई और अपने साथ लाई स्कॉच की बोतल निकाली। उस समय पाकिस्तान में शराबबंदी नहीं थी। मैंने बेगम पारा की शराब पीने की आदत के बारे में कहानियां सुनी थीं। उन्हें कीमत के कारण शराब कम करनी पड़ी थी: पाकिस्तान में स्कॉच की एक बोतल की कीमत भारत से दोगुनी थी। 'क्या आप एक ड्रिंक लेना चाहेंगी?' मैंने उनसे पूछा, मुझे यकीन नहीं था कि वह अब भी शराब पीती हैं या नहीं। 'मैं थोड़ी सी लूंगी,' उन्होंने जवाब दिया। मैंने बहुत समय से असली स्कॉच नहीं देखी है।

मैंने व्हिस्की के दो कड़क गिलास निकाले और एक उसे पकड़ा दिया। हम पंजाबी में बातें करने लगे। मेरा गिलास आधा भी नहीं भरा था कि मैंने देखा कि उसका गिलास खाली था। मैंने उसके लिए एक और गिलास निकाला। उसने उसे झट से पी लिया और मुझे अपना गिलास भरने से पहले उसे फिर से भरना पड़ा। जब तक मैंने अपने तीन बड़े व्हिस्की के गिलास खत्म किए, बेगम पारा नौ गिलास पी चुकी थी। बोतल लगभग खाली हो चुकी थी। मैंने उससे कहा कि हमें जल्दी खाना खाना चाहिए क्योंकि मुझे सुबह की फ्लाइट पकड़नी है। अनिच्छा से वह मेरे साथ भोजन कक्ष में चलने के लिए उठी।

भोजन कक्ष पहली मंजिल पर था। वहाँ पहुँचने के लिए हमें संगमरमर की घुमावदार सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। जगह खचाखच भरी थी। पाकिस्तान में हमेशा की तरह, कमरे में बहुत कम महिलाएँ थीं। लोग बेगम पारा को टीवी पर उनकी उपस्थिति के कारण पहचानते थे। उन्हें एक सिख के साथ देखकर उत्सुकता हुई।

हमें दो लोगों के लिए एक मेज पर बैठाया गया। हमने अपना खाना ऑर्डर किया। वेटर ने पूछा, 'खाना आने तक आप कुछ पीना चाहेंगे?' मैंने जवाब दिया, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए,' और बेगम पारा की तरफ देखा। उन्होंने कहा, 'मैं एक और स्कॉच और सोडा लूंगी।' सूप आने से पहले ही उन्होंने दो और पी लिए। उनकी ज़बान लड़खड़ाने लगी, उनकी आँखें बेजान सी हो गईं। वह खाने के साथ एक और ड्रिंक लेना चाहती थीं। मैंने साफ मना कर दिया।

आखिरकार खाना खत्म हुआ। मैं बेगम पारा को कुर्सी से उठाने में मदद करने के लिए उठा। वह खड़ी हुई, थोड़ा लड़खड़ा गई और कालीन पर गिर पड़ीं। वेटर उन्हें उठाने के लिए दौड़ पड़े। मैंने उनका हाथ पकड़कर उन्हें सीढ़ियों तक चलने में मदद की। भोजन कक्ष में सबकी निगाहें हम पर थीं। घुमावदार सीढ़ियों से उतरते समय मैं दुगनी सावधानी बरत रहा था। मैंने उनका मोटा हाथ कसकर पकड़ा और उन्हें आदेश दिया: 'एक-एक कदम करके।' हम लॉबी तक पहुँच गए। मैंने उनके लिए टैक्सी मंगवाई और धैर्यपूर्वक इस परेशानी के खत्म होने का इंतजार किया। एक टैक्सी बरामदे में आकर रुकी। मैंने ड्राइवर को सौ रुपये का नोट दिया और उसे महिला को घर छोड़ने के लिए कहा। उसने बेगम पारा को पहचान लिया और जानता था कि वह कहाँ रहती हैं। मैंने टैक्सी का पिछला दरवाजा खोला और बेगम पारा की मदद करने के लिए वापस गया। जैसे ही उन्होंने आगे कदम बढ़ाया, उनका पैर फिसल गया और वह एक बार फिर जमीन पर गिर पड़ीं, इस बार जोर से पाद के साथ। उनके टखने में मोच आ गई थी और वह दर्द से चीखने लगीं। ‘हे रब्बा, मैं मर गई!’ — हे भगवान, मैंने खुद को मार डाला। भीड़ जमा हो गई। मुस्लिम देश होने के कारण कोई भी गैर-रिश्तेदार पुरुष किसी महिला को छू नहीं सकता था। मैंने उसे उठाने की पूरी कोशिश की। वह मेरे लिए बहुत भारी थी। मैंने कार चालक से मदद की गुहार लगाई। मेरी पहले से दी गई सलाह काम आई। हमने उसे उठाया और सीट पर बिठा दिया। मैंने दरवाजा जोर से बंद किया और उसे जल्दी से विदा किया। मैं भीड़ से निकलकर जितनी जल्दी हो सके अपने कमरे की ओर भागा।

कुछ मिनट बाद मेरे दरवाजे पर दस्तक हुई। मैंने दरवाजा खोला तो सामने एक सब-इंस्पेक्टर खड़ा था जिसके निचले होंठ से सिगरेट लटक रही थी। वह जबरदस्ती अंदर घुस आया और एक कुर्सी पर बैठ गया। उसने लगभग खाली स्कॉच की बोतल और सोडा वाटर की बोतलों के ढेर पर नजर डाली। 'पासपोर्ट!' उसने अशिष्टता से आदेश दिया।

मैंने अपना पासपोर्ट निकालकर उसे दे दिया। उसने उसके पन्ने पलटे। उसने अभद्र लहजे में पूछा, 'क्या आपने पुलिस स्टेशन में अपने आने की सूचना दी थी?'

मैंने जवाब दिया, 'मुझे ऐसा करने से छूट दी गई है।'

उन्होंने वीजा पर दोबारा नजर डाली और उसमें कोई खामी नहीं पाई।

कराची में आपका क्या व्यवसाय है?

मुझे कोई काम नहीं है। मैं इस्लामाबाद जा रहा हूँ।

वह मेरे पासपोर्ट के पन्ने पलटता रहा और साथ ही सिगरेट पीता रहा।

आप क्या करते हैं? क्या आप सूखे मेवों का व्यापार करते हैं?

‘नहीं, मैं एक पत्रकार हूँ।’ उस घमंडी सब-इंस्पेक्टर के प्रति मेरा धैर्य अब समाप्त हो रहा था।

आप इस्लामाबाद में कहाँ ठहरेंगे?

'आपके प्रधानमंत्री श्री भुट्टो के साथ। मैं उनका अतिथि हूं।'

यह बात पूरी तरह सच नहीं थी, लेकिन इसका असर ज़बरदस्त था। पुलिसकर्मी ने झटपट अपनी सिगरेट बुझाई और खड़ा हो गया। 'क्या तुम कोई गुप्त मंत्री हो?'

'नहीं,' मैंने जवाब दिया। 'मैं श्री भुट्टो को व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ।'

उस आदमी ने मुझे एक शानदार सलाम किया और बाहर चला गया।

जनरल टिक्का खान का साक्षात्कार लेने वाला पहला भारतीय पत्रकार बनने की मेरी उतनी ही तीव्र इच्छा थी, जितनी कि जनरल टिक्का खान की किसी भी भारतीय से कोई वास्ता न रखने की ज़िद थी। भारतीय प्रेस द्वारा उन्हें 'बांग्लादेश का कसाई' कहे जाने से वे नाराज़ थे और भारतीय सेना द्वारा पाकिस्तान को दी गई अपमानजनक पराजय से आहत थे। साक्षात्कार के लिए लिखे मेरे पत्र का उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। मेरे मित्र मंजूर कादिर ने मेरी ओर से हस्तक्षेप किया और उन्हें 'पाकिस्तान के मित्र' के रूप में मुझसे बात करने के लिए राजी किया।

जनरल टिक्का खान ने अपने बंगले में मेरा बड़े ही सलीके से स्वागत किया। वे कद में छोटे और गठीले शरीर वाले, गंभीर चेहरे के व्यक्ति थे। वे किसी सैनिक से ज़्यादा बैंक क्लर्क जैसे दिखते थे। उनके साथ उनका अर्दली था, जो पठान शैली की टोपी और कड़क कड़क पगड़ी पहने एक विशालकाय व्यक्ति था। जब मैंने चारों ओर देखा तो मुझे सेना के उच्च अधिकारियों के घरों में आमतौर पर पाई जाने वाली चीज़ें नज़र आईं - रेजिमेंट के प्रतीक चिन्ह, ट्राफियां और चांदी के फ्रेम में लगी तस्वीरें। मेंटलपीस और दीवारों पर कुरान के उद्धरण लिखे हुए थे, जिनमें से एक को मैं समझ पाया। मैंने उसे अपने तक ही सीमित रखा क्योंकि मुझे लगा कि जनरल से बातचीत के दौरान वह काम आ सकता है।

वह एक कड़वे स्वभाव का व्यक्ति था। उसका मानना था कि भारतीय और विदेशी समाचार पत्रों में छपी पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा किए गए सामूहिक नरसंहार और बलात्कार की खबरें झूठी थीं। उसने मेरी आँखों में सीधे देखते हुए कहा, 'हम ईश्वर से डरने वाले लोग हैं, मेरे सैनिक अनुशासित थे। उन्होंने निर्दोष बंगालियों पर गोलियां नहीं चलाईं और न ही उनकी महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया। ये झूठ आप भारतीयों ने फैलाए हैं और ब्रिटिश समाचार पत्रों से हमारे खिलाफ ये झूठे आरोप छपवाए हैं।'

मैंने थोड़ा विरोध जताया। मैंने उनसे कहा कि युद्ध के तुरंत बाद मैं बांग्लादेश गया था और वहाँ मैंने बांग्लादेशी मुसलमानों के मुँह से पाकिस्तानी सैनिकों और अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों की कहानियाँ सुनी थीं। मैंने कहा, 'ये सब झूठ नहीं हो सकते।' 'और मैंने पाकिस्तानियों के प्रति भारी आक्रोश देखा। अगर भारतीय सैनिकों ने उनकी रक्षा न की होती, तो पाकिस्तानी युद्धबंदियों को बांग्लादेशी भीड़ पीट-पीटकर मार डालती।'

उन्होंने स्वीकार किया, ‘कुछ घटनाएं जरूर हुई होंगी। हर समूह में कुछ बुरे लोग होते हैं। और आप जानते ही हैं कि बंगाली लोग हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर बताने के कितने आदी होते हैं!’ उन्होंने एक उर्दू शेर उद्धृत किया:

Shauq-e-tool-o-peych is zulmat qade mein hai agar
Bengalee ke baat sun aur Bengalan kay baal deykh.

(अगर आपको कहानी को लंबा करना पसंद है, तो उसके अंत में एक नया मोड़ डालें, किसी बंगाली को (लगातार) बोलते हुए सुनें और उसकी महिला के लंबे बालों को निहारें।)

मुझे यह बहुत मजेदार लगा और मैंने इसे अपनी नोटबुक में लिख लिया, ताकि मैं अपने बंगाली दोस्तों को चिढ़ा सकूँ। मैंने जनरल से पूछा कि पाकिस्तानी सेना ने युद्ध के मैदान में इतना खराब प्रदर्शन क्यों किया। उन्होंने जवाब दिया, 'यह निष्पक्ष लड़ाई नहीं थी। पहले तो आपने पश्चिम और पूर्वी पाकिस्तान के बीच हवाई संपर्क काट दिया। फिर आपके सैनिक पूर्वी पाकिस्तान के अंदरूनी हिस्सों में घुसपैठ कर गए, इससे बहुत पहले कि हमें युद्ध की घोषणा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। मुक्ति वाहिनी की ये सारी कहानियाँ प्रचार थीं। मुक्ति वाहिनी भारतीय सैनिक थे जिन्हें गुरिल्ला युद्ध के लिए प्रशिक्षित किया गया था; शुरू में तो उनमें बहुत कम बंगाली थे। आपने उन्हें हथियार दिए, आपके अधिकारियों ने उनका नेतृत्व और मार्गदर्शन किया। हमारी सेना को दुश्मन का सामना आगे और पीछे दोनों तरफ से करना पड़ा।'

The orderly volunteered his opinion: ‘Awaam hamarey khilaaf ho gayaa tha’—the people had turned against us.

जनरल को अपने अर्दली द्वारा राय व्यक्त करना पसंद नहीं आया और उन्होंने उसे चुप कराने के लिए हाथ उठा दिए। मैंने इसका फायदा उठाया। 'मैं भी यही कह रहा हूँ। अगर किसी देश की पूरी जनता सेना के खिलाफ उठ खड़ी हो जाए तो सेना क्या कर सकती है?'

जनरल ने कहा, 'यह भारतीय दुष्प्रचार था।' मेरे पास उनसे पूछने के लिए और कुछ नहीं था। मैंने शेल्फ पर रखी कुरान की उस पंक्ति की ओर इशारा करते हुए मासूमियत का नाटक करते हुए पूछा, 'इसका क्या अर्थ है?'

जनरल ने इसे जोर से पढ़ा: 'नस्र मिन अल्लाह फतेह-उन क़रीब। इसका अर्थ है कि अल्लाह न्यायसंगत उद्देश्य वालों को विजय प्रदान करता है।'

‘जनरल साहब, अल्लाह ने अपनी बुद्धिमत्ता से हमें विजय दिलाई क्योंकि हमारा उद्देश्य न्यायसंगत था।’

साक्षात्कार के दौरान पहली बार जनरल मुस्कुराए। ‘सरदार साहब, मुझे लगता है कि आप उस कथन का अर्थ जानते हैं।’

मैंने स्वीकार किया कि मैं जानता था। और मैं वहां से चला गया।

साप्ताहिक पत्रिका ने मुझे अन्य पुरस्कार भी दिलाए। संपादक का पृष्ठ व्यापक रूप से पढ़ा जाने लगा: इसने स्वतंत्र स्तंभकार के रूप में मेरे आगे के करियर का मार्ग प्रशस्त किया। इसने मेरे लिए अनेक द्वार भी खोले। राज्यों के मुख्यमंत्री और केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य मुझसे परामर्श लेने के लिए उत्सुक रहते थे। (रेल मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी ने मुझे भारत में कहीं भी यात्रा करने की निःशुल्क अनुमति दी।) श्रीमती गांधी जब भी मैं साक्षात्कार मांगता, सहर्ष मुझे साक्षात्कार देती थीं। पत्रकारिता और साहित्य में मेरे कथित योगदान को देखते हुए, श्रीमती गांधी की प्रिय रजनी पटेल को फातिमा और रफीक जकारिया ने पद्म भूषण पुरस्कार के लिए मेरा नाम सुझाया। 1975 में मुझे राष्ट्रपति वी.वी. गिरि से यह पुरस्कार प्राप्त हुआ।

सफलता मेरे सिर पर चढ़ गई। मैं नाम-गिरामी बन गया। मेरी पत्नी और बेटी ने ही मुझे थोड़ा संयम सिखाया। लेकिन मेरे अहंकार को बढ़ाने वाले और भी बहुत से लोग थे। मैं 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' को अपना बच्चा समझने लगा था, कि जिस दिन मैं इसे छोड़ूंगा, यह मुरझा जाएगा। ऐसा घमंड घातक हो सकता है। मेरे कर्मों का फल मिलने वाला था।

संपादक के रूप में मेरे कार्यकाल के कुछ सकारात्मक पहलू भी थे। कुछ विषयों पर मेरे सकारात्मक विचार थे जिन्हें मैंने पूरी स्वतंत्रता से व्यक्त किया। इनमें से एक विषय भारतीय मुसलमानों की दुर्दशा थी। मुझे लगता था कि उनके साथ भेदभाव किया जाता है और उन पर पाकिस्तान समर्थक होने का आरोप लगाकर उन्हें संदेह की नज़र से देखा जाता है। जब भी पाकिस्तान के साथ तनाव बढ़ता, उनकी वफादारी पर संदेह होने लगता था। उन्हें सरकारी नौकरी मिलना मुश्किल था और निजी स्वामित्व वाले उद्योगों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में नौकरी पाना लगभग असंभव था, जिन पर अधिकतर हिंदुओं का नियंत्रण था। उनके पास अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए लगभग कोई मंच नहीं था, सिवाय उर्दू समाचार पत्रों के, जिनका प्रसार बहुत कम था और जो केवल उनके समुदाय तक ही सीमित थे। मैंने 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' को भारतीय मुस्लिम विचारों का मंच बनाया। जब भी हिंदू-मुस्लिम दंगे होते, और चूंकि जान-माल का नुकसान ज्यादातर मुसलमानों का होता था, तब मैं स्पष्ट रूप से मुस्लिम समर्थक रुख अपनाता था। मुझे यह भी लगता था कि भारतीय मुसलमानों के मन में सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध आवश्यक हैं। मैंने उन मुद्दों पर पाकिस्तान का दृष्टिकोण रखने की पूरी कोशिश की जहां भारत और पाकिस्तान के रुख में मतभेद थे। पाकिस्तान के संस्थापक पिता श्री जिन्ना की सौवीं जयंती पर, जिनका नाम भारत में बेहद नापसंद किया जाता है, मैंने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक विशेष अंक प्रकाशित किया, जिसके मुखपृष्ठ पर उनका चित्र था। पाकिस्तान से 10,000 प्रतियों का ऑर्डर मिला। अंक प्रकाशित होते ही ऑर्डर रद्द कर दिया गया। इसका कारण यह था कि जिन्ना के मित्र जे.एन. साहनी द्वारा लिखे गए एक लेख में उन्होंने बॉम्बे उच्च न्यायालय में जिन्ना और उनकी पारसी पत्नी के साथ दोपहर के भोजन का जिक्र किया था, जब जिन्ना ने शेरी का एक गिलास लिया और हैम सैंडविच खाए थे। हालांकि यह सच था, लेकिन पाकिस्तान में इसे स्वीकार नहीं किया

गया। हालांकि 1971 में बांग्लादेश युद्ध के दौरान मैंने जनरल याह्या खान के सैन्य शासन और जनरल टिक्का खान द्वारा बंगालियों के नरसंहार की कड़ी निंदा की थी, फिर भी युद्ध समाप्त होने के बाद इलस्ट्रेटेड वीकली एकमात्र भारतीय पत्रिका थी जिसने सरकार पर 93,000 पाकिस्तानी युद्धबंदियों को रिहा करने का दबाव बनाए रखा। मैंने गगनभाई मेहता (जो कभी अमेरिका में भारत के राजदूत थे) और लेखकों ख्वाजा अहमद अब्बास और कृष्ण चंद्र सहित चार सदस्यों का एक प्रतिनिधिमंडल श्रीमती गांधी से मिलने के लिए भेजा, ताकि युद्धबंदियों की रिहाई में मदद की जा सके। उन्होंने गगनभाई को अमेरिकी कठपुतली कहकर उनका अपमान किया और अब्बास और कृष्ण चंद्र को चुप करा दिया। फिर उन्होंने मेरी ओर मुड़कर कहा कि मेरे लेखन से उन्हें शर्मिंदगी हो रही है। मैंने जवाब दिया कि मेरा उद्देश्य उन्हें शर्मिंदा करना था और मुझे खुशी है कि मैं इसमें सफल हो रहा हूँ। उन्होंने मुझे तिरस्कार भरी निगाहों से देखा और कहा, 'श्री सिंह, आप खुद को महान संपादक समझ सकते हैं, लेकिन मैं आपको बता दूं, आपको राजनीति का जरा भी ज्ञान नहीं है।' मैंने स्वीकार किया कि मुझे राजनीति का बहुत कम ज्ञान है और आगे कहा, 'श्रीमती गांधी, मेरा मानना है कि जो नैतिक रूप से गलत है, वह राजनीतिक रूप से कभी सही नहीं हो सकता। युद्ध समाप्त होने के बाद युद्धबंदियों को हिरासत में रखना नैतिक रूप से गलत है।' श्रीमती गांधी ने फिर अपनी बड़ी, गहरी आँखों से मुझे घूरा और मेरा अपमान किया। 'नैतिकता पर मुझे उपदेश देने के लिए धन्यवाद।' और हमें विदा कर दिया। मुझे लगा कि वो मुझसे फिर कभी बात नहीं करेगी। लेकिन कुछ दिनों बाद, जब वो बॉम्बे में गवर्नर अली यावर जंग और उनकी पत्नी बेगम ज़हरा के साथ ठहरी हुई थी, तो उसने मुझे बड़े, भीड़ भरे स्वागत कक्ष में ढूँढा और बड़े दोस्ताना अंदाज़ में मुझसे बातचीत की। मुझे पता चल गया कि मैंने अपनी बात मनवा ली थी।

साप्ताहिक पत्रिका में इस्लाम, इस्लामी इतिहास और स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय मुसलमानों की भूमिका पर बड़ी संख्या में लेख प्रकाशित होते थे। मैंने अपने स्टाफ में दो मुसलमानों को नियुक्त किया: प्रसिद्ध उपन्यासकार कुर्रतुलैन हैदर (जिन्हें बाद में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला) और एम.जे. अकबर, जो अपने पेशे में शीर्ष पर पहुंचे, द टेलीग्राफ के संपादक बने और संसद सदस्य भी। साल में पड़ने वाली तीनों ईदों पर हम अपने मुस्लिम भाइयों को शुभकामनाएं देने के लिए मुखपृष्ठ पर एक बॉक्स रखते थे। एक बार रक्षा बंधन पर मैंने लता मंगेशकर को दिलीप कुमार (यूसुफ खान) की कलाई पर राखी बांधने के लिए राजी किया। हमने उनकी तस्वीर मुखपृष्ठ पर छापी। मेरा मानना है कि मैं भारतीय मुसलमानों को मुझे एक मित्र के रूप में देखने में सफल रहा: जब मुझे राज्यसभा सदस्य के रूप में नामित किया गया तो कई लोगों ने कहा, 'संसद में एक और मुस्लिम आ गया है।' मेरे विचारों से असहमत लोगों ने मुझे पाकिस्तान का अवैतनिक एजेंट कहा। मैंने दोनों ही विचारों को प्रशंसा के रूप में लिया।

मेरी परीक्षा का समय तब आया जब मई 1975 में श्रीमती गांधी ने देश में आपातकाल लागू कर दिया और जयप्रकाश नारायण समेत कई लोगों को गिरफ्तार कर लिया, जिनकी मैं बहुत प्रशंसा करता था। मैंने 1967 में बिहार के अकाल के

दौरान उनके और उनकी पत्नी के साथ कुछ दिन बिताए थे। हालांकि, मुझे लगा कि उनका पूर्ण क्रांति का आह्वान, जिसमें जनता द्वारा चुने गए सदस्यों को उनके कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकने के लिए विधानसभाओं का घेराव शामिल था, लोकतंत्र के एक बुनियादी नियम का उल्लंघन था। मैंने उन्हें पत्र लिखकर यही बात कही। उन्होंने मुझे अपने पक्ष का बचाव करते हुए एक लंबा उत्तर भेजा। मैंने उनका पत्र पूरा प्रकाशित किया। अराजकता का माहौल छा गया था। हर दिन किसी न किसी तरह का बंद होता था; देश के प्रभावित हिस्सों में स्कूल और कॉलेज हफ्तों तक बंद रहे। सड़कों पर बड़े-बड़े जुलूस निकले, दुकानों के शीशे तोड़े और सड़कों पर खड़ी कारों को तोड़फोड़ कर नुकसान पहुंचाया। श्रीमती गांधी हताश हो गईं। उनकी स्थिति तब और भी कमजोर हो गई जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उन्हें चुनावी कदाचार का दोषी पाया और संसद की सदस्यता से अयोग्य घोषित कर दिया। उनके बेटे संजय और सिद्धार्थ शंकर राय जैसे सलाहकारों ने उन्हें संविधान को निलंबित करने, विपक्ष के सदस्यों को गिरफ्तार करने और प्रेस की आवाज दबाने के लिए राजी कर लिया था।

मैं उस समय मेक्सिको में था और आपातकाल की घोषणा के अगले दिन सुबह बंबई लौटा। मैं बेहद निराश था। मैं टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के उन सदस्यों के साथ था जिन्होंने हम पर थोपी गई सेंसरशिप के आगे न झुकने का संकल्प लिया था। विरोध करने से इनकार करने वालों में टाइम्स ऑफ इंडिया के संपादक शाम लाल भी थे; वहीं, किसी भी पक्ष में कोई प्रतिबद्धता न जताने वालों में इंदर मल्होत्रा भी थे। उसी शाम मेरी मित्र रजनी पटेल, जो टाइम्स ऑफ इंडिया के निदेशक मंडल की सदस्य और श्रीमती गांधी की विश्वासपात्र थीं, ने मुझे फोन किया और साफ-साफ कहा: 'मेरे मित्र, अगर आप जेल जाकर शहादत पाना चाहते हैं, तो हमें आपकी मदद करने में खुशी होगी।' निदेशक मंडल के अध्यक्ष न्यायमूर्ति के.टी. देसाई ने धैर्य रखने की सलाह दी: 'आप अपना समय लें। लेकिन अगर आप प्रकाशन से इनकार करते हैं, तो हमें किसी और संपादक की तलाश करनी पड़ेगी,' उन्होंने कहा।

आपातकाल के प्रति मेरा रवैया अस्पष्ट था। मैंने कानून तोड़ने वालों (जिनमें जयप्रकाश नारायण भी शामिल थे) पर नकेल कसने के कदम का समर्थन किया, लेकिन मुझे लगा कि प्रेस पर सेंसरशिप उल्टा असर डालेगी क्योंकि इससे श्रीमती गांधी का समर्थन करने वाले मेरे जैसे संपादकों की विश्वसनीयता कम हो जाएगी। मैंने तीन सप्ताह तक 'द वीकली' का प्रकाशन नहीं किया, और जब प्रकाशन फिर से शुरू करने के लिए मजबूर किया गया तो मैंने निर्देश दिया कि श्रीमती गांधी या उनके मंत्रियों की कोई भी तस्वीर प्रकाशित न की जाए। मेरे साथ नरमी से व्यवहार किया गया, क्योंकि श्रीमती गांधी और संजय मुझे अपना मित्र मानते थे। मुझे श्रीमती गांधी से मिलने के लिए दिल्ली बुलाया गया। मैंने अपने जैसे लोगों पर लगाई गई सेंसरशिप का विरोध किया। मैंने अपनी बात रखी। जाने से पहले मैंने उनसे कहा, 'मेरे परिवार को पूरा यकीन है कि अगर मैंने अपने मन की बात कही, तो आप मुझे जेल में डाल देंगी।' वह मुस्कुराईं और मुझे विदा किया। 'द वीकली' को एक

विशेष मामले के रूप में देखा गया। मैंने आपातकाल के आलोचकों के लेख प्रकाशित किए और राजनीतिक कैदियों की रिहाई की अपील की।

श्रीमती गांधी से मेरी मुलाकात गुप्त रखी जानी थी। बंबई लौटते ही मुझे अपनी मेज पर एक पत्र मिला, जिस पर लिखा था, 'महोदयाकार महोदया से आपकी मुलाकात कैसी रही? जॉर्ज।' यह पत्र जॉर्ज फर्नांडीस का था, जो उस समय भूमिगत थे। कुछ दिनों बाद, आरएसएस के चार वरिष्ठ सदस्य, जिनके खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किए गए थे, बड़ी सहजता से मेरे कार्यालय में आए, मेरे साथ कॉफी पी और मुझसे पूछा कि प्रधानमंत्री से मेरी मुलाकात में क्या बात हुई। मुझे यह आभास हुआ कि आरएसएस आपातकाल के खिलाफ नहीं था और अगर उसके नेताओं को रिहा कर दिया जाए तो वह सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार होगा।

कुछ हफ्तों तक 'द वीकली' के हर लेख को सेंसर से मंज़ूरी लेनी पड़ती थी। वे सिर्फ़ राजनीति पर ध्यान देते थे और मेरी पत्रिका में राजनीति न के बराबर होती थी। 'प्लेबॉय' के भारतीय संस्करण 'डेबोनेयर' के संपादक ने मुझे बताया कि जब भी वे अपनी सामग्री मंज़ूरी के लिए ले जाते थे, सेंसर लेखों और लड़कियों की तस्वीरों को यह कहकर खारिज कर देता था, 'पोर्न ठीक है, राजनीति नहीं।'

आपातकाल के दौरान सत्ता में बैठे लोगों में पैदा हुई गैरजिम्मेदाराना अकड़ का उदाहरण दिल्ली से लौटने के कुछ दिनों बाद ही देखने को मिला। राजभवन में राज्यपाल अली यावर जंग ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के सम्मान में भोज का आयोजन किया। राष्ट्रपति ने आपातकाल की आलोचना करने वाला कोई लेख पढ़ा था और यह मानकर (गलत तरीके से) कि वह लेख 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' में छपा है, मुझसे मज़ाकिया लहजे में पूछा, 'क्या कर रहे हो? किसी ने तुम्हें आपातकाल के बारे में बताया ही नहीं?' मुझे उनकी बात समझ नहीं आई और मैंने अपनी अनभिज्ञता जताई। राष्ट्रपति के बगल में बैठे महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री एस.बी. चव्हाण को भी कुछ समझ नहीं आया। तथ्यों की जाँच किए बिना ही उन्होंने 'द वीकली' के खिलाफ कार्रवाई का आदेश दे दिया। जब मैं कार्यालय लौटा तो मुझे एक आदेश मिला जिसमें हर लेख और चित्र को प्रकाशन से काफी पहले सेंसर के पास भेजने को कहा गया था। मैंने श्रीमती गांधी को फोन किया और उनके प्रेस सलाहकार शारदा प्रसाद से बात हुई। श्रीमती गांधी को उसी शाम मॉस्को के लिए रवाना होना था। शारदा प्रसाद ने आपत्तिजनक लेख को पहचान लिया। वह लेख 'फेमिना' में छपा था। राष्ट्रपति ने अपनी गलती स्वीकार की, एस.बी. चव्हाण को द इलस्ट्रेटेड वीकली के खिलाफ अपना आदेश वापस लेने के लिए कहा गया और उन्हें इसे जारी करने के दो घंटे के भीतर ऐसा करना पड़ा।

गांधी परिवार के सदस्यों द्वारा बदले की भावना से कई लोगों को जेल में डाला गया था। उनमें से एक थीं प्रिमिला (किन्ना) लुईस, जो हमारे घनिष्ठ मित्र विलबर्न और उषा लाल की बेटी थीं। उनकी शादी एक अंग्रेज चार्ल्स लुईस से हुई थी, जो

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस में काम करते थे। उनका एक छोटा बेटा था। किन्ना ने दिल्ली के आसपास के गांवों में खेतिहर मजदूरों को संगठित किया था, और श्रीमती गांधी का छतरपुर गांव के पास इन्हीं गांवों में से एक में एक फार्म हाउस था। किन्ना जेल में बंद रहने और अपने परिवार से अलग रहने से तंग आ चुकी थीं। उनकी बहन और मां ने मुझसे श्रीमती गांधी पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके उन्हें रिहा करवाने का अनुरोध किया। किन्ना लिखित माफीनामा देने को तैयार थीं। मैं लंदन के किंग्स कॉलेज में अपने सहपाठी रहे लेफ्टिनेंट-गवर्नर किशन चंद से मिलने दिल्ली गया। उन्होंने मामले को उठाने का वादा किया और मुझे आश्वासन दिया कि वे किन्ना की रिहाई करवा देंगे। लेकिन श्रीमती गांधी ने हार मानने से इनकार कर दिया। बेचारी लड़की ने आपातकाल का डेढ़ साल जेल में बिताया। बाद में उन्होंने अपने अनुभव पर एक किताब लिखी। उन्होंने खुद को एक नायिका के रूप में प्रस्तुत किया, यह स्वीकार किए बिना कि उनका दृढ़ संकल्प टूट चुका था और वे माफी मांगने को तैयार थीं। मेरा मानना है कि गायत्री देवी, जयपुर की राजमाता और कई अन्य लोगों के साथ भी ऐसा ही हुआ था। जिन पूरी तरह निर्दोष लोगों को गिरफ्तार किया गया, उनमें पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री भीम सैन सच्चर भी थे, जिनकी उम्र उस समय सत्तर के दशक के अंत में थी। श्रीमती गांधी में करुणा का कोई अभाव नहीं था। आपातकाल की शक्तियों ने कई सरकारी कर्मचारियों का दिमाग खराब कर दिया: वे असभ्य और अत्याचारी बन गए। कुछ ऐसे भी थे जो नाखुश होते हुए भी बिना विरोध किए आदेशों का पालन करते रहे। मेरे मित्र किशन चंद उनमें से एक थे। आपातकाल हटने और सत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ जांच शुरू होने के बाद, किशन चंद तनाव सहन नहीं कर सके। उन्होंने उर्दू में एक छोटा सा नोट लिखा: "जिल्लत से मौत अच्छी है" और एक कुएं में कूद गए।

एक लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका का संपादक होने के नाते, फिल्म उद्योग में मेरी काफी मांग थी। मैं कभी भी फिल्मों का शौकीन नहीं था, न ही अब हूं। और मैंने हिंदी फिल्मों का जो थोड़ा-बहुत हिस्सा देखा था, उससे अभिनेताओं, निर्देशकों, निर्माताओं, संगीतकारों या पार्श्व गायकों के प्रति कोई सम्मान नहीं जागा। लाहौर के मेरे कुछ दोस्तों ने अच्छा काम किया था: बलराज साहनी, उमा कश्यप (कामिनी कौशल) और देव आनंद उच्च श्रेणी के अभिनेता थे; बी.आर. चोपड़ा शीर्ष निर्माता-निर्देशकों में से थे; चेतन आनंद की कई फिल्में फ्लॉप रहीं। कई नए अभिनेता, निर्देशक और गायक उभर कर आए थे। मैंने फिल्मफेयर और स्टारडस्ट जैसी फिल्म पत्रिकाओं में उनकी तस्वीरें देखी थीं।
फिल्म जगत की हस्तियों में मेरी दिलचस्पी देवयानी चौबल की वजह से बढ़ी, जो नलिनी की छोटी बहन थीं और जिन्होंने लंदन में मेरे साथ कुछ समय काम किया था। देवयानी के फिल्म सितारों के निजी जीवन पर लिखे गए तीखे लेख मुझे बहुत पसंद आए। ये लेख उन्होंने हिंदुस्तानी-अंग्रेज़ी (हिंग्लिश) शैली में लिखे थे, जो मुझे बेहद पसंद आई। एक लंच पार्टी में हमारी पहली मुलाकात में ही हमें लगा कि हम एक-दूसरे के लिए ही बने हैं। वह मुझसे कुछ इंच लंबी और काफी हष्ट-पुष्ट

थीं। फिर भी, वह बेहद खूबसूरत थीं, उनकी काली पलकें तलवार की तरह ऊपर की ओर मुड़ी हुई थीं। उनकी आवाज़ भारी और मर्दाना थी और वह कमाल की मिमिक्री करती थीं। फिल्म सितारों के बारे में लिखे गए लेखों की वजह से अक्सर उन्हें उनसे परेशानी होती थी।

एक बार देवयानी ने धर्मेंद्र का प्रोफाइल लिखा, जो उस समय फिल्म जगत के शिखर पर थे। उन्होंने धर्मेंद्र को एक ऐसे महारथी के रूप में चित्रित किया जो प्रतिदिन तीन-चार महिलाओं के साथ संबंध बना सकता था। धर्मेंद्र की पत्नी और बच्चे थे। साथ ही एक प्रेमिका भी थी - हेमा मालिनी, जो उनकी दूसरी पत्नी बनीं और दो और बच्चों की मां बनीं। इन दोनों के अलावा, देवयानी ने आरोप लगाया कि अगर उनके साथ काम करने वाली अभिनेत्रियां यौन संबंध बनाने के लिए उत्सुक होतीं, तो वह खुशी-खुशी उनकी इच्छा पूरी कर देते थे। धर्मेंद्र क्रोधित हो गए। उन्होंने रेस कोर्स के पास कहीं देवयानी को रोक लिया। देवयानी भागने की कोशिश कर रही थीं, लेकिन उनके भारी-भरकम शरीर और साड़ी ने उन्हें ज्यादा दूर तक भागने में मदद नहीं की। मुझे यकीन नहीं है कि धर्मेंद्र ने उन्हें पीटा था या नहीं, लेकिन उन्होंने उनके खिलाफ मारपीट की शिकायत दर्ज कराई। अगले दिन के अखबारों ने इस घटना को अपने पहले पन्ने पर छापा। देवयानी के प्रति मेरे स्नेह के बावजूद, मैंने अपने कॉलम में लिखा कि अगर मैं उनकी जगह होता, तो मैं भी वही करता जो धर्मेंद्र ने उनके साथ किया था। पुलिस ने देवयानी की शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। धर्मेंद्र मुझसे पुलिस केस से बचाने के लिए धन्यवाद देने आए। जब देवयानी मेरे दफ्तर आई तो उसने मुझे निराश करने के लिए जमकर खरी-खोटी सुनाई, लेकिन इससे हमारी दोस्ती पर कोई फर्क नहीं पड़ा।

कुछ महीनों बाद देवयानी एक और मुसीबत में फंस गई, इस बार एक ऐसे अभिनेता के साथ जिसकी लोकप्रियता तेज़ी से गिर रही थी। उसके यौन कारनामों के अलावा, उन्होंने उसके अभिनय कौशल पर भी सवाल उठाए। वह जुहू के सन-एन-सैंड्स होटल में एक फिल्म पार्टी में थीं। मेहमानों से गपशप करने के बाद, वह समुद्र तट के सामने एक चबूतरे पर बैठी समुद्र को निहार रही थीं। अभिनेता के दो बेटे, दोनों शराब के नशे में चूर, ने उन्हें देख लिया और अचानक उन पर टूट पड़े। 'अरे कुतिया, हमारे पिता के बारे में गंदी बातें लिखने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई!' वे चिल्लाए। 'अब ये लो,' एक ने कहा और बीयर की बोतल का सारा तरल देवयानी के सिर पर उड़ेल दिया। वह मदद के लिए चिल्लाई: 'बचाओ - मुझे बचाओ।' किसी भी मेहमान ने उन्हें बचाने की ज़हमत नहीं उठाई: उन्हें उनकी बेइज्ज़ती देखकर मज़ा आ रहा था। लड़कों ने बीयर की एक और बोतल उनके सिर पर खाली कर दी और उन्हें साफ-साफ बता दिया कि अगर उन्होंने दोबारा ऐसा कुछ लिखा तो वे क्या करेंगे। बड़ी मुश्किल से देवयानी ने खुद को छुड़ाया और पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज कराई। अगली सुबह वह मुझे दफ्तर में मिलने आई और अपना भयानक अनुभव सुनाया। उसकी आँखों से आंसू बह रहे थे, लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा था कि वह सचमुच धमकियों से परेशान थी या फिर उनके पूरा होने का इंतज़ार कर रही थी। 'जानती हो उन लोगों ने

क्या कहा? उन्होंने कहा कि हम तुम्हें तब तक मारेंगे जब तक तुम काली-नीली न हो जाओ; हम तुम्हें तब तक गुदा मैथुन करेंगे जब तक तुम्हारी मोटी गांड दुखने न लगे।' आँसुओं के बीच उसने उनके शब्दों को दोहराया और उनके हाव-भाव भी दोहराए, मानो उसे उस अनुभव में मज़ा आ रहा हो।

देवयानी मुझे राज कपूर के निजी सिनेमाघर में सत्यम, शिवम, सुंदरम के शुरुआती दृश्य दिखाने ले गई। मैं अपने साथ ऊपर वाले मकान में रहने वाले सिंधी परिवार के सदस्यों को भी ले गया—शीला, उसकी बेटी ज्योति और उनकी नौकरानी फातिमा, सभी महान अभिनेता से मिलने के लिए बहुत उत्सुक थीं। ज़ीनत अमान भी मौजूद थीं। मैं राज कपूर और ज़ीनत के बीच बैठा था। देवयानी मेरे मेहमानों के साथ मेरे पीछे वाली पंक्ति में बैठी थीं। हमने ज़ीनत को गाँव के तालाब से बाहर निकलते देखा, उनकी गीली साड़ी उनके शरीर से चिपकी हुई थी और उनके सुडौल वक्षस्थल स्पष्ट दिख रहे थे। राज ने मुझसे उत्साह से कहा, 'मैं तो वक्षस्थल का दीवाना हूँ, क्या तुम नहीं?' मैंने भी माना कि सुडौल वक्षस्थलों की अपनी अलग ही बात होती है। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी लाल परी कैसी है?' उनका इशारा शीला की ओर था, जिसने चमकीली लाल साड़ी पहनी हुई थी। उन्हें लगा कि वह मेरी प्रेमिका है।

मैंने जवाब दिया, 'मुझे कोई जानकारी नहीं है।'

‘बोलते रहो, तुम बदमाश!’ उसने ज़िद की। ‘वह मुझे ठीक-ठाक लग रही है। लेकिन ब्लाउज के अंदर क्या है, यह तो कोई बता ही नहीं सकता, है ना?’

एक बार रफ़ीक़ ज़कारिया मुझे एक संगीत कार्यक्रम में ले गए। हम थोड़ा देर से पहुँचे। उन्होंने अपनी पहली पंक्ति की सीट मुझे दे दी और कहा, 'तुम इससे बात करो।' बगल वाली सीट पर बैठी महिला ने मुझे देखकर मुस्कुरा दिया। वह वाकई बेहद खूबसूरत थीं, लेकिन मैं उन्हें पहचान नहीं पाई। जब लाइटें जलीं तो मैंने उनसे कहा कि हमारा परिचय नहीं हुआ था। उन्होंने जवाब दिया, 'मैं मीना कुमारी हूँ।' यह नाम मुझे हल्का-सा जाना-पहचाना लगा, लेकिन इससे मुझे और कुछ याद नहीं आया। मैंने उनसे पूछा, 'आप क्या काम करती हैं?' उन्होंने जवाब देना उचित नहीं समझा - बस अपनी सिगरेट जलाई और दूसरी तरफ बैठे व्यक्ति से बात करने लगीं। मीना कुमारी उस समय हिंदी सिनेमा की सबसे बड़ी अभिनेत्री थीं।

नरगिस दत्त से मेरी मुलाकात फेमिना पत्रिका के संपादक गुलशन इविंग के जरिए हुई। मैंने उन्हें फिल्म 'मदर इंडिया' में मुख्य भूमिका निभाते देखा था। गुलशन ने मुझे बताया कि नरगिस मुझसे मिलना चाहती हैं। मैं बहुत खुश हुआ। दत्त परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। नरगिस फिल्मों से संन्यास ले चुकी थीं; दत्त ने अभी तक स्वतंत्र रूप से अपनी पहचान नहीं बनाई थी। उनके दो बच्चे कसौली में मेरी कुटिया से कुछ ही दूरी पर स्थित सनावर स्कूल में पढ़ते थे। जब नरगिस 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' भवन में आईं तो सब उन्हें पहचानने लगे। मेरी प्रतिष्ठा बढ़ गई। उन्होंने बड़ी झिझक के साथ मुझसे पूछा कि क्या वह अक्टूबर में सनावर संस्थापक सप्ताह के दौरान मेरी कुटिया में ठहर सकती हैं। मैंने उनसे कहा, 'सिर्फ एक शर्त

पर।' वह थोड़ी आशंकित दिखीं। 'मेरी शर्त यह है कि इसके बाद मुझे सबको यह बताने की अनुमति हो कि नरगिस मेरे बिस्तर पर सोई थीं।' वह जोर से हंस पड़ीं, 'ठीक है!' उन्होंने मेरी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा। हम दोनों को एक ही समय पर राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया और हमें अगल-बगल सीटें दी गईं। जब भी कोई हमें मिलवाने की कोशिश करता, तो वह कहती, 'आपको हमें मिलवाने की जरूरत नहीं है; मैं उसके बिस्तर पर सो चुकी हूं।'

देव आनंद की पार्टी में मेरी मुलाकात परवीन बाबी से हुई। आमतौर पर कॉकटेल पार्टियों में मैं चुपचाप एक कोने में जाकर कुछ ड्रिंक्स पीता और किसी का ध्यान खींचे बिना निकल जाता था। उस शाम परवीन आईं और मेरी कुर्सी के पास कालीन पर बैठ गईं। उनके बाल कितने खूबसूरत और लंबे थे! और उनकी आंखें कितनी मोहक थीं! मैंने उनकी खूब तारीफ की। मैं आधी रात के बाद पार्टी से निकला, और अगर मुझे सुबह दिल्ली के लिए फ्लाइट न पकड़नी होती तो मैं और देर तक रुकता। मुझे बहुत कम नींद आई और मैं फ्लाइट से एक घंटा पहले सांता क्रूज़ एयरपोर्ट पहुँच गया। मैं कुछ पत्रिकाएँ लेने के लिए किताबों की दुकान पर गया। एक युवती, जो मुझे कुछ जानी-पहचानी सी लगी, ने मुझे देखकर मुस्कुराया। मैं उसके पास गया। मैंने उससे कहा, 'मुझे यकीन है कि हम पहले मिल चुके हैं। कहीं आप मुझे पहचान तो नहीं रही हैं! कुछ घंटे पहले ही तो आप कह रही थीं कि आपने मेरे जैसी खूबसूरत किसी को नहीं देखा! मैं परवीन बाबी हूँ।' उन्होंने मुझे माफ कर दिया और दिल्ली में हमारे साथ डिनर पर आने का सम्मान भी दिया।

फिल्मों से जुड़ने का मेरा सबसे करीबी मौका तब आया जब आइवरी-मर्चेंट की जोड़ी ने मेरे उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' पर फिल्म बनाने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने ज़फ़र है को निर्देशन का जिम्मा सौंपा। एक जाने-माने उर्दू लेखक को संवाद लिखने का काम सौंपा गया। उन्होंने पंजाबी शब्दों को सही ढंग से समझने के लिए हफ़्तों तक शाम-रात भर मेरी स्कॉच पीते हुए संवाद लिखे। शशि कपूर फिल्म को फाइनेंस करने और मुख्य पुरुष भूमिका निभाने के लिए तैयार हो गए थे। मेरी मुलाकात शबाना आज़मी से भी हुई, जिन्हें मैं हिंदी सिनेमा की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री मानता था और जो नायिका की भूमिका निभाने वाली थीं। छह महीने बाद, बिना किसी खेद के इस प्रोजेक्ट को बंद कर दिया गया, जबकि बाकी लोगों ने मेरा समय और ढेर सारी स्कॉच बर्बाद करने पर ज़रा भी अफ़सोस नहीं जताया।

मैंने जिन अनेक फिल्मी हस्तियों से मुलाकात की, उनमें सबसे रंगीन व्यक्तित्व हास्य कलाकार आई.एस. जौहर का था। एक अभिनेता के रूप में मेरी उनके बारे में कोई खास राय नहीं थी और शुरू में तो मुझे उनकी प्रसिद्धि पाने की भद्दी कोशिशें भी खटकती थीं। जैसे-जैसे उनका अभिनय करियर ढलान पर आया, खबरों में बने रहने के उनके हथकंडे बढ़ते गए। मैंने उनके कुछ लेख 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' में प्रकाशित किए। मीडिया को बेचने के लिए कुछ और दिलचस्प न मिलने पर उन्होंने प्रतिमा बेदी से अपनी सगाई की घोषणा कर दी। दोनों विवाहित थे और उनके बच्चे बड़े हो चुके थे। प्रतिमा ने कबीर बेदी से तलाक ले लिया था और जुहू बीच पर नग्न अवस्था में तस्वीरें खिंचवाकर भारत के अधिकांश अखबारों में सुर्खियां बटोरी थीं।

उनका कद-काठी आकर्षक था। जौहर ने रमा से शादी की थी, जिनसे उन्हें एक बेटा और एक बेटी हुई थी। रमा ने उन्हें छोड़ दिया और बिना तलाक लिए दिल्ली में उनके चचेरे भाई हरबंस से शादी कर ली - इसीलिए उनका नाम रमा बंस पड़ा। वह बॉम्बे में जौहर के पास लौट आई। वह इकलौती ऐसी महिला थीं जिन्हें मैं जानती थी जिनके दो जीवित पति थे और जो बहुपति प्रथा को लेकर खुश थीं। वह जोहर के साथ नहीं रहती थी, लेकिन अक्सर उनके साथ खाना खाने जाती थी और हफ्ते में एक बार मुझे भी साथ ले जाती थी। जोहर ब्रिज के शौकीन खिलाड़ी थे। लोटस कोर्ट स्थित अपने अपार्टमेंट से रमा ने क्रिकेट क्लब ऑफ इंडिया (सीसीआई) में उन्हें फोन करके हमारे आने की सूचना दी और क्लब से चाइनीज खाना मंगवाया। उनके लौटने का इंतज़ार करते हुए मैं उनके प्यारे से छोटे पेकी कुत्ते, फीनो (चपटी नाक वाला), के साथ खेलती रही। रमा ने अपने गद्दे के पास वाली दराज खाली की (वह ज़मीन पर सोते थे) और मुझे कम कपड़ों वाली युवतियों की तस्वीरों के पैकेट दिखाए जो चाहती थीं कि जोहर उन्हें फिल्मों में काम दिलाए। जब वह आए, तो उन्होंने अपनी सबसे अच्छी स्कॉच निकाली। वह बहुत कम पीते थे, रमा शराब नहीं पीते थे।

जोहर एक बेहतरीन कहानीकार थे, जिनमें उनकी यौन जीवन से जुड़ी कहानियां भी शामिल थीं। मुझे कभी यकीन नहीं हो पाता था कि उन्होंने अपने अतीत के बारे में जो कुछ बताया, उसमें से कितना सच था और कितना उन्होंने मेरी दिलचस्पी बनाए रखने के लिए गढ़ा था। बंबई छोड़ने के बाद जोहर से मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई। मैंने उन्हें कभी भी अभिनेता या फिल्म निर्माता के रूप में गंभीरता से नहीं लिया था। दिल्ली में उनके द्वारा लिखित और मंचित नाटक 'भुट्टो' को देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। यह बहुत ही शानदार ढंग से रचा गया था, जिसमें ऑस्कर वाइल्ड के समान हास्य-व्यंग्य थे। भुट्टो का किरदार सुहेल सेठ ने बखूबी निभाया था। काश जोहर इसे देख पाते। तब तक उनका देहांत हो चुका था।

जब मेरे पिता का दिल्ली में निधन हुआ, तब मैं बंबई में था। मेरे माता-पिता के साथ मेरे संबंध पारंपरिक भारतीय परिवारों जैसे ही थे। शिष्टाचार के कड़े नियमों का पालन किया जाता था, लेकिन कोई भी बात गुप्त नहीं रखी जाती थी। उनके चार बेटों में से उनका कोई भी पसंदीदा नहीं था। शायद मैं ही उनके सबसे करीब था, लेकिन मैंने उन्हें निराश किया क्योंकि मैं उनकी उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा था। अधिकांश पिताओं की तरह, उन्हें अपनी इकलौती बेटी से विशेष लगाव था, जिसे वे उपहारों से नवाजते थे और जिसे उन्होंने अपने बेटों को दी गई संपत्ति से कहीं अधिक बड़ी संपत्ति विरासत में दी थी। मेरी माँ अपने सबसे छोटे बेटे दलजीत को विशेष रूप से पसंद करती थीं। मेरे बड़े और छोटे भाई के बीच एक कड़वा झगड़ा हो गया था। मेरी माँ को मेरे बड़े भाई की पत्नी बिल्कुल पसंद नहीं थी और वे खुलकर दलजीत का पक्ष लेती थीं। मुझे अपने भाइयों के बीच संपत्ति के बंटवारे को लेकर हुए झगड़े और एक-दूसरे को अदालत में घसीटने के बारे में तब तक कुछ पता नहीं चला, जब तक मेरे पिता ने मुझे पत्र लिखकर बुलाया नहीं। मुझे यह जानकर बहुत दुख हुआ कि वे छोटी-छोटी बातों पर झगड़ रहे थे। मेरे चाचा उज्ज्वल सिंह ने दोनों के बीच सुलह कराने की कोशिश की, लेकिन असफल रहे। मैंने वह अप्रिय

ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली। दलजीत ऊपरी तौर पर तो तर्क-वितर्क के लिए तैयार लग रहा था, लेकिन उसने अपने बड़े भाई की अनुपस्थिति में संयुक्त समिति का ज़िम्मा लेकर मुझसे किया लिखित वादा तोड़ दिया। मैंने अपने माता-पिता के सामने उसका सामना किया और उसे गद्दार कहकर जमकर फटकारा। वह फूट-फूट कर रो पड़ा। उसने अपनी माँ की कसम खाई—वह हमेशा अपनी माँ की कसम खाता था—कि वह ऐसा दोबारा नहीं करेगा। मैंने उस बैठक की कार्यवाही फाड़ दी जिसमें उसने उद्यम का नियंत्रण अपने हाथ में लिया था और उनके बीच आपसी सहमति से विभाजन करवाने में सफल रहा। मेरे माता-पिता के रिश्ते सालों में पूरी तरह बदल गए। सालों तक वह सख्ती से अपना हुकुम चलाते रहे। उम्र बढ़ने और सुनने में दिक्कत होने के साथ-साथ उनकी पत्नी पर निर्भरता बढ़ती गई। पत्नी उन्हें लोगों से उनकी कही बात दोहराने के लिए कहने पर डांटने लगीं — है? की क्या? — और उनके अनाड़ीपन पर भी। खाना खाते समय उनके हाथ से टाई और कोट पर खाना गिर जाता था। अब उन्हें गुस्सा नहीं आता था, लेकिन वह विनम्रता से अपनी हद में रहना स्वीकार कर लेते थे। जब भी मैं उनसे मिलने जाता, वह मुझसे अखबार पढ़ने को कहते और महत्वपूर्ण घटनाओं पर मेरी राय पूछते। उन्हें व्यायाम का कोई शौक नहीं था: खुद को फिट रखने के लिए वह सिर्फ अपने लॉन में टहलते थे। खान-पान के भी कोई नियम नहीं थे। वह नाश्ते में कॉर्नफ्लेक्स, अंडे, सॉसेज, टोस्ट, शहद और चाय लेते थे। दोपहर के भोजन से पहले वह दो-तीन जिन पीते थे; दोपहर की चाय में वह केक के टुकड़े, बिस्कुट या भारतीय मिठाई खाते थे। रात के खाने से पहले वह दो-तीन स्कॉच पीते थे और अक्सर बाद में ब्रांडी भी। रात के खाने में कम से कम चार-पांच व्यंजन होते थे: सूप, मछली, मांस, सब्जी और हलवा। यात्रा करते समय वे रेलवे प्लेटफार्म पर जो कुछ भी मिलता, वही खा लेते थे। कार से मशोबरा जाते समय उन्होंने कालका से चार मील दूर एक ढाबे पर अचार का स्वाद चखा और जाबली में पेड़े खाए। उनका वजन कभी नहीं बढ़ा और वे अंत तक दुबले-पतले ही रहे। उन्हें भूख बढ़ाने और भोजन पचाने के लिए गोलियां खाने का बहुत शौक था। गुर्दे की पथरी, मोतियाबिंद, बवासीर और हर्निया के लिए उनके कई ऑपरेशन हुए। एक चीज जिसकी उन्हें कभी कमी नहीं खलती थी, वह थी उनकी नींद। तकिए पर सिर रखते ही वे गहरी नींद में खो जाते थे। सबसे बढ़कर, गहरी नींद ही थी जिसने उन्हें नब्बे वर्षों तक जीवित रखा।

उन्हें बूढ़ा और कमजोर होते देखना दुखद था। मैंने हर पखवाड़े दिल्ली आने और सुबह उनके साथ एक घंटा बिताने का नियम बना लिया था, और या तो उनके साथ शाम की स्कॉच पीता या उन्हें अपने साथ भोजन पर बुलाता। आखिरी बार जब मैंने उन्हें जीवित देखा, तो वे पहले से कहीं अधिक कमजोर लग रहे थे, और स्पष्ट रूप से जानते थे कि उनके पास ज्यादा दिन नहीं बचे हैं। जब मैं विदा ले रहा था, तो उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं अगली बार दिल्ली कब आऊंगा। मैंने उन्हें बताया कि मैं दो हफ्ते में वापस आऊंगा। 'दो हफ्ते?' उन्होंने पूछा। और फिर कुछ नहीं कहा।

एक सप्ताह बाद मेरी पत्नी ने मुझे फोन करके बताया कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है और वह उनसे मिलने जा रही हैं। एक घंटे बाद उन्होंने फिर फोन करके बताया कि उनकी तबीयत काफी बेहतर है और उन्होंने उनके साथ थोड़ी शराब भी पी है। मेरी मां और बहन उनके साथ थीं। कुछ मिनट बाद उन्होंने तीसरी बार फोन करके बताया कि उनका निधन हो गया है। यह घटना 18 अप्रैल 1978 को रात 8:30 बजे हुई थी।

मैं सुन्न पड़ गया था। काफी देर तक मैं चुपचाप बैठा रहा, समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूं। फिर मैंने ज़कारिया परिवार को फोन किया और फातिमा से पूछा कि क्या वह राहुल को बताकर हमें दिल्ली जाने वाली सुबह की फ्लाइट में सीट दिलवा सकती हैं। संकट के समय वह हमेशा मेरी मदद करती हैं। कुछ मिनट बाद ज़कारिया परिवार मुझसे मिलने आया। आधे घंटे बाद मैंने उनसे कहा कि वे मुझे अकेला छोड़ दें ताकि मैं थोड़ी देर सो सकूं।

उस रात मुझे बिल्कुल नींद नहीं आई। मैं अपने पिता के जीवन की घटनाओं के बारे में सोचता रहा। एक मेहनती इंसान, एक उदार पिता, जिन्हें मैंने एक मानवीय कमजोरियों वाले व्यक्ति के रूप में शायद ही कभी जाना था। मैं भली-भांति जानता था कि अगर उनका निरंतर समर्थन न होता, तो मैं कभी एक भी किताब न लिख पाता।

कभी नई दिल्ली के सबसे बड़े निर्माणकर्ता रहे उनकी मृत्यु की खबर सभी अखबारों के पहले पन्ने पर छपी। बिजली से चलने वाले श्मशान घाट में उनके अंतिम संस्कार में भारी भीड़ उमड़ी। और उनकी अंतिम विदाई के समय सुजान सिंह पार्क का पूरा मैदान उससे भी अधिक लोगों से भर गया था। मेरे भाइयों ने मुझे अंतिम भाषण देने के लिए कहा। सौभाग्य से मैं बिना भावुक हुए अपना भाषण दे सका।

क्या निशान-ए-मर्द-ए-मोमिन बहुत पुराना है?

Choon marg aayad, tabassum bar lab-e-ost.

(आप मुझसे आस्थावान व्यक्ति के लक्षणों के बारे में पूछते हैं?)

जब मृत्यु उसके पास आती है, तो उसके होठों पर मुस्कान होती है।

मेरे पिता ने मृत्यु का सामना मुस्कुराते हुए करने से भी बेहतर किया; मृत्यु शैया पर लेटने से कुछ मिनट पहले उनके हाथ में स्कॉच का एक गिलास था।

जब मैं बंबई में था, तो मुझे खुद से यह सवाल पूछना पड़ा: मैं कितना सच्चा सिख हूँ? मैंने धार्मिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों को त्याग दिया था। मैंने खालसा धर्म के बाहरी प्रतीकों को बनाए रखा, जैसे बाल और दाढ़ी न कटवाए रखना। मैंने कभी भी अन्य 'क' जैसे कि कड़ा, कंघा, कच्छा या कृपाण का पालन नहीं किया। न ही मैंने कभी सोचा कि खाने-पीने का किसी व्यक्ति की धार्मिक मान्यताओं पर कोई असर पड़ सकता है या पड़ना चाहिए। खालसा परंपरा के विपरीत, मैं हलाल

(कोशेर) मांस खाता था, जिसमें गोमांस भी शामिल था, जिसे लोग घृणित मानते थे। मैंने स्कॉच की लत को कभी नहीं छिपाया। मैंने परंपरा द्वारा वर्जित अन्य चीजों को भी आजमाया, जैसे धूम्रपान (मैंने गांजा भी आजमाया), और तंबाकू के साथ पान खाना। मैंने इन चीजों को धार्मिक उत्साह के पुनरुत्थान के कारण नहीं छोड़ा, बल्कि इसलिए छोड़ा क्योंकि मुझे लगा कि जो मैं खुलेआम नहीं कर सकता, उसे करने का कोई फायदा नहीं है।

सिख धर्म और इतिहास पर मेरी पुस्तकों के प्रकाशन ने मुझे सिख समुदाय में स्वीकार्य बना दिया था। मेरे नास्तिक होने के दावों को उन्होंने गंभीरता से नहीं लिया। मैं जहाँ भी जाता, मुझे गुरुद्वारों में सभाओं को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया जाता और सरोपा भेंट किया जाता: एक छोटी, केसरिया रंग की पगड़ी और कृपाण। मैं इस सम्मान के लिए आभारी था और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब तक मैं खालसा का रूप धारण किए रहूँगा, खालसा मुझे अपना ही मानेगा और मुझे वह सम्मान देगा जो उन्हें उचित लगता है। यदि मैं इसे त्याग दूँगा, तो वे भी मुझे त्याग देंगे। इसने मेरे भीतर सिख समुदाय से जुड़ाव की भावना को पोषित किया। मैं अपने अनुभव से जानता था कि जो सिख अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेते हैं, उन्हें समाज से बहिष्कृत माना जाता है। और चाहे वे गुरुद्वारों में कितनी भी प्रार्थना करें, कितना भी भारी लोहे का कड़ा पहनें और कितनी भी दृढ़ता से खुद को सिख घोषित करें, सिख उन्हें अपना नहीं मानते।

मैंने अपने इस जुड़ाव को यथासंभव पोषित किया। गुरु गोविंद सिंह के जन्म की त्रिशताब्दी समारोह के दौरान, सिख धर्म पर व्याख्यान देने के लिए तीन सिख विद्वानों को विदेश भेजा गया। कपूर सिंह और गोपाल सिंह दर्दी का मुझसे अधिक प्रभाव था, इसलिए उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और यूरोप को चुना; मुझे जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में व्याख्यान देने का अवसर मिला। हम सभी को अपने खर्चों के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराई गई थी। जर्मनी और फ्रांस में मेरे व्याख्यानों में बहुत कम लोग उपस्थित हुए। मैंने जो कुछ भी कहा, उसका जर्मन और फ्रेंच में अनुवाद करना पड़ा और उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। इंग्लैंड में स्थिति अलग थी। लंदन के अल्बर्ट हॉल में एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया। निर्धारित सम्मेलन से एक शाम पहले मैं यह देखने के लिए अल्बर्ट हॉल गया कि क्या इसका विज्ञापन किया गया है। मुख्य वक्ता के रूप में मेरा नाम लिखा हुआ एक विशाल होर्डिंग देखकर मैं रोमांचित हो गया। छह अन्य वक्ताओं की सूची में कैंटरबरी के आर्कबिशप और भारत के कार्यवाहक उच्चायुक्त पी.एन. हक्सर शामिल थे। मुझे डर था कि हॉल आधा खाली ही रहेगा। अगले दिन जब मैं कार्यक्रम स्थल पर पहुँचा तो मैंने देखा कि पार्किंग में सैकड़ों चारबंकें कतार में खड़ी थीं। इंग्लैंड के कोने-कोने से सिख सभा में शामिल होने आए थे। मैंने मंच पर अपनी जगह ली। मेज पर वक्ताओं के लिए पानी के गिलास रखे थे। मैंने कुछ घूंट लिए और फिर चुपचाप अपनी स्कॉच से भरी बोतल उसमें उड़ेल दी: मैं अक्सर घबराहट में ऐसा करता था। स्कॉच से मेरी ज़बान खुल जाती थी। जब मेरी बारी आई तो मैंने पंजाब के ग्रामीण इलाकों का वर्णन किया, जहाँ सरसों के फूल खिले थे, आटे की चक्कियों की सीटी की आवाज़ गूंज रही थी, और ऊँट के काँटे की जलती हुई खुशबू

फैली थी; मैंने उन्हें बताया कि भारत में रहने वाले उनके सिख भाइयों की ओर से इंग्लैंड में रहने वाले उन लोगों को शुभकामनाएँ पहुँचाने के लिए चुना जाना मेरे लिए कितना सौभाग्य की बात है। मेरे कई श्रोता, जो अपने घर की याद में डूबे हुए थे, उनकी आँखों में आँसू आ गए। मैंने गुरु गोविंद सिंह के धर्मयुद्ध के सिद्धांत पर बोलना शुरू किया - धर्म के लिए युद्ध। मैंने अपने भाषण का समापन यह कहकर किया कि इंग्लैंड में रहने का निर्णय लेने के बाद, उन्हें अब अपने इस गोद लिए हुए देश से पूर्णतः जुड़ाव महसूस करना चाहिए और गर्व से कहना चाहिए, 'मैं सिख हूँ; मैं ब्रिटिश हूँ'। मेरे भाषण का जोरदार स्वागत 'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के नारों से हुआ। मुझे अपने प्रदर्शन पर बहुत गर्व था और न केवल सिख होने पर बल्कि सिखों को मुझ पर गर्व होने पर भी बहुत गर्व था।

मेरे भाषण के कुछ अंश ब्रिटिश और भारतीय समाचार पत्रों में व्यापक रूप से प्रकाशित हुए थे। जब मैं भारत लौटा तो मुझे पता चला कि मुझे दिए गए धन में से कुछ सौ पाउंड बचे हुए थे, लेकिन किसी ने मुझसे हिसाब नहीं मांगा। मुझे लगा कि यह पैसा मेरा नहीं बल्कि सिख पंथ का है। मैंने अपने पास जो कुछ भी बचा था, वह लौटा दिया। न तो कपूर सिंह और न ही दर्दी ने हिसाब देने की जहमत उठाई और न ही कुछ लौटाया। जब उन्हें मेरी हरकत के बारे में पता चला, तो उन्होंने मुझे बेवकूफ कहा।

बॉम्बे में केहर सिंह गिल ने मुझे सिख समुदाय का सदस्य माना। उन्होंने गुरु नानक जयंती समारोह के लिए मुझे युगांडा भेजने का प्रबंध किया। सिख धर्म पर बोलने से ज़्यादा मेरी इच्छा केन्या और युगांडा के वन्यजीवों को देखने की थी। मैं बॉम्बे से नैरोबी और फिर कंपाला के लिए हवाई जहाज़ से रवाना हुआ। मेरे मेज़बान चंदन सिंह मुझे घने जंगलों और पहाड़ियों से होते हुए नील नदी के किनारे बसे जिंजा ले गए। चंदन सिंह भारत से एक साधारण बढ़ई के रूप में आए थे, लेकिन एक सफल बिल्डर बन गए। वे एक बड़े बंगले में रहते थे और उनके पास दो गाड़ियाँ थीं। मैं गुरु नानक जयंती की शोभायात्रा में शामिल हुआ, जिसका नेतृत्व इस्माइलिया गर्ल्स स्कूल (सभी मुस्लिम) की छात्राओं के एक समूह ने किया और हम जिंजा की गलियों से होते हुए उनके गुरुद्वारे तक गए। मैंने पंजाबी में भाषण दिया। स्थानीय भारतीयों द्वारा मेरे लिए आयोजित अन्य सभाओं में मैंने अंग्रेज़ी में भाषण दिया। चंदन सिंह, जिन्हें अंग्रेज़ी का एक शब्द भी समझ नहीं आता था, हमेशा उपस्थित रहते थे। शाम को जब हम स्कॉच पीते हुए आराम कर रहे थे, तो वह भोलेपन से मुझसे कहते थे, ‘खुशवंत सिंहजी, समझ ते कुआह नहीं आया, पर आनंद बहुत आया’ — मुझे आपकी एक भी बात समझ नहीं आई, लेकिन मुझे बहुत मज़ा आया। मेरे श्रोताओं में सरदार इंदर सिंह भी थे, जो कई अफ्रीकी देशों में कारोबार करने वाले एक करोड़पति थे। जिंजा में उनका आलीशान घर उस जगह के ठीक सामने था जहाँ से नील नदी विक्टोरिया झील से निकलकर युगांडा, सूडान और मिस्र से होते हुए हज़ार मील का सफर तय करके लाल सागर में गिरती है। उन्होंने मुझे दरियाई घोड़ों के बारे में बताया जो अक्सर उनके बगीचे में घुस आते थे, और मगरमच्छों के बारे में जो उनके घर के ठीक बाहर धूप सेंकते थे। उन्होंने वन्यजीवों

में मेरी रुचि को भांप लिया। उन्होंने कहा, 'आपको मर्चिसन जलप्रपात ज़रूर जाना चाहिए। दुनिया में इसके जैसा कुछ नहीं है।' मर्चिसन जलप्रपात युगांडा और सूडान की सीमा पर जिंजा से कई सौ मील दूर था; मेरे पास न तो समय था और न ही पैसा। दोनों का इंतज़ाम सरदार इंदर सिंह ने कर रखा था। उनके पास अपना खुद का विमान था, और एक युवा इस्माइली पायलट था जो उन्हें जहाँ भी जाना होता था, ले जाता था। हम मर्चिसन जलप्रपात गए। मैंने इतने छोटे से क्षेत्र में इतनी अधिक वन्यजीवों की भीड़ पहले कभी नहीं देखी थी: सैकड़ों दरियाई घोड़े, जिराफ, मगरमच्छ, हिरण और ज़ेबरा; और हर आकार, प्रकार और रंग के पक्षियों की अद्भुत विविधता। हम शाम तक कंपाला वापस आ गए। जिंजा के गुरुद्वारे में मैंने जो आखिरी सभा संबोधित की, उसमें उपस्थित लोगों ने मुझे पाँच-पाँच पाउंड के नोटों की माला पहनाई। मुझे नहीं पता कि कितने नोट थे - लेकिन मोटे तौर पर सौ से अधिक थे, कुल मिलाकर कम से कम 500 पाउंड। मुझे उपहार स्वीकार करने का बहुत मन हुआ। लेकिन, एक बार फिर, मुझे लगा कि यह पैसा मेरा नहीं बल्कि पंथ का है। मैंने अपने गले से नोटों की माला उतारकर ग्रंथ साहिब के सामने रख दी।

केहर सिंह गिल ने बॉम्बे विश्वविद्यालय में सिख धर्म पर व्याख्यानों की एक श्रृंखला आयोजित करने का प्रबंध किया। कुलपति ने मुझे व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया। मुझे इन व्याख्यानों की तैयारी में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ी क्योंकि मैंने पहले भी मद्रास विश्वविद्यालय में इसी तरह के व्याख्यान दिए थे, जब मेरे चाचा सरदार उज्ज्वल सिंह राज्य के राज्यपाल थे। मद्रास और अन्य जगहों की तरह, यहाँ भी अधिकांश श्रोता सिख थे। इन्हीं व्याख्यानों के दौरान मुझे अपने बेटे राहुल का पत्र मिला, जो उस समय इंग्लैंड में रीडर्स डाइजेस्ट के किसी काम से गया हुआ था। पत्र में उसने बताया कि उसने अपने लंबे बाल कटवा लिए हैं। उसने अपने इस फैसले के लिए मुझे जिम्मेदार ठहराया। उसका पालन-पोषण नास्तिक माहौल में हुआ था; उसे कभी प्रार्थना करना नहीं सिखाया गया था और अखंड पाठों में ग्रंथ साहिब का पाठ उसे समझ से परे और उबाऊ लगता था। उसे समझ नहीं आता था कि लंबे बाल और दाढ़ी का नैतिकता या धर्म से क्या संबंध है। और चूंकि उसके लगभग सभी मित्र अंग्रेज, हिंदू या मुसलमान थे, इसलिए सिख समुदाय से उसका कोई विशेष जुड़ाव नहीं था। मुझे एहसास हुआ कि वह सही था - लेकिन, अजीब बात है, इससे मुझे गहरा दुख हुआ और मैं अपने व्याख्यान रद्द करना चाहता था। मुझे पता था कि इससे मेरी पत्नी को दुख होगा (भले ही उसने नमाज़ पढ़ना छोड़ दिया हो) और मेरे माता-पिता को तो और भी ज़्यादा। मैंने बिना कुछ कहे वह पत्र अपनी पत्नी को भेज दिया। उसने लिखा कि वह अपने बेटे को दोबारा नहीं देखना चाहती। मैंने उसे जवाब में लिखा कि हमें एक बड़े हो चुके आदमी को हुक्म देने का कोई हक नहीं है, जब हमने उसे एक सच्चे सिख के रूप में पालने-पोसने की जहमत ही नहीं उठाई। और उससे नाता तोड़कर वह सिर्फ़ खुद को ही दुख पहुँचाएगी। मुझे सबसे ज़्यादा हैरानी मेरे पिता की प्रतिक्रिया देखकर हुई। मेरी बहन के बेटों ने अपने बाल कटवा लिए थे और उन्हें स्वीकार कर लिया गया था, हालाँकि अनिच्छा से। राहुल उनका लाडला पोता था। उसने पढ़ाई में अच्छा प्रदर्शन किया

था और अपने लंबे बालों को जूड़े में बाँधकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के लिए टेनिस खेला था। अपनी वसीयत के पहले मसौदे में मेरे पिता ने जनपथ पर स्थित अपना बड़ा घर, तीन एकड़ का लॉन और एक अलग हिस्सा मेरे बेटे के नाम कर दिया था। उन्होंने कुछ नहीं कहा, लेकिन वे साफ़ तौर पर दुखी थे। राहुल पगड़ी में बहुत ही सुंदर सिख लगता था; पगड़ी के बिना और दाढ़ी-मूंछें कटवाए बिना वह एक साधारण मौलवी जैसा दिखता था। हमें उनके नए रूप को स्वीकार करने में कुछ साल लग गए।

बेनेट एंड कोलमैन के साथ मेरा अनुबंध दो बार बढ़ाया जा चुका था और मुझे तीसरी बार भी बढ़ाए जाने की उम्मीद थी। हालांकि, कंपनी और देश की परिस्थितियां पूरी तरह बदल चुकी थीं। कई वर्षों तक सरकारी नियंत्रण में रहने के बाद, बेनेट एंड कोलमैन को उसके मालिकों, जैन परिवार को वापस सौंप दिया गया। श्रीमती गांधी सत्ता से बेदखल हो गईं और उनकी जगह मोरारजी देसाई ने ले ली। मैं न तो अशोक जैन, जो कंपनी के अध्यक्ष बने, और न ही मोरारजी देसाई, जो प्रधानमंत्री बने, के साथ तालमेल बिठा पाया। मैंने श्रीमती गांधी का समर्थन करना और उनके बेटे संजय का बचाव करना जारी रखा। एक अंक में हमने पाठकों की राय पर एक सर्वेक्षण प्रकाशित किया था कि देश का सबसे लोकप्रिय व्यक्ति कौन है। मतदान में संजय गांधी को भारी बहुमत मिला, जो नई सरकार की नजरों में अपनी मां से भी ज्यादा नफरत का पात्र थे। मोरारजी देसाई 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' से नाराज थे, जो देश का सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला अखबार बना रहा। जब मैंने उन्हें बॉम्बे आने पर साक्षात्कार के लिए पत्र लिखा, तो मुझे तीन पंक्तियों का जवाब मिला जिसमें मुझे सांता क्रूज़ हवाई अड्डे पर उनसे मिलने के लिए कहा गया था ताकि पता चल सके कि क्या उनके पास मुझसे मिलने का समय होगा। मैं हवाई अड्डे गया, उनके प्रशंसकों की भीड़ में से रास्ता बनाते हुए उनके पास पहुँचा और उनसे मिला। उन्होंने गुस्से से मेरी तरफ देखा और बुदबुदाए, 'तो तुम्हें लगता है संजय देश का हीरो है!' मैंने विरोध किया कि यह मेरी राय नहीं, बल्कि पाठकों की राय है। 'कौन से पाठक?' उन्होंने झल्लाकर कहा। 'यह सब धांधली थी।' जब वे अपनी कार में बैठने ही वाले थे, मैंने उनसे कहा, 'मोरारजीभाई, मुझे लगता है आप मुझसे मिलना नहीं चाहते।' उन्होंने कुछ देर रुककर जवाब दिया, 'नहीं, मैं तुमसे मिलूंगा। तुम शाम 5 बजे मेरे बेटे के अपार्टमेंट में आ जाओ।'

जब मैं कांति देसाई के घर पहुँचा, तो बरामदों और उनके पिता के शयनकक्ष में लोगों की भीड़ जमा थी। मोरारजी अपने बिस्तर पर बैठे उनसे बातें कर रहे थे। उन्होंने मुझे देखा और अपने सभी आगंतुकों को जाने के लिए कहा। उन्होंने आदेश दिया, 'मैंने उनसे मिलने का समय लिया है, मैं उनसे अकेले में बात करना चाहता हूँ।' भीड़ चली गई। मोरारजी ने मुझे अपने बिस्तर पर बैठने के लिए कहा। वह उस व्यक्ति से बिल्कुल अलग थे जिनसे मैं उस सुबह हवाई अड्डे पर मिला था। उन्होंने मेरी बात मान ली कि अधिकांश पाठकों ने संजय के पक्ष में मतदान किया था, लेकिन उनका मानना था कि यह सब धांधली थी। (वह सही थे, क्योंकि बाद में मुझे पता चला कि एक ही व्यक्ति ने संजय के पक्ष में सैकड़ों 'पाठकों' के वोट भेजे थे।)

मैंने अपना टेप रिकॉर्डर चालू किया और उनसे आपातकाल, जेल में उनकी कैद और भारत के लिए उनकी योजनाओं के बारे में कई सवाल पूछे। मैंने उनसे विशेष रूप से पूछा कि क्या वे शराबबंदी को फिर से लागू करने का इरादा रखते हैं, जबकि यह हर जगह विफल रही थी। वह अपनी बात पर अड़े रहे: शराबबंदी संविधान का एक अनिवार्य प्रावधान था, यह देश के कई हिस्सों में, विशेषकर उनके गृह राज्य गुजरात में सफल रहा था और उनका इरादा इसे पूरे देश में लागू करने का था। जब मेरे सारे सवाल खत्म हो गए, तो उन्होंने मुझे टेप रिकॉर्डर बंद करने को कहा: वह मुझसे आमने-सामने, यानी दोस्तों की तरह बात करना चाहते थे। 'आप शराबबंदी पर मेरे जोर देने और मूत्र चिकित्सा की वकालत करने का मजाक उड़ाते हैं। अगर मैं आपको समझा दूं कि शराब पीना सेहत के लिए हानिकारक है, तो क्या आप इसे छोड़ देंगे?'

‘मोरारजीभाई, मैं पचास साल से शराब पी रहा हूँ और जीवन में कभी नशे में नहीं धुत हुआ। अगर मैं आपको समझा दूँ कि शराब पीना हानिकारक नहीं है, तो क्या आप एक घूंट पिएंगे?’ मैंने जवाब में पूछा।

उन्होंने कुछ देर मेरे सुझाव पर विचार किया और जवाब दिया, 'यह एक उचित प्रस्ताव है; यदि आप मुझे यह विश्वास दिला दें कि शराब पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है, तो मैं इसे आजमाने का वादा करता हूं।'

उन्होंने मूत्र चिकित्सा के लाभों का बखान किया। उन्होंने मुझे अनगिनत ऐसे मामलों के बारे में बताया, जिनमें डॉक्टरों द्वारा लाइलाज घोषित की गई बीमारियाँ ताजे मूत्र के उपचार से ठीक हो गईं। उन्होंने कहा, 'मेरे पास कैंसर के इलाज का भी नुस्खा है। हर तरह का भोजन छोड़ दें। केवल ताजे अंगूर और गर्म पानी पर जीवित रहें, इससे कैंसर आपके शरीर से निकल जाएगा।'

वह इतने दोस्ताना थे कि मैंने उनसे उनकी एक और सनक के बारे में सवाल कर लिया। ‘मोरारजीभाई, मैंने आपके यौन संबंध से परहेज के व्रत के बारे में भी लिखा है।’ इससे पहले कि मैं आगे कुछ कह पाता, उन्होंने मुझे बीच में ही रोक दिया, ‘मैं इस विषय पर आपसे चर्चा नहीं करना चाहता।’ एक घंटे से अधिक समय तक चला साक्षात्कार समाप्त हो गया।

मोरारजी देसाई, अपनी सनक के बावजूद, एक सीधे-सादे और ईमानदार व्यक्ति थे जो शायद ही कभी झूठ बोलते थे। लेकिन यह बात उनके बेटे कांति पर लागू नहीं होती थी, जिन पर वे बहुत स्नेह करते थे। उनकी नज़र में कांति कोई गलती नहीं कर सकते थे। कुछ दिनों बाद, जब अशोक जैन ने मुझे दिल्ली स्थित अपने घर पर नाश्ते के लिए आमंत्रित किया, तो मैंने अपने अनुबंध का मुद्दा उठाया। उन्होंने बड़ी नरमी से, लेकिन दृढ़ता से मुझे बताया कि कांति देसाई को मेरे संपादक के रूप में बने रहने पर आपत्ति है और मेरा अनुबंध नवीनीकृत नहीं किया जाएगा। कुछ हफ़्तों बाद, जब यह पता चला कि देसाई परिवार द्वारा मालिकों पर डाले गए दबाव के कारण कुछ ही महीनों में संपादक के रूप में मेरा कार्यकाल समाप्त होने वाला है, तो मोरारजी ने मुझे दिल्ली से फोन किया। 'क्या आप विश्वास करते हैं कि मैंने अशोक जैन से आपके बारे में एक शब्द भी नहीं कहा?' मैंने जवाब दिया, 'मोरारजीभाई, अगर आप ऐसा कहते हैं, तो मैं मान लूंगा क्योंकि मैं जानता हूं कि

आप झूठ नहीं बोलते।' यह बात अशोक जैन या कांति देसाई पर लागू नहीं होती थी। अशोक जैन ने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने कभी मुझसे कहा था कि देसाई परिवार ने मेरे बारे में उनसे कुछ कहा है। मोरारजी की सरकार द्वारा प्रतिशोध के आरोपों की जांच के लिए गठित अविनाशलिंगम आयोग द्वारा पूछताछ किए जाने पर, कांति देसाई ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह मुझे नहीं जानते थे।

मैं अपने मामलों को निपटाने के लिए बॉम्बे लौट आया। मुझे अपने उत्तराधिकारी को कार्यभार सौंपने के लिए तीन महीने का समय दिया गया था और मैंने दूसरी नौकरी खोजने या अपने उपन्यास 'दिल्ली' पर काम करने के लिए तीन महीने की छुट्टी ली। मैंने स्वयं ही आर.जी.के. का नाम अपने उत्तराधिकारी के रूप में सुझाया। इसे तुरंत अस्वीकार कर दिया गया। मेरे जाने की तारीख तय हो गई थी। मैंने अपने संपादकीय पृष्ठ पर विदाई का एक भावुक लेख लिखा, जिसमें मैंने कहा कि मेरा बल्ब लोगो अब 'द वीकली' में नहीं छपेगा। किसी शरारती तत्व ने प्रबंधन को बताया कि मैंने बेनेट और कोलमैन के खिलाफ एक घटिया लेख लिखा है। पद छोड़ने से एक सप्ताह पहले, मैं हमेशा की तरह सबसे एक घंटा पहले कार्यालय पहुंचा। दस बजे, एक वरिष्ठ क्लर्क महाप्रबंधक राम तारनेजा का पत्र लेकर आया: 'महोदय, मैंने इसे कल आपको देने की कोशिश की थी, लेकिन आप घर चले गए थे। मुझे यह पत्र भेजने के लिए खेद है। मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा कर देंगे,' उसने कहा। एक पैराग्राफ का पत्र था जिसमें मुझे सूचित किया गया था कि मेरी सेवाएं तत्काल प्रभाव से समाप्त की जा रही हैं और मुझे तुरंत प्रभाव से एम.वी. कामथ को कार्यभार सौंपना होगा। संक्षेप में, मुझे मेरी सेवानिवृत्ति से एक सप्ताह पहले ही बर्खास्त कर दिया गया था।

मैंने फातिमा ज़कारिया को बुलवाया, उन्हें पत्र दिया और उनसे कहा कि मेरे जाने के बाद कर्मचारियों को सूचित कर दें। मैंने अपना छाता उठाया और टाइम्स ऑफ इंडिया की इमारत से बाहर निकल गया।

संपादकों के प्रति अनावश्यक अभद्रता जैन परिवार की पहचान बन चुकी थी। उन्होंने अपने सबसे प्रतिष्ठित संपादक, फ्रैंक मोरेस के साथ भी वैसा ही असभ्य व्यवहार किया था। अपने-अपने क्षेत्रों में विख्यात रहे इंदर मल्होत्रा और प्रेम शंकर झा को अपमानित किया गया और उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया गया। गिरि लाल जैन, जिन्होंने अपना पूरा जीवन उनकी सेवा में बिताया और नौ वर्षों से अधिक समय तक टाइम्स ऑफ इंडिया का कुशलतापूर्वक संपादन किया, उन्हें मुझसे भी बदतर तरीके से विदा किया गया।

मुझे दिल्ली पर आधारित अपनी पांडुलिपि के अगले अध्याय पर काम करने का मौका मिला। अल्लामा इकबाल की पंक्तियाँ मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत थीं:

Jahaan mein ahle-eemaan soorat-e-khursheed jeetay hain,
Idhar doobey, udhar nikley; udhar doobey, idhar niklay.

इस संसार में आस्था और आत्मविश्वास से भरे पुरुष सूर्य के समान हैं।
वे एक तरफ से नीचे जाते हैं और दूसरी तरफ से ऊपर आते हैं।

मैंने बचे हुए तीन महीने अपने उपन्यास पर काम करने में बिताए। मुझे कई नौकरियों के प्रस्ताव मिले, जिनमें फ्री प्रेस जर्नल के संपादक का पद भी शामिल था। कुछ समय विचार करने के बाद, मैंने उन्हें ठुकरा दिया। मैं बॉम्बे से ऊब चुका था और अपने परिवार और दिल्ली लौटना चाहता था। ज़कारिया परिवार, केहर सिंह गिल, हरजीत कोहली और कुछ अन्य सिख मुझे स्टेशन तक छोड़ने आए। जब मैं बॉम्बे से एक घंटे की दूरी पर था, तब तक द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया में बिताए नौ साल मेरे दिमाग से निकल चुके थे। अगली सुबह मैं निज़ामुद्दीन रेलवे स्टेशन पर उतरा, जहाँ मेरी पत्नी और बेटी माला ने मेरा स्वागत किया। मुझे यह जानकर तसल्ली हुई कि उनसे इतनी बेरहमी से दूरी बनाने के लिए मुझे माफ़ कर दिया गया था। कई महीनों तक बंबई के दृश्य मुझे सताते रहे: अजीब बात यह थी कि लोग नहीं, बल्कि मानसून, मरीन ड्राइव पर गुड़ी पड़वा के लिए अभ्यास करती नर्तकियों की घंटियों की आवाज़, रेशमी पर्दे की तरह बरसती बारिश की चादरें, और कार्यालय जाते समय मेरे पास से गुजरते हुए पूंछ हिलाते कुत्ते। दिल्ली लौटने के बाद पहले कुछ महीनों तक मैं ज़कारिया परिवार और अन्य दोस्तों से संपर्क बनाए रखने के लिए जितनी बार हो सके बंबई जाता रहा। मुझे जल्द ही पता चल गया कि फातिमा के लिए मैं महज़ एक बीती याद बनकर रह गया था। उसने तुरंत अपनी वफादारी और स्नेह अपने नए बॉस, गिरी लाल जैन की ओर मोड़ लिया और उनके कार्यालय में उतना ही समय बिताने लगी जितना मेरे कार्यालय में, उनकी नियुक्तियों का ध्यान रखने, उन्हें घर बुलाने और उनके लिए खाना भेजने में। मैं स्वीकार करता हूँ कि इससे मुझे बहुत गहरा दुख हुआ। इस दुख से उबरने में मुझे बहुत समय लगा। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि एक बीमारी होती है जिसे बॉसोफिलिया (बॉस के प्रति प्रेम) कहा जा सकता है, जो आमतौर पर महिलाओं को प्रभावित करती है; यह कामकाजी महिलाओं के लिए एक पेशेवर खतरा है और उनमें से अधिकांश इसकी शिकार हो जाती हैं। एक कामकाजी पुरुष अक्सर बॉसफोबिया (अतिशय भय) का शिकार हो जाता है और अपने बॉस को एक घृणित, असंवेदनशील, सहानुभूतिहीन मसखरे के रूप में देखने लगता है। वहीं दूसरी ओर, कामकाजी महिला इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स (भावनात्मक आकर्षण) विकसित कर लेती है और अपने बॉस को अपने पिता, प्रेमी या नवविवाहित पति का सौम्य मिश्रण समझने लगती है। फातिमा बॉसफिलिया (अतिशय प्रेम) का एक चरम उदाहरण थी। उसने अपने एक पूजनीय बॉस के सेवानिवृत्त होते ही उसकी जगह एक उतने ही पूजनीय बॉस को नियुक्त कर लिया। इस अनुभव ने मुझे मुंबई से नफरत करने पर मजबूर कर दिया; मेरी यात्राएँ कम होने लगीं और मैंने दिल्ली से समझौता कर लिया, जो मेरा सबसे प्रिय और अपना शहर था।

दिल्ली में कुछ महीने बिताने के बाद मुझे 'द नेशनल हेराल्ड' के संपादक का पदभार सौंपा गया। 'द नेशनल हेराल्ड' में मेरे छह महीने बेहद निराशाजनक रहे। श्रीमती गांधी के करीबी और चुनाव प्रचार के लिए श्रीमती गांधी द्वारा जुटाए गए धन के एक प्रमुख स्रोत यशपाल कपूर ने मुझसे संपर्क किया। उन्होंने मुझे 'द इलस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक के रूप में मिलने वाला वेतन देने की पेशकश की। मैं जानता था कि 'द नेशनल हेराल्ड' घाटे में चल रहा था। यह पीटीआई और यूएनआई को सदस्यता शुल्क नहीं दे पा रहा था और इसका वितरण भी कुछ हज़ार प्रतियों से अधिक नहीं था। मैंने यह प्रस्ताव तब स्वीकार किया जब लंबे समय तक चली हड़तालों के कारण अखबार की छपाई बंद हो चुकी थी। सबसे पहले मैंने कार्यकर्ताओं और संपादकीय कर्मचारियों को संबोधित किया और उनसे काम पर लौटने का आग्रह किया। मैंने उनसे कहा कि जब तक उन सभी को वेतन नहीं मिल जाता, मैं वेतन नहीं लूंगा। उन्हें उनका वेतन मिल गया; मुझे कुछ नहीं मिला। लेकिन मुझे अप्रत्यक्ष रूप से इसका लाभ मिला। मैं श्रीमती गांधी से लगभग हर दूसरे दिन मिलता था। मैं उनके सलाहकारों जैसे प्रणब मुखर्जी और उनके साथ रोज़ आने-जाने वाले सीता राम केसरी और कल्पनाथ राय से भी मिलता था। भारतीय कहावत के अनुसार, मैं उनकी कार्यशैली और उनके पारिवारिक जीवन की झलक देख पाया। मुझे यह आभास हुआ कि वह यशपाल कपूर से दूरी बनाए रखना चाहती थीं, लेकिन ऐसा कर नहीं पाईं। मेरे इस शिकायत के बावजूद कि कपूर शायद ही कभी दफ्तर आते थे (उन्हें वेतन न पाने वाले कर्मचारियों द्वारा पीटे जाने का डर था), उन्होंने उन्हें डांट नहीं लगाई। लगभग हर दूसरे महीने, जब कर्मचारी फिर से हड़ताल पर जाने की धमकी देते, तो नोटों से भरे सूटकेस रहस्यमय तरीके से दफ्तर में आ जाते: कर्मचारियों का बकाया चुका दिया जाता, और हम पीटीआई और यूएनआई को देय सदस्यता शुल्क का भुगतान कर पाते और अखबार की आपूर्ति प्राप्त कर पाते।

मुझे शक था कि इस उदारता के पीछे कैम्पा कोला के चरणजीत सिंह का हाथ था। पुलिस यह जानने के लिए बेताब थी कि अखबार कैसे चल रहा है। मेरे कार्यकाल में दो बार पुलिस ने दफ्तर पर छापा मारा। मुझे इन छापों के बारे में तब तक कुछ पता नहीं चला जब तक यशपाल कपूर (अगर वह वहाँ थे) और लेखाकार से पूछताछ नहीं हो गई। पुलिस कभी मेरे कमरे में नहीं आई। दफ्तर के समय में मेरे सिर्फ दो साथी थे - सहायक संपादक थारियन और एक आकर्षक फ्रीलांसर सुनीता बुधिराजा। चौबीसों घंटे पुलिस की निगरानी के कारण बहुत कम लोग हेराल्ड के दफ्तर में आने की हिम्मत करते थे। बाबू जगजीवन राम के बेटे सुरेश कुमार और उसकी कॉलेज जाने वाली प्रेमिका की अश्लील तस्वीरों का एक पैकेट मिलने की घटना के अलावा, नेशनल हेराल्ड के संपादक के रूप में मेरे कार्यकाल में कुछ भी बहुत रोमांचक नहीं हुआ।

मैंने दफ्तर में कुछ घंटे खिड़की के बाहर चबूतरे पर घोंसला बनाने वाले दो कबूतरों से दोस्ती करके बिताए। मैंने सफाईकर्मी और चपरासी को उन्हें परेशान न करने के लिए कहा। मैंने अपनी डायरी में अंडे देने की तारीख और उनके फूटने की तारीख

नोट की। मैंने उन बदसूरत, बिना बालों वाले बच्चों को पंख उगते, खाना मांगते समय अपनी चोंच चौड़ी करते, अपने पंखों को चलाना सीखते और फिर उड़ते हुए देखा। द हेराल्ड में बिताए मेरे छह महीने पूरी तरह से व्यर्थ नहीं गए।

मुझे बिना पैसे के काम करने में कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन पाठकों का न होना बहुत निराशाजनक था। आनंद बाजार समूह के अवेक सरकार ने मुझसे संपर्क किया और मुझे 'नई दिल्ली' पत्रिका के संपादन का कार्यभार संभालने के लिए कहा, जिसे वे राजधानी से शुरू करने की योजना बना रहे थे। संजय से सलाह लेने के बाद, मैंने यह काम स्वीकार कर लिया। संसद स्ट्रीट स्थित पीटीआई भवन में मेरे लिए लकड़ी की पैनलिंग वाला एक छोटा सा आलीशान कार्यालय तैयार किया गया। जावेद लायक, चैतन्य कालबाग, विवेक सेन गुप्ता, मधु जैन और फोटोग्राफर रघु राय सहित सहायकों की एक टीम नियुक्त की गई। मैंने नंदिनी मेहता को भी अपने साथ जुड़ने के लिए राजी किया। कुछ ही अंकों में हम 'नई दिल्ली' को देश की सर्वश्रेष्ठ लिखित पत्रिका के रूप में स्थापित करने में सफल रहे। हालांकि, इसका वितरण लगभग 35,000 पर ही स्थिर रहा! पत्रिका को कलकत्ता में छपना पड़ता था, मुद्रण कर्मचारी अक्सर हड़ताल पर रहते थे और पाक्षिक पत्रिका अक्सर पुरानी मासिक पत्रिका बन जाती थी। मैंने पत्रिका के लिए कुछ लंबे फीचर लेख लिखे। एक लेख श्रद्धा माता पर था, जो तांत्रिक साध्वी थीं, जिनके बारे में कार्य योजना के अनुसार... मत्थाई ने प्रधानमंत्री नेहरू से एक नाजायज संतान को जन्म दिया था। मैंने उन्हें निगमबोध श्मशान घाट पर देखा। वह साठ वर्ष की आयु की एक सुगठित, आकर्षक महिला थीं। वह मुझसे काफी घुलमिल गईं। जब भी मैं जयपुर जाता, मैं उनसे हथरोई किले में मिलने जाता, जहाँ वह अपने कुत्तों से घिरी एकांत में रहती थीं।

जब रावलपिंडी जेल में जुल्फिकार अली भुट्टो को फांसी दी गई, तब मैं इस्लामाबाद में मौजूद एकमात्र भारतीय पत्रकार था। मेरे मित्र एम.ए. रहमान, जो अभियोजन पक्ष के वकीलों की टीम में शामिल थे और जनरल जिया-उल-हक के करीबी थे, को फांसी के समय का कुछ अंदाजा था। उन्होंने मुझे 'ऐतिहासिक घटना' में उपस्थित रहने के लिए बुलाया और जनरल जिया-उल-हक के साथ एक साक्षात्कार भी तय किया, जो उन्होंने किसी भारतीय को दिया पहला साक्षात्कार था। मैं कसूर के नवाब के परिवार से मिल सका, जिनकी हत्या भुट्टो के गुंडों ने की थी, और भुट्टो के अंतिम दिनों और एक ईसाई, तारा मसीह के हाथों उनकी फांसी का विस्तृत विवरण प्राप्त किया - जिसने बाद में उनकी सोने की घड़ी चुरा ली। नई दिल्ली एकमात्र भारतीय अखबार था जिसने अपने नेता की फांसी पर पाकिस्तानियों की प्रतिक्रियाओं का प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रकाशित किया। इन लेखों को अन्य अखबारों ने भी व्यापक रूप से उद्धृत किया। अंत में, खराब छपाई कार्यक्रम ने नई दिल्ली के प्रति मेरे उत्साह को ठंडा कर दिया। एक बार फिर, मुझे अपने पास बहुत सारा खाली समय मिल गया।

मैंने अल्लामा इकबाल की शिकवा और जवाब-ए-शिकवा का अनुवाद करना शुरू किया। सुबह उठते ही मैं एक श्लोक पर काम करने में जुट जाता था। शब्दों के सटीक अर्थ जानने के लिए मैं मुजतबा हुसैन और कवि अली सरदार जाफरी जैसे

मित्रों से बार-बार पूछता रहता था। कई शामें मैंने पाकिस्तानी दूतावास के मुजाहिद हुसैन और उनकी बेहद खूबसूरत बेगम को अपने पास आग के पास बैठाकर अपने अनुवाद पर चर्चा की। अनुवाद को ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने स्वीकार कर प्रकाशित किया। इसका विमोचन समारोह में पाकिस्तानी राजदूत अब्दुल सत्तार ने किया, और इस अवसर पर यास्मीन (मुनीर) शेख ने मूल कृति के अंश पढ़े, जिसके बाद मैंने उसका अनुवाद पढ़ा। हालांकि साहित्य के आदान-प्रदान पर रोक लगाने वाले मूर्खतापूर्ण कानूनों के कारण यह पुस्तक पाकिस्तान में नहीं बिक सकी, लेकिन मेरे अनुवाद के अंश पाकिस्तानी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से प्रकाशित हुए और भारत में पुस्तक के कई पुनर्मुद्रण तुरंत बिक गए।

12 गांधी और आनंद परिवार के साथ

इतिहास में ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जहाँ एक महिला और उसकी बहू के बीच के विषैले रिश्ते ने किसी राष्ट्र की घटनाओं की दिशा को प्रभावित किया हो। यह संभव है कि मध्ययुग में ऐसे तनावों ने माता-पिता के प्रति आसक्त राजाओं को अपनी पत्नियों से मुंह मोड़ने या पत्नी के दबाव में रहने वाले शासकों को अपनी माताओं को त्यागने के लिए विवश किया हो, लेकिन भारत एक आधुनिक लोकतंत्र का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है - जैसा कि भारतीय लोग बार-बार याद दिलाते रहते हैं, यह दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है - जहाँ एक महिला अपनी विधवा बहू से इतनी नाराज थी कि इसका असर उसके निर्णयों पर पड़ा और इसने सत्ताधारी वर्ग को दो गुटों में बाँट दिया: एक गुट महिला के पक्ष में था और दूसरा गुट उसकी बहू के पक्ष में।

यह कहानी सास-बहू के झगड़ों जितनी ही आम है, और इसके विवरण इतने मामूली हैं कि उन पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है, सिवाय इसके कि इसमें शामिल पक्ष एक तरफ भारत की प्रधानमंत्री थीं, और दूसरी तरफ उनके प्रिय पुत्र की विधवा, जिनसे वह (प्रधानमंत्री) और मेरे समेत कई अन्य लोग भारत के शासक के रूप में अपने उत्तराधिकारी बनने की उम्मीद करते थे। इसी वजह से दो महिलाओं के बीच की ये बेतुकी नोकझोंक चर्चा का विषय बन गई। और इन मामूली बातों के बावजूद, यह हर उस भारतीय परिवार के लिए गहरी दिलचस्पी का विषय बन गई, जहाँ इस तरह के तनाव आम बात हैं।

मेरी यह कहानी संबंधित पक्षों, विशेषकर मेनका और संजय गांधी के साथ मेरे संक्षिप्त व्यक्तिगत परिचय पर आधारित है। मुझे मेनका और उनकी माताजी की मित्रता का आनंद मिला—हालाँकि मुझे संदेह था कि वे अक्सर मुझे बहलाने-फुसलाने की कोशिश करती थीं ताकि उन्हें व्यापक प्रचार मिल सके। श्रीमती गांधी द्वारा मेनका के खेमे का सदस्य और यहाँ तक कि उनका प्रमुख मार्गदर्शक माने जाने और इसलिए एक 'शत्रु' (यह शब्द उन्होंने सिख प्रतिनिधिमंडल के समक्ष मेरे लिए प्रयोग किया था) होने के बावजूद, मैंने यथासंभव निष्पक्ष रहने का प्रयास किया है।

चलिए, सबसे पहले मुख्य पात्रों का परिचय देते हैं। सबसे पहले, श्रीमती इंदिरा गांधी और उनका गुट। उस समय इंदिरा गांधी लगभग साठ वर्ष की थीं। अपनी उम्र के हिसाब से वे उतनी ही सुगठित और आकर्षक थीं जितनी मैंने देखी हैं। वे 1965-77 तक भारत की प्रधानमंत्री रहीं, ढाई साल सत्ता से बाहर रहीं और 1980 से फिर से सत्ता में लौट आईं। राष्ट्र के शासन में लंबे समय तक रहने से उनमें एक प्रकार का अभिमान और आलोचना के प्रति असहिष्णुता का भाव आ गया था। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इंदिरा गांधी का वैवाहिक जीवन कुछ खास सफल नहीं रहा था। उनके पति फिरोज गांधी इलाहाबाद के एक पारसी शराब विक्रेता के पुत्र थे। राजीव और संजय नामक दो पुत्रों को जन्म देने के बाद, उन्होंने अपने पिता के साथ रहने के लिए उन्हें छोड़ दिया और उनकी गृहणी और मेहमाननवाज बन गईं। पंडित नेहरू के कई वर्षों तक

निजी सचिव रहे एम.ओ. मथाई के अनुसार, न तो पिता और न ही पुत्री यौन रूप से संकोची थे। नेहरू परिवार की भी अपनी समस्याएं थीं। यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि बाद में श्रीमती गांधी ने कहा कि मेनका उनके परिवार या वर्ग में फिट नहीं बैठती थी।

इंदिरा गांधी सक्षम और ईमानदार सलाहकारों को भी दरकिनार कर देती थीं, अगर उनके विचार उन्हें पसंद नहीं आते थे; केवल कुछ ही सलाहकार, जो उनकी इच्छा के अनुसार बोलते थे, उनका विश्वास जीत पाते थे। घरेलू मामलों में, मोहम्मद यूनुस भी उनमें से एक थे। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे नेहरू या श्रीमती गांधी के नाखुश लोगों के प्रति कठोर रवैया रखते थे। उन्हें विदेश सेवा में नियुक्त किया गया और उन्होंने राजदूत के रूप में कार्य किया। सेवा से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्हें कई महत्वपूर्ण पद दिए गए, जैसे भारतीय व्यापार मेला प्राधिकरण के प्रमुख का पद, और फिर राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया। यूनुस इस बात का दावा करते थे कि वे कैबिनेट मंत्रियों को अपने कार्यालय के बाहर इंतजार करवाते थे और अपने रास्ते में आने वाले वरिष्ठ अधिकारियों को फटकार लगाते थे। उनके बेटे आदिल शाहरयार, श्रीमती गांधी के छोटे बेटे संजय के बचपन के दोस्त थे। दोनों ने कई शरारतें की थीं, जिनमें मोटरगाड़ियाँ चुराना भी शामिल था। आदिल अमेरिका चले गए, जहाँ उन्होंने कानून का उल्लंघन किया और उन्हें जेल भेज दिया गया। प्रधानमंत्री के रूप में राजीव गांधी ने उन्हें क्षमादान दिलवाया। कुछ वर्षों बाद दिल्ली में आदिल का निधन हो गया।

घरेलू मामलों के सलाहकारों और विश्वासपात्रों में धीरेन्द्र ब्रह्मचारी भी थे, जो बिहार के एक आकर्षक, अर्ध-साक्षर योग प्रशिक्षक थे। उन्होंने घर पर काफी प्रभाव और संपत्ति अर्जित कर ली थी: उनके पास अपना विमान, आयातित कारें, जर्सी गायों का झुंड, एक बंदूक कारखाना, एक फिल्म स्टूडियो और अन्य अचल संपत्ति थी। उन्हें एक तलाक के मामले में सह-प्रतिवादी के रूप में भी नामित किया गया था। ब्रह्मचारी को स्वामीजी कहकर संबोधित किया जाता था। आर.के. धवन भी थे, जो पंडित नेहरू के स्टेनोग्राफर थे और उनकी मृत्यु के बाद इंदिरा गांधी के निजी स्टाफ में शामिल हो गए। वे एक चापलूस और असाधारण रूप से कुशल व्यक्ति थे। उषा भगत के अधीन काम करने के बाद, वे धीरे-धीरे श्रीमती गांधी के मुख्य विश्वासपात्र के रूप में उनकी जगह लेने लगे।

श्रीमती गांधी के बड़े बेटे राजीव एक लंबे और बेहद आकर्षक युवक बन गए। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डिग्री हासिल करने में असफल रहने के बाद, वे इंडियन एयरलाइंस में पायलट बन गए। उन्होंने ट्यूरिन के पास एक छोटे से कस्बे के एक बिल्डर की बेटी, एक आकर्षक इतालवी लड़की से शादी की। उनके दो बच्चे थे, राहुल और प्रियंका। राजीव और संजय के बीच कभी बनती नहीं थी। जब संजय ने अपनी मारुति कार परियोजना में गड़बड़ी कर दी और अपनी माँ पर उनके लिए पैसे हासिल करने के लिए हेराफेरी करने का आरोप लगाया, तो राजीव ने परिवार की बदनामी के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया। जब संजय सत्ता में आए, तो राजीव रूठ गए और उनसे यथासंभव कम संपर्क रखा। पारिवारिक भोजन कक्ष में भोजन के

दौरान भी वे मुश्किल से ही एक-दूसरे से शिष्टाचार का पालन करते थे। श्रीमती गांधी राजीव की बुद्धि के बारे में अच्छी राय नहीं रखती थीं। हालांकि, संजय की मृत्यु के बाद उन्होंने उन्हें सफलतापूर्वक अपना उत्तराधिकारी बनाया। राजीव ने संजय के आदमियों को हटाकर उनकी जगह अपने लोगों को नियुक्त किया। उनके द्वारा चुने गए कई सलाहकारों में वे लोग भी शामिल थे जो उनके साथ एक महंगे स्कूल के सीमित वातावरण में रहे थे।

सास-बहू के इस ड्रामे के दूसरी तरफ आनंद परिवार था। उनमें सबसे महत्वपूर्ण थीं अम्तेश्वर, जो मोंटगोमरी (अब पाकिस्तान के साहिवाल) के जमींदार और पशुपालक सर दातार सिंह की सबसे छोटी बेटी थीं। उनकी बड़ी बेटी का वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं रहा था और उन्होंने आनंदमयी मां के आश्रम में शरण ली थी। उनके दो बेटे भी थे - एक ने कुछ वर्षों तक रल्ली ब्रदर्स के साथ काम किया, लेकिन पिता की मृत्यु के बाद पारिवारिक संपत्ति संभालने के लिए नौकरी छोड़ दी। उसने अम्तेश्वर के हिस्से पर कब्जा कर लिया। कभी एक-दूसरे के बहुत करीब रहे ये दोनों बेटे बाद में कड़वे कानूनी विवाद में उलझ गए। दूसरा बेटा, चन्नी, एक बीमारी से ग्रसित था और उसकी मानसिक स्थिति सामान्य नहीं थी, इसलिए उसे भोपाल में ही रखना पड़ा।

अम्तेश्वर की शिक्षा साधारण थी। उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजा गया। पाठ्यक्रम पूरा होने से पहले ही उन्हें घर वापस बुला लिया गया और एक आकर्षक सेना अधिकारी, तेजिंदर सिंह आनंद से उनकी शादी करा दी गई। यह विवाह सफल नहीं रहा। फिर भी, आनंद दंपति के तीन बच्चे हुए: मेनिका, विरेन और अंबिका।

इंदिरा गांधी और अम्तेश्वर आनंद, ये दोनों महिलाएं कब और कैसे एक-दूसरे के संपर्क में आईं? मेरे पास मेनका का बयान है, जिसकी पुष्टि उनकी मां ने भी की है। मेनका की पहली मुलाकात संजय गांधी से 14 दिसंबर 1973 को उनके चाचा मेजर-जनरल कपूर (मेनका के पिता की बहन के पति, जो उस समय की एक प्रसिद्ध सुंदरी थीं) द्वारा अपने बेटे वीनू कपूर की आगामी शादी के उपलक्ष्य में आयोजित एक कॉकटेल पार्टी में हुई थी। वीनू के स्कूल के दोस्त होने के नाते संजय भी वहां मौजूद थे। संयोग से उस दिन संजय का जन्मदिन भी था। वे काफी खुश थे (हालांकि उन्होंने शराब नहीं पी थी)। वे भारत के सबसे लोकप्रिय कुंवारे व्यक्ति थे: सुंदर, प्रधानमंत्री के पुत्र, जवाहरलाल नेहरू के पोते और मोतीलाल नेहरू के परपोते। वे एक ऑटोमोबाइल निर्माता बनने की कोशिश में लगे हुए थे। वे सुंदर लड़कियों के प्रति आकर्षित थे, लेकिन उन लड़कियों से दूर रहते थे जिन पर उन्हें शक होता था कि वे भारत के प्रथम परिवार का सदस्य बनने की इच्छा से उनके प्यार में पड़ गई हैं। उस समय मानेका सत्रह वर्ष की थी: दुबली-पतली, चेहरे पर झाइयों वाली एक आकर्षक लड़की, जिसने कॉलेज की सौंदर्य प्रतियोगिता जीती थी और तौलिया बनाने वाली एक कंपनी के लिए मॉडलिंग भी की थी। वह बेहद खूबसूरत थी और आज भी है।

ऐसा लगता है कि इस पहली मुलाकात में संजय, मेनिका की ओर आकर्षित हो गए थे। उन्होंने पूरी शाम मेनिका से बातचीत की। दोनों अगले दिन मिलने के लिए सहमत हो गए—और शायद नियमित रूप से मिलते रहने के लिए। अम्तेश्वर ने संजय की अपनी बेटी के प्रति पसंद को तुरंत भांप लिया। हालांकि उन्होंने कहा कि संजय को दामाद के रूप में पाकर उन्हें चिंता हुई, लेकिन मुझे पूरा यकीन है कि इस रिश्ते में उन्हें अपने जीवन के उस सपने की आंशिक पूर्ति नजर आई, जिसमें वह एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बनना चाहती थीं।

इसके बाद संजय और मेनका लगभग हर दिन मिलते थे। संजय रेस्तरां या सिनेमा जाने वाले युवक नहीं थे और सार्वजनिक स्थानों पर पहचाने जाने से कतराते थे; वे मेनका से या तो उनके घर पर मिलना पसंद करते थे या उन्हें अपने घर ले जाते थे। 1974 की शुरुआत में उन्होंने मेनका को भोजन पर आमंत्रित किया। प्रधानमंत्री से मिलने को लेकर मेनका स्वाभाविक रूप से घबराई हुई थीं और जब वे मिलीं तो उन्हें समझ नहीं आया कि क्या कहें। श्रीमती गांधी ने ही बातचीत शुरू की। उन्होंने कहा, 'चूंकि संजय ने हमारा परिचय नहीं कराया है, तो बेहतर होगा कि आप मुझे अपना नाम और पेशा बता दें।' श्रीमती गांधी के पास मेनिका को परखने का कोई कारण नहीं था। संजय अलग-अलग समय पर अलग-अलग लड़कियों को घर लाता था। उन्होंने स्वयं कभी भी अपने बेटे का परिचय किसी ऐसी लड़की से नहीं कराया था जिसे वे एक उपयुक्त बहू मानती हों। अपने बड़े बेटे की तरह, वे भी अपने बेटे पर ही उचित जीवनसाथी चुनने का अधिकार छोड़ना चाहती थीं। अम्तेश्वर आनंद का दावा है कि उन्होंने अपनी बेटी को इस रिश्ते से दूर रखने की पूरी कोशिश की, क्योंकि उन्हें लगता था कि यह रिश्ता उनके लिए सही नहीं होगा। उन्होंने मेनका को कुछ दिन अपनी नानी लेडी दातार सिंह के साथ बिताने के लिए भोपाल भेज दिया। जुलाई 1974 में मेनका भोपाल से लौटीं। उसी महीने की 29 तारीख को प्रधानमंत्री आवास, 1, सफदरजंग रोड पर औपचारिक सगाई समारोह हुआ, जिसके बाद दोपहर का भोजन हुआ जिसमें दोनों परिवारों के सदस्य उपस्थित थे। श्रीमती गांधी ने अपनी होने वाली बहू को सोने और फिरोजी का एक सेट और एक तंचोई साड़ी भेंट की। एक महीने बाद, मेनका के जन्मदिन (26 अगस्त 1974) पर उन्होंने उन्हें एक इतालवी रेशमी साड़ी उपहार में दी।

कुछ समय बाद संजय का हर्निया का ऑपरेशन हुआ। सुबह कॉलेज जाने के बाद, मेनका दोपहर और शाम अपने मंगेतर के साथ अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान के निजी वार्ड में बिताती थीं। अस्पताल से छुट्टी और स्वास्थ्य लाभ के कुछ हफ्तों बाद, संजय और मेनका का विवाह मोहम्मद यूनुस के घर पर एक नागरिक समारोह (23 सितंबर 1974) में संपन्न हुआ। श्रीमती गांधी ने अपनी नई बहू को शादी के उपहारों में उदारता दिखाई: इक्कीस महंगी साड़ियाँ, सोने के गहनों के दो सेट, एक लहंगा, और शायद सबसे कीमती, खादी की साड़ी जो उनके पिता जवाहरलाल नेहरू द्वारा जेल में रहते हुए बुने गए धागे से बनी थी। श्रीमती गांधी ने मेनका का स्वागत एक पारंपरिक भारतीय सास की तरह किया: उन्होंने शयनकक्ष को सजाया, ड्रेसिंग टेबल पर कलाकृतियाँ सजाई और मेनका के लिए चूड़ियाँ चुनीं जिन्हें वह शादी के बाद की रात पहनेंगी।

अगले तीन वर्षों में गांधी और आनंद परिवारों के लिए जो कुछ घटित हुआ, उसे उतार-चढ़ाव भरा सफर कहना ही उचित होगा। संजय और मेनका की शादी के समय दोनों परिवार समृद्धि के शिखर पर थे। मारुति घोटाले को लेकर श्रीमती गांधी और संजय पर हमले होने से उनकी किस्मत पलट गई। आपातकाल लागू होने पर वे फिर से शिखर पर पहुंच गए। श्रीमती गांधी और संजय दोनों के चुनाव हारने और फिर उन पर मुकदमा चलाए जाने (या कहें कि उत्पीड़न) के बाद उनकी किस्मत फिर से पलट गई। यह दुःस्वप्न दो साल से अधिक समय तक चला, जब तक कि माता-पिता दोनों सत्ता में वापस नहीं आ गए। संजय का करियर एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गया। मेनका और उनकी मां को गांधी परिवार से निकाल दिया गया; श्रीमती गांधी की हत्या 31 अक्टूबर 1984 को हुई। मेनका सांसद बनकर और थोड़े समय के लिए मंत्री बनकर अपने वैवाहिक दायित्वों का कुछ हद तक प्रायश्चित करने में सफल रहीं। उनकी मां, अम्तेश्वर, गुमनामी में खो गईं।

इन दोनों परिवारों के जीवन में आए उतार-चढ़ावों की विस्तृत जानकारी देने से पहले, बेहतर होगा कि मैं इन दोनों परिवारों के मामलों में अपनी दखलंदाजी के बारे में बता दूं। जब मैं 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' का संपादक था और बॉम्बे में रहता था, तब संजय अपनी मारुति कार को उत्पादन के लिए तैयार करवाने के लिए संघर्ष कर रहा था, लेकिन उसे बहुत कम सफलता मिल रही थी। उसे और उसकी वजह से उसकी मां को संसद और प्रेस में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। आरोप था कि हरियाणा के धूर्त मुख्यमंत्री बंसीलाल ने गुड़गांव के पास और पालम हवाई अड्डे के रनवे के बिल्कुल करीब स्थित सैकड़ों एकड़ उपजाऊ कृषि भूमि कार परियोजना के लिए कौड़ियों के भाव पर उपलब्ध करा दी थी। उन्होंने बड़ी चतुराई से कहा, 'बछड़ा पकड़ लो तो गई अपनी आप चली आएगी' - अगर बछड़े को पकड़ोगे तो मां जरूर पीछे-पीछे आएगी। बंसीलाल ने मनचाही जमीन उपलब्ध कराकर संजय को अपने जाल में फंसा लिया था और संजय की मां को भी अपने वश में कर लिया था।

मैंने मारुति परियोजना की छानबीन में दिल्ली में तीन दिन बिताए। मारुति कारखाने के आसपास की ज़मीन की कीमतें मुझे मेरे चचेरे भाई अजीत सिंह से पता चलीं, जिन्होंने हाल ही में पास में ही एक कारखाना और घर बनवाया था। उन्होंने भी वही कीमत चुकाई थी जो संजय ने चुकाई थी। मैंने मारुति कारखाने का दौरा किया। मुझे जनरल मोटर्स या फोर्ड जैसी असेंबली लाइनें देखने की उम्मीद थी; संजय ने दो साल में सिर्फ़ कुछ नालीदार चादरों की छत वाली झोपड़ियाँ और एक फाउंड्री ही बनाई थी। उन्होंने मुझे चलाने के लिए मारुति का एक प्रोटोटाइप तैयार रखा था। वह थोड़ा शोर करता था, लेकिन उसकी पिक-अप अच्छी थी और सड़क पर उसकी पकड़ बढ़िया थी। संजय मुझे और तेज़ चलाने के लिए उकसाते रहे। फिर उन्होंने स्टीयरिंग संभाली और सचमुच जुते हुए खेतों और धूल भरी सड़कों पर गाड़ी दौड़ा दी। बॉम्बे वापस आकर, मैंने द इलस्ट्रेटेड वीकली का एक विशेष अंक प्रकाशित करवाया, जिसके कवर पर संजय की तस्वीर थी। इसका शीर्षक था 'संजय, वो

आदमी जो काम करवाता है'। मैंने उन आरोपों का खंडन किया कि उन्हें ज़मीन सस्ते में दी गई थी और वे सैन्य दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र के पास रहते थे। संजय और उनकी माँ के पास मेरे प्रति आभारी होने का कारण था। मैं उनका चमचा कहलाने लगा।

संजय के जीवनकाल में मारुति कभी असेंबली लाइन से बाहर नहीं निकली। परियोजना के मेरे बचाव में प्रकाशित लेख के तुरंत बाद, श्रीमती गांधी गंभीर राजनीतिक संकट में फंस गईं। एक समय तो उन्होंने इस्तीफ़ा देने का भी विचार किया। राजनीतिक परिदृश्य के कई जानकारों, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, के अनुसार, संभवतः संजय (शायद अपने आलोचकों के डर से) ने ही उन्हें पलटवार करने के लिए राजी किया था - आपातकाल घोषित करना, सभी विपक्षी नेताओं को जेल में डालना, लोकतांत्रिक अधिकारों को निलंबित करना और प्रेस पर पाबंदी लगाना। और ऐसा ही हुआ: रातोंरात देशव्यापी कार्रवाई में, जयप्रकाश नारायण और मोरारजी देसाई सहित हजारों राजनीतिक नेताओं को हिरासत में ले लिया गया और प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी गई। श्रीमती गांधी ने संजय को अपना मुख्य सलाहकार बनाकर तानाशाही सत्ता अपने हाथ में ले ली।

1975 की उसी गर्मी में, एक रविवार दोपहर को, जो दिन मैं तेल मालिश, गर्म पानी से नहाने, अपने लंबे बालों को धोने और अपनी सफ़ेद होती दाढ़ी को रंगने के लिए रखता था, मैंने अपने दरवाजे की घंटी सुनी। मुझे किसी के आने की उम्मीद नहीं थी और दरवाजे पर एक बोर्ड लगा था जिस पर लिखा था, 'कृपया घंटी न बजाएं जब तक कि आप आने वाले न हों।' मैं अचानक आने वाले मेहमानों के साथ बहुत रूखा व्यवहार करता था। मैंने दरवाजा खोला और अपनी निजता में दखल देने वाले किसी भी व्यक्ति को खरी-खोटी सुनाने के लिए तैयार था। वहाँ दो अधेड़ उम्र की महिलाएं खड़ी थीं, जिन्होंने महंगी साड़ियाँ, गहने पहने थे और महंगे फ्रांसीसी इत्र की खुशबू बिखेर रही थीं। 'बिना सूचना के इस तरह आने के लिए क्षमा करें' कहकर औपचारिक माफी मांगने के बाद, उन्होंने अपना परिचय दिया, 'मैं अम्तेश्वर आनंद हूँ और यह मेरी दोस्त इंदिरा धोडी हैं।' मैं शर्मिंदा हो गया: मेरे बाल गीले थे और कंधों पर लटके हुए थे, मेरी दाढ़ी दाढ़ी-पट्टी से बंधी थी: 'एक सरदार का रविवार केश (बाल) और दाढ़ी (दाढ़ी) के लिए समर्पित होता है,' मैंने समझाया। अमतेश मुस्कुराई और बोली, 'चिंता मत करो। मैं एक सरदार की बेटी हूँ और मेरी शादी भी एक सरदार से ही हुई है।' मैंने उसे सर दातार सिंह की बेटी और मेनिका की माँ के रूप में पहचान लिया। 'मैं तुम्हारे माता-पिता और तुम्हारे एक भाई, चन्नी को जानती थी। लेकिन मुझे नहीं लगता कि हम पहले कभी मिले हैं,' मैंने कहा।

‘जी हां, हमारी मुलाकात हुई थी!’ उसने जवाब दिया। ‘जब आप यूनेस्को के साथ थीं, तब मैं आपसे पेरिस में मिलने गई थी। मैं छात्रवृत्ति पर अमेरिका जा रही थी। हम आपकी बुआ सरदारनी उज्ज्वल सिंह के माध्यम से दूर के रिश्तेदार भी हैं।’ उसने मुझे अपनी सहेली के बारे में बताया: ‘इंदिरा और मैं कपड़ों के निर्यात के व्यवसाय में साझेदार हैं।’

अमतेश ने आगे बताया कि वह मुझसे मिलने क्यों आई थी। मेनिका सूर्या नाम से एक मासिक पत्रिका शुरू करना चाहती थी। संजय ने सुझाव दिया था कि वे इस बारे में मुझसे सलाह लें। मैंने मदद करने के लिए सहमति दे दी, बशर्ते मुझे अपने नियोक्ताओं से अनुमति मिल जाए।

अगली सुबह मैंने महाप्रबंधक को पत्र लिखकर सूर्या की मदद करने की अनुमति मांगी। आपातकालीन स्थिति थी और हर कोई अपनी-अपनी भूमिका जानता था। महाप्रबंधक ने मुझे आवश्यक अनुमति दे दी और साथ ही यह भी कहा कि मुझे मेनका गांधी की पत्रिका को सफल बनाने के लिए अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिए।

मैं दिल्ली आया और मेनका, संजय और अमतेश के साथ परियोजना पर चर्चा की। मुझे लगा कि मेनका संजय से बहुत अधिक अपेक्षाएँ रख रही थीं और संजय उन्हें किसी ऐसे काम में शामिल करना चाहते थे जिससे उन पर उनका दबाव कम हो सके। मुझे सूर्या पत्रिका का परामर्श संपादक बनाया गया। पत्रिका के पहले छह अंक लगभग पूरी तरह से मेरे द्वारा लिखे या पुनर्लिखित और संपादित किए गए थे। मैंने कोई पारिश्रमिक लेने से इनकार कर दिया: श्रीमती गांधी, संजय, मेनका और उनकी माता के साथ घनिष्ठ संबंध होने से मुझे निस्संदेह बहुत खुशी हुई थी।

सूर्या की सफलता न होने का तो सवाल ही नहीं था। बिना मांगे ही विज्ञापनों की बाढ़ आ गई। कुछ ही अंकों के बाद, इसकी बिक्री बढ़कर 50,000 प्रतियां हो गई। मैं हर पखवाड़े कम से कम एक बार दिल्ली जाता था, शामें आनंद परिवार के साथ बिताता था और प्रधानमंत्री के घर संजय और मेनका से मिलने जाता था। एक बार संयोग से मैं वहीं था जब राजीव और सोनिया अपने एक बच्चे का जन्मदिन मना रहे थे। मैंने देखा कि दोनों भाई और उनकी पत्नियां घर के अलग-अलग हिस्सों में रहते थे और आपस में उनका कोई मेलजोल नहीं था। एक और मौके पर मैं संजय के कमरे में था: उन्होंने मुझे एक सोफा दिया जो बैठते ही फर्श में धंस गया। उन्होंने मेरे हाथ में चाय का प्याला थमाया और किसी से मिलने चले गए। तभी गधे के आकार के दो विशालकाय कुत्ते, एक आयरिश वुल्फहाउंड और दूसरा शायद ग्रेट डेन, दौड़ते हुए अंदर आए और मेरे ऊपर खड़े होकर मेरी चाय के प्याले में लार टपकाने लगे। अगर मैं हिलने की कोशिश करता, तो वे अपने दांत दिखाते और गुर्राते। सौभाग्य से, श्रीमती गांधी संजय को ढूंढते हुए अंदर आईं, मेरी परेशानी देखी और कुत्तों को कमरे से बाहर जाने का आदेश दिया।

आपातकाल के दौरान संजय ने जो कुछ किया, उससे उनकी छवि एक राक्षस जैसी हो गई। जब उन्होंने दिल्ली में झुग्गी-झोपड़ियों को हटवाया, तो यह अफवाह फैल गई कि उन्होंने निर्दोष लोगों के घरों पर बुलडोजर चला दिए हैं; जब उन्होंने परिवार नियोजन कार्यक्रम शुरू किया, तो ऐसी मनगढ़ंत कहानियां फैलाई गईं कि लोगों को सिनेमाघरों और बस की कतारों से खींचकर जबरन नसबंदी कर दी गई। आपातकाल को जल्द ही भारतीय इतिहास का एक काला अध्याय बताया जाने लगा। यह बात निर्विवाद है कि प्रमुख पदों पर आसीन लोगों के आदेशों पर हजारों निर्दोष लोगों को मनमाने ढंग से गिरफ्तार

किया गया और जेल में डाल दिया गया। कई मामलों में उन्होंने ये काम श्रीमती गांधी या उनके बेटे की जानकारी के बिना, अपने दम पर किए।

आनंद परिवार में सबसे नाटकीय व्यक्तित्व परिवर्तन देखने को मिले। कर्नल ने राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव प्राप्त कर लिया। लेकिन सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन अम्तेश्वर आनंद के रवैये में आया। एक साधारण महिला से वह भारत की महारानी इंदिरा गांधी की प्रमुख सेविका बन गईं। उनका अहंकार हद से अधिक बढ़ गया। हालांकि, मुझे यह आशंका महसूस हो रही थी कि सत्ता का यह सुनहरा दौर हमेशा नहीं टिक सकता। जब मैंने उन्हें घोर अन्याय के उदाहरण बताए, तो उन्होंने यह जानकारी संजय और श्रीमती गांधी को दे दी।

गांधी-आनंद परिवारों के साथ जो हुआ, वह अहंकार के दुष्परिणाम का एक जीता-जागता उदाहरण था। श्रीमती गांधी को यह साबित करने के लिए तरह-तरह की कहानियां सुनाई गईं कि आपातकाल ने उनकी लोकप्रियता को चरम पर पहुंचा दिया है और वे आम चुनाव के जरिए इसे और पुख्ता करके अपनी वैधता साबित कर सकती हैं। संजय ज्यादा समझदार थे और उन्होंने श्रीमती गांधी को यह जोखिम न उठाने की सलाह दी। श्रीमती गांधी ने अपनी बात मनवा ली। उन्होंने सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया और मार्च 1977 में आम चुनाव की घोषणा कर दी।

इसके बाद ऐसी प्रतिशोध की कार्रवाई हुई जिसकी कल्पना भी उन्होंने या उनके समर्थकों ने नहीं की थी। विपक्षी नेताओं ने एकजुट होकर जनता पार्टी का गठन किया और श्रीमती गांधी की कांग्रेस पार्टी को धूल में मिला दिया। श्रीमती गांधी को राज नारायण नाम के एक मूर्ख ने बुरी तरह हराया; संजय को एक स्थानीय बंदूकधारी जमींदार और गुंडे ने हरा दिया। नवीन चावला, अंबिका सोनी और रुखसाना सुल्तान—ये तीनों संजय के चहेते थे जिनसे लोग डरते थे—अब हंसी और उपहास के पात्र बन गए। सबसे बड़ा झटका आनंद परिवार को लगा—और उनमें सबसे ज्यादा प्रभावित अमतेश्वर और उनके पति थे। मेनका के पास अभी भी संजय और गांधी परिवार का नाम था। अमतेश्वर का सारा महत्व छिन गया। उनके अनगिनत अवसरवादी मित्र दिल्ली की हवा में गायब हो गए।

जनता सरकार द्वारा श्रीमती गांधी और उनके आपातकाल के दौरान किए गए अत्याचारों के खिलाफ चलाए गए अभियोग पर विस्तार से लिखा गया है; उनके 'कुकर्मों' का शाह आयोग द्वारा संकलित रिपोर्टों में उल्लेख किया गया है। गांधी परिवार में दरारें और गहरी हो गईं। अपने निकम्मे भाई के अचानक उत्थान से राजीव की ईर्ष्या अब नफरत में बदल गई। उन्होंने संजय को, शायद सही ही, परिवार की प्रतिष्ठा में आई इस भयावह गिरावट के लिए जिम्मेदार ठहराया, जो पहले सबसे सम्मानित परिवार था और अब सामाजिक और राजनीतिक रूप से बहिष्कृत हो गया था। न तो उन्होंने और न ही उनकी इतालवी पत्नी सोनिया ने श्रीमती गांधी के टूटे हुए मनोबल को सहारा देने के लिए कुछ किया, और वे अपने एक-पारिवारिक दायरे में सिमट गए। संजय के पास पलटवार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। संकट की इस घड़ी में

मेनिका ने आश्चर्यजनक रूप से साहस और दृढ़ता दिखाई। अम्तेश्वर को भी एहसास हुआ कि उनकी संक्षिप्त प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का एकमात्र मौका उनके दामाद और उनकी माता को सत्ता में वापस लाने में ही था।

गांधी परिवार के बुरे दौर में मैं उनके साथ खड़ा रहा। मेरे परिवार के सदस्य और मेरे सभी दोस्त मेरी कड़ी आलोचना करते थे। कुछ हल्के-फुल्के पल भी आए। दिल्ली की यात्राओं के दौरान मैं सूर्या अखबार के लिए काम करने के साथ-साथ गांधी और आनंद परिवार से भी मिलता था। कुछ बेहद शर्मनाक पल भी आए। एक सुबह मेनका संजय को मेरे अपार्टमेंट में लेकर आई। जब मैं उनसे बात कर रहा था, तभी मेरी तीन साल की पोती नैना मेरी पत्नी का हाथ पकड़े हुए अंदर आई। मेनका के 'हाय नैना!' के अभिवादन का उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया। मेनका ने उससे पूछा, 'संजय को नमस्कार कहो।' नैना पास गई और संजय के चेहरे से कुछ इंच की दूरी पर खड़ी होकर उसे घूरने लगी। 'नहीं - नहीं, संजय बहुत बुरा आदमी है - संजय बहुत बुरा आदमी है। इसकी मां भी बहुत बुरी औरत है, लोगों को जेल में डालती है - इसकी मां भी बहुत बुरी औरत है; वह लोगों को जेल में डालती है।' मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या देखूं। संजय का चेहरा पीला पड़ गया; मेनिका का चेहरा गुस्से से लाल हो गया: 'ये लोग छोटे बच्चों का ब्रेनवॉश कर रहे हैं,' उसने गुस्से से कहा। मेरी पत्नी ने स्थिति संभाली: 'बेटा, ऐसे नहीं बोलते। कोई कहे तेरी मां बुरी औरत है तो तुझे कैसे लेंगे?' — बेटा, तुम्हें ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए। अगर कोई तुम्हारी मां को बुरी औरत कहे तो तुम्हें कैसा लगेगा?' नैना ने संजय में दिलचस्पी खो दी और अपनी नानी की ओर मुड़कर पूछा कि जेल क्या होती है और क्या यह सच है कि उसमें दरवाजे या खिड़कियां नहीं होतीं।

मुझे पूरा यकीन था कि संजय अब कभी मेरे घर नहीं आएगा। लेकिन उसी दोपहर वह आ गया। सर्दी का मौसम था और मैं अपने अपार्टमेंट के पीछे वाले लॉन में धूप सेंक रही थी। जब हम बातें कर रहे थे, तभी मैंने देखा कि कुछ बच्चे झाड़ी के दूसरी तरफ इकट्ठा होकर आपस में फुसफुसा रहे थे। मुझे लगा कि कहीं संजय के खिलाफ कोई और प्रदर्शन न हो जाए। लेकिन मेरी राहत के लिए, जैसे ही हम उठे, लड़कों ने जोर से चिल्लाया: 'संजय गांधी, जिंदाबाद'।

विपत्ति ने दोनों परिवारों के चरित्र के अन्य पहलुओं को उजागर किया। श्रीमती गांधी जल्द ही अपनी निराशा से उबर गईं, क्योंकि मोरारजी देसाई सरकार ने उन्हें, संजय और आपातकाल में सक्रिय भूमिका निभाने वाले अन्य अधिकारियों को परेशान करने के लिए अभियान चलाया। उन्हें सत्ता से हटने नहीं दिया गया। न ही संजय को। उन्हें जवाबी कार्रवाई करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

देसाई शासन के निशाने पर संजय ही थे, इसलिए श्रीमती गांधी की मातृत्व भावना उन्हें हर तरह से बचाने पर केंद्रित थी। संजय (और आपातकाल के दौरान सूचना एवं प्रसारण मंत्री वी.सी. शुक्ला) पर लगे कई आरोपों में से एक यह भी था कि उन्होंने 'किस्सा कुर्सी का' नामक फिल्म का नेगेटिव नष्ट कर दिया था, जिसमें श्रीमती गांधी की सत्ता की लालसा को बेहद

अपमानजनक ढंग से दर्शाया गया था। मामला आरोपियों के खिलाफ जा रहा था और दोनों को डर था कि उन्हें दोषी ठहराया जाएगा। संजय को लगा कि अगर नानी पालखीवाला उनका बचाव करें तो उनकी आधी लड़ाई जीत ली जाएगी। वह जानते थे कि नानी मेरे मित्र हैं और उन्होंने मुझे उनसे संपर्क करने के लिए कहा। नानी, जिन्होंने श्रीमती गांधी के चुनाव मामले में उनका बचाव किया था, आपातकाल की घोषणा के बाद उससे हट गए थे। नानी भी संजय के शिकार हो चुके थे। हालांकि, मैंने नानी को संजय और मेनका से मिलने के लिए राजी कर लिया। उन्होंने बड़ी कृपा करते हुए उन्हें नाश्ते पर आमंत्रित किया।

संजय और मेनका का बॉम्बे दौरा एक अनोखा अनुभव था। दिल्ली से बॉम्बे जाने से पहले श्रीमती गांधी ने मुझे बुलवाया और अपने बेटे के साथ हिंसा होने की आशंका जताई। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं उसकी देखभाल करूँगा और उसे अपने साथ रखूँगा। जिस सुबह दोनों को आना था, मेरे अपार्टमेंट के नीचे वाली गली में भीड़ जमा होने लगी। मैंने संजय को फोन किया और उनसे अपना दौरा स्थगित करने को कहा। लेकिन वे जाने के लिए अड़े रहे। मैं सांता क्रूज़ हवाई अड्डे पर दंपति को लेने गया। वहाँ संजय विरोधी नारे लगाती हुई और भी बड़ी भीड़ थी। हम एक उग्र भीड़ के बीच से गुजरे, और सुरक्षाकर्मियों से भरी एक गाड़ी हमारी गाड़ी के ठीक पीछे कुछ इंच की दूरी पर चल रही थी। आर्थर बंदर रोड, जहाँ मैं रहता था, यातायात के लिए बंद कर दिया गया था। संजय और मेनका एक दोस्त के घर चले गए; मैं अपने कार्यालय गया और उन्हें फोन करके दोपहर में आने को कहा, जब सड़क खाली हो जाए। बाद में मुझे पता चला कि मेरे फ्लैट के चारों ओर घेरा मेरे दोस्त सोली सोराबजी ने नानी पालखीवाला की सहमति से बनवाया था। वे संजय और मेनका को मेरे साथ नहीं रहने देना चाहते थे, क्योंकि इससे मैं भीड़ के गुस्से का शिकार हो जाता। शाम को मैं संजय और मेनका को लेने गया और उन्हें अपने अपार्टमेंट में ले आया। भीड़ फिर से जमा होने लगी। जैसे ही संजय बालकनी में आए, लोग उन्हें गालियां देने लगे। संजय ने बिना कुछ बोले, बस खाली निगाहों से उन्हें देखा। मेनका ने पलटकर जवाब दिया। मैं उन्हें अंदर ले गया और जिन लोगों को मैंने दंपति से मिलने के लिए आमंत्रित किया था, उन्हें फोन करके कहा कि वे न आएं। फिर भी, शोभा दे आ गई और कहा कि उन्हें मेरा संदेश नहीं मिला था। वह हमारे साथ ताज होटल गई, जहां मैंने अपने मेहमानों को रात के खाने पर ले गया। एक पुलिस कार हमारे पीछे-पीछे आ रही थी। खाने के दौरान, शोभा ने बहाना बनाया - मुझे लगा कि वह शौचालय गई हैं। कुछ मिनट बाद, फोटोग्राफर वहां पहुंच गए। मैंने संजय और मेनका से माफी मांगी। उन्होंने मेरी बात मान ली कि मेरा इससे कोई लेना-देना नहीं था। उन्होंने रात अपने दोस्तों के साथ बिताई। अगली सुबह मैं उन्हें लेने गया और नानी पालखीवाला से मिलवाने ले गया। नाश्ते के समय संजय ने नानी से अपना केस लड़ने का प्रस्ताव रखा। नानी विनम्र थे, लेकिन दृढ़ निश्चय के साथ बोले, 'मुझे खेद है, मैं आपकी ओर से पेश नहीं होऊंगा।' और बात यहीं समाप्त हो गई।

उस दोपहर मैं उन दोनों को जिमखाना क्लब में लंच के लिए ले गया। एक बार फिर खबर फैल गई और जब हम निकले, तो गेट पर फोटोग्राफरों की भीड़ हमारा इंतजार कर रही थी। एयरपोर्ट वापस जाते समय भी यही हाल था। संजय को बस एक ही शिष्टाचार देखने को मिला, वो भी एयरलाइंस के एक अधिकारी से, जिसने उससे टिकट लेकर उसे बोर्डिंग पास दिया और भीड़ से निकालकर उसे वीआईपी लाउंज में बिठा दिया और फिर विमान तक पहुंचा दिया। संजय को सुरक्षित वापस देखकर मुझे बहुत राहत मिली। मैंने श्रीमती गांधी को फोन किया और उन्हें बताया कि उनका बेटा वापस आ रहा है।

जब संजय को शाह आयोग का सामना करना पड़ा, तब मैं संजय और मेनका के साथ था। संजय को गड़बड़ी की आशंका थी और वह अपने बाहुबली को साथ ले गया था। कमरा संजय विरोधी गुंडों से भरा हुआ था। जैसे ही वह अंदर दाखिल हुआ, अफरा-तफरी मच गई और चारों ओर हाथापाई और कुर्सियाँ उड़ने लगीं। संजय की कमीज़ फट गई। उसने अपने नंगे हाथों से मुकाबला किया। वह एक ताकतवर आदमी था; जिस तरह से उसने अपना बचाव किया, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। मेनका को भी धक्का-मुक्की का सामना करना पड़ा। मैंने पुलिस की किरण बेदी के पीछे छिपकर सारा दृश्य देखा। आयोग के प्रति दोनों के मन में जो थोड़ी बहुत इज्जत थी, वह मेनका ने दिखाई। वह रेलिंग के ऊपर से कूदी, जस्टिस शाह के दो पेन पेन होल्डर से निकाले और मुझे यादगार के तौर पर रख दिए।

इन्हीं दिनों मुझे द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया के संपादक पद से अचानक बर्खास्त कर दिया गया और मैं दिल्ली लौट आया। मैंने गांधी परिवार के स्वामित्व वाले द नेशनल हेराल्ड का संपादक पदभार संभाला। एक दोपहर मुझे अपनी मेज पर एक पैकेट मिला जिसमें बाबू जगजीवन राम के बेटे सुरेश कुमार की अठारह वर्षीय कॉलेज छात्रा के साथ यौन संबंध बनाते हुए एक दर्जन तस्वीरें थीं। तस्वीरों में वे अलग-अलग मुद्राओं में थे। मेनका को भी अपने सूर्या कार्यालय में ऐसा ही एक पैकेट मिला। उसी शाम जगजीवन राम का दूत होने का दावा करने वाला एक व्यक्ति मुझसे मिलने आया। उसने कहा कि अगर उनके बेटे की तस्वीरें द नेशनल हेराल्ड या सूर्या में प्रकाशित नहीं हुई तो बाबूजी प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई का साथ छोड़कर श्रीमती गांधी के पक्ष में चले जाएंगे। मैं पैकेट लेकर श्रीमती गांधी के घर गया। जैसे ही मैंने इस विषय पर बात शुरू की, उन्होंने मुझे बगीचे में आने को कहा: उन्हें शक था कि उनके घर में जासूसी के उपकरण लगे हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने सुरेश कुमार और उसके दोस्त की वे बेहद अश्लील तस्वीरें देखी हैं। उन्होंने जवाब दिया, हां, मेनका ने उन्हें दिखाई थीं। मैंने उसे उस प्रस्ताव के बारे में बताया जो मुझे देने को कहा गया था। उसने जवाब दिया, 'मुझे उस आदमी पर भरोसा नहीं है। जगजीवन राम ने मुझे और मेरे परिवार को किसी और से ज़्यादा नुकसान पहुँचाया है। आप उसे बता दीजिए कि वह हमारे पास आ जाए, इससे पहले कि मैं मेनका को तस्वीरें इस्तेमाल न करने के लिए कहूँ।'

इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं हुई। अश्लीलता के अभियोग से बचने के लिए सूर्या और द नेशनल हेराल्ड दोनों ने ही दोनों प्रेमियों के जननांगों पर काली पट्टियाँ लगाकर पूरी तस्वीर प्रकाशित कर दी।

कुछ महीनों बाद, दिल्ली से कुछ ही दूरी पर स्थित उनके खेत के पास एक धूल भरी सड़क पर गोलोनेल आनंद का शव मिला। उसके पास एक भरी हुई पिस्तौल पड़ी थी। अमतेश और मेनिका ने इसे हत्या का मामला साबित करने की कोशिश की, लेकिन आत्महत्या का फैसला सुनाया गया।

कर्नल आनंद ने अपना पूरा जीवन उपेक्षित रहकर बिताया था और अंत में उन्होंने जीवन त्यागने का निर्णय लिया। उनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति भी थी। यह उनके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी। एक-दो साल बाद उनके भाई ने पत्नी से झगड़े के बाद जहर खाकर आत्महत्या कर ली। उनका शव चंडीगढ़ की सुखना झील के किनारे मिला। कर्नल आनंद के निधन पर किसी ने शोक व्यक्त नहीं किया। भोग की रस्म हुई जिसमें श्रीमती गांधी उपस्थित थीं। उसके बाद मैंने किसी को भी उनके बारे में बात करते नहीं सुना।

जनता सरकार के ढाई वर्षों के शासनकाल में, जब श्रीमती गांधी को दो बार जेल जाना पड़ा (एक बार एक रात के लिए, दूसरी बार छह दिनों के लिए), उनके सबसे बड़े सहारा संजय और मेनका थे (और उनके ठीक पीछे अम्तेश्वर भी थे)। मेनका के लिए यह एक कठिन समय था: कॉलेज में पढ़ाई करना, सूर्या की देखभाल करना, जेल में अपने पति से मिलने जाना या शाह आयोग के समक्ष उनके साथ जाना, जन प्रदर्शनों का आयोजन करना और विरोधी भीड़ का सामना करना। परिवार के बहुत कम दोस्त बचे थे। मैं भी उन्हीं कुछ दोस्तों में से एक था।

गांधी और आनंद परिवारों के लिए बुरा सपना जनवरी 1980 में तब खत्म हुआ जब श्रीमती गांधी ने जनता पार्टी पर शानदार चुनावी जीत हासिल करके प्रधानमंत्री पद फिर से प्राप्त कर लिया। संजय (और उनके साथ मेनका) एक बार फिर दुनिया के शिखर पर थे। और उनके कंधों पर सवार थीं अमतेश्वर आनंद। हाल के दिनों में कई बार फूटने के बावजूद उनका अहंकार एक बार फिर आत्मसम्मान से भर उठा था।

खुशी का वो दौर बहुत कम समय के लिए ही बीता। सोमवार, 23 जून 1980 की सुबह संजय ने आत्महत्या कर ली (और अपने सह-पायलट कैप्टन सक्सेना को भी मार डाला), उनका दो सीटों वाला विमान दिल्ली के दक्षिणी पहाड़ी पर दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उस समय, अमतेश्वर और उनकी दूसरी बेटी अंबिका इंग्लैंड में छुट्टियां मना रही थीं। उन्हें यह खबर स्वराज पॉल ने दी, जो एक व्यवसायी थे और गांधी-आनंद परिवार में अपनी अच्छी जान-पहचान बना चुके थे। अमतेश्वर और अंबिका को दिल्ली वापस लाने के लिए एयर इंडिया के एक विशेष चार्टर्ड विमान में भेजा गया। विमान रोम हवाई अड्डे पर राजीव और सोनिया को लेने के लिए उतरा, जो सोनिया के माता-पिता के साथ रह रहे थे। विमान में अन्य यात्री सुमति मोरारजी, एक शिपिंग कंपनी की मालकिन, और वी.सी. शुक्ला थे। वे प्रथम श्रेणी के निचले डेक पर थे; बाकी लोग ऊपरी डेक पर प्रथम श्रेणी के लाउंज में थे। सुमति, वी.सी. शुक्ला और स्वराज पॉल समय-समय पर आनंद परिवार से मिलने आते

थे। तीनों ने अमतेश्वर को प्रोत्साहित किया कि उन्हें दोनों परिवारों को एकजुट रखने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। और अब जब संजय जा चुका है, तो उन्हें राजीव के पीछे एकजुट हो जाना चाहिए।

संजय की मृत्यु से सभी को गहरा सदमा लगा। मैं स्तब्ध रह गया। इवनिंग न्यूज़ में प्रकाशित और अगले दिन हिंदुस्तान टाइम्स में पुनः प्रकाशित एक अत्यंत भावुक श्रद्धांजलि में, मैंने सुझाव दिया कि संजय की विरासत स्वाभाविक रूप से उनकी युवा विधवा के कंधों पर आनी चाहिए, जिन्होंने उनका साथ दिया और भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण को साझा किया। राजीव ने कभी राजनीति में रुचि नहीं दिखाई थी और उनकी पत्नी ने इससे घृणा व्यक्त की थी। मुझे इस भावुक अभिव्यक्ति की भारी कीमत चुकानी पड़ी। मेनका का समर्थन करने के लिए मैंने जो एक वाक्य लिखा, वह मेरे गले का फंदा बन गया। मैंने लिखा था कि वह उतनी कमजोर नहीं थीं जितना कुछ लोग सोचते थे। 'जब वह उत्तेजित होती हैं, तो वह शेर पर सवार दुर्गा की तरह हो सकती हैं।' इसे मेनका का महिमामंडन करने के रूप में समझा गया। जिन लोगों ने सोचा कि मैंने शरारतपूर्वक मेनका को राजीव के विरुद्ध खड़ा किया है, उनमें इंदिरा गांधी भी शामिल थीं।

अगर श्रीमती गांधी के मन में मेनका के प्रति कोई नाराजगी थी भी, तो संजय के जीवित रहते उन्होंने इस बारे में कुछ कहा या किया नहीं। यह मानना शायद सच हो कि वह अपने दूसरे बेटे से प्यार भी करती थीं और डरती भी थीं। संजय आनंद के घर में अपनी मां के घर से ज्यादा सहज महसूस करते थे। आनंद के घर में घर के नौकरों समेत सभी लोग उनका बहुत ख्याल रखते थे; जबकि मां के घर में उनका बड़ा भाई उनका प्रतिद्वंदी था। श्रीमती गांधी को संजय का आनंद के घर को अपने घर से ज्यादा पसंद करना अच्छा नहीं लगता था। संजय की दुखद मृत्यु के कुछ ही समय बाद गांधी परिवार ने मेनका को यह बता दिया कि वह प्रधानमंत्री आवास में फिट नहीं बैठतीं। संजय की मृत्यु के एक सप्ताह बाद, श्रीमती गांधी ने अकेले में मेनका को अपनी सचिव बनने का प्रस्ताव दिया। कुछ दिनों बाद, धीरेंद्र ब्रह्मचारी उनके कमरे में आए और उन्हें बताया कि श्रीमती गांधी उन्हें यह बात बताने में शर्म महसूस कर रही थीं, लेकिन सोनिया ने इस प्रस्ताव को सिरे से खारिज कर दिया था और धमकी दी थी कि अगर श्रीमती गांधी मेनका को दिया गया प्रस्ताव वापस नहीं लेतीं तो वह अपने परिवार के साथ इटली लौट जाएंगी। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि सोनिया अधिक प्रिय बहू थी, ठीक वैसे ही जैसे संजय अधिक प्रिय पुत्र था। संजय के चले जाने के बाद श्रीमती गांधी के पास अपने इकलौते बचे बेटे राजीव पर निर्भर रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। उन्हें मेनिका से कोई विशेष लगाव नहीं था और वे अम्तेश्वर के दबंग स्वभाव से नाराज़ थीं। यह भावना जल्द ही खुलकर शत्रुता में बदल गई।

श्रीमती गांधी, मेनका की उपस्थिति से लगातार चिढ़ती जा रही थीं और उसके हर काम में कमी निकालती थीं। श्रीमती मार्गरेट थैचर के सम्मान में आयोजित एक औपचारिक भोज में, जहाँ राजीव और सोनिया मुख्य अतिथि के साथ मुख्य मेज पर बैठे थे, वहीं मेनका को धवन और उषा भगत के साथ कर्मचारियों के लिए निर्धारित मेज पर बैठा दिया गया था। श्रीमती

गांधी ने मुझे बताया कि मेनका लोगों के साथ बदतमीजी से पेश आती थी, और एक दिन उन्होंने मुझे बुलवाया और मेनका से बात करके उसे बेहतर व्यवहार करने के लिए कहा।

मैंने उन्हें हिंदुस्तान टाइम्स के स्टाफ में शामिल करने का प्रस्ताव दिया और इस बारे में के.के. बिरला से बात की। वे इस शर्त पर सहमत हुए कि श्रीमती गांधी उन्हें एक पत्र भेजें या उनसे बात करें। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। मेनका को सूर्या से संबंध तोड़ने का आदेश दिया गया क्योंकि वह 'एक घटिया अखबार' था (जो श्रीमती गांधी की सहमति से हमेशा से ही घटिया था)। मेनका, जिन्हें जानवरों से बहुत प्यार था और जो पशु संरक्षण समिति की अध्यक्ष चुनी गई थीं, को इस्तीफा देने के लिए कहा गया। उन्होंने अपने पति की व्यक्तिगत जीवनी लिखी। श्रीमती गांधी ने इसे मंजूरी देने के बाद, प्रकाशन से एक-दो दिन पहले इसमें गंभीर त्रुटियां पाईं: सभी मुद्रित प्रतियां वापस लेनी पड़ीं और उनकी जगह एक नया संस्करण प्रकाशित किया गया जिसमें केवल कुछ वाक्य बदले गए थे। श्रीमती गांधी ने अमतेश्वर के प्रति अपनी नापसंदगी मेनका को बता दी: अमतेश्वर ने नंबर 1, सफदरजंग रोड जाना बंद कर दिया।

दोनों परिवार बेहद अंधविश्वासी थे। संजय की मृत्यु के कुछ दिनों बाद, संयोगवश मैं जोर बाग स्थित अमतेश्वर के घर उनसे मिलने गई। मैंने देखा कि धोती और लकड़ी की चप्पल पहने एक पुजारी संस्कृत श्लोक बुदबुदाते हुए घर से बाहर निकल रहे थे। उनके पीछे एक व्यक्ति सिर पर मिट्टी का घड़ा लिए हुए था। और उस व्यक्ति के पीछे अमतेश्वर आनंद थीं। मैंने उनसे पूछा, 'यह सब क्या है?' उन्होंने मुस्कुराते हुए बताया, 'संजय के साथ मारे गए सह-पायलट की विधवा श्रीमती सक्सेना ने मुझे फोन किया और बताया कि दोनों लड़के उनके सपने में आए थे और शिकायत कर रहे थे कि उन्हें बहुत प्यास लगी है क्योंकि वे जहां हैं वहां बहुत गर्मी है। मैंने इस पंडितजी से सलाह ली और उन्होंने सुझाव दिया कि हम श्रीमती गांधी के घर के बाहर पियाओ (पीने के पानी का स्टॉल) लगा दें। मैं ऐसा करने जा रही हूं।' मेनका को अर्धचंद्र और तारे वाला एक हार उपहार में मिला। विजय राजे सिंधिया ने उन्हें बताया कि यह लोगों को बीमार करने का तांत्रिक चिन्ह है। मेनिका, जो कुछ समय से अस्वस्थ महसूस कर रही थीं, ने इसे उतार दिया और अचानक उन्हें बेहतर महसूस होने लगा।

श्रीमती गांधी और मेनका के बीच संबंध बहुत तेज़ी से बिगड़ गए। मेनका के अनुसार, उन्होंने श्रीमती गांधी को उकसाने के लिए कुछ भी नहीं किया था। मानो श्रीमती गांधी को नीचा दिखाने के लिए—और इसका कारण भी था, क्योंकि श्रीमती गांधी ने स्वयं अपने विरोधियों को बदनाम करने के लिए पत्रिका का उपयोग करने की अनुमति दी थी—अमतेशवर ने श्रीमती गांधी के कट्टर दुश्मन विजय राजे सिंधिया को सूर्या पत्रिका बेचने का सौदा किया। यह सौदा डॉ. जे.के. जैन के माध्यम से हुआ, जो आरएसएस के पूर्व सदस्य थे। अमतेश के साथ न्याय करते हुए, श्रीमती गांधी ने उन्हें और उनकी बेटी को सूर्या पत्रिका बंद करने या बेचने के अलावा कोई विकल्प नहीं दिया था। मोदी जैसे उद्योगपतियों, जिन्होंने पत्रिका को चलाने में मदद की थी, को राजीव ने बताया था कि श्रीमती गांधी पत्रिका में विज्ञापन देने के उनके फैसले से सहमत नहीं

थीं। कैम्पा कोला के चरणजीत सिंह जैसे अन्य लोगों ने अमतेश को बकाया भुगतान करने से इनकार कर दिया। यह एक बहुत ही सुनियोजित और गुप्त सौदा था। यहां तक कि मुझे भी, जिसे संजय ने पत्रिका का कार्यभार संभालने के लिए राजी किया था, इस सौदे के बारे में कुछ भी पता नहीं था (और आज तक मुझे नहीं पता कि कितने पैसे और किस रूप में दिए गए)। जिस दिन सौदा तय हुआ, उसी दिन अमतेश डॉ. जैन को मेरे अपार्टमेंट में अखबारों में इसकी घोषणा करवाने के लिए लेकर आया (फरवरी 1982)। यह बात सबको स्पष्ट थी कि सफदरजंग रोड स्थित नंबर 1 में मेनका के दिन गिने-चुने रह गए थे। बस यही अटकलें लगाई जा रही थीं कि वह कैसे और कब घर छोड़ेगी। श्रीमती गांधी, जिन्होंने कभी किसी और को अपने अलावा किसी और के फैसले लेते नहीं देखा था, एक अप्रिय आश्चर्य के लिए तैयार थीं। अपनी सास से अलग होने का फैसला करने के बाद, मेनका ने तय किया कि इस बार वह अपने जाने की शर्तें और समय खुद तय करेंगी। उन्होंने मुझे कई हफ्ते पहले ही वह तारीख बता दी थी जिस दिन उन्हें 'घर से निकाल दिया जाएगा'।

मेनका ने समय का चुनाव बहुत सोच-समझकर किया। श्रीमती गांधी भारत महोत्सव के लिए लंदन में थीं और सोनिया को भी अपने साथ ले गई थीं। राजीव अपने व्यक्तित्व को निखारने में इतना मशगूल था कि वह घर पर रहने से बचता था और मेनका से भोजन के समय मिलने का समय नहीं निकाल पाता था।

मेनका और अकबर अहमद ने संजय विचार मंच शुरू करने का फैसला किया। श्रीमती गांधी को समझ नहीं आ रहा था कि वे अपने बेटे के आदर्शों का प्रचार करने वाले संगठन के प्रति अपनी असहमति कैसे व्यक्त करें। उद्घाटन समारोह में मेनका के भाषण का पाठ (जिसके बारे में मेनका का दावा है कि श्रीमती गांधी ने इसे मंजूरी दी थी) राजीव ने लंदन को तार से भेजा। श्रीमती गांधी ने फैसला किया कि उन्हें वह मौका मिल गया है जिसका वे इतने महीनों से इंतजार कर रही थीं, अपनी उग्र बहू से छुटकारा पाने का।

श्रीमती गांधी 28 मार्च 1982 की सुबह लंदन से लौटीं - पूरी तरह से अपनी मनमानी करने के इरादे से। जब मेनका उनसे मिलने आई, तो उन्होंने उसे रूखेपन से यह कहकर टाल दिया: 'मैं तुमसे बाद में बात करूंगी।' उन्हें संदेश भेजा गया कि उनसे दोपहर के भोजन के लिए परिवार के साथ शामिल होने की अपेक्षा नहीं की जाती है और खाना उनके कमरे में भेज दिया जाएगा। दोपहर लगभग 1 बजे उन्हें एक और संदेश भेजा गया कि प्रधानमंत्री उनसे मिलना चाहती हैं। मेनका डांट सुनने के लिए तैयार थीं। वह बैठक कक्ष में थीं जब श्रीमती गांधी नंगे पैर अंदर आईं। उन्होंने धवन और धीरेंद्र ब्रह्मचारी को मेनका से कही गई बातों के गवाह के रूप में अंदर आने का आदेश दिया। मेनका के अनुसार, वह क्रोध से आग बबूला थीं और चिल्लाते हुए मेनका पर उंगली हिला रही थीं, उनकी बात मुश्किल से समझ में आ रही थी। 'तुम तुरंत इस घर से निकल जाओगी।' मेनका ने मासूमियत का भाव दिखाते हुए पूछा, 'क्यों?' मैंने क्या किया?' श्रीमती गांधी ने चिल्लाकर जवाब दिया, 'मैंने आपके भाषण का हर शब्द सुना!' मेनका ने आगे कहा, 'आपने ही इसे मंजूरी दी थी।' इससे मेनका और भड़क

उठी। श्रीमती गांधी ने उस पर अपनी इच्छा का उल्लंघन करने का आरोप लगाया और साथ ही कहा, 'तुम्हारे हर शब्द में ज़हर था। अभी इसी वक्त निकल जाओ। निकल जाओ!' वह चीखी। 'गाड़ी को तुम्हारी मां के घर ले जाने का आदेश दिया गया है।' मेनका अपनी जगह पर अड़ी रही। वह अपनी मां के घर नहीं जाना चाहती थी और उसे सामान पैक करने के लिए समय चाहिए था। 'तुम्हें वहीं जाना होगा जहां तुम्हें कहा जाएगा। तुम्हारा सामान बाद में तुम्हें भेज दिया जाएगा,' श्रीमती गांधी ने कहा और फिर से अम्तेश्वर के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग किया। मेनका रोने लगी और चिल्लाते हुए अपने कमरे की ओर चली गई कि वह अपनी मां का अपमान नहीं होने देगी। श्रीमती गांधी नंगे पैर बजरी वाली सड़क पर उसके पीछे गईं और बाहर मौजूद कर्मचारियों और संतरियों के कानों तक चिल्लाती रहीं: 'निकल जाओ! निकल जाओ!' इसी बीच, फिरोज वरुण को श्रीमती गांधी के कमरे में ले जाया गया था।

मेनिका की सहेलियाँ प्रेस में खबर फैलाने में जुट गईं। प्रधानमंत्री के घर जाने से पहले अंबिका ने मुझे फोन करके अपनी बहन के साथ हुई घटना के बारे में बताया और सबको जानकारी दी। रात 9 बजे तक विदेशी संवाददाताओं समेत फोटोग्राफरों और पत्रकारों की भीड़ गेट के बाहर जमा होने लगी। श्रीमती गांधी को विदेशी प्रेस से हमेशा ही सख्त डर और नफरत रहती थी। घर तक पहुँचने के विभिन्न रास्तों पर तैनात पुलिस को यह पूरी तरह से नहीं बताया गया था कि किसे रोकना है और किसे जाने देना है।

दस मिनट बाद अंबिका और उसका भाई घर पहुँचे। आठ साल में पहली बार उन्हें रोका गया। उनके आने की सूचना श्रीमती गांधी को भेजी गई और उन्हें बताया गया कि अंबिका पत्रकारों से बात कर रही हैं। उनकी कार को अंदर जाने दिया गया और दोनों मेनिका के कमरे में गए। उन्होंने मेनिका को रोते हुए पाया, जो अपने सामान को अपने बक्सों में भरने की कोशिश कर रही थी। श्रीमती गांधी अचानक अंदर आईं और मेनिका को बिना कुछ लिए चले जाने का आदेश दिया। अंबिका ने कहा, 'वह नहीं जाएंगी, यह उनका घर है।' श्रीमती गांधी की अंबिका के प्रति नापसंदगी में उसकी तीखी जुबान का डर भी झलक रहा था। श्रीमती गांधी चिल्लाईं, 'यह उनका घर नहीं है, यह भारत के प्रधानमंत्री का घर है। वह मेरी अनुमति के बिना यहाँ लोगों को नहीं ला सकतीं। वैसे भी, अंबिका आनंद, मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती।' अंबिका डरने वाली नहीं थी। 'आपको मेरी बहन से इस तरह बात करने का कोई अधिकार नहीं है। यह संजय का घर है और वह संजय की पत्नी हैं। इसलिए यह उनका घर है।' कोई उसे बाहर जाने का आदेश नहीं दे सकता।' श्रीमती गांधी का मुंह बंद हो गया और वे रोने लगीं। एक समय उन्होंने कहा, 'मैंने उसे बाहर जाने के लिए नहीं कहा; वह अपनी मर्जी से जा रही है।' उन्होंने विरोध करते हुए कहा, 'मैंने अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला।' दोनों बहनें, जो अब एक-दूसरे की मौजूदगी से और भी साहसी हो गई थीं, ने पलटवार करते हुए कहा, 'तुमने अपने जीवन में कभी सच नहीं बोला।' श्रीमती गांधी का गुस्सा शांत हो गया; वे हिस्टीरिया की तरह रोने लगीं और धीरेंद्र ब्रह्मचारी को उन्हें कमरे से बाहर ले जाना पड़ा। इसके बाद, संदेश बेचारे धवन के माध्यम से

पहुँचाए जाने लगे, जिन्हें दोनों लड़कियों से खूब खरी-खोटी सुननी पड़ी — साथ ही, उत्साह से परेशान मेनिका के आयरिश वुल्फहाउंड शीबा ने उन्हें काट भी लिया।

अकेले में ही दोनों बहनों ने अपनी रणनीति और प्रस्थान का समय तय किया। उन्होंने दोपहर का खाना मंगवाया और वीसीआर पर अमिताभ बच्चन की फिल्म तेज आवाज में देखी ताकि बगल के कमरे में बैठी श्रीमती गांधी को पता चल जाए कि उन्हें किसी बात की परवाह नहीं है। जब भी धवन उन्हें जाने के लिए मनाने आता, वे उसके सामने कोई नई मांग रख देतीं। कुत्तों को खाना खिलाना था। कुत्तों को खाना खिलाया गया। जब धवन लड़कियों को कुछ भी ले जाने से रोकने में नाकाम रहा, तो श्रीमती गांधी ब्रह्मचारी के साथ आईं और उनके पैक किए गए सभी सामान की तलाशी का आदेश दिया। मेनिका ने जोर देकर कहा कि अगर उसके सामान की तलाशी होनी है तो वह सड़क पर सबके सामने होनी चाहिए। कमरे के बाहर रखे बक्सों को जानबूझकर पत्रकारों के देखने और गेट के बाहर लगे दूरबीन लेंस वाले कैमरों से तस्वीरें खींचने के लिए खोल दिया गया। फिर आरोप-प्रत्यारोप का एक और दौर शुरू हो गया।

अब श्रीमती गांधी के हाथ में स्थिति का कोई नियंत्रण नहीं था। राजीव गांधी और अरुण नेहरू ने कमान संभाली। उन्होंने सुरक्षा अधिकारी एन.के. सिंह को बुलाया और दोनों बहनों को बाहर निकालने का आदेश दिया। चतुर होने के कारण एन.के. सिंह ने आदेश को लिखित में देने को कहा। न तो राजीव गांधी और न ही अरुण नेहरू लिखित में कोई प्रतिबद्धता जताने को तैयार थे। एन.के. सिंह के मौखिक अनुरोधों को लड़कियों ने ठुकरा दिया, क्योंकि वे अपना सामान, कुत्ते और अब बुखार से पीड़ित फिरोज वरुण को भी आगे भेजना चाहती थीं। श्रीमती गांधी जानती थीं कि उन्हें हार माननी पड़ेगी और अंततः उन्होंने हार मान ली।

लड़कियों और उनके भाई ने बड़े आराम से शानदार दोपहर का भोजन किया। सामान और कुत्तों को टैक्सी में आगे भेज दिया गया। बहुत नींद में डूबे फिरोज वरुण को रात 11 बजे उनके हवाले कर दिया गया। टैक्सी के बजाय, प्रधानमंत्री की कार को मेनका और उनके बेटे को उनकी मनचाही जगह ले जाने का आदेश दिया गया। श्रीमती गांधी ने अपनी आदत के अनुसार, अंत में मेनका को एक पत्र लिखवाया जिसमें उनके उन कुकर्मों का ब्यौरा था जिनके कारण उनका निष्कासन आवश्यक हो गया था। मेनका ने बैठकर अपना जवाब लिखा और उसे प्रेस को जारी कर दिया। रात 11 बजे के कुछ मिनट बाद, बहुत रोती हुई मेनका, नींद से भरी आँखों वाले और हैरान फिरोज वरुण को गोद में लिए, प्रेस कैमरों की फ्लैश लाइटों की चकाचौंध के बीच कमरे से बाहर आई। मेनका ने भारत की प्रधानमंत्री के खिलाफ इस दौर को करारी शिकस्त से जीत लिया था।

कुछ महीनों बाद अमतेश और मेनका के साथ मेरा घनिष्ठ संबंध अचानक टूट गया। एक पत्रिका ने मेनका पर लगे कुछ आरोपों के बारे में मेरा साक्षात्कार लिया था। जाहिर है, मेरी टिप्पणियों से वह नाराज हो गई, क्योंकि कुछ दिनों बाद ही वह

मेरे अपार्टमेंट में घुस आई और पत्रिका की एक प्रति मेरे चेहरे पर फेंककर गुस्से में बाहर चली गई। एक घंटे बाद मुझे अमतेश का एक पंजीकृत डाक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मुझ पर परिवार के बारे में झूठ बोलने का आरोप लगाया था। गांधी और आनंद परिवार से मेरा संबंध समाप्त हो गया था। मैंने राहत की सांस ली। मेरे जीवन का एक और अध्याय समाप्त हो गया।

13 1980-86, संसद और द हिंदुस्तान टाइम्स

ज़रा पीछे चलते हैं: दिसंबर 1980 के आम चुनावों में श्रीमती गांधी ने ज़बरदस्त वापसी की। मैंने चुनाव से कुछ महीने पहले लिखे अपने एक लेख, 'इंदिरा गांधी की वापसी!' में उनकी जीत की भविष्यवाणी की थी। मैंने उनके और उनके परिवार के लिए अपना योगदान दिया था। जब हर कोई उन्हें बदनाम कर रहा था, तब मैंने उनका बचाव किया। संजय गांधी की मारुति कार परियोजना के खिलाफ फैलाई गई निराधार अफवाहों का खंडन करने वाला मैं अकेला पत्रकार था। मैंने मेनका और उनकी मां अमतेश्वर को उनके मासिक पत्रिका 'सूर्य' के संपादन और विज्ञापन दिलाने में मदद की, जब वह अभी-अभी शुरू हुई थी। मैंने छह महीने तक बिना वेतन लिए 'द नेशनल हेराल्ड' का संपादन किया। जब संजय गांधी शाह आयोग के सामने पेश हुए, तब मैं उनके साथ था और जेल में डाले जाने के बाद भी उनके संपर्क में रहा। मैंने उनके जन्म नियंत्रण कार्यक्रम और झुग्गी-झोपड़ी उन्मूलन अभियान का पुरजोर समर्थन किया और वृक्षारोपण में उनकी रुचि के लिए मैं ही मुख्य रूप से जिम्मेदार था। मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने उनके लिए जो कुछ किया था, उसके लिए मुझे किसी न किसी तरह की पहचान या पुरस्कार की उम्मीद थी।

हालांकि श्रीमती गांधी दोबारा प्रधानमंत्री बनीं, लेकिन देश के असली शासक संजय थे। चूंकि मैंने उन्हें और मेनका को उनके मुश्किल दिनों में कई बार देखा था, इसलिए हम दोनों के बीच स्नेह विकसित हो गया। वे कम बोलने वाले लेकिन कर्मठ व्यक्ति थे। अन्य राजनेताओं के विपरीत, जो अपने समर्थकों को खुश रखने के लिए ऐसे वादे करते हैं जिन्हें पूरा करने का उनका कोई इरादा नहीं होता, संजय जब कोई काम करने का वादा करते थे, तो आप निश्चिंत हो सकते थे कि वे उसे पूरा करेंगे। यदि उन्हें कोई अनुरोध अनुचित लगता था, तो वे 'ना' कहने का साहस भी रखते थे।

जैसा कि मैंने कहा, मुझे गांधी परिवार से इनाम मिलने की उम्मीद थी। संजय ने मुझसे पूछा कि क्या मुझे किसी राजनयिक कार्य में रुचि होगी। उनके मन में लंदन में उच्चायुक्त का पद था। मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के इसे ठुकरा दिया क्योंकि मैं भारत छोड़ना नहीं चाहता था। फिर उन्होंने मुझे राज्यसभा के लिए नामांकन और हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक का पद दिलाने की पेशकश की। मैंने दूसरा विकल्प स्वीकार कर लिया। मैं नई दिल्ली कार्यालय में था जब एक दोपहर तत्कालीन गृह मंत्री ज्ञानी ज़ैल सिंह ने मुझे फोन किया और बताया कि वे राज्यसभा के उम्मीदवारों की सूची लेकर राष्ट्रपति से मिलने जा रहे हैं। मेरा नाम भी उनमें था। मैं एक ऐसे बच्चे की तरह खुश हो गया जिसे जन्मदिन पर बहुत बड़ा उपहार मिला हो। मैंने नई दिल्ली में अपने सहयोगियों को चिल्लाकर कहा: 'हुर्रे! मैं सांसद बन गया!' मैं पीटीआई भवन के गलियारे में दौड़ता हुआ हर उस व्यक्ति को यह खबर सुना रहा था जिसका चेहरा मुझे परिचित था। मैं अपनी मां के घर गया और उन्हें और अपनी बहन को यह खुशखबरी दी। मैं संजय गांधी के पास उन्हें धन्यवाद देने गया और जश्न मनाने के लिए घर आ गया। अगली

सुबह मैं जल्दी ही कसौली के लिए रवाना हो गया ताकि माला लेकर आने वाले लोगों और बधाई पत्रों और टेलीग्रामों की बाढ़ से बच सकूं, जो निश्चित रूप से आने वाली थीं।
मैंने कसौली में एक सप्ताह बिताया, अपनी किस्मत के पलटने का जश्न मनाते हुए। द इलस्ट्रेटेड वीकली से निकाले जाने के बाद से मेरी किस्मत खराब चल रही थी। राज्यसभा के लिए मेरे नामांकन की घोषणा के कुछ सप्ताह बाद, के.के. बिरला ने मुझे मिलने के लिए बुलाया। उन्होंने मुझे द हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक का पद देने की पेशकश की। मुझे पहले से ही पता था कि वे ऐसा करेंगे, लेकिन मुझे यह नहीं पता था कि वे हिरणमय कार्लेकर के साथ क्या करेंगे, जो उस समय अखबार के संपादक थे। यह मेरे लिए बहुत ही अजीब स्थिति थी। मैंने कार्लेकर के ससुर अशोक चंदा के अधीन काम किया था और उनसे दोस्ती भी थी, जब वे लंदन में उप उच्चायुक्त थे। मैंने चंदा की बड़ी बेटी अंजू की स्कूल के अंतिम वर्ष और ऑक्सफोर्ड के पहले वर्ष के दौरान स्थानीय अभिभावक के रूप में देखभाल की थी। परिवार के साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता को जानते हुए, मेरे पिता ने चंदा परिवार को सुजान सिंह पार्क में एक फ्लैट दिलवाने के लिए काफी प्रयास किया था। जिस शाम बिरला ने मुझे नौकरी की पेशकश की, उसी शाम मोनिका चंदा मुझसे मिलने आई। हमेशा की तरह, उसने मुझे बताया कि बिरला अपने दामाद पर कितना भरोसा करते हैं और हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक के रूप में वह कितना अच्छा काम कर रहे हैं। मुझे लगा कि अब उसे कड़वी सच्चाई बताने का समय आ गया है। 'मोनिका, मुझे नहीं पता कि तुम्हें ये सब बातें कहाँ से पता चलीं! बिरला रोनू से खुश नहीं हैं और उसे बर्खास्त करने की सोच रहे हैं।'

‘आप इस तरह की बात कैसे कह सकते हैं!’ वह हैरानी से बोली। ‘आपको कैसे पता?’
‘मुझे पता है क्योंकि मुझे आज दोपहर ही उनकी नौकरी का प्रस्ताव मिला है और मैं अगले सप्ताह से कार्यभार संभाल लूंगी।’ बेहद निराश मोनिका चंदा मेरे अपार्टमेंट से अपने घर वापस चली गई।
मैंने 1980 में हिंदुस्तान टाइम्स का संपादन कार्य संभाला। हिरणमय कार्लेकर ने एक नोट छोड़ा था जिसमें उन्होंने अपने कुछ निजी कर्मचारियों के पदोन्नति की सिफारिश की थी, जिन्हें मुझे नियुक्त किया जाना था। मैंने उनकी सिफारिशों का सम्मान करने का निर्णय लिया। मुझे संजय गांधी का एक नोट भी मिला जिसमें सहायक और उप-संपादकों की एक लंबी सूची थी, जिनके बारे में उन्हें पता था कि वे कम्युनिस्ट हैं: मुझे उन्हें जल्द से जल्द हटाना था। मैंने यह नोट अपनी जेब में रख लिया ताकि यह जांच सकूं कि उनकी 'अंदरूनी जानकारी' विश्वसनीय है या नहीं। मेरा किसी को भी उनके राजनीतिक विचारों के लिए निशाना बनाने का कोई इरादा नहीं था। मैंने पाया कि संजय की जानकारी सही थी। उनकी सूची में शामिल तीन लोगों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली; बाकी लोग अपना काम करते रहे। चंद जोशी एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य होने की बात कभी नहीं छिपाई। वे अपना अधिकांश समय संघ की गतिविधियों में बिताते थे। वे

खूब शराब पीते थे और मुश्किल से तीन-चार महीने में एक से अधिक लेख जमा करते थे। उनका नाम संजय की सूची में नहीं था; न ही बिरला या प्रबंधन ने कभी उन्हें बर्खास्त करने या दिल्ली से बाहर स्थानांतरित करने का प्रयास किया। मैं अक्सर सोचता था कि चंद जोशी, जिनसे मेरी अच्छी जान-पहचान हो गई थी और जिनकी दूसरी पत्नी मानिनी चटर्जी मुझे बेहद पसंद थीं, पाँच सितारा होटलों में दोपहरें शराब पीते हुए कैसे गुज़ार पाते थे। उनकी तनख्वाह से तो उनके दोनों परिवारों का गुज़ारा मुश्किल से ही हो पाता था। हिंदुस्तान टाइम्स छोड़ने के कुछ साल बाद, डॉक्टरों की सलाह पर चंद को शराब छोड़नी पड़ी। कभी मार्क्सवादी नास्तिक रहे चंद जोशी देवी दुर्गा के परम भक्त बन गए।

हिंदुस्तान टाइम्स की शुरुआत प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में ग़दर पार्टी से जुड़े सिख क्रांतिकारियों के एक समूह द्वारा राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार के लिए की गई थी। इसके पहले संपादक सरदार मंगल सिंह थे। अखबार की बिक्री अच्छी नहीं रही और ब्रिटिश विरोधी होने के कारण इसे अक्सर बंद होने का खतरा बना रहता था। इसके मालिकों को इसे जे.एन. साहनी को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिन्होंने अपने बहनोई कोहली के साथ मिलकर इसे दिल्ली के प्रमुख दैनिक अखबार के रूप में स्थापित किया। उन्हें भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वे अक्सर सरकार की नाराजगी का शिकार होते रहे। अखबार घाटे में चल रहा था जब पंडित मदन मोहन मालवीय ने उद्योगपति जी.डी. बिड़ला को इसे खरीदने और व्यावसायिक तरीके से चलाने के लिए राजी किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस राजधानी में अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए एक दैनिक अखबार चाहती थी। जी.डी. बिड़ला ने इसे व्यावसायिक उद्यम से अधिक कांग्रेस पर एहसान के तौर पर खरीदा था। महात्मा गांधी के पुत्र देवदास को संपादक नियुक्त किया गया। संपादकीय कार्यालय और मुद्रण प्रेस कनॉट सर्कस के बाहरी सर्कल में कुछ कमरों में स्थित थे। कुछ ही वर्षों में इस अखबार का अच्छा-खासा प्रसार हो गया और यह दिल्लीवासियों की रोज़मर्रा की आदत बन गया: शौचालय जाते समय अखबार को अपने सामने फैलाए बिना उनका पेट नहीं भरता था। यह अखबार भावी संतानों के विज्ञापन देने और प्रियजनों के निधन की सूचना देने का माध्यम बन गया। राजधानी और उसके आसपास के इलाकों तक ही सीमित प्रसार के बावजूद, विज्ञापनों से होने वाली इसकी आय अन्य शहरों में प्रकाशित होने वाले कहीं अधिक प्रसार वाले दैनिक अखबारों की तुलना में कहीं अधिक थी।

जी.डी. बिरला की संपत्ति का उनके बेटों में बंटवारा होने पर, हिंदुस्तान टाइम्स उनके सबसे बड़े बेटे के.के. बिरला को मिला। यह उनकी विरासतों में सबसे कम महत्वपूर्ण था। लेकिन राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के चलते उन्होंने इसका आधुनिकीकरण और विस्तार करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने कर्जन रोड (बाद में कस्तूरबा गांधी मार्ग) पर जमीन खरीदी और संगमरमर और कांच की एक बहुमंजिला इमारत बनवाई। पहली तीन मंजिलें हिंदुस्तान टाइम्स के प्रिंटिंग प्रेस, विज्ञापन अनुभाग, संपादकीय और प्रबंधकीय कार्यालयों के लिए आरक्षित थीं। बाकी मंजिलें किराए पर दी गईं। अखबार का

कार्यभार संभालने के बाद से ही के.के. बिरला ने इसका इस्तेमाल सरकार को अपने पक्ष में रखने और अपने राजनीतिक और व्यावसायिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए किया। उनका इरादा इसे एक स्वतंत्र अखबार बनाने का नहीं था। उन्होंने मंत्रियों के बेटों और बेटियों को नौकरी देकर या उनकी सिफारिश पर उनका तबादला करवाकर उन्हें खुश किया। वे विपक्ष को छोड़कर किसी को भी नाराज नहीं करना चाहते थे - वह भी हल्के ढंग से, कहीं ऐसा न हो कि विपक्ष एक दिन सरकार बन जाए। परिणामस्वरूप, सैद्धांतिक रूप से संपादकीय मामलों के लिए आरक्षित अखबार के दो-तिहाई से अधिक हिस्से को वायर सेवाओं से प्राप्त सामग्री से भर दिया गया; शेष स्थान का एक तिहाई हिस्सा राज्य संवाददाताओं द्वारा भेजी गई रिपोर्टों से भरा होता था, जो लगभग हमेशा राज्य सरकारों के पक्ष में होती थीं। इसमें विदेशी समाचार बहुत कम प्रकाशित होते थे, सिवाय वायर सेवाओं द्वारा जारी की गई खबरों के। इसके केवल दो विदेशी संवाददाता थे, एक लंदन में और दूसरा वाशिंगटन में। इन कमियों के बावजूद, राजधानी में द हिंदुस्तान टाइम्स के लगभग एकाधिकार को कोई हिला नहीं सका। इसके रविवार के संस्करणों में पांच से छह पृष्ठ वैवाहिक विज्ञापनों के होते थे; इसके दैनिक संस्करण में लगभग आधा पृष्ठ शोक संदेशों और श्रद्धांजलि के लिए समर्पित होता था। यह दिवंगत आत्माओं के लिए उथलाओं, अंतिम अरदासों, भोग समारोहों और कीर्तनों की घोषणा करने वाला पहला और शायद एकमात्र समाचार पत्र था। यह आम तौर पर माना जाता था कि सबसे अधिक प्रसार वाला द हिंदुस्तान टाइम्स राजधानी का सबसे खराब समाचार पत्र था। कहीं अधिक पठनीय, स्टेट्समैन का प्रसार सबसे कम था। द हिंदुस्तान टाइम्स को एकमात्र चुनौती द टाइम्स ऑफ इंडिया से मिली, जो भारत के किसी भी अन्य दैनिक समाचार पत्र की तरह ही संपूर्ण था। हालांकि, द हिंदुस्तान टाइम्स को पछाड़ देने के उसके प्रयास घोर असफल रहे।

हिंदुस्तान टाइम्स में कुछ प्रख्यात संपादक रहे थे, जिनमें श्री मुलगांवकर और बी.जी. वर्गीज प्रमुख थे। श्री मुलगांवकर, हालांकि के.के. बिड़ला के प्रिय थे, फिर भी बी.डी. गोयनका के इंडियन एक्सप्रेस के लिए लिखना पसंद करते थे। बी.जी. वर्गीज के.के. बिड़ला को बहुत कठोर और अडिग लगे, इसलिए उन्हें निकाल दिया गया। तत्कालीन बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर राय ने युवा और अनुभवहीन हिरणमय कार्लेकर, जो द स्टेट्समैन में सहायक संपादक थे, को के.के. बिड़ला के अधीन नियुक्त किया और वे राय के सरकार में प्रभाव खोने तक संपादक बने रहे। उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई और उनकी जगह मुझे नियुक्त किया गया, जिसे श्रीमती गांधी और उनके पुत्र संजय ने अपने उद्देश्य के लिए बेहतर समझा। मुझे संपादकीय स्वतंत्रता के बारे में कोई भ्रम नहीं था। जिस दिन मैंने कार्यभार संभाला, के.के. बिरला ने मुझे गत्ते पर चिपका हुआ एक टाइप किया हुआ दस्तावेज़ सौंपा, जिसमें अखबार की संपादकीय नीति लिखी थी। यह भारतीय संविधान के उद्देश्यों से संबंधित प्रस्तावना की तरह लग रहा था। इसकी व्याख्या अपनी इच्छानुसार की जा सकती थी। मैंने इसे सरसरी तौर पर पढ़ा और सिर हिलाया। मैंने बिरला के बैठक कक्ष में, उनके सोफे के बगल में एक छोटी सी मेज देखी। उस

पर तीन चीजें थीं जो उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण थीं: निर्देश देने और रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए उनका निजी टेलीफोन, लाभ और हानि की गणना करने के लिए एक छोटा कैलकुलेटर, और धन की देवी लक्ष्मी की चांदी के फ्रेम में लगी एक छोटी सी तस्वीर। मुझे उनके बारे में जो थोड़ी बहुत जानकारी मिली, वह मुझे अच्छी लगी। वे दुबले-पतले थे, हमेशा गहरे रंग के सूट और टाई में रहते थे, और बिरला परिवार के अन्य सदस्यों की तरह, अपने बोलने और व्यवहार में अत्यंत विनम्र थे। वे हर आगंतुक को अपने हाथों से चाय, कॉफी और बिस्कुट परोसते थे और उनके जाने पर उन्हें दरवाजे तक छोड़ते थे।

मैंने अपना पहला दिन सहायक और उप-संपादकों के नामों की सूचियों को देखने में बिताया। मैंने संपादकीय पृष्ठ पर छपने वाले संपादकीय और लेखों पर सरसरी नज़र डाली। मैं अखबार में क्या सुधार कर सकता था? मुझे पत्रिका पत्रकारिता का कुछ ज्ञान था, लेकिन 'द नेशनल हेराल्ड' में थोड़े समय के असफल अनुभव के अलावा, लगभग 1500 कर्मचारियों वाले एक बड़े अखबार को चलाने का मुझे कोई अनुभव नहीं था। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि शुरुआत कहाँ से करूँ।

मैंने अपनी पूरी कोशिश करने का निश्चय किया। अपनी आदत के अनुसार मैं सुबह जल्दी उठता, बीबीसी, रेडियो पाकिस्तान और ऑल इंडिया रेडियो सुनता और उनमें कही गई बातों के नोट्स बनाता। मैं बाकी सब लोगों से एक घंटा पहले ऑफिस आता और सभी अनुत्तरित पत्रों को निपटाता। मैंने अपने सहायक संपादकों के साथ संपादकीय बैठक की और उनसे पूछा कि हमने उन खबरों को क्यों छोड़ दिया जिन्हें अन्य अखबारों ने प्रकाशित किया था, और उन्हें दिन के तीन संपादन सौंप दिए और उनसे कहा कि वे दोपहर तक उन्हें मेरे पास पहुंचा दें। मैंने ऑफिस का चक्कर लगाया ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सभी अपने-अपने डेस्क पर हैं। हमेशा बहुत सारे आगंतुक होते थे, जिनमें से ज्यादातर समय बर्बाद करने वाले होते थे। संसद सत्रों के दौरान मैं राज्यसभा में कुछ घंटे बिताता था। दोपहर के भोजन और घर पर थोड़ी देर आराम करने के बाद मैं ऑफिस लौट आता। मैं संपादकीय और मध्य पृष्ठ के लेखों की समीक्षा करता और अक्सर पाठ को फिर से लिखता। और एक बार फिर ऑफिस का चक्कर लगाता। ऐसा बहुत कम होता था कि मैं अंधेरा होने से पहले घर जाता। मैं रात के खाने के बाद ऑफिस लौट आता और वहाँ रहकर ताज़ा खबरें लेता और पहले पृष्ठ की सामग्री देखता। कई बार ऐसा हुआ कि मैं आधी रात के बाद घर लौटा। किसी और नौकरी में मैंने इतने लंबे घंटे काम नहीं किया था, न ही इतने कम उद्देश्य के साथ। मुझे जल्द ही पता चल गया कि एक दैनिक समाचार पत्र का संपादक अपने द्वारा चुने गए कर्मचारियों के बिना उसकी गुणवत्ता में सुधार के लिए बहुत कम कर सकता है। उससे संतुलित संपादकीय लिखने की अपेक्षा की जाती है, न कि सनसनीखेज संपादकीय लिखने की। वैसे भी, संपादकीय पढ़ने की जहमत बहुत कम लोग उठाते हैं। मैंने इन्हें काफी हद तक अपने सहायकों पर छोड़ दिया और केवल यह सुनिश्चित किया कि वे बिरला द्वारा मुझे दिए गए नीतिगत निर्देश का उल्लंघन न करें। द हिंदुस्तान टाइम्स में मेरा एकमात्र वास्तविक योगदान मेरा शनिवार का कॉलम 'सभी के प्रति द्वेष के साथ' था। मेरे साथी पत्रकारों और संपादकों ने मेरी पत्रकारिता शैली का भले ही उपहास किया हो, लेकिन यह देश का सबसे अधिक पढ़ा

जाने वाला कॉलम बन गया (और आज भी है) और राज्य की राजधानियों में प्रकाशित होने वाले एक दर्जन से अधिक अंग्रेजी समाचार पत्रों में और देश भर में क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवादित होकर प्रकाशित हुआ। कई लोग केवल शनिवार को ही द हिंदुस्तान टाइम्स पढ़ते थे, जिसे वे 'द्वेष कॉलम' कहते थे। उनमें से एक के.के. बिरला इस बात को लेकर बहुत सतर्क थे कि जब तक यह उनके अखबार 'हिंदुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित न हो जाए, तब तक इसे किसी अन्य अखबार में न छापा जाए।

मुझे कर्मचारियों के बीच चल रही साजिशों और भ्रष्टाचार को समझने में देर नहीं लगी। हिंदुस्तान टाइम्स की मुख्य समस्या यह थी कि इसमें बिरला द्वारा शक्तिशाली राजनेताओं को खुश करने के लिए नियुक्त किए गए लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। भर्ती करना आसान था; लेकिन उन्हें निकालना लगभग नामुमकिन था। राज्य संवाददाता मुख्यमंत्रियों के पक्ष में खबरें भेजते थे और बदले में लाभ प्राप्त करते थे। कई बार मेरे कार्यालय से आधी रात के आसपास निकलने के बाद अखबार में खबरें छपवा दी जाती थीं। मैं स्पष्टीकरण मांगने के अलावा कुछ नहीं कर सकता था। कुछ मामलों में मैं बिरला को दोषी संवाददाताओं को दंडित करने के लिए राजी करने में सफल रहा, जिसके तहत उनका तबादला दुर्गम क्षेत्रों में कर दिया गया। वे बिरला से बात करने के लिए मुख्यमंत्रियों और कैबिनेट मंत्रियों के पास गए, लेकिन बिरला ने अपना मन बदल लिया और मुझसे उन्हें एक और मौका देने को कहा। मुझ पर प्रशासनिक कार्यों का भी अत्यधिक बोझ था और मेरी अनुपस्थिति में संपादक के रूप में कार्य करने के लिए या मेरे सेवानिवृत्त होने पर मेरी जगह लेने के लिए प्रशिक्षित करने के लिए कोई उप-संपादक नहीं था। घोर निराशा में मैंने बिरला से अनुरोध किया कि मुझे वाशिंगटन में हमारे संवाददाता एन.सी. मेनन को वापस बुलाने और उन्हें अपना उप-संपादक बनाने की अनुमति दें। उन्होंने यह काम पहले भी किया था और कुछ ही मिनटों में टाइपराइटर पर संपादकीय लिख डालने के लिए जाने जाते थे। बिरला मान गए। मुझे अपने फैसले पर पछतावा हुआ—और बिरला को भी, बिना माने, पछतावा हुआ। शायद मुझे मेनिन्जाइटिस होने का खतरा है। मुझे कृष्णा मेनन बिल्कुल पसंद नहीं थे; लेकिन एन.सी. मेनन से मुझे और भी ज्यादा नफरत हो गई।

जैसे ही मैंने संपादक का पदभार संभाला, यह अफवाह फैल गई कि मैं सभी पदों पर सिखों की भर्ती करूँगा। लेकिन हुआ यह कि मैंने वरिष्ठ पदों पर केवल चार पुरुषों और एक महिला को ही नियुक्त किया; उनमें से एक भी सिख नहीं था। कार्यालय के कामकाज के लिए मैं केवल एक ही व्यक्ति पर निर्भर था, मेरे निजी सचिव लक्ष्मण दास पर। उन्होंने दक्षता, ईमानदारी, निष्ठा और विवेक का अद्भुत मेल साबित किया। अखबार से सेवानिवृत्त होने के बाद भी उनका साथ लंबे समय तक मेरे साथ बना रहा।

मुझे कुछ साल पीछे जाने दीजिए, मैं हिंदुस्तान टाइम्स में अपने आखिरी दिनों के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। मेरा अनुबंध तीन साल का था। मुझे उम्मीद थी कि समय आने पर इसे नवीनीकृत कर दिया जाएगा। के.के. बिरला के साथ मेरे संबंध

सौहार्दपूर्ण थे और मुझे पूरा विश्वास था कि वे मेरे बारे में अच्छी राय रखते थे। एक बार उन्होंने मुझसे पूछा, 'सरदार साहब, आपका रिटायर होने का कोई विचार नहीं है?' मैंने जवाब दिया, 'बिरला जी, रिटायर तो मैं निगमबोध घाट में ही होऊंगा।' वे मुस्कुराए और मेरी शारीरिक और मानसिक तंदुरुस्ती और कार्यालय में बिताए घंटों की प्रशंसा की।

मेरे अनुबंध की समाप्ति से तीन महीने पहले, मैंने उनसे पूछा कि क्या वे मुझे अनुबंध की अवधि बढ़ाना चाहेंगे। वे आश्चर्यचकित रह गए। 'मुझे पता नहीं था कि आपके पास केवल तीन महीने बचे हैं। मुझे इस बारे में सोचने दीजिए। मैं कुछ दिनों में आपको बुला लूंगा।'

मैंने बिरला को पहले ही अपने डिप्टी एन.सी. मेनन के बारे में अपनी राय बता दी थी। मुझे उनका लोगों से, यहाँ तक कि मुझसे भी, मुफ्तखोरी करने का तरीका पसंद नहीं था। लेकिन सबसे ज़्यादा मुझे उनकी इस आदत से परेशानी थी कि वे प्रधानमंत्री समेत मंत्रियों के घर जाकर उन्हें हिंदुस्तान टाइम्स में कथित तौर पर छप रही बातों के बारे में बताते थे। धर और स्टाफ के कुछ अन्य सदस्यों ने मुझे इस बारे में बताया था। मैंने तब तक उनकी बात पर विश्वास नहीं किया जब तक मुझे खुद इसका सबूत नहीं मिल गया। उन्होंने एक संपादकीय लिखा था जिसमें उन्होंने मेनका गांधी और उनकी माँ की कड़ी आलोचना की थी। मैंने उन पंक्तियों को काट दिया और हाशिये में लिख दिया कि ये टिप्पणियाँ अनुचित थीं। उन्होंने यह जानकारी प्रधानमंत्री कार्यालय को दे दी। तब तक मेनका के मित्र माने जाने वाले किसी भी व्यक्ति को श्रीमती गांधी का दुश्मन समझा जाता था। दिल्ली महानगर परिषद के चुनाव कुछ ही महीनों में होने वाले थे। कांग्रेस पार्टी शहर के सबसे महत्वपूर्ण अखबार के संपादक के रूप में ऐसे व्यक्ति को बर्दाश्त नहीं कर सकती थी जो उसकी आलोचना करने के लिए जाना जाता हो।

अगली बार जब मैं बिरला से मिलने गया, तो वे कुछ उदास लग रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने हिंदुस्तान टाइम्स में बदलाव करने का फैसला किया है और मेरे उत्तराधिकारी के रूप में एन.सी. मेनन पर विचार कर रहे हैं। उन्होंने कहा, ‘उनके खिलाफ पैसों और नैतिकता से जुड़े कई मामले दर्ज हैं, लेकिन मैं उन्हें एक मौका देना चाहता हूं। लेकिन मुझे उम्मीद है कि आप अपना “मैलिस कॉलम” लिखना जारी रखेंगे। आप जो चाहें मांग सकते हैं। और मुझे उम्मीद है कि हम दोस्त बने रहेंगे।’ मैं निराश था। मुझे पूरा यकीन था कि उन्होंने श्रीमती गांधी के दबाव में आकर यह कदम उठाया था। कुछ समय बाद 'प्रोब' पत्रिका ने मेरा साक्षात्कार लिया। मैंने फिर से वही बात दोहराई कि 'द हिंदुस्तान टाइम्स' दिल्ली का सबसे घटिया अखबार है, जबकि इसकी बिक्री सबसे ज़्यादा है, और इसमें ज़रूरत से ज़्यादा अनपढ़ पत्रकार भरे पड़े हैं क्योंकि बिरला सत्ता में बैठे लोगों को मना नहीं कर सकते। इस साक्षात्कार ने भारतीय मीडिया में हंगामा मचा दिया। मेनन ने एक संपादकीय लिखकर मेरी जमकर आलोचना की, मुझे निकम्मा संपादक बताया, अपने उत्तराधिकारियों को नीचा दिखाने की आदत वाला मुफ्तखोर कहा, और यह भी कहा कि मुझे सही अंग्रेज़ी लिखना नहीं आता। उनके साथ प्रोमिला कल्हन भी थीं, जिन्हें मैंने

मेनन को पैसे उधार देने से बचाया था और जो पहले मेरे प्रति बेहद चापलूसी भरा रवैया रखती थीं। मैंने 'द हिंदुस्तान टाइम्स' को एक नोटिस भेजा कि मैं अब उनके लिए 'मैलिस' कॉलम नहीं लिखूंगा।

मेरे कॉलम के बंद होने के एक महीने बाद, के.के. बिरला का एक दूत मेरे घर आया और मुझसे अनुरोध किया कि मैं हिंदुस्तान टाइम्स के लिए अपना कॉलम फिर से लिखना शुरू करूँ। मैं इस शर्त पर सहमत हो गया कि इस संबंध में पहले पृष्ठ पर एक घोषणा प्रकाशित की जाए, कि मेनन को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा और मेरा भुगतान बढ़ा दिया जाएगा। मेरी सभी शर्तें मान ली गईं। इस प्रकार, मैं उस अखबार में फिर से छपने लगा जिसके संपादक मेरा नाम कहीं भी प्रकाशित नहीं करना चाहते थे।

लगभग उसी समय जब मैंने हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक का पदभार संभाला, 1980 में राज्यसभा सदस्य के रूप में शपथ ली। नास्तिक होने के कारण, मैंने ईश्वर के नाम पर शपथ नहीं ली, बल्कि अपनी अंतरात्मा के नाम पर शपथ ली। मुझे फिल्म स्टार नरगिस दत्त के बगल में सीट मिली। हम दोनों अन्य सदस्यों के बीच काफी लोकप्रिय थे: नरगिस अपनी खूबसूरती और आकर्षण के कारण; और मैं इसलिए क्योंकि मैं राजधानी के सबसे महत्वपूर्ण अखबार का संपादक था। मैं अपने पहले भाषण के लिए उत्सुक था। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं अपनी छाप छोड़ूंगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

संसद में मेरे दूसरे दिन ही श्रीमती गांधी ने मुझे अपने कार्यालय में बुलाया। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे सदन छोड़ने के एक दिन बाद, कम्युनिस्ट पार्टी के नेता भूपेश गुप्ता ने मेरे नामांकन के बारे में अपमानजनक बातें कही थीं और मुझे श्रीमती गांधी का चमचा बताया था। उन्होंने मुझे नियमों की पुस्तिका दी, जिसमें उन्होंने एक खंड चिह्नित किया था जिसके अनुसार यदि किसी सदस्य पर किसी अन्य सदस्य द्वारा व्यक्तिगत हमला किया गया हो तो उसे बोलने का अधिकार है। उन्होंने मुझसे कहा, 'इस खंड का उल्लेख करते हुए अध्यक्ष को लिखित में अपना अनुरोध भेजें। वे आपको अपनी बात रखने की अनुमति देंगे। हमें इस तरह के दुष्प्रचार को अनदेखा नहीं करना चाहिए।' निर्देशानुसार, मैंने उसी दिन अध्यक्ष हिदायतुल्ला को लिखित में अपना अनुरोध भेज दिया। मुझे सूचित किया गया कि मुझे अगले दिन प्रश्नकाल के बाद बोलने का अवसर दिया जाएगा।

मैंने दोपहर का समय अपने बचाव में तर्क तैयार करने में बिताया। मैं आत्म-प्रशंसा में लिप्त नहीं हो सकता था और न ही अपनी लिखी किताबों या जिन अखबारों का मैंने संपादन और लेखन किया था, उनके बारे में बात कर सकता था। मैंने यही उचित समझा कि इस बात पर ज़ोर दिया जाए कि यद्यपि मैंने आपातकाल लागू होने पर उसका समर्थन किया था, फिर भी मैं लगभग एकमात्र पत्रकार था जिसने इसे समाप्त करने की वकालत की थी, विपक्ष के नेताओं की रिहाई की मांग की थी और प्रेस पर लगे सेंसरशिप को हटाने का आह्वान किया था। एल.के. आडवाणी ने अपनी पुस्तक में इन दिशाओं में मेरे

प्रयासों की प्रशंसा की थी। मुझे आशा थी कि मेरे बोलने के बाद भूपेश गुप्ता अपनी अपमानजनक टिप्पणियों को वापस ले लेंगे।

प्रश्नकाल के बाद अगली सुबह हिदायतुल्लाह ने मुझे बयान देने के लिए बुलाया। मैंने धीमी, संयमित आवाज़ में और यथासंभव गरिमापूर्ण ढंग से बोलते हुए भूपेश गुप्ता से निवेदन किया कि चूंकि उन्होंने मेरी अनुपस्थिति में आपत्तिजनक टिप्पणी की थी, इसलिए एक अनुभवी सांसद और सज्जन व्यक्ति होने के नाते उन्हें इसे वापस लेना चाहिए। सत्ता पक्ष के सदस्यों ने ज़ोरदार तालियाँ बजाईं। हिदायतुल्लाह ने भूपेश गुप्ता से पूछा कि क्या उन्हें कुछ कहना है। वे खड़े हुए और बोले, 'मैंने जो कुछ कहा है, मैं उस पर कायम हूँ; मुझे कुछ भी वापस नहीं लेना है।' मुझे गुस्सा आ गया और मैं चिल्लाया, 'तुम सज्जन नहीं हो; तुम कमीने हो।'

हिदायतुल्लाह ने बीच में दखल देते हुए कहा, 'यह बदमाश संसदीय नियमों का उल्लंघन कर रहा है, इसे रिकॉर्ड से हटा दिया जाएगा, कोई भी सज्जन व्यक्ति पद पर नहीं रह सकता।'

अगली सुबह के अखबार के पहले पन्ने पर चमचा कांड की खबर थी। मैं सदन के सदस्य के रूप में अपने करियर की शुरुआत इस तरह नहीं करना चाहता था। मेरे पिता मुझसे कई साल पहले इसी सदन के सदस्य रह चुके थे। वे सफेद पगड़ी, काले कोट, धारीदार पतलून और चमकदार काले जूतों पर स्पैट्स पहनकर आते थे; अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने दो से अधिक भाषण नहीं दिए, लेकिन वे सभी सोच-समझकर चुने गए शब्दों में थे और पढ़े गए थे। मुझे लगा कि मैंने अपने उग्र व्यवहार और असंसदीय भाषा के प्रयोग से उन्हें निराश किया है।

राज्यसभा में मेरे कार्यकाल के दौरान पंजाब में अकाली आंदोलन की शुरुआत हुई, जो सेना द्वारा स्वर्ण मंदिर पर हमले (जिसे 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' नाम दिया गया था) के साथ चरम पर पहुंच गया। इस हमले ने पवित्र स्थल को तहस-नहस कर दिया, हजारों निर्दोषों की जान ले ली, जिनमें जरनैल सिंह बिंद्रांवाले की मौत भी शामिल थी। छह महीने बाद श्रीमती गांधी की हत्या हुई और उसके बाद के भयावह घटनाक्रम में उत्तरी भारत के शहरों में 5,000 से अधिक सिखों को चाकू मारकर या जिंदा जला दिया गया। पंजाब की स्थिति दोनों सदनों में लगातार चर्चा का विषय बनी रही। शुरुआत में राज्यसभा में तीन अकाली सदस्य थे: एस.जी.पी.सी. के अध्यक्ष गुरचरण सिंह तोहरा, जगदेव सिंह तलवंडी और मास्टर तारा सिंह की पुत्री बीबी राजिंदर कौर; जबकि दो सिख, एच.एस. हंसपाल और अमरजीत कौर, कांग्रेस की बेंच पर बैठे थे। तोहरा और तलवंडी सदन में बहुत कम आते थे और एक-दो बार जब तोहरा पंजाबी में बोलने के लिए खड़े हुए तो उनकी कही हुई बातें अनुवाद में भी समझ से परे थीं। राजिंदर कौर ने कभी मुद्दों या तर्कपूर्ण बहसों पर ध्यान नहीं दिया। वह केवल चिल्लाती और सरकार पर सिख विरोधी भेदभाव का आरोप लगाती थीं।

हालातों ने मुझे सिख और पंजाबी दृष्टिकोण का प्रवक्ता बनने पर मजबूर कर दिया। पहले तो मुझे अमरजीत कौर से निपटना पड़ा, जो अपने भाषण संक्षिप्त और कठोर लहजे में पढ़ती थीं, और हंसपाल की कमजोर, मुश्किल से सुनाई देने वाली सिसकियों से भी। फिर कांग्रेस की बेंचों पर पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री दरबारा सिंह और जिराफ की गर्दन जितने लंबे नाम वाले विशालकाय युवक विश्वजीत पृथ्वीजीत सिंह का कब्जा हो गया। वह कपूरथला परिवार से संबंधित एक साफ दाढ़ी वाले सिख थे। वे राज्यसभा में किसी से भी कम नहीं थे; उन्होंने अपनी तैयारी भी खूब की थी। चाहो या ना चाहो, मैं खुद को उस सरकार के साथ मतभेद में पाया जिसने मुझे अकाली दल का मुखपत्र बनने पर मजबूर कर दिया था।
अकाली संकीर्ण सोच वाले कट्टरपंथियों का समूह थे, जो पंजाब में सत्ता हथियाने के लिए पूरी तरह समर्पित थे। मैंने पंजाबी भाषी राज्य की उनकी मांग का समर्थन किया था क्योंकि मेरा मानना था कि पंजाबी को अन्य सभी क्षेत्रीय भाषाओं को दी गई स्वतंत्रता से वंचित करना नैतिक रूप से गलत और गंभीर परिणामों से भरा था। जब 1966 में पंजाबी सूबा प्रदान किया गया, जिसमें सिख आबादी का 60 प्रतिशत थे, तब मुझे लगा कि सिखों को मामूली सीमा समायोजन, नदी के पानी के समान वितरण और अधिक स्वायत्तता से अधिक कुछ भी मांगने का अधिकार नहीं है। मैं आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का विरोधी था, जिसमें सिखों को अन्य भारतीयों से अलग एक राष्ट्र के रूप में वर्णित किया गया था और इस प्रकार एक अलग सिख राज्य - खालिस्तान - की मांग के बीज बोए गए थे। मेरा दृढ़ विश्वास था कि खालिस्तान सिखों और भारत दोनों के हितों के लिए घातक होगा।
अकाली नेताओं में से मैं केवल मास्टर तारा सिंह को ही ठीक से जान पाया था। उन्होंने सिखों के मेरे पहले संक्षिप्त इतिहास को पढ़े बिना ही सार्वजनिक रूप से उसकी निंदा की थी। पढ़ने के बाद, वे इस बात से सहमत हो गए कि मेरी भविष्यवाणी सही थी कि यदि युवा सिख इसी दर से खालसा परंपराओं से विमुख होते रहे, तो सदी के अंत तक सिख अपनी विशिष्ट पहचान खो देंगे और सिख धर्म में विश्वास रखने वाले हिंदू बन जाएंगे। जब भी मास्टरजी दिल्ली आते, मुझे बुलवा लेते। मैंने उनके साथ गुरुद्वारा रकाबगंज के धूल भरे परिसर में स्थित उनके छोटे से कमरे में कई घंटे बिताए। उनके अकाली सहयोगियों का स्वभाव मुझे जल्द ही पता चल गया। एक गुप्त बैठक में मास्टर तारा सिंह और मेरे अलावा केवल तीन अन्य लोग थे। उनमें से एक कपूर सिंह थे, जो पूर्व सांसद और पूर्व आईसीएस अधिकारी थे, जिन्हें वे अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। हमने पंजाबी सूबा की मांग वाला प्रस्ताव तैयार किया। जब मैं घर जा रहा था, पुलिस ने मेरी गाड़ी का नंबर नोट कर लिया; यह एक नियमित प्रक्रिया थी जिससे मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। उस शाम मेरे चाचा उज्ज्वल सिंह, जो उस समय पंजाब के राज्यपाल थे, मेरे पिता के साथ भोजन करने आए। चंडीगढ़ से रवाना होने से पहले उन्हें सी.आई.डी. से एक लंबा टेलीग्राम मिला था, जिसमें मास्टर तारा सिंह के कमरे में हुई चर्चा और बाकी चारों लोगों के बयानों का ब्यौरा था। यह गोपनीय जानकारी थी, लेकिन मेरे चाचा ने मुझे अकाली दल के साथ मेलजोल के परिणामों से आगाह करने के लिए यह

बात बता दी। अगले दिन जब मैंने मास्टरजी को यह बात बताई, तो उन्होंने हाथ मलते हुए कहा, 'मुझे किसी पर भरोसा नहीं है; ये सब पुलिस से पैसे लेते हैं।'

मैं पंजाब की राजनीति को बेहतर ढंग से समझना चाहता था और मैंने अकाली दल द्वारा धर्मयुद्ध मोर्चा शुरू किए जाने वाले दिन अमृतसर जाने का फैसला किया। मुझे इस बारे में काफी शंकाएं थीं। सुबह मैंने कांग्रेस और भाजपा के नेताओं से मुलाकात की। दोपहर में मैं स्वर्ण मंदिर से सटे मंजी साहिब गुरुद्वारे तक गया, जहां मैंने अकाली नेताओं के भाषण सुने और वहां का माहौल देखा। वहां करीब 20,000 सिख जमीन पर बैठे थे और पांच से दस हजार सिख आसपास खड़े थे। ग्रंथ साहिब के बगल में बने मंच पर अकाली दल के प्रमुख नेता बैठे थे: संत हरचरण सिंह लोंगोवाल, जत्थेदार तोहरा, पूर्व मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल, पूर्व वित्त मंत्री बलवंत सिंह, पूर्व सांसद बलवंत सिंह रामूवालिया और निर्लेप कौर, साथ ही वर्तमान सांसद राजिंदर कौर। इन सभी नेताओं में सबसे चमकता सितारा जरनैल सिंह भिंडरांवाले थे। तोहरा ने मुझे भीड़ में खड़ा देखा। उन्होंने मुझे बुलाने के लिए दो आदमियों को भेजा। बड़ी अनिच्छा से मैं उनके साथ चलने लगा और खुद को ग्रंथ साहिब और माइक्रोफोन के बीच पहली पंक्ति में बैठा पाया। इसके बाद दिए गए अधिकांश भाषण मेरी ओर ही निर्देशित थे। भिंडरांवाले ने मुझे कभी देखा भी नहीं था। मैंने उन्हें अपने एक साथी की ओर मुड़कर पूछते सुना, 'ये कौन है?' — ये कौन है? मैंने अपना नाम सुना। वे मेरे बारे में और मैंने उनके खिलाफ जो लिखा था, उसके बारे में जानते थे। मैंने निर्देश जारी किए थे कि मेरे द्वारा संपादित अखबार में उनके नाम के आगे 'संत' शब्द का प्रयोग न किया जाए। एक ऑस्ट्रेलियाई पत्रकार ने उन्हें यह भी बताया था कि मुझे लगता है कि भिंडरांवाले सिखों के ग्यारहवें गुरु बनने की इच्छा रखते हैं। भिंडरांवाले ने जवाब दिया, 'अगर उस आदमी ने सच में ऐसा कहा है, तो मैं उसे और उसके परिवार को खत्म करवा दूंगा।' हमारी जान बचाने के लिए उस ऑस्ट्रेलियाई पत्रकार ने तुरंत अपना बयान बदल दिया।

मुझे ज़मीन पर बैठना बहुत कष्टदायक लगता था और अपने दर्द भरे घुटनों और नितंबों को आराम देने के लिए मुझे बार-बार करवट बदलनी पड़ती थी। एक के बाद एक जोशीले भाषण होते रहे। भीड़ बेचैन हो गई और भिंडरांवाले के लिए शोर मचाने लगी। आखिरकार, 'बोले सो निहाल - सत श्री अकाल' के गर्जनापूर्ण नारों के बीच वे माइक के पास आए। वे लंबे, दुबले-पतले व्यक्ति थे, जिनकी नाक बाज जैसी, आँखें तेज और दाढ़ी लंबी और लहराती हुई थी। उनके बाएं हाथ में चांदी का बाण था, जैसा गुरु गोविंद सिंह और महाराजा रणजीत सिंह की तस्वीरों में देखा जाता है। उनकी छाती पर गोलियों से भरी एक कमरबंद थी। उनके पास एक पिस्तौल थी जो म्यान में लगी थी और उनके दाहिने हाथ में चार फुट लंबा कृपाण था। उनका भाषण भी मुझे ही संबोधित था। उन्होंने बोलना शुरू किया, 'मैं अपने चरणों के पास बैठे इस सरदार साहब को नहीं जानता। लोग कहते हैं कि वे 'द हिंदुस्तान टाइम्स' नाम के किसी अंग्रेजी अखबार के संपादक हैं। मुझे अंग्रेजी नहीं आती। मुझे बताया गया है कि वे लिखते हैं कि मैं सिखों और हिंदुओं के बीच नफरत पैदा करता हूँ। यह झूठ है।' मैं एक उपदेशक हूँ। मैं गाँव-

गाँव जाकर सिखों को दसवें गुरु के मार्ग पर लौटने के लिए कहता हूँ। मैं उनसे दाढ़ी न काटने, अफीम और तंबाकू का सेवन न करने को कहता हूँ, मैं उन्हें खालसा पंथ में दीक्षित करता हूँ।' सहमति जताने के लिए ज़ोर-ज़ोर से 'सत श्री अकाल' के नारे लगे। वे अपने विषय पर आगे बढ़े। 'अगर मेरा बस चलता, तो आप जानते हैं कि मैं इन सभी सरदारों का क्या करता जो हर शाम शराब पीते हैं? मैं उन पर केरोसिन डालकर आग लगा देता।' इस घोषणा पर ज़ोर-ज़ोर से 'बोले सो निहाल – सत श्री अकाल' के नारे लगे। विडंबना यह थी कि तालियाँ बजाने वाले श्रोताओं में से अधिकांश सिख जाट थे जो शराब के आदी होने के लिए कुख्यात थे। मैंने बादल और बलवंत सिंह की ओर रुख किया, जिन्होंने मेरे घर में स्कॉच पी थी, और कहा, 'मुख्यमंत्री दरबारा सिंह अपने पूरे पुलिस बल के बावजूद जो नहीं कर पाए, वह यह आदमी एक माचिस की तीली से कर देगा।' वे हँस पड़े।

मैंने सेवानिवृत्त जनरल शाहबेग सिंह से विचारों का आदान-प्रदान किया। वे भी लंबे, दुबले-पतले और घनी सफेद दाढ़ी वाले व्यक्ति थे। बांग्लादेश की मुक्ति के दौरान मुक्ति वाहिनी को प्रशिक्षण देने और नेतृत्व करने के समय वे पूरी तरह से शेव किए हुए थे। भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण उन्हें बर्खास्त कर दिया गया था और वे सरकार से बहुत नाराज़ थे। मुझे पता चला कि बिना किसी अपवाद के, अकाली दल में शामिल होने वाले सभी सेना अधिकारियों और जवानों को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था या पदोन्नति में पीछे कर दिया गया था और उनके साथ हुए व्यवहार को लेकर उन्हें व्यक्तिगत शिकायतें थीं। एक समय अकाली दल में 10,000 से अधिक लोग थे।

मैंने अमृतसर की संकरी गलियों से होते हुए अकाली जुलूस का पीछा किया और पुलिस स्टेशन तक गया, जहाँ बसों का काफिला उन लोगों को पंजाब की विभिन्न जेलों में ले जाने के लिए तैयार खड़ा था, जिन्होंने गिरफ्तारी के लिए खुद को पेश किया था। उनमें तोहरा, बादल और जनरल शाहबेग सिंह भी शामिल थे। यह एक सुनियोजित आयोजन था। पुलिस स्टेशन के प्रांगण में बैठे लोगों को गुरुद्वारे से लाया गया भव्य रात्रिभोज परोसा गया। फिर वे अपनी सुविधानुसार बसों में सवार हुए और चले गए। यह 'बलिदान' 1920 के दशक के मोर्चों का एक दिखावा था, जब अकाली स्वयंसेवकों को लोहे की नोक वाले डंडों से पीटा जाता था और उनके लंबे बालों से घसीटकर हथकड़ी और बेड़ियाँ पहनाई जाती थीं।

मैं देर शाम अपने होटल लौटा। उदासी छा गई। हालाँकि मैं अपने समुदाय से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ था, फिर भी कांग्रेस सरकार को सत्ता से हटाने और बादल, बलवंत और उनके साथियों को सत्ता में लाने के लिए शुरू किए गए इस आंदोलन को मैं धर्मयुद्ध नहीं कह सकता था। यह अकाली दल की स्वार्थपरक सत्ता की लालसा थी, राज्य सरकार के विरुद्ध सिखों की आम जनता की भावनाओं का शोषण था। मुझे उदासी से उबरने का केवल एक ही तरीका पता है: दो-चार पेग स्कॉच पीना।

भिंडरांवाले अकेले ऐसे व्यक्ति नहीं थे जिनकी नाराजगी मैंने भड़काई। मुझे एस.एल. खुराना से भी उलझना पड़ा, जो हिंदुस्तान टाइम्स के महाप्रबंधक के रूप में कार्य करने के बाद दिल्ली के उपराज्यपाल नियुक्त हुए थे। उनके साथ मेरे बहुत अच्छे संबंध थे, और जब भी कोई खूबसूरत मेहमान आती, मैं उन्हें फोन करके मिलने के लिए बुला लेता था। दिल्ली के उपराज्यपाल बनने के बाद ही मेरी सबसे भरोसेमंद पत्रकारों में से एक, प्रभा दत्त, मेरे पास आईं और मुझसे कहा, 'मेरे पास एक एक्सक्लूसिव खबर है, मैं इसे आपको तभी दूंगी जब आप वादा करें कि आप इसे प्रकाशित होने से नहीं रोकेंगे।' मैंने उन्हें अपना वादा दिया। उनकी कहानी खुराना के बारे में थी कि उन्होंने एक विदेशी छात्र के लिए आरक्षित सीट को दूसरे विश्वविद्यालय में स्थानांतरित करवाकर और प्रिंसिपल पर दबाव डालकर अपने बेटे को मेडिकल कॉलेज में दाखिला दिलवाया था। मुझे इस कहानी पर कोई संदेह नहीं था। उसी शाम खुराना ने मुझे फोन किया और कहा कि हवाई अड्डे जाते समय, जहां उन्हें किसी गणमान्य व्यक्ति का स्वागत करना था, वे कुछ मिनटों के लिए मुझसे मिलना चाहेंगे। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनके बेटे के दाखिले से संबंधित खबर का इस्तेमाल न करूं। मैंने अपना सर्वश्रेष्ठ देने का वादा किया था। रात के खाने के बाद जब मैं कार्यालय लौटा, तो मैंने वह खबर छपवाने से इनकार कर दिया। वह खबर दिल्ली के एक अन्य अखबार में छपी। अगली सुबह मुझे बेहद गुस्से में और रोती हुई प्रभा दत्त का सामना करना पड़ा। उन्होंने मुझ पर अपना वादा तोड़ने और दबाव में झुकने का आरोप लगाया। मैंने उनकी भावनाओं को शांत करने की पूरी कोशिश की और चूंकि खबर पहले ही छप चुकी थी, इसलिए मैंने अगले दिन हिंदुस्तान टाइम्स में उनके द्वारा लिखी गई खबर का अधिक विस्तृत संस्करण प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। खुराना मुझसे बेहद नाराज थे क्योंकि हिंदुस्तान टाइम्स का प्रसार उस अन्य अखबार की तुलना में कहीं अधिक था और एक समय के कार्यकारी अध्यक्ष होने के नाते उन्हें बहुत बुरा लगा। मुझसे नाराज होने के साथ-साथ वे के.के. बिड़ला के प्रति प्रतिशोध की भावना रखने लगे। उन्होंने बिड़ला परिवार की कुछ व्यावसायिक परियोजनाओं को अस्वीकार करने के लिए हर संभव प्रयास किया, जिन्हें उनके पूर्ववर्ती ने मंजूरी दी थी। फिर खुराना का तबादला तमिलनाडु के राज्यपाल के रूप में कर दिया गया। अपने 'दुर्भावना' कॉलम में मैंने लिखा था कि दिल्ली को जो लाभ हुआ, वह तमिलनाडु की हानि थी और मैंने इसे इस उदाहरण से समझाया था कि कैसे उन्होंने उपराज्यपाल के रूप में अपने प्रभाव का दुरुपयोग करके अपने बेटे को मेडिकल कॉलेज में दाखिला दिलाया और इस तरह एक अधिक योग्य उम्मीदवार को उसके उचित अवसर से वंचित कर दिया। मैंने उनके द्वारा अपने पूर्व नियोक्ता के प्रति दिखाई गई प्रतिशोधात्मक भावना का भी उल्लेख किया था। खुराना ने तुरंत इस मामले को प्रेस परिषद में उठाया, राज्य के अटॉर्नी-जनरल और मद्रास के कई वरिष्ठ वकीलों की सेवाएं लीं, और यह सब सरकारी खर्च पर किया गया, ताकि वे उनका पक्ष रख सकें। मेरा प्रतिनिधित्व सिद्धार्थ शंकर राय ने किया, जो बिड़ला परिवार के स्थायी वकील थे। यह मामला कई महीनों तक

चलता रहा। अंततः, प्रेस परिषद के समक्ष अधिकांश मामलों की तरह, एक समझौता हुआ: हिंदुस्तान टाइम्स ने कुछ पंक्तियाँ प्रकाशित कीं जिनमें कहा गया था कि उसका इरादा राज्यपाल खुराना की भावनाओं को ठेस पहुँचाने का नहीं था। गोपाल सिंह दर्दी द्वारा मेरे विरुद्ध दायर किया गया मुकदमा भी गोवा के उपराज्यपाल के रूप में उनकी नियुक्ति पर मेरी टिप्पणी से उपजा था। दर्दी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनसे मैं तालमेल नहीं बिठा पाया। मैंने पहली बार उनके बारे में एक साप्ताहिक समाचार पत्र, लिबरेटर, के संपादक के रूप में सुना था, जिसमें वे सिखों की शिकायतों को उजागर करते थे। इसके बाद, एक ऑटोमोबाइल पत्रिका के एक आँख वाले अंग्रेज संपादक द्वारा दायर तलाक के मामले में उन्हें और उनके तत्कालीन घनिष्ठ मित्र कपूर सिंह को सह-प्रतिवादी बनाया गया। दर्दी ने अपनी पहली पत्नी को तलाक देकर उस अंग्रेज की सिख पत्नी से विवाह कर लिया और उसकी बेटी को गोद ले लिया। सिखों की शिकायतों की जांच के लिए गठित दास आयोग के समक्ष मेरे द्वारा पेश होने से इनकार करने के बाद (मास्टर तारा सिंह ने सिखों से आयोग का बहिष्कार करने का आह्वान किया था), दर्दी सिखों के साथ भेदभाव न होने का प्रमाण देने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने पर सहमत हुए। पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरों ने उन्हें राज्यसभा के लिए मनोनीत करके पुरस्कृत किया। उन्होंने राज्यसभा की कार्यवाही में बहुत कम योगदान दिया, लेकिन बाद में उन्होंने ग्रंथ साहिब का अनुवाद किया, उसे चार खंडों में प्रकाशित करवाया और राज्य पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों को बेचा। ऑल इंडिया रेडियो ने मुझे उनके काम की समीक्षा करने के लिए कहा। लगभग 6,000 भजनों के अनुवाद में लगी मेहनत को स्वीकार करते हुए, मैंने यह कहकर अपनी बात समाप्त की कि अब समय आ गया है कि कोई इन भजनों का अंग्रेजी में अनुवाद करने का बीड़ा उठाए। एआईआर अधिकारी ने मेरे आखिरी आलोचनात्मक वाक्य पर ध्यान नहीं दिया और उसे प्रसारित होने दिया; डार्डी बहुत क्रोधित हुए। लेकिन आलोचना से विचलित हुए बिना, उन्होंने अपना अनुवाद नोबेल पुरस्कार समिति और स्वीडन के राजा को भेजा। महामहिम ने विनम्रतापूर्वक अनुवाद प्राप्त होने की पुष्टि की। यह डार्डी के लिए ऑल इंडिया रेडियो और पीटीआई को यह सूचित करने के लिए पर्याप्त था कि उन्हें साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। मैंने यह घोषणा रात 9 बजे के समाचार में सुनी। कुछ मिनट बाद रेडियो स्टेशन से किसी ने मुझे फोन किया और पूछा कि क्या मैं डार्डी को श्रद्धांजलि देना चाहूंगा। मैंने उन्हें बताया कि यह खबर झूठी है क्योंकि नोबेल पुरस्कार कभी भी किसी अनुवादित कृति को नहीं दिया जाता। पीटीआई इस प्रकाशन को किसी भी अखबार ने गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन फिर भी इसे 'विश्वसनीय रूप से ज्ञात है' जैसे वाक्यों के साथ प्रकाशित किया गया। डार्डी की साहित्यिक प्रतिष्ठा को और बल मिला: यह अफवाह फैल गई कि वे नोबेल पुरस्कार जीतने के बहुत करीब थे।

राज्यसभा में अपने छह साल के कार्यकाल के अंत में, डार्डी को पूर्वी यूरोप के एक देश में राजदूत नियुक्त किया गया। इस दौरान उन्होंने पोप से मुलाकात की और उन्हें यीशु मसीह पर रचित अपनी कविता की एक प्रति भेंट की। उन्होंने पोप के

साथ अपनी तस्वीरें खूब प्रचारित करवाई। केवल मैं ही था जिसने डार्डी को गंभीरता से नहीं लिया! लेकिन मैंने उनके बारे में जो कुछ भी कहा, उसे एक ऐसे व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या कहकर खारिज कर दिया गया जिसने जीवन में मुझसे बेहतर सफलता प्राप्त की थी। विदेशी नियुक्तियों से सेवानिवृत्त होने के बाद, डार्डी ने चंडीगढ़ में काफी संपत्ति खरीदी, जहाँ उन्होंने एक प्रिंटिंग प्रेस स्थापित की, और दिल्ली में एक बड़ा घर भी खरीदा। उन्होंने अपने लिए काफी तरक्की कर ली थी। उन्होंने विभाजन की पूर्व संध्या पर श्री जिन्ना, कांग्रेस नेताओं और अकाली दल के बीच हुई वार्ता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका पर लेखों की एक श्रृंखला लिखी। यह उनकी कल्पना मात्र थी, क्योंकि विभाजन संबंधी चर्चाओं के अभिलेखों में उनके बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। उन्होंने ज्ञानी ज़ैल सिंह और श्रीमती गांधी से राज्यपाल नियुक्त होने का अनुरोध किया। ज्ञानी ज़ैल सिंह को उनके प्रति कड़ी आपत्ति थी। श्रीमती गांधी मान गईं। उन्होंने ज्ञानीजी से कहा कि यद्यपि उनके पास डार्डी के बारे में कई प्रतिकूल रिपोर्टें हैं, फिर भी उन्हें राज्यपाल बनाया जा सकता है क्योंकि कोई सिख राज्यपाल नहीं था। इस प्रकार डार्डी गोवा के समुद्र तट पर स्थित खूबसूरत राजभवन में पहुँच गए। अपने 'दुष्टता' कॉलम में मैंने डार्डी के करियर का विश्लेषण किया और लिखा कि भारत जैसे बीमार समाज में ही कोई धूर्त व्यक्ति महत्वपूर्ण पदों तक पहुँचने के लिए छल कर सकता है। मैंने शेख सादी की यादगार पंक्तियाँ उद्धृत कीं:

Sana-e-khud bakhud guftan
और ज़ेबाद मर्द-ए-थे
चूँ ज़ां पिस्तां-ए-ख़ुद मलाद
स्वादिष्ट थैंक्सगिविंग बेकरी कहाँ है?

(यह एक बुद्धिमान व्यक्ति को शोभा नहीं देता)
अपनी ही प्रशंसा में अपनी जुबान का इस्तेमाल करना।
एक स्त्री किस प्रकार का सुख उत्पन्न करती है?
अगर वह अपने हाथों से अपने स्तनों को रगड़ती है?

दर्दी ने बिरला को फोन किया। बिरला विदेश में थे। दर्दी ने मुझे कानूनी नोटिस भेजा और मेरी छवि खराब करने के लिए डेढ़ करोड़ रुपये के हर्जाने की मांग की, साथ ही मुझे अदालत में घसीटने की धमकी भी दी। लेकिन इसके बजाय, वह मुझे प्रेस काउंसिल ले गए। उन्हें पता था कि नोबेल पुरस्कार जीतने की मनगढ़ंत कहानी से उनका पीछा नहीं छूटेगा। खुराना मामले

की तरह ही दर्दी के मामले में भी यही हुआ। कई सुनवाईयों के बाद, प्रेस काउंसिल के अध्यक्ष न्यायमूर्ति ग्रोवर ने एक समझौता सूत्र तैयार किया और मामला वापस ले लिया गया।

मुझे लगा था कि डार्डी मुझे मरा हुआ देखना चाहता होगा। मैं उस आदमी को जानता नहीं था। मैं संयोगवश ओरिएंट लॉन्गमैन के निदेशक मंडल की बैठक के लिए गोवा में था। मेरे दो साथी निदेशक, जो जहाँ भी जाते थे, स्थानीय गणमान्य व्यक्तियों से मिलना अनिवार्य समझते थे, डार्डी से मिले और उन्हें रात्रिभोज का निमंत्रण मिला। उन्हीं से उन्हें पता चला कि मैं गोवा में हूँ। अगली सुबह, जब मैं होटल की लॉबी में हवाई अड्डे जाने के लिए वाहन का इंतज़ार कर रहा था, तभी राजभवन से मुझे फोन आया। मैंने रिसेप्शनिस्ट से कहा कि मैं निकल गया हूँ। जब मैं हवाई अड्डे पहुँचा, तो हवाई अड्डे के प्रबंधक ने मेरे लिए वीआईपी लाउंज खुलवा दिया और मुझे राज्यपाल को फोन करने के लिए कहा। मैंने कहा कि मुझे सार्वजनिक लाउंज में बैठना ज़्यादा अच्छा लग रहा है और मैं जितनी जल्दी हो सके फोन करूँगा। कुछ मिनट बाद राज्यपाल के सहायक सचिव हवाई अड्डे पर पहुँचे और मुझसे वीआईपी लाउंज में बैठने और राज्यपाल से बात करने की विनती की। उन्होंने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'नहीं तो मेरी नौकरी चली जाएगी।' मैंने डार्डी से बात की। उन्होंने मुझसे पूछा कि जब राजभवन मेरे अपने घर जैसा था तो मैं होटल में क्यों रुका था, इत्यादि। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं ऐसे व्यक्ति को कैसे जवाब दूं जो उस व्यक्ति के प्रति इतना मीठा व्यवहार कर सकता है जिसने उसकी निर्दयता से आलोचना की थी।

जब उनका तबादला नागालैंड के राज्यपाल के रूप में हुआ, तब भी कुछ ऐसा ही हुआ था। मुख्यमंत्री जमीर ने मुझे और मेरी पत्नी को कोहिमा में उनके साथ क्रिसमस मनाने के लिए आमंत्रित किया था। उन्होंने हमारे लिए क्रिसमस की पूर्व संध्या पर एक भव्य भोज का आयोजन किया था। मुझे उम्मीद थी कि डार्डी वहाँ नहीं होंगे। वे और उनकी पत्नी सबसे पहले पहुँचने वाले मेहमान थे। दोनों ने हमें गले लगाया। श्रीमती डार्डी मेरे बगल में बैठीं और कहा कि वे मुझसे मिलने का बेसब्री से इंतजार कर रही थीं। उन्होंने जोर देकर कहा कि दिल्ली लौटते समय दीमापुर जाने से पहले हम उनके साथ कॉफी पिएं। हमने पी ली। वे बहुत ही सौहार्दपूर्ण थे। उन्होंने दीमापुर जाने के लिए सड़क के उस हिस्से का इंतजाम किया जो क्षतिग्रस्त नहीं था और आमतौर पर केवल सेना के उपयोग के लिए होता है, और दीमापुर में हमारे ठहरने का भी इंतजाम किया। मैंने डार्डी को आखिरी बार सूचना की स्वतंत्रता फाउंडेशन द्वारा आयोजित एक समारोह में देखा था, जहाँ प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने मुझे सहित पाँच मीडियाकर्मियों को 25,000 रुपये के चेक दिए थे। डार्डी मुझसे मिलने आए और बताया कि वे केवल मुझे पुरस्कार लेते हुए देखने आए थे। कुछ सप्ताह बाद, मुझे दिल का दौरा पड़ने से डार्डी की अचानक मृत्यु की खबर मिली। तब मैं इस बात को लेकर असमंजस में था कि चंडीगढ़ के ट्रिब्यून में हर सप्ताह प्रकाशित होने वाले अपने कॉलम 'यह सबसे ऊपर' के लिए क्या लिखूं। मैंने डॉ. गोपाल सिंह डार्डी पर एक लंबा श्रद्धांजलि लेख लिखा। वे उस समुदाय से थे जो हमेशा विजयी होकर उभरता है।

हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक के तौर पर मुझे जिस लेख ने सचमुच मुश्किल में डाल दिया, वह मैंने नहीं बल्कि मेरे सहयोगी बी.एम. सिन्हा ने लिखा था। यह न्यायपालिका में भ्रष्टाचार पर था। यह एक प्रमाणित लेख था जिसमें बताया गया था कि कैसे विभिन्न उच्च न्यायालयों के कई न्यायाधीश कुछ वकीलों को संरक्षण देते थे, दूसरों के साथ भेदभाव करते थे, अपने जान-पहचान वालों को वकालत करने में मदद करते थे और अपने साधारण बेटों को न्यायाधीश के पद पर पदोन्नत करवाते थे। इसमें कोई संदेह नहीं था कि लेख हमारी न्यायपालिका के आचरण की घोर निंदा करता था। नानी पालखीवाला, सोली सोराबजी और सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश आर.एस. नरूला जैसे प्रख्यात वकीलों सहित सभी ने मुझे आश्वस्त किया कि स्थिति लेख में वर्णित स्थिति से कहीं अधिक खराब थी और अब समय आ गया था कि इसे सबके सामने लाया जाए। मुझे पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में पेश होने का नोटिस मिला। दर्जनों वकीलों ने मुझे नि:शुल्क अपनी सेवाएं देने की पेशकश की। मुख्य न्यायाधीश ने मुझसे पूछा कि क्या मुझे पता है कि न्यायालय की अवमानना के मामलों में सत्य बचाव नहीं होता। मैंने कहा कि मुझे पता है, लेकिन व्यापक जनहित ने मुझे लेख प्रकाशित करने के लिए विवश किया था। मैंने माफी मांगकर अपनी अवमानना को दूर करने से इनकार कर दिया और अदालत से सुनवाई को अगली तारीख तक स्थगित करने का अनुरोध किया, जब नानी पालखीवाला मेरी ओर से पेश होंगी। एक और तारीख तय की गई। नानी का नाम सामने आने पर न्यायाधीशों ने मुझे दोषी ठहराने के अपने फैसले पर पुनर्विचार किया। उन्होंने कुछ तकनीकी आधार पर मेरे खिलाफ मामला वापस लेने का फैसला किया।

फिर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मुझे, बी.एम. सिन्हा और हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यवाहक महाप्रबंधक डॉ. राजहंस (जो बाद में लोकसभा सदस्य बने) को तलब किया। हमारे बचाव में सिद्धार्थ शंकर राय उपस्थित थे। न्यायालय वकीलों से खचाखच भरा हुआ था। न्यायमूर्ति काटजू (जिनका जिक्र बी.एम. सिन्हा के लेख में किया गया था) और हाल ही में नियुक्त एक न्यायाधीश पीठ में थे। काटजू ने राय को स्पष्ट शब्दों में कहा कि जब तक हम बिना शर्त माफी नहीं मांगेंगे, वे हमें जेल भेज देंगे। मेरे पीछे खड़े वकीलों ने मुझे झुकने से मना किया। राय ने न्यायालय से मामले पर विचार करने के लिए समय मांगा। हमें अगली सुबह पेश होने के लिए कहा गया: या तो बिना शर्त माफी मांगनी होगी या फिर राय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से जमानत मिलने तक नैनी जेल में कुछ दिन बिताने होंगे। यह ग्रीष्म ऋतु का मध्य था और मच्छरों और चूहों से भरी कोठरी में समय बिताने का विचार मुझे अच्छा नहीं लगा। बी.एम. सिन्हा अपनी बात पर अड़े रहे और कहा कि वे माफी मांगने के बजाय जेल जाना पसंद करेंगे। रे ने हमें बताया कि अदालत एक की माफी स्वीकार नहीं करेगी और हम तीनों को मिलकर कार्रवाई करनी होगी। राजहंस और मैंने सिन्हा को समझाया कि वे हमें अपने साथ शहीद न बनाएं। अगले दिन हमने बिना शर्त माफी मांगी, लेकिन इस दृढ़ विश्वास के साथ कि न्यायपालिका भ्रष्टाचार से लथपथ है और इसे उजागर करना जरूरी है।

चलिए राज्यसभा की बात पर लौटते हैं, क्योंकि जब मैं हिंदुस्तान टाइम्स का संपादक था, तब के तीन वर्षों (1980-3) और उसके बाद के तीन वर्षों में राज्यसभा का ही बोलबाला रहा। इन छह वर्षों में पंजाब में उग्रवाद बढ़ता रहा और मनोनीत सदस्य होने के नाते मुझे सामान्य से कहीं अधिक बोलने का अवसर मिला।

अधिकांश सदस्यों द्वारा अपनी जिम्मेदारियों को इतनी हल्के में लेते देखकर मुझे निराशा हुई। सुबह 11 बजे प्रश्नकाल के साथ जब कार्यवाही शुरू होती थी, तब सदन आमतौर पर भरा रहता था। कुछ प्रश्न एक ही तरह से नियमित रूप से पूछे जाते थे। एक प्रश्न जो हर सत्र में पूछा जाता था, वह शीतल पेय पदार्थों से संबंधित था: सदस्य अपने-अपने संरक्षकों का पक्ष लेते थे - रमेश चौहान की लिम्का बनाम चरणजीत सिंह की कैम्पा कोला। किसी को भी इस बात में कोई संदेह नहीं था कि कौन सा सदस्य किसका समर्थक है। कुछ सदस्य पूरक प्रश्न उठाने में माहिर थे, और यदि उन्हें अनुमति नहीं मिलती थी, तो वे व्यवस्था के प्रश्न उठाते थे जिन्हें हमेशा खारिज कर दिया जाता था। और कुछ सदस्य ऐसे भी थे, जैसे मोटे-ताज़े पिलू मोदी, जो कार्यवाही पर लगातार टिप्पणी करते रहते थे। हालांकि, वे हाजिरजवाब थे और दूसरों से कहीं ज्यादा हँसी का माहौल बनाते थे। उनके विचार स्पष्ट रूप से रूढ़िवादी और अमेरिका समर्थक थे, और सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी के सदस्य अक्सर उन्हें 'वाशिंगटन देशभक्त' कहकर पुकारते थे। एक बार वे सदन में 'मैं सी.आई.ए. एजेंट हूँ' लिखा हुआ पोस्टर लेकर आए थे। अध्यक्ष ने उन्हें उसे हटाने का आदेश दिया। उन्होंने ऐसा करते हुए कहा, ‘मैं अब सी.आई.ए. एजेंट नहीं हूँ।’ पिलू मोदी को चिढ़ाने का जिम्मा उठाने वाले एकमात्र सदस्य जे.सी. जैन थे, जो कांग्रेस के एक बेहद मुखर सदस्य थे। एक बार जब जैन लगातार उन्हें परेशान करते रहे, तो पिलू मोदी अपना आपा खो बैठे और चिल्लाकर बोले, ‘भौंकना बंद करो!’ जैन खड़े होकर चिल्लाए, ‘महोदय, ये मुझे कुत्ता कह रहे हैं। ये असंसदीय भाषा है।’ अध्यक्ष हिदायतुल्ला सहमत हुए और आदेश दिया, ‘यह रिकॉर्ड में नहीं जाएगा।’ पिलू मोदी ने भी जवाब दिया, ‘ठीक है, तो भौंकना बंद करो।’ जैन को इस शब्द का अर्थ नहीं पता था। यह रिकॉर्ड में दर्ज हो गया। जब भारत ने अपना पहला उपग्रह कक्षा में स्थापित किया, तो प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और भारतीय वैज्ञानिकों को बधाई देने के लिए कई भाषण दिए गए। पिलू मोदी ने भी दोनों की जमकर प्रशंसा की। फिर उन्होंने श्रीमती गांधी की ओर मुड़कर कहा, ‘महोदया प्रधानमंत्री, हम जानते हैं कि हमारे वैज्ञानिकों ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बड़ी प्रगति की है।’ यदि आप हमें यह बता सकें कि हमारे टेलीफोन क्यों काम नहीं कर रहे हैं, तो मैं आपका आभारी रहूंगा।

कई पीछे की सीटों पर बैठे सांसदों के लिए जोर-जोर से चिल्लाना और बेतहाशा हाथ-पैर हिलाना उनकी संसदीय जिम्मेदारियों का एक अनिवार्य हिस्सा था। इनमें सबसे ज्यादा शोर मचाने वाली महिला सदस्य थीं, जो अपने लिंग के खिलाफ जरा से भी भेदभाव पर तुरंत भड़क उठती थीं। एक बार दिल्ली पुलिस पर एक गैंगस्टर की प्रेमिका माया त्यागी के साथ हुए सामूहिक बलात्कार के मामले में जमकर आलोचना हो रही थी। कम्युनिस्ट पार्टी की एक महिला सदस्य, जो कद में

छोटी, मोटी और मोटे चश्मे पहनती थीं, ने सरकार पर जमकर निशाना साधा। उन्होंने कहा, 'रोजाना हम यहां-वहां बलात्कार की खबरें सुनते हैं। हर समय बलात्कार ही बलात्कार है। सरकार इसके बारे में क्या कर रही है?'

मेरे बगल में बैठी नरगिस दत्त अपनी सीट से उठ खड़ी हुई और चिल्लाई, 'तुम इतनी परेशान क्यों हो? कोई तुम्हारा बलात्कार नहीं करेगा।' यह एक बेहद साधारण दिखने वाली महिला के लिए कही गई एक अप्रिय टिप्पणी थी। किसी ने विरोध नहीं किया।

प्रश्नकाल हमेशा जीवंत रहता था और इसमें अनेक विषयों पर चर्चा होती थी, हालांकि वे हमेशा राष्ट्रीय महत्व के नहीं होते थे। इसके बाद जो होता था, वह भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा की एक अनूठी विशेषता थी: शून्यकाल। यह एक तरह का अराजक माहौल होता था। एक दर्जन सदस्य खड़े होकर अपने मन की बात ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते थे। अध्यक्ष अक्सर अपने कक्षों में चले जाते थे और अपने उप-अध्यक्षों को इस हंगामे को संभालने देते थे। जब तक यह शोरगुल चल रहा होता था, वे मंत्रियों को सदन की मेज पर अपने दस्तावेज़ रखने के लिए बुलाते थे। इसके बाद सदस्यों को विशेष ध्यान देने योग्य मुद्दे उठाने की अनुमति दी जाती थी। कुछ ही सदस्य उन्हें सुनने के लिए रुकते थे। सदन जल्दी ही खाली हो जाता था। प्रेस गैलरी भी खाली हो जाती थी। जिन सदस्यों का उस दिन की कार्यवाही में कोई विवाद नहीं होता था, वे सेंट्रल हॉल में चाय या कॉफी के लिए चले जाते थे। यहाँ राजनीतिक मतभेदों को दरकिनार कर कहीं अधिक गंभीर कामों में लग जाते थे - गपशप और अफवाहें फैलाना। मंत्रियों और सदन की महिला सदस्यों के निजी जीवन का खुलासा हो जाता था। श्रीमती गांधी, जो कभी सेंट्रल हॉल नहीं आती थीं, उनके पास मुखबिर थे जो उन्हें बताते थे कि सदस्य उनके बारे में पीठ पीछे क्या कह रहे हैं। पंजाब में दरबारा सिंह की सरकार बर्खास्त होने और राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद, संसद में पंजाब पर बहस नियमित रूप से होने लगी। आतंकवाद राज्य और उसकी सीमाओं से परे भी फैलने लगा। भिंडरांवाले के भाषण हिंदुओं के प्रति और भी कटु और अपमानजनक हो गए। वह श्रीमती गांधी को पंडितन दी धी या बहमनी कहकर संबोधित करते थे - यानी उस पंडित की बेटी या ब्राह्मण स्त्री। हिंदुओं को धोती और टोपी पहनने वाले कहते थे। एक भाषण में उन्होंने हर सिख को 32 हिंदुओं को मारने के लिए उकसाया, 31 नहीं, 33 नहीं - केवल 32 (इस तरह हिंदुओं की पूरी आबादी का हिसाब हो जाएगा)। मुझे नहीं पता कि इतने सिखों ने उन्हें हत्यारा पागल क्यों नहीं कहा। जब वह ये घृणित बयान दे रहे थे, तब मैं धर्मयुद्ध मोर्चा के नाममात्र प्रमुख संत लोंगोवाल से एस.जी.पी.सी. के कार्यालय में उनके कमरे में मिलने गया था। लोंगोवाल से हुई इस मुलाकात से कुछ खास जानकारी नहीं मिली: मुझे लगा कि वह भिंडरांवाले से नाखुश थे, लेकिन उसके खिलाफ कुछ कर नहीं पा रहे थे। भिंडरांवाले अकाल तख्त में मजबूती से जमे हुए थे, उनके सशस्त्र अंगरक्षक स्वर्ण मंदिर परिसर में हर जगह मौजूद थे और अपने नेता के रास्ते में आने वाले किसी भी व्यक्ति को मारने के लिए बेताब थे। मैंने लोंगोवाल से

पूछा कि उन्होंने भिंडरांवाले को अकाल तख्त के पवित्र परिसर से हिंदुओं के बारे में गंदी बातें कहने की इजाजत क्यों दी। लोंगोवाल ने जवाब दिया, 'ओ तय सादा दंडा है' - वह सरकार पर प्रहार करने के लिए हमारा हथियार है।

पंजाब में तनाव बढ़ने और भिंडरांवाले के इशारे पर आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों की हत्याएं बढ़ने के साथ, सरकार को एहसास हुआ कि उसके विकल्प सीमित होते जा रहे हैं; उसे किसी भी तरह भिंडरांवाले को फिर से पकड़ना ही था (उसे पहले हत्या के आरोप में गिरफ्तार किया गया था और उसकी मर्जी के समय और स्थान पर रिहा कर दिया गया था)। तब तक भिंडरांवाले और उसके सैन्य सलाहकार, जनरल शाहबेग सिंह ने अकाल तख्त को एक किले में बदल दिया था और गुरुद्वारे की रसोई के लिए राशन लाने वाले ट्रकों के साथ तरह-तरह के हथियार तस्करी करके अंदर लाए जा चुके थे। सरकार ने बहुत देर कर दी थी, और एक हिंसक टकराव तेजी से अपरिहार्य होता जा रहा था। मैंने कई मौकों पर सरकार को स्वर्ण मंदिर में सेना भेजने के खिलाफ चेतावनी दी थी क्योंकि इससे पूरे सिख समुदाय का गुस्सा भड़क उठेगा, जिनमें से अधिकांश को भिंडरांवाले या अकाली दल से कोई लेना-देना नहीं था। एक बार मैंने गृह मंत्री पी.सी. सेठी, जो एक शांतिप्रिय जैन थे, से कहा, 'आप सिखों को नहीं जानते। वे ततैया के झुंड की तरह हो सकते हैं।' 'तुम अपना सिर उनके घोंसले में डालोगे तो तुम्हारे पूरे चेहरे पर डंक लग जाएंगे।' उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि सरकार का मंदिर में सेना भेजने का कोई इरादा नहीं है। श्रीमती गांधी ने भी एक से अधिक बार यही बात दोहराई।

यह ज्ञात नहीं है कि श्रीमती गांधी ने कब यह निष्कर्ष निकाला कि उनके पास स्वर्ण मंदिर में सेना भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, और उस समय उनके सलाहकार कौन थे। राजीव गांधी, अरुण नेहरू, अरुण सिंह और दिग्विजय सिंह के नामों का उल्लेख किया गया था। यह भी अज्ञात है कि अभियान शुरू करने की तारीख किसने तय की। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राष्ट्रपति ज़ैल सिंह को अंधेरे में रखा गया था। जब श्रीमती गांधी ने उन्हें पंजाब में सैन्य शासन लागू करने के लिए राजी किया, तो उन्होंने उन्हें यह नहीं बताया कि उन्होंने भिंडरांवाले और उसके सशस्त्र अनुयायियों को मंदिर से हटाने के लिए सेना भेजने का फैसला कर लिया है। पंजाब या सिख मामलों की बात आने पर, उन्हें ज्ञानी जी पर भरोसा नहीं था। और उनके किसी भी सलाहकार को सिख परंपराओं की जरा भी जानकारी नहीं थी। उन्होंने अभियान शुरू करने के लिए 5 जून 1984 का दिन चुना। यह हरि मंदिर के संस्थापक गुरु अर्जुन की पुण्यतिथि थी, एक ऐसा दिन जब दूर-दराज के क्षेत्रों से लाखों सिखों के तीर्थयात्रा पर आने की उम्मीद थी। भिंडरांवाले तक पहुँचने के वैकल्पिक तरीकों पर भी गंभीरता से विचार नहीं किया गया। उसे सादे कपड़ों में कमांडो के एक दल द्वारा काबू किया जा सकता था; मंदिर परिसर को चारों ओर से घेर लिया जा सकता था; अंदर मौजूद लोगों को राशन और पीने के पानी से वंचित किया जा सकता था और उन्हें आत्मसमर्पण करने के लिए बाहर आने पर मजबूर किया जा सकता था या स्नाइपरों द्वारा मार गिराया जा सकता था। इसमें कुछ दिन अधिक लगते, लेकिन तुलनात्मक रूप से कम रक्तपात होता।

हालांकि, सेना ने टैंकों, बख्तरबंद गाड़ियों और पैदल सैनिकों के साथ स्वर्ण मंदिर पर धावा बोल दिया, और निर्देश देने के लिए हेलीकॉप्टर ऊपर मंडराते रहे। इसके बाद शुरू हुआ युद्ध दो दिन और दो रात तक चला। गोलीबारी में लगभग 5,000 पुरुष, महिलाएं और बच्चे शहीद हो गए। टैंकों से दागी गई भारी तोपों की गोलियों से अकाल तख्त पूरी तरह से नष्ट हो गया; केंद्रीय मंदिर, जिसे दोनों पक्षों ने युद्ध से बाहर घोषित कर दिया था, पर 70 से अधिक गोलियां लगीं। प्रवेश द्वार (दियोहरी) का एक बड़ा हिस्सा उड़ गया; ग्रंथ साहिब की सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियां और गुरुओं के हस्ताक्षर से जारी हुकुमनामे (आदेश) वाले अभिलेखागार राख हो गए। यहां तक कि श्रीमती गांधी, जिन्हें आश्वासन दिया गया था कि अभियान दो घंटे से अधिक नहीं चलेगा, पवित्र संपत्ति को हुए नुकसान और भयानक जानमाल के नुकसान को देखकर भयभीत हो गईं। अपनी गलती स्वीकार करने के बजाय, उन्होंने झूठ का पुलिंदा बिछाकर पूरे मामले को दबाने का फैसला किया।

धर्म के प्रति मेरी उदासीनता और यहाँ तक कि शत्रुता के बावजूद, मुझे अपने समुदाय के साथ अपनी पहचान को फिर से स्थापित करने में कोई संदेह नहीं था। मैं भिंडरांवाले को एक दुष्ट व्यक्ति मानता था जो अपने अंजाम का हकदार था। लेकिन 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' भिंडरांवाले की हत्या से कहीं बढ़कर था: यह पूरे समुदाय के मुँह पर एक सोची-समझी और जानबूझकर की गई चोट थी। मुझे दृढ़ विश्वास था कि मुझे अपना विरोध दर्ज कराना चाहिए। मैंने किसी से सलाह नहीं ली: मेरी पत्नी कसौली में थीं, मेरी बेटी दफ्तर में थी, मेरा बेटा मुंबई में था। मैंने राष्ट्रपति ज़ैल सिंह के प्रेस सलाहकार तरलोचन सिंह को फोन किया और उनसे मिलने का समय माँगा। मुझे तुरंत आने के लिए कहा गया। मैं राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के हस्ताक्षर वाला पद्म भूषण पुरस्कार का प्रशस्ति पत्र फ्रेम में लेकर गया। तरलोचन को पहले ही अनुमान था कि मैं इसे सरकार को लौटाने आया हूँ। ज्ञानी ज़ैल सिंह गहरे अवसाद में थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं समझता हूँ कि आप कैसा महसूस कर रहे हैं, लेकिन जल्दबाजी मत कीजिए।' कुछ दिनों तक इस मामले पर सोच-विचार करो और फिर फैसला करो कि तुम्हें क्या करना चाहिए।' मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। 'नहीं ज्ञानी जी। मैं अपना मन बदलने के लिए समय नहीं देना चाहता। मैंने शपथ ली थी कि अगर सेना मंदिर में प्रवेश करती है तो मैं इस सरकार द्वारा मुझे दिए गए सभी सम्मानों को त्याग दूंगा।' उन्होंने तरलोचन से प्रशस्ति पत्र एक तरफ रखने को कहा और मुझसे बात करना जारी रखा। 'मुझे नहीं लगता कि मेरा कौम [समुदाय] मुझे इसके लिए कभी माफ करेगा,' उन्होंने कहा। वे इसके विपरीत किसी तरह का आश्वासन चाहते थे। 'नहीं ज्ञानी जी, मुझे नहीं लगता कि सिख आपको ब्लू स्टार के लिए कभी माफ करेंगे।' वे घोर निराशा में थे। 'क्या आपको लगता है कि अगर मैं अभी इस्तीफा दे दूं तो इससे कोई फायदा होगा?' मैंने उनसे कहा कि बहुत देर हो चुकी है: चाहे वे इस्तीफा दें या न दें, सिख उन्हें अपने सबसे पवित्र तीर्थस्थल के अपमान के लिए जिम्मेदार ठहराएंगे।

मुझे पता था कि ज्ञानी जी पद्म भूषण लौटाने की बात अपने तक ही रखेंगे। मैंने उन्हें मौका ही नहीं दिया। राष्ट्रपति भवन से मैं सीधे पार्लियामेंट स्ट्रीट स्थित पीटीआई कार्यालय गया और अपने विरोध पत्र का संक्षिप्त पाठ तथा पुरस्कार लौटाने की

बात वहाँ सौंप दी। उसमें लिखा था, ‘चूहे को मारने के लिए घर गिराने की जरूरत नहीं होती।’ शाम के अखबारों में यह खबर छपी; सुबह के अखबारों के पहले पन्ने पर यही खबर थी।

इसके बाद जो कुछ हुआ, वह मेरे लिए एक दर्दनाक सच्चाई थी। रातों-रात मैं सिखों का एक तरह का लोक नायक बन गया: सरकार की खुलेआम निंदा करने वाला पहला व्यक्ति। और हिंदुओं के लिए एक खलनायक। उन्होंने कहा कि मैं, जिसने हमेशा धर्मनिरपेक्ष आदर्शों का प्रचार किया और भिंडरांवाले की निंदा की, अपने 'असली रंग' में सामने आ गया था। मुझे चिट्ठियों और टेलीग्रामों की बाढ़ आ गई: सिखों ने मुझे यह दिखाने के लिए सराहा कि एक सिख को कैसा व्यवहार करना चाहिए; हिंदुओं ने मुझे देश का कट्टर दुश्मन बताया। यहां तक कि गिरिलाल जैन, जिन्हें मैं सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों से ऊपर मानता था, ने भी मेरे खिलाफ एक संपादकीय लिखा। मुझसे साक्षात्कार करने आए हर पत्रकार ने पूछा कि मैंने राज्यसभा से भी इस्तीफा क्यों नहीं दे दिया। मैंने उन्हें बताया कि मैं खुद को उस एकमात्र मंच से वंचित नहीं करने वाला था, जहां से मैं सरकार और जनता को बता सकता था कि उसने सिखों और देश के साथ कितना बड़ा अन्याय किया है।

कुछ दिनों बाद मैं अमृतसर गया। स्वर्ण मंदिर में प्रवेश अभी भी प्रतिबंधित था। लेकिन वे मुझे रोक नहीं सकते थे। रेलवे स्टेशन पर एक सेना अधिकारी ने मेरा स्वागत किया और बताया कि उन्हें जनरल के.एस. बरार ने, जिन्होंने ऑपरेशन ब्लू स्टार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, मेरी सुरक्षा के लिए मेरे साथ रहने के लिए नियुक्त किया था। दरअसल, उन्हें मेरी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए नियुक्त किया गया था।

मैंने परिक्रमा की और सेना द्वारा मचाई गई तबाही देखी। (मजदूर गोलियों से बने गड्ढों को जल्दी-जल्दी भर रहे थे और संगमरमर के फर्श से खून के धब्बे साफ कर रहे थे।) सैनिक अभी भी काफी संख्या में मौजूद थे। अकाल तख्त के मलबे के पास अंग्रेजी और हिंदी में एक बोर्ड लगा था, जिस पर लिखा था, 'इस परिसर में धूम्रपान और शराब पीना मना है।' मंदिर पर कब्जा करने के बाद हमारे जवान यही कर रहे थे। जब मैंने अपने अंगरक्षक का ध्यान इस ओर दिलाया, तो उसने बोर्ड हटाने का आदेश दिया। मैंने देखा कि किसानों के समूह अकाल तख्त के खंडहरों को देख रहे थे और उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। दूरदर्शन ने एक बहुत डरे हुए मुख्य पुजारी, किरपाल सिंह को बुलाया और उनसे यह बयान पढ़वाया कि इमारतों को बहुत कम नुकसान हुआ है: 'ओ किरपाला अन्हा सी?' - क्या किरपाल सिंह अंधे हैं? लोगों ने पूछा। केंद्रीय गर्भगृह में मैंने गोलियों के ताजा निशानों की गिनती की। हर एक के सामने क्रोध से रोती हुई किसान महिलाएं खड़ी थीं, उनके मुंह गालियों से भरे हुए थे। ‘इन्हां दा बीज नास होए!’ — इनकी संतान नष्ट हो जाए! ‘कुत्तियां दी औलाद!’ — कुत्तों की संतान, इत्यादि। बालकनी के नीचे से गुरबानी की धुनें सुनाई दे रही थीं। यह बिल्कुल बेमेल लग रही थी।

कई दिनों तक सिख पुरुषों और महिलाओं के समूह बिना बुलाए और बिना अपॉइंटमेंट के मुझसे मिलने आते रहे और मुझे सांत्वना देते रहे। इनमें सजी-धजी महिलाएं भी शामिल थीं जो अंग्रेजी बोलती थीं। एक दिन पहले, गृह मंत्री बूटा सिंह के कहने पर जत्थेदार रचपाल सिंह ने होटल इंपीरियल में सरकार का पक्ष स्पष्ट करने के लिए एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई थी। विदेशी पत्रकारों समेत प्रेस के सभी प्रतिनिधि बड़ी संख्या में मौजूद थे। जत्थेदार ने एक बयान पढ़ा और प्रश्न पूछने की अनुमति देने से पहले ही मेहमानों से कॉन्फ्रेंस खत्म होने के बाद रुकने और दोपहर के भोजन पर आमंत्रित होने का अनुरोध किया। एक महिला मंच पर आई और उसने जत्थेदार के चेहरे पर एक जोरदार थप्पड़ मारा, जिससे उनकी पगड़ी गिर गई। उसने कहा, 'बेशर्म! हमारा मंदिर ध्वस्त हो गया है और तुम दोपहर के भोजन की पार्टी मनाना चाहते हो?' प्रेस कॉन्फ्रेंस को जल्दबाजी में समाप्त कर दिया गया। यह महिला, जो एक स्कूल शिक्षिका थी, मुझसे मिलने वालों में से एक थी।

पार्लियामेंट रोड पुलिस स्टेशन (जिसमें गुरुद्वारा बंगला साहिब भी शामिल था) के डीसीपी असद फारूकी ने मुझे फोन किया और मुझसे मिलने का अनुरोध किया। जब हमारी मुलाकात हुई तो उन्होंने बताया कि वे हर दोपहर गुरुद्वारे में दिए जाने वाले प्रवचनों को सुनने आते हैं। मेरा नाम अक्सर लिया जाता था और अक्सर यह घोषणा की जाती थी कि मैं गुरुद्वारे में सभा को संबोधित करने आऊंगा। हमने काफी देर तक बात की और मैंने उन्हें अमृतसर में हुई मौत और तबाही के बारे में बताया: 'ज़रा सी बात पे आप सरकार से इतने खफा हो गए' - इतनी छोटी सी बात पर आप सरकार से इतने नाराज हो गए, उन्होंने हैरानी से कहा।

‘ज़रा सी बात! क्या आपको पता है कि इस एक ही ऑपरेशन में 5,000 से अधिक सिखों की हत्या कर दी गई थी? आप इसे ज़रा सी बात कहते हैं!’ मैंने जवाब दिया।

‘Itney Mussulman yeh har saal maar daaltey hain’ — They kill as many Muslims every year, he maintained. I could not resist retorting ‘Aap Mussalmanon ko to maar khaaney kee aadat par gayee hai’ — You Muslims have got used to being beaten regularly; ‘Inshallah, Sikkhon ko bhee par jayegee’ — If God wills Sikhs will also get habituated to it.

अपने लेखों और भाषणों में मैंने श्रीमती गांधी से आग्रह किया कि वे एक तीर्थयात्री के रूप में स्वर्ण मंदिर जाएँ और क्षमा माँगें। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि सिख भावुक लोग होते हैं और यह भाव उनके दुख को कम करेगा। उन्होंने अपने गृह मंत्री बूटा सिंह के मार्गदर्शन को स्वीकार किया। उन्होंने अकाल तख्त का पुनर्निर्माण यथावत और यथासंभव कम समय में करवाने का निर्णय लिया, ताकि मंदिर परिसर को एस.जी.पी.सी. को वापस सौंपा जा सके। धन की कोई समस्या नहीं थी।

तेजवंत सिंह के स्वामित्व वाली सिख ठेकेदार कंपनी, स्किपर एंड कंपनी को इस काम के लिए असीमित राशि दे दी गई, जिसमें गुंबदों की मरम्मत के लिए सोना प्राप्त करना भी शामिल था।

बूटा सिंह सिखों की स्वैच्छिक श्रम-सेवा (कार सेवा) के माध्यम से मंदिर निर्माण की परंपरा से परिचित थे। जब उन्हें कोई सम्मानित व्यक्ति नेतृत्व करने के लिए नहीं मिला, तो उन्होंने एक मोटे निहंग की सेवाएं लीं, जो खुद को सुल्तान-उल-कौम यानी समुदाय का शासक बताता था। यह विशालकाय व्यक्ति, जो हशीश का आदी माना जाता था, अपने कुछ अनुयायियों के साथ आया, जिन्होंने दिखावटी तौर पर ईंट-पत्थर लाकर भवन निर्माण स्थल पर पहुंचाया। दूरदर्शन ने शाम दर शाम उन्हें स्क्रीन पर दिखाया। जब यह मामला राज्यसभा में उठा, तो मुझे कांग्रेस में बैठे तीन सिख सदस्यों - अमरजीत कौर, हंसपाल और नए सदस्य, पूर्व मुख्यमंत्री दरबारा सिंह - के गुस्से का सामना करना पड़ा। जब मैंने सांता सिंह निहंग को 'एक मोटा बूढ़ा मसखरा' कहा, तो वे खड़े होकर विरोध करने लगे कि मेरी भाषा असंसदीय है और इसे रिकॉर्ड से हटा दिया जाना चाहिए। दरबारा सिंह ने आगे कहा, 'श्री खुशवंत सिंह, बाबा संता सिंह आपसे कहीं बेहतर सिख हैं!' मैंने उनकी बात को सही माना और कहा, 'मैंने कभी खुद को अच्छा सिख होने का दावा नहीं किया। लेकिन आप तीनों, जो खुद को इतने धर्मनिष्ठ सिख कहते हैं, मैं आपको बता दूं कि आज सिखों के लिए मेरी कही बात मायने रखती है; आप जैसे सिखों का कोई महत्व नहीं रह गया है।'

ऑपरेशन ब्लू स्टार पर मुख्य बहस श्वेत पत्र के प्रकाशन तक स्थगित करनी पड़ी। मैं सदन में तब तक रुका रहा जब तक पुस्तक की पहली प्रतियां जारी नहीं हो गईं और घंटों उसे बार-बार पढ़ता रहा। मुझे पता था कि इसके खिलाफ बोलने वाला मैं अकेला ही होऊंगा, क्योंकि तब तक अकाली सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया था। कांग्रेस पार्टी के व्हिप ने मुझे परेशान करने और आधिकारिक दृष्टिकोण रखने के लिए अपने गुर्गों को खड़ा कर दिया था। जब मुझे बोलने के लिए बुलाया गया तो सदन खचाखच भरा हुआ था। शुरू से ही कांग्रेस पार्टी के चापलूसों ने मुझे घेरने की कोशिश की। जयललिता, जो हाल ही में सदन के लिए चुनी गई थीं, मेरे बचाव में खड़ी हुईं और अध्यक्ष से मुझे बिना किसी बाधा के बोलने देने का अनुरोध किया। मैंने अपनी पूरी वाक्पटुता का प्रयोग किया और सरकार द्वारा किए गए कृत्यों की कड़ी निंदा की। मैंने सेना द्वारा किए गए अनाड़ीपन की आलोचना की और गंभीर गलतियों के परिणाम को दर्शाने के लिए एक उर्दू शेर का हवाला दिया।

वो वक़्त भी देखा तारीख़ की घरियाँ नहीं

Lamhon nay khataa kee thee

Sadiyon nay sazaa paayee

(इतिहास के युगों ने समय दर्ज किया है)

कुछ सेकंड में हुई गलती के लिए

सदियों को इसकी कीमत चुकानी पड़ी।

मेरे भाषण पर केवल विपक्ष के सदस्यों ने ही तालियाँ बजाई। लोकसभा में बैठी श्रीमती गांधी को मेरी बातों की जानकारी दी जा रही थी; उन्होंने मेरे भाषण को राष्ट्रविरोधी बताया।

मेरे बाद बोलने वाले सभी वक्ताओं ने मेरी बातों पर कुछ न कुछ टिप्पणी की। पी.सी. सेठी के स्थान पर गृह मंत्री बने नरसिम्हा राव ने मुझ पर यह कहकर कटाक्ष किया कि मैं खुद को एक सैन्य विशेषज्ञ के रूप में पेश करने की कोशिश कर रहा हूं जो सेना कमान को उसके काम करने के तरीके के बारे में सलाह दे सकता है।

मैंने सरकारी विज्ञप्तियों के माध्यम से प्रेस को दी जा रही पक्षपातपूर्ण और असत्यापित दुष्प्रचार के विरुद्ध पाकिस्तान का बचाव करने में भी अपनी पूरी कोशिश की। चाहे बात सिख आतंकवादियों के प्रशिक्षण शिविरों के संचालन में पाकिस्तान की कथित संलिप्तता की हो, हथियारों की आपूर्ति की हो या सांप्रदायिक दंगों को भड़काने की, सरकार के दावों पर सवाल उठाना पूरी तरह से मेरी जिम्मेदारी थी। प्रश्नकाल में एक मुद्दा बॉम्बे स्थित जिन्ना हाउस के भविष्य से संबंधित था। जिन्ना के पाकिस्तान चले जाने के बाद, मालाबार हिल स्थित उनकी हवेली को अंग्रेजों को उनके उप उच्चायुक्त के निवास के रूप में पट्टे पर दिया गया था। जब पट्टा समाप्त होने वाला था, तो हमारी सरकार ने इसे पाकिस्तान को उसके वाणिज्य दूतावास के लिए किराए पर देने पर सहमति व्यक्त की। यह भारत सरकार द्वारा लिखित में दिया गया एक गंभीर वचन था। पाकिस्तान के महावाणिज्यदूत आ चुके थे और होटल में ठहरे हुए थे, उस दिन का इंतजार कर रहे थे जब वे वहां रहने के लिए जा सकें। अचानक भारतीय सरकार ने अपना वादा तोड़ दिया और पट्टा रद्द कर दिया। यह श्रीमती गांधी का निजी निर्णय था और इस डर पर आधारित था कि यह घर पाकिस्तानियों के लिए तीर्थस्थल बन जाएगा। उन्होंने इस बारे में पहले क्यों नहीं सोचा या अगर पाकिस्तानी वास्तव में इसे अर्ध-पवित्र स्मारक मानते हैं तो इसमें क्या गलत है, यह मेरी समझ से परे था। मुस्लिम सांसद स्वाभाविक रूप से कुछ भी कहने से कतरा रहे थे जिससे यह आभास हो कि वे पाकिस्तान समर्थक हैं। मैंने लिखित में किए गए वादे को तोड़ने के लिए अपनी ही सरकार की जमकर निंदा की। जब गृह मंत्री नरसिम्हा राव के पास कोई जवाब नहीं था, तो उन्होंने इशारों-इशारों में बात करना शुरू कर दिया। उन्होंने पूछा, 'आप पाकिस्तान से जुड़ी हर बात पर इतने भावुक और उत्तेजित क्यों हो जाते हैं?'

एक साहित्यकार होने के नाते, मुझे राज्यसभा में पुस्तक प्रकाशन और सरकार द्वारा वित्त पोषित तीन सांस्कृतिक अकादमियों पर अपनी राय रखने की अनुमति मिली थी। एक समय इसकी समिति का सदस्य होने के कारण, मुझे साहित्य अकादमी के कामकाज की कुछ व्यक्तिगत जानकारी थी। वार्षिक पुरस्कारों का वितरण एक तरह का घोटाला बन गया था। एक बार मैंने एक प्रोफेसर के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसने मुझसे पुरस्कार दिलवाने के लिए संपर्क किया था। उस प्रोफेसर को तत्कालीन साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ. राधाकृष्णन ने खूब फटकार लगाई थी। कुछ वर्षों बाद, राष्ट्रपति के

घर के प्रभारी अधिकारी की पत्नी राष्ट्रपति भवन की कार में मेरे घर आई और मुझसे पुरस्कार के लिए उनका नाम प्रस्तावित करने को कहा। उन्होंने बताया कि राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने उन्हें आश्वासन दिया था कि यदि प्रस्ताव मेरी ओर से आएगा, तो वे इसे पूरा करवा देंगे। मैंने उन्हें बताया कि सिफारिश करना मना है, और पिछले वर्ष मैंने उस प्रोफेसर के साथ क्या किया था। उन्होंने पलटवार करते हुए कहा: 'एह तां गल्लां करं दियां नय' — ये तो बस बातें हैं — कुछ भी पाने के लिए हर किसी को कोई न कोई तरीका अपनाना पड़ता है। मैंने इस महिला की कविता की बहुत प्रशंसा की और मुझे लगा कि वह पुरस्कार की हकदार थीं, लेकिन मुझे यह भी लगा कि प्रचार करने के लिए उन्हें बहिष्कृत कर देना चाहिए। मैंने अकादमी के सचिव कृष्णा कृपलानी को पत्र लिखा। वही राधाकृष्णन, जिन्होंने उस बेचारे प्रोफेसर को उपदेश दिया था, ने देखा कि उस महिला को उसी वर्ष पुरस्कार मिला और उनके पति को अगले वर्ष। मैंने अकादमी की समिति से इस्तीफा दे दिया।

जब राज्यसभा में साहित्य अकादमी पर चर्चा हुई, तो मैंने इसके कामकाज पर खोसला समिति की रिपोर्ट का हवाला दिया। इसमें बताया गया था कि पंजाबी साहित्य के लिए पुरस्कार देने में घोर भ्रष्टाचार किया जाता था। इसकी कार्यकारी समिति के हर सदस्य को पुरस्कार मिला था। एक बैठक में तो एक महिला सदस्य ने अपने पक्ष में निर्णायक वोट दिया था! सदन ठहाकों से गूंज उठा। मैंने सरकार से पुरस्कारों को समाप्त करने और साहित्य पर राज्य का संरक्षण छोड़ने की अपील की। लेखकों और कवियों को पैसा देना खरपतवार पर खाद छिड़कने जैसा था। रचनाकारों को अपना गुजारा खुद करना चाहिए और जो जीवित नहीं रह सकते उन्हें गुमनामी में खो जाने देना चाहिए। सरकारी खर्च पर उनकी रचनाओं को प्रकाशित करना और सरकारी पुस्तकालयों में रखने के लिए स्टॉक खरीदना केवल घटिया साहित्य को बढ़ावा देता था। उन्होंने मेरी बात सुनी, मेरे दिए उदाहरणों पर उन्हें हंसी आई, फिर उन्होंने अकादमी द्वारा मांगे गए अनुदान पारित कर दिए।

कई सांसदों के राम स्वरूप के निमंत्रण पर ताइवान और दक्षिण कोरिया की मुफ्त यात्राओं पर जाने के आरोपों पर मेरी प्रतिक्रिया भी उतनी ही हल्की-फुल्की थी। राम स्वरूप ताइवान और इज़राइल का एजेंट था और उसके कट्टर साम्यवाद-विरोधी विचार थे। राम स्वरूप को जासूसी के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। मैं उसे तब से जानता था जब मैंने इंडियन फ्रेंड्स ऑफ इज़राइल की स्थापना की थी। मुझे वह एक असभ्य और अप्रिय व्यक्ति लगा, जिसने संगठन को एक दक्षिणपंथी हिंदू संस्था बनाने की कोशिश की, जिसमें स्पष्ट रूप से मुस्लिम-विरोधी पूर्वाग्रह था। कई वर्षों तक उससे मुलाकात नहीं हुई थी, जब उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं ताइवान सरकार के अतिथि के रूप में वहाँ जाना चाहूँगा। मेरे यात्रा और आतिथ्य का खर्च सरकार उठाएगी। मैं सहमत हो गया और अपनी पत्नी को भी अपने खर्च पर साथ ले जाने का फैसला किया। हमने परेड देखने, दर्शनीय स्थलों और परमाणु प्रतिष्ठानों का दौरा करने में बहुत आनंद लिया और चीन की मुख्य भूमि के सामने एक द्वीप पर भूमिगत बंकरों में एक दोपहर बिताई। संदिग्ध पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति के माध्यम से सांसदों द्वारा भारत द्वारा मान्यता न दी गई सरकार का आतिथ्य स्वीकार करने का प्रश्न साम्यवादियों द्वारा उठाया गया था। ताइवान

का दौरा कर चुके दो मंत्रियों ने इस्तीफा दे दिया। अन्य नामित मंत्रियों को बयान देने की अनुमति दी गई। उन्होंने अपने देशभक्ति पर सवाल उठाने वालों की निंदा करते हुए तीखे भाषण दिए और राम स्वरूप की पृष्ठभूमि से अनभिज्ञता जताई। जब मेरी बारी आई, तो मैंने स्वीकार किया कि मैं राम स्वरूप और दक्षिण कोरिया, ताइवान और इज़राइल से उनके संबंधों को जानता था; कि मुझे ताइवान की यात्रा करके खुशी हुई: यह खूबसूरत महिलाओं वाला एक सुंदर देश था। इसके अलावा, मैंने ताइवान सरकार और जी.आई.ए. को गोपनीय जानकारी दी थी, जिस तक उनकी कोई पहुंच नहीं थी, जैसे कि कुतुब मीनार और लाल किले का सटीक स्थान, दिल्ली की खूबसूरत मस्जिदें और मकबरे। सदन ने इस सहज स्वीकारोक्ति का आनंद लिया और कम्युनिस्टों को मूर्ख साबित कर दिया गया।

कहने की ज़रूरत नहीं, मैं सरकार के लिए एक काँटा बन गया था। सांसद होने के विशेषाधिकारों (एक विशाल बंगला, मुफ्त टेलीफोन, मुफ्त यात्रा और बहुत कुछ) का आनंद लेते हुए मैंने कई वर्षों तक यह भी महसूस किया कि इससे कुछ खास हासिल नहीं हुआ क्योंकि सांसद अपने काम को गंभीरता से नहीं लेते थे। मैंने द स्पेक्टेटर में उनके स्तंभकार ऑबेरॉन वॉ द्वारा ब्रिटिश सांसदों पर लिखा एक बहुत ही मनोरंजक लेख पढ़ा। उन्होंने उन्हें अर्ध-साक्षर और निकम्मे 'कुत्ते के शरीर' बताया था - उनके साथ तो कुछ हुआ ही नहीं था। अपने 'दुष्टता' कॉलम में मैंने वॉ के कंधों पर निशाना साधा और राज्यसभा के सदस्यों पर उसी तरह के तीखे हमले किए, प्रत्येक पैराग्राफ के अंत में यह जोड़ते हुए कि 'क्या मैं वही लिख सकता हूँ जो वॉ ने अपने सांसदों के बारे में लिखा है?'

मुझे पता भी नहीं था कि कांग्रेस के सतपाल मित्तल, जिन्होंने कभी मेरे प्रति भाईचारे का भाव दिखाया था, ने 71 सदस्यों से मेरे खिलाफ सदन की अवमानना का विशेषाधिकार प्रस्ताव पारित करवा दिया। जब मुझे इसके बारे में पता चला, तो मैं ज्यादा चिंतित नहीं हुआ। अगर मामला सदन में आता, तो मुझे अपने साथी सांसदों के बारे में अपने विचार व्यक्त करने का एक और मौका मिल जाता। लेकिन वह मौका नहीं आया। एक सुबह, जब मैं प्रश्नकाल के दौरान सदन में बैठा था, मुझे सचिव का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि अध्यक्ष चाहते हैं कि मैं वहीं रुकूं क्योंकि उन्हें मेरे बारे में एक महत्वपूर्ण घोषणा करनी है।

प्रश्नकाल समाप्त होने के बाद, अध्यक्ष हिदायतुल्ला ने मेरे विरुद्ध लाए गए विशेषाधिकार प्रस्ताव की ओर ध्यान दिलाया। उन्होंने मेरा लेख और मित्तल तथा 71 अन्य लोगों द्वारा लगाए गए अवमानना के आरोप पढ़े। उन्होंने लैटिन भाषा के मेरे ज्ञान की आलोचना की (मैंने कुछ शब्द गढ़े थे) और ब्रिटिश संसद के उदाहरणों का हवाला दिया। फिर उन्होंने विशेषाधिकार प्रस्ताव को खारिज कर दिया। उपराष्ट्रपति और राज्यसभा अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होने के बाद, उन्होंने बंबई में दिए गए एक भाषण में कहा कि राज्यसभा अध्यक्ष के रूप में उन्हें सबसे सुखद क्षण मेरे विरुद्ध लाए गए विशेषाधिकार प्रस्ताव से निपटना था।

मेरे साथी सांसदों के बारे में मैं बहुत कुछ लिख और कह सकता था, जो उनकी प्रशंसा नहीं करता। कई तो सदन में आए बिना ही मासिक भत्ता लेने के लिए हस्ताक्षर कर देते थे। कई तो इसलिए आते थे क्योंकि गर्मी में यह सबसे ठंडी जगह होती थी; प्रख्यात हिंदी उपन्यासकार, जो कुछ समय के लिए मेरे बगल में बैठते थे, अपनी सीट पर बैठते ही पाँच मिनट के भीतर सो जाते थे। वे कई वर्षों से वहाँ थे। जब भी मैं उनसे बोलने वाले सदस्यों के नाम पूछता, वे एक सौम्य मुस्कान के साथ उत्तर देते, 'नाम वाम तो मैं किसी का नहीं जानता' - मुझे किसी का नाम या किसी के बारे में कुछ नहीं पता। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी जगह एक बुजुर्ग मुस्लिम सांसद आए, जिन्हें हमेशा पेट की समस्या रहती थी। उनकी खामोश गैसें बदबूदार होती थीं। हर बार जब वे अपनी सीट पर बैठते, मैं तब तक दूसरी जगह चला जाता जब तक वे चले नहीं जाते। असम से एक मोटे-ताज़े सांसद भी थे, जिन्हें ऐसी ही समस्या थी। जब भी उनके पेट में ज़्यादा गैस होती, वे ज़ोर से गैस छोड़ते, जिसकी गूँज पूरे हॉल में सुनाई देती थी। मुझे अक्सर ज़ोर से गैस छोड़ने वालों के खिलाफ विशेषाधिकार प्रस्ताव लाने का मन करता था।

खर्राटे या गैस छोड़ने से भी ज़्यादा परेशान करने वाली बात थी प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्यों द्वारा दिखाई जाने वाली घिनौनी चाटुकारिता। हर गुरुवार को जब श्रीमती गांधी राज्यसभा आती थीं, तो कांग्रेस की सीटें भरी रहती थीं। जैसे ही वह उठकर जाने लगतीं, आधा दर्जन कांग्रेस सांसद उनके पीछे गलियारे तक दौड़ पड़ते। वरिष्ठ मंत्रियों के साथ भी यही हाल था। पद में बदलाव आते ही उनके व्यवहार में भी ज़बरदस्त परिवर्तन आ जाता था। हद से ज़्यादा मोटे कल्पनाथ राय, जिन्हें अक्सर बुरे बर्ताव (खर्राटे लेना, अखबार पढ़ना, बहसों के दौरान अपने साथियों से बात करना) के लिए फटकारा जाता था, मंत्री बनने के बाद अहंकारी हो गए और महिला सदस्यों को तर्जनी उंगली से इशारा करते थे। जब मैं पहली बार सांसद बना, तो आम तौर पर यह माना जाता था कि मैं श्रीमती गांधी (जो सच नहीं था) और उनके बेटे संजय के बहुत करीब था। मंत्री और सांसद हमेशा मुझसे बातचीत करने आते थे। जब यह पता चला कि अब मुझे उनका स्नेह प्राप्त नहीं है, तो उन्होंने मुझसे दूरी बना ली।

महज संयोग से, मेरे बगल में बैठे तीन सदस्यों का कुछ ही समय में निधन हो गया। पहली थीं खूबसूरत नरगिस दत्त; फिर हिंदी उपन्यासकार; और फिर बुजुर्ग मुस्लिम। मेरे आखिरी सत्र में उनकी जगह प्रख्यात पक्षी विज्ञानी, 90 वर्षीय सलीम अली ने ली। उनका भी कुछ महीनों बाद निधन हो गया। शायद उस सीट में मृत्यु के बीज छिपे थे; या मेरे बगल में बैठने से उनका निधन जल्दी हो गया।

31 अक्टूबर 1984 की सुबह जब श्रीमती गांधी की हत्या हुई, तब मैं संसद सदस्य था। उनसे मतभेद होने के बावजूद, उनके अपने ही सुरक्षा गार्डों (दोनों सिख) द्वारा की गई उनकी निर्मम हत्या की खबर सुनकर मुझे गहरा दुख हुआ। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं, तो मैं निश्चित रूप से परिवार को सांत्वना देने और उनके पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार के समय उन्हें अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने जाता। प्रधानमंत्री के रूप में उनके प्रति मेरे मन में कोई विशेष सम्मान नहीं था और

मुझे पूरा विश्वास है कि देश में जो भी कुरूपता आई है, उसकी जड़ें उन्हीं में हैं। वे छोटी सोच वाली और प्रतिशोधी हो सकती थीं, जैसा कि उन्होंने अपनी विधवा बहू मेनका के साथ अपने व्यवहार में दिखाया। वे केवल सिंह (संयुक्त राज्य अमेरिका में सेवानिवृत्त राजदूत) और जगत मेहता (सेवानिवृत्त विदेश सचिव, जिन पर उन्हें धोखा देने का संदेह था) जैसे वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति बहुत असभ्य थीं। उन्हें विशेष रूप से उन लोगों को नीचा दिखाने में आनंद आता था जो उन्हें अपना मित्र समझते थे। डोम मोरेस द्वारा उनकी जीवनी लिखने के बाद वे उनके प्रति भी बेहद कठोर थीं; उन्होंने अपने घर के नियमित आगंतुक अकबर अहमद (डम्पी) पर अपनी हत्या की साजिश रचने का आरोप लगाया और आदेश जारी किया कि उसे घर में प्रवेश न करने दिया जाए। कई ऐसे अवसर आए जब मैं उनसे मिल सकता था, जैसे संजय गांधी की पत्नी मेनका द्वारा लिखित जीवनी के विमोचन के अवसर पर, जिसके संपादन में मैंने सहायता की थी। वह चाहती थीं कि मैं उस अवसर पर उपस्थित रहूँ। मुझे आभास हुआ कि वह मेरे साथ असभ्य व्यवहार करेंगी। मैं समारोह में नहीं गया। उन्होंने मेनका को भी नहीं बख्शा। ऐसा ही तब हुआ जब उनकी आत्मकथा का फ्रांसीसी से अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ, जिसकी मैंने प्रस्तावना लिखी थी। श्रीमती गांधी ने प्रकाशक, विजन बुक्स के साथ अपने घर में ही इसका विमोचन करने का समझौता किया था। वह चाहती थीं कि मैं वहाँ उपस्थित रहूँ। फिर से मुझे आभास हुआ कि वह मेरे साथ बुरा व्यवहार करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रही थीं। मैं विमोचन में नहीं गया। उन्हें प्रकाशक पर अपना क्रोध निकालना था। उन्होंने उपस्थित लोगों के सामने प्रकाशक से कहा कि पुस्तक से उनका कोई लेना-देना नहीं होगा। पुस्तक के आवरण पर उनका नाम छपा था।

इंदिरा गांधी को व्यक्तिगत रूप से श्रद्धांजलि अर्पित नहीं कर सका क्योंकि उनकी पार्टी के स्थानीय नेताओं द्वारा भड़काई गई सिख विरोधी हिंसा पूरे शहर में फैल गई थी। उन्होंने झूठी अफवाहें फैलाईं कि सिख श्रीमती गांधी की हत्या का जश्न मना रहे हैं, मिठाई बांट रहे हैं और अपने घरों में आग लगा रहे हैं; सिखों ने दिल्ली की जल आपूर्ति में जहर मिला दिया है, और दिल्ली आ रहे सिखों द्वारा ट्रेनों में भरकर लाए गए हिंदू शवों का नरसंहार किया गया है। भाड़े के गुंडों के गिरोह लोहे की छड़ों और पेट्रोल से लैस होकर गुरुद्वारों, सिख घरों, दुकानों और टैक्सियों को जलाने और सिखों को जिंदा जलाने के लिए तैयार थे। मैं निशाने पर था। अगली सुबह मुझे चेतावनी दी गई कि एक भीड़ मुझे लेने आ रही है। ऐन मौके पर स्वीडिश दूतावास के रॉल्फ गौफिन, जिनसे मैं पहले कभी नहीं मिला था, लेकिन जो रमेश थापर के घनिष्ठ मित्र थे, अपनी दूतावास की कार में आए और मेरी पत्नी और मुझे दूतावास परिसर में स्थित अपने घर ले गए। मैंने श्रीमती गांधी का अंतिम संस्कार टीवी पर देखा। मुझे पूरा यकीन है कि अगर वह जीवित होतीं, तो अपने पिता की तरह पूरे शहर का दौरा करतीं और हजारों निर्दोष लोगों के नरसंहार को रोकतीं। उनके बेटे राजीव गांधी अपनी माता के पार्थिव शरीर के पास रहकर विशेष अतिथियों का स्वागत करते रहे। अगर उन्होंने सिखों को सबक सिखाने का आदेश नहीं दिया था, तो उन्होंने इसे रद्द करने के लिए कुछ नहीं किया।

अगले संसदीय सत्र के शुरू होने से पहले, मैंने उपराष्ट्रपति वेंकटरामन (जो श्री हिदायतुल्ला के उत्तराधिकारी थे) से मुलाकात की और उनसे श्रीमती गांधी को श्रद्धांजलि देने की अनुमति मांगी। सत्र का पहला दिन सभी दलों के नेताओं द्वारा श्रद्धांजलि देने के लिए समर्पित था। मुझे सबसे अंत में बुलाया गया। मुझे लगता है कि मैंने अपना सर्वश्रेष्ठ भाषण दिया, जिसमें मैंने हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण महिलाओं में से एक को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। अखबारों में इसका बहुत संक्षिप्त उल्लेख हुआ क्योंकि जब तक मैंने भाषण दिया, प्रेस गैलरी खाली हो चुकी थी।

सांसद के तौर पर मैंने जो आखिरी महत्वपूर्ण काम किया, वह नवंबर 1984 के नरसंहार में पीड़ित परिवारों की मदद के लिए विदेशों में रहने वाले सिख समुदायों द्वारा भेजे गए धन और सर्दियों के कपड़ों से संबंधित था। मैंने यह धन (लगभग 8 लाख रुपये) जॉर्ज फर्नांडीस द्वारा संचालित पीपुल्स रिलीफ कमेटी को सौंप दिया। चूंकि ज्यादातर उपहार पार्सल मेरे नाम पर थे, इसलिए मुझे उन्हें सीमा शुल्क से छुड़वाना पड़ा। फर्नांडीस के साथ काम कर रही जया जेटली ने एक सरकारी दफ्तर से दूसरे दफ्तर तक चक्कर लगाए, लेकिन दिल्ली प्रशासन से मंजूरी नहीं मिल पाई। पूरी सर्दी ऊनी कंबल और स्वेटर सीमा शुल्क दफ्तरों में पड़े रहे और बेसहारा सिख अपनी झोपड़ियों में ठिठकते रहे। दूसरी ओर, मुझे माल को समय पर छुड़वाने में देरी के लिए 75,000 रुपये विलंब शुल्क का नोटिस मिला। किसी ने उन पार्सलों के बारे में सवाल उठाया। मैंने पूरक नोटिस मांगने के लिए हाथ उठाया। मैंने विलंब शुल्क की मांग वाला कागज लहराया और सरकार की संवेदनहीनता पर जमकर हमला बोला। सौभाग्य से, कई कांग्रेस सांसदों, विशेष रूप से पृथ्वीजीत सिंह ने, 'शर्मनाक! शर्मनाक!' के नारे लगाते हुए मेरा साथ दिया। और सौभाग्य से, गुरुवार होने के कारण, प्रधानमंत्री राजीव गांधी और वित्त मंत्री वी.पी. सिंह दोनों सदन में उपस्थित थे। मैंने वी.पी. सिंह को राजीव से दबी आवाज़ में सलाह मशवरा करते देखा। फिर उन्होंने अपने उप-प्रधानमंत्री को बैठने के लिए कहा और घोषणा की कि कपड़ों का पूरा स्टॉक चौबीस घंटे के भीतर जारी कर दिया जाएगा। उन्होंने देरी के लिए अपनी सरकार की ओर से खेद व्यक्त किया। कुछ दिनों बाद मैं चरणजीत सिंह की नई मशीनरी को बॉम्बे कस्टम से छुड़वाने में भी सफल रहा, ताकि दंगाइयों द्वारा क्षतिग्रस्त की गई मशीनरी को बदला जा सके।

मुझे उम्मीद थी कि राज्यसभा में मुझे दूसरा कार्यकाल मिल जाएगा। कई मनोनीत सांसदों को एक से अधिक कार्यकाल मिल चुके थे और मुझे लगता था कि मैंने सदन में अपनी क्षमता से कहीं अधिक भाषण दिए हैं। मैंने राजीव गांधी को पत्र लिखकर अपने पुनर्नामांकन पर विचार करने का अनुरोध किया। जब नरसिम्हा राव ने नए नामांकित व्यक्तियों के नाम राष्ट्रपति ज़ैल सिंह को सौंपे, तो उन्होंने सूची वापस भेज दी और मेरा नाम उसमें शामिल करने का अनुरोध किया। प्रधानमंत्री राजीव गांधी सहमत नहीं हुए। ज़ैल सिंह ने दूसरी बार मेरा नाम शामिल करने का अनुरोध किया। इस बार भी मेरा अनुरोध ठुकरा दिया गया, लेकिन इस बार यह आश्वासन दिया गया कि मुझे कोई सार्थक पद दिया जाएगा। एच.वाई. शारदा प्रसाद,

जिनसे मेरी मुलाकात एक निजी समारोह में हुई थी, और सिद्धार्थ शंकर राय ने भी मुझे यही बात कही। मुझे राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट के अध्यक्ष पद का प्रस्ताव दिया गया। मैंने बिना सोचे-समझे इसे ठुकरा दिया।

मुझे इस बात का दुख था कि मुझे राज्यसभा में दूसरा कार्यकाल नहीं मिला। मेरे विदाई भाषण में कई रोचक किस्से थे जिनसे खूब हंसी आई। मुझे अब भी उम्मीद थी कि पंजाब के विधायक मुझे उस राज्य से सांसद चुनवा देंगे। उस अनुभव के बारे में मैं बाद में लिखूंगा।

मुझे अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के वर्णन में थोड़ी देर के लिए विराम लेने दीजिए, ताकि मैं एक व्यक्तिगत त्रासदी - मेरी माँ की मृत्यु - के बारे में बात कर सकूँ।

मेरे माता-पिता में से, मुझे अपने पिता की तुलना में अपनी माँ के साथ ज़्यादा सहजता महसूस होती थी। उनके बच्चे उनसे उतना नहीं डरते थे जितना हम अपने पिता से डरते थे। जब हम छोटे थे, तो वह अक्सर हमें थप्पड़ मारने की धमकी देती थीं, लेकिन बात हाथ उठाकर 'मारां चाट?' कहने से आगे नहीं बढ़ती थी। इसके बाद कुछ नहीं होता था। वह कमज़ोर, कद में छोटी और आत्मविश्वास से रहित थीं। बचपन में उनके पास जो कुछ भी था, वह उनके दबंग पति ने कुचल दिया था, जो उन्हें घर चलाने की ज़िम्मेदारी भी नहीं देते थे। वह अपने खाने की पार्टियों के लिए मेनू भी तय करते थे - जिसमें टमाटर का सूप, मछली, चिकन, पुलाव और फिर हलवा ही होता था - और धोबी के अलावा सभी हिसाब-किताब वही रखते थे। अपने पति के प्रति उनकी आज्ञाकारिता के और भी कारण थे - उनके पिता और दो भाई हमारे यहाँ काम करते थे; उनकी तीन बहनों के पतियों में से दो मेरे पिता के संरक्षण पर निर्भर थे। वह कभी स्कूल नहीं गई और उन्होंने केवल इतना ही गुरमुखी सीखा था कि पत्र लिख सकें और पंजाबी अखबारों की सुर्खियाँ पढ़ सकें। वह किताबों पर समय बर्बाद नहीं करती थी और अपनी बहनों और नौकरानी भजनो के साथ गपशप करना पसंद करती थी, जो अपने बेटों की पत्नियों के बारे में चुगली करने में माहिर थी। हालांकि, जब मैं विदेश में था, तो मुझे उसके द्वारा गुरुमुखी में लिखी गई कुछ पंक्तियों से मेरे पिता द्वारा अपने सचिव को टाइप किए गए दो पन्नों से कहीं अधिक समाचार मिलते थे। वह सरकार, राजनीतिक खींचतान और बजट के बारे में लिखते थे; वह जन्म, प्रेम प्रसंग, विवाह और मृत्यु के बारे में लिखती थी। वह अक्सर शिकायत करती थी कि वह अंग्रेजी पढ़-लिख नहीं सकती। मेरे पिता द्वारा उसे अंग्रेजी सिखाने के लिए शिक्षकों को नियुक्त करने के बावजूद, उसने हठपूर्वक 'हां, ना, सुप्रभात, शुभ रात्रि, अलविदा और धन्यवाद' से आगे बढ़ने से इनकार कर दिया।

जब मेरे उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' का पंजाबी अनुवाद प्रकाशित हुआ, तो मैंने उसे पहली प्रति दी। मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह इसे पढ़ेगी। अगली सुबह जब मैं उससे मिलने गया, तो मेरे पिता ने बताया कि वह रात देर तक उपन्यास पढ़ती रही

और उसे तेज सिरदर्द हो रहा है। मैं उसके कमरे में गया। वह शॉल से सिर से पैर तक ढकी हुई लेटी थी। मैंने उसे कंधे से हिलाकर पूछा कि वह कैसी है। उसने शॉल से एक आँख बाहर निकालकर एक शब्द कहा: 'बेशर्म!'

मेरी माँ को हर बात का वहम रहता था। उन्हें बस माइग्रेन का सिरदर्द होता था। कभी-कभी ये इतना तेज़ होता था कि उन्हें दो दिन तक बिस्तर पर रहना पड़ता था और कुछ बार उल्टी करने के बाद ही उन्हें आराम मिलता था। लेकिन जब भी उन्हें सर्दी लगती, उन्हें लगता था कि ये उनका आखिरी पल है। जब भी उनके शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द होता, उन्हें यकीन हो जाता था कि ये कैंसर है। उन्होंने सुना था कि कैंसर लाइलाज है। इसलिए उन्हें जो भी बीमारी थी, वो कैंसर के अलावा कुछ और नहीं हो सकती थी। जब मेरे पिता का 90 वर्ष की आयु में निधन हुआ, तब मेरी माँ 80 वर्ष की थीं और स्वस्थ थीं। जैसा कि सभी को उम्मीद थी, उनके जाने से टूटने के बजाय, वे एक दबंग परिवार की मुखिया के रूप में उभरीं। कोई भी उन्हें लेडी सोभा सिंह के अलावा किसी और नाम से पुकारने की हिम्मत नहीं करता था। महारानी विक्टोरिया की तरह, वे हर दिन दरबार लगाती थीं। ग्यारह बजे वे सुबह के नाश्ते के समय कॉफी पीती थीं; शाम को पेय और भोजन पर भी उनका ही दबदबा रहता था। मैंने उन्हें शाम को थोड़ी शराब पीने के लिए राजी किया। पहले तो वे छुप-छुप कर पीती थीं। जब पार्टियों में महिलाओं के लिए ट्रे भरकर शीतल पेय लाने वाले आते थे, तो वह उन्हें बताती थी कि उसका बेटा उसके लिए संतरे का रस ला रहा है। पहले तो मैंने उसके गिलास में थोड़ी सी जिन मिला दी, और फिर मैंने उसे स्कॉच से परिचित कराया। उसने फिर से हल्का विरोध किया। 'लोग क्या कहेंगे! एक बूढ़ी अनपढ़ औरत गाँव से व्हिस्की पी रही है?' उसे धीरे-धीरे अपनी ड्रिंक पसंद आने लगी और वह इतनी समझदार हो गई कि अच्छी स्कॉच और खराब देसी स्कॉच में फर्क कर सके।

नब्बे वर्ष की आयु में उन्हें यह आभास होने लगा कि अब उनके पास जीने के लिए ज़्यादा समय नहीं बचा है। उन्होंने इस बारे में कभी कुछ नहीं कहा, बल्कि चीज़ें दान करना शुरू कर दिया। मेरे पिता का स्वेटर, उनकी चांदी की मूठ वाली आबनूस की छड़ी और उनकी सोने की घड़ी मुझे मिली; गहने और एक सोने की घड़ी मेरी बहन को मिली; गहने, घड़ियाँ, सोने के कलम, सोने के बटन और सोने के सिक्के बेटों, बहुओं और उनकी संतानों में बाँट दिए गए। शायद ही कोई ऐसा दिन जाता था जब मैं उनसे मिलने जाता और वे मुझे मेरे पिता द्वारा पहनी हुई कमीज़, मोज़े या जूते न देतीं। हम जानते थे कि वे ये चीज़ें अपने हाथों से दान करना चाहती थीं।

उनमें कोई विशेष बीमारी न होते हुए भी, उनकी हालत बिगड़ती चली गई। डॉ. आई.पी.एस. कालरा, जिनकी शादी मेरी चचेरी बहन से हुई थी, जो स्वयं भी एक डॉक्टर थीं, दिन में दो बार उनका रक्तचाप और तापमान लेने आते थे। वे बिस्तर पर ही अधिक समय बिताने लगीं। मेरी बहन उनके साथ उनके शयनकक्ष में सोती थी ताकि उन्हें शौचालय जाने में मदद कर सके। फिर उनकी सफाई, पोछा लगाने और कपड़े बदलने में मदद के लिए एक नौकरानी को रखा गया। कॉफी पार्टियों में उनका आना-जाना कम होता चला गया। लेकिन आधी बेहोशी की हालत में भी, वे अपने नौकर हरिया को बुलातीं और धीरे

से कहतीं, 'कॉफी।' हरिया उन्हें आश्वस्त करता कि आगंतुकों को कॉफी परोसी जा रही है। कई बार मेरे फोन की घंटी बजती और मुझे बताया जाता कि उनकी हालत बिगड़ रही है। हम तुरंत वहाँ पहुँच जाते। डॉ. कालरा वहाँ होते और उन्हें कुछ न कुछ इंजेक्शन लगा रहे होते। वे थोड़ी ठीक हो जातीं और हम अपने-अपने घर लौट आते। एक शाम, जब उनके सभी बच्चे, पोते-पोतियाँ और कई परपोते-परपोतियाँ वहाँ मौजूद थे, वे कोमा में चली गईं और फिर कभी उससे बाहर नहीं आ सकीं।

हमने कई दिनों तक घंटों उसके लेटे हुए शरीर के पास बैठकर बिताए, उसकी चादर के हिलने-डुलने से हमें यह तसल्ली मिलती रही कि वह अभी भी जीवित है। हमने कई बार डॉक्टर कालरा से विनती की कि वे उसे जीवनरक्षक दवाइयाँ देने में ज़िद न करें और उसे शांति से जाने दें। उन्होंने हमारी बात सुनने से इनकार कर दिया और कहा कि वे उसे यथासंभव लंबे समय तक जीवित रखने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। अपने फ्लैट में वापस आकर, मुझे बजते हुए टेलीफोन से डर लगने लगा। आखिरी कॉल 9 मार्च 1985 की दोपहर को आई। यह मेरी बहन की व्यथित आवाज़ थी, जो रोते हुए कह रही थी, 'वह चली गई।'

जब हम उसके पास पहुँचे, तो वह शांति से सो रही थी। उसके तकिये के पास से अगरबत्ती का धुआँ छत तक उठ रहा था। मेरा बड़ा भाई उसके बिस्तर के पास बैठकर एक छोटी सी प्रार्थना पुस्तक पढ़ रहा था। बाकी लोग आँसू बहाते हुए एक-दूसरे को गले लगा रहे थे और बगीचे में कुर्सियों पर बैठे थे, और जैसे ही लोग सांत्वना देने आते, वे बार-बार रोने लगते। परिवार में पहले भी कई बार ऐसा हुआ था, और इस बार भी मेरे छोटे भाई, ब्रिगेडियर गुरबक्स सिंह ने ही स्थिति को संभाला। उन्होंने मुझसे शोक संदेश लिखवाया, उसमें सुधार किया और उसे दिल्ली के सभी अखबारों को भेज दिया। उन्होंने उसके अंतिम संस्कार का समय और अखंड पाठ के प्रारंभ और समापन का दिन तय किया, जिसमें भोग और कीर्तन भी शामिल था। उन्होंने हमें रात के लिए अपने-अपने घर लौटने का आदेश दिया। वह, उनकी पत्नी और मेरी बहन शव के पास ही रहेंगे। मेरा बड़ा भाई पूरी रात उसके पास बैठकर बार-बार जप करता रहा, जैसा कि उसने वर्षों पहले हमारे पिता के शव के पास किया था।

अगली सुबह हम अपनी माताजी के पार्थिव शरीर को उसी विद्युत श्मशान घाट ले गए जहाँ हम पहले अपने पिता और चाचा को ले गए थे। मेरे भाई गुरबक्स ने उनकी अस्थियों को हरिद्वार ले जाकर गंगा में विसर्जित किया, जैसे उन्होंने हमारे पिता और मेरी नानी की अस्थियों को ले गए थे। इस प्रकार वीरन बाई, लेडी शोभा सिंह, मेरी माताजी के जीवन का अंत हुआ।

राज्यसभा में दूसरे कार्यकाल के लिए नामांकन न मिलने पर मैंने पंजाब से चुनाव लड़ने का विचार किया। पंजाब के सिखों और हिंदुओं के साथ मेरे संबंध अच्छे थे। मुझे अकाली और भाजपा से समर्थन की उम्मीद थी और कुछ कांग्रेस विधायकों के वोट भी हासिल करने की आशा थी। लेकिन मेरा मुख्य समर्थन अकाली दल से ही मिलना था, जो छह साल तक संसद और प्रेस में उनका पक्ष रखने के लिए मेरे आभारी थे। मैं उनकी पार्टी में शामिल नहीं होना चाहता था, और जिनसे मैं मिला, वे भी

इस बात से सहमत थे कि एक स्वतंत्र सदस्य के रूप में मैं अधिक प्रभावी रहूंगा। दो अकाली नेता जिन्होंने मुझे पूर्ण समर्थन का आश्वासन दिया, वे थे पंजाब के वित्त मंत्री बलवंत सिंह और सांसद बी.एस. रामूवालिया। मेरे मित्र चरणजीत सिंह ने बलवंत सिंह को ले मेरिडियन में दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया और उनसे सीधे-सीधे पूछा कि क्या वे मेरी उम्मीदवारी का समर्थन करेंगे या नहीं। अगर किसी पैसे की जरूरत होगी, तो वे उसका इंतजाम कर देंगे। बलवंत सिंह अकाली दल के सबसे चतुर व्यक्ति थे। वह एक ब्लॉक विकास अधिकारी से राज्य के सबसे धनी व्यक्तियों में से एक बन गए थे। बलवंत सिंह ने जवाब दिया, 'जहाँ तक मेरा सवाल है, आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं कि मैं उन्हें पूरा समर्थन दूंगा। लेकिन उन्हें चंडीगढ़ आकर अन्य अकाली नेताओं से मिलना चाहिए।'

रामूवालिया का आश्वासन और भी दृढ़ था। वह मेरे घर आए और जब चरणजीत ने उनसे पूछा कि क्या हम उन पर भरोसा कर सकते हैं, तो उन्होंने पंजाबियों की तरह वचन देते समय अपनी छाती थपथपाई: 'एक बार रामूवालिया अपना वचन दे देते हैं, तो वह कभी नहीं तोड़ते।'

मैंने अपने बेटे से, जो उस समय चंडीगढ़ में था, पंजाब में अपना नाम मतदाता के रूप में दर्ज करवाया। बलवंत सिंह की सलाह पर मैं चंडीगढ़ गया और उनके घर पर आयोजित भोज में शामिल हुआ। मुझे बताया गया कि अकाली टिकट के लिए एक और दावेदार है, एक अर्ध-साक्षर जत्थेदार जिसका नाम तोता सिंह है। मैं उसे अपना गंभीर प्रतिद्वंद्वी नहीं मान सका। बलवंत सिंह ने मुझे आगाह किया कि मैं उसे हल्के में न लूँ, क्योंकि उनका समाज कबीले वाला है जहाँ खान-पान या योग्यता से ज़्यादा कबीले की वफ़ादारी मायने रखती है। मैंने जिन भी अकाली नेताओं से बात की, उन सभी ने मुझे आश्वासन दिया कि मुझे अपना उम्मीदवार बनाना उनके लिए सम्मान की बात होगी।

मैंने सबसे पहले अपना नामांकन पत्र दाखिल किया। बलवंत सिंह ने कहा कि मेरे नाम का प्रस्ताव रखना या उसका समर्थन करना उनके लिए उचित नहीं होगा। लेकिन उन्होंने एक बार फिर मुझे अपने समर्थन का आश्वासन दिया। मैंने पंजाब विधानसभा में भाजपा नेता से मुलाकात की और उन्होंने आश्वासन दिया कि यदि एल.के. आडवाणी जैसे केंद्रीय नेता चाहें तो वे अपने पार्टी विधायकों को मेरा समर्थन करने का निर्देश देंगे। आडवाणी पहले ही मुझे समर्थन का आश्वासन दे चुके थे। मैंने राज्य कांग्रेस कमेटी की अध्यक्ष से भी संपर्क किया। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि कांग्रेस के पास कोई अतिरिक्त वोट होंगे, तो वे उन्हें मेरे पक्ष में डलवा देंगी।

गर्मी के मौसम में तीन बार चंडीगढ़ जाना पड़ा ताकि मैं खुद को आश्वस्त कर सकूँ कि सब कुछ ठीक चल रहा है। मैंने तपती दोपहरें क्रिस्टोफर फ्राई के नाटक पढ़ते हुए और लगातार चहचहाते पपीहा पक्षियों की आवाज़ सुनते हुए बिताईं। वह जगह पपीहा पक्षियों से भरी पड़ी है। मैं समझ गया कि अंग्रेज इस पक्षी से इतनी नफरत क्यों करते थे और इसकी आवाज़ को

'दिमागी बुखार' क्यों मानते थे। मुझे आभास होने लगा था कि कुछ गड़बड़ शुरू हो गई है। रामूवालिया मेरे फोन का जवाब नहीं दे रहे थे। बलवंत सिंह और भी ज्यादा गायब हो गए। उम्मीदवारों के नाम वापस लेने का आखिरी दिन आ गया। मैं फिर से चंडीगढ़ लौट आया। अब तक मुझे पूरा यकीन हो चुका था कि अगर अकाली दल भी नाम वापस ले लेता है, तो भी मुझे जीतने के लिए पर्याप्त वोट मिलने की अच्छी संभावना है। बलवंत सिंह भी इस संभावना को समझते थे।

उस सुबह अकाली नेताओं की एक बैठक हुई। दोपहर में बलवंत सिंह मुझसे मेरे होटल में मिलने आए। उन्होंने खेद व्यक्त किया कि वे मेरे लिए अकाली समर्थन जुटाने में असमर्थ रहे और मुझे अपना नाम वापस ले लेना चाहिए। उन्होंने मेरी खूब चापलूसी की और बताया कि कैसे अकाली समुदाय को मुझ पर गर्व है और मुझे जिम्मेदारियां सौंपकर वे मुझे कितना सम्मानित महसूस कर रहे हैं। असल में वे मुझे चुनाव से बाहर करना चाहते थे ताकि उनका उम्मीदवार आसानी से जीत जाए। मुझे लगा कि उनका उम्मीदवार जत्थेदार तोता सिंह होगा। मैंने मूर्खतावश अपना नाम वापस ले लिया। जिस व्यक्ति को चुना गया, वह मेरे लिए बहुत बड़ा आश्चर्य था। वे लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोरा थे। कुछ साल बाद उस बैठक में मौजूद एक अकाली नेता ने मुझे बताया कि बरनाला और बादल जैसे अधिकांश शीर्ष नेताओं ने मेरा समर्थन किया था। जनरल अरोरा को जीत दिलाने में बलवंत सिंह का अहम योगदान था। उन्होंने यह भी बताया कि बलवंत सिंह को भारी मात्रा में धन मिला था।

संडे अखबार के संपादक ने मुझसे राज्यसभा में बिताए अपने वर्षों के बारे में लिखने को कहा। मैंने अकाली दल के साथ अपने अनुभवों का जिक्र किया। कुछ दिनों बाद, बलवंत सिंह ने मुझे पत्र लिखकर कहा कि मैंने उनके साथ न्याय नहीं किया, क्योंकि उन्होंने हमेशा मुझसे कहा था कि कोई और उम्मीदवार है। एक महीने बाद, जब मैं राज्यों की एकीकरण परिषद की बैठक में भाग लेने के लिए चंडीगढ़ में था, तो उन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित करने की पूरी कोशिश की। मैंने बड़ी सावधानी से उनकी नजरों से बचने की कोशिश की। दुर्भाग्य से, चाय के ब्रेक के दौरान मैंने उन्हें अपने बगल में शौचालय में खड़ा पाया। वे हमेशा की तरह बेशर्म थे और उन्होंने मुझे शराब पीने के लिए आमंत्रित किया। मैंने उनसे कहा कि मैं राज्यपाल के साथ ठहरा हुआ हूँ और मुझे नहीं पता कि शाम के लिए क्या तय किया गया है। मैंने राज्यपाल की पत्नी माया रे से कहा कि मैं उस आदमी का चेहरा नहीं देखना चाहता और अगर वह मुझे निमंत्रण से बाहर कर दें तो मैं उनका आभारी रहूंगा। जब हम निकलने ही वाले थे, बलवंत सिंह रे की कार के पास आए और उन्हें फिर से निमंत्रण दिया। उनकी एक आंख में घबराहट के कारण एक अजीब सी हरकत हो रही थी और बोलते समय उनकी नाक बह रही थी। माया रे से बात करते समय उन्हें अचानक खांसी का दौरा पड़ा। राज्यपाल की पत्नी ने हमारे आस-पास मौजूद लगभग एक दर्जन लोगों के सामने कहा, 'सरदार साहब, आप बहुत ज्यादा धूम्रपान कर रहे हैं।' हालांकि, उन्होंने जो गलती की थी, उसका उन्हें कोई

अंदाजा नहीं था। मुझे लगा जैसे उन्होंने मेरी तरफ से मंत्री को थप्पड़ मार दिया हो। बलवंत सिंह को मैंने आखिरी बार वहीं देखा था। कुछ महीनों बाद, कहीं से घर लौटते समय, दिनदहाड़े उनकी गोली मारकर हत्या कर दी गई। इस अपराध की जिम्मेदारी लेने वाले समूह ने प्रेस को बताया कि उनका मकसद समुदाय को सभी भ्रष्ट नेताओं से मुक्त करना था, और बलवंत सिंह सबसे भ्रष्ट नेता के रूप में जाने जाते थे।

रामूवालिया का रवैया भी उतना ही नाटकीय था। मुझे धोखा देने के बाद उन्होंने खुलेआम चापलूसी करके मुझसे सुलह करने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि उन्हें हर हफ्ते मुझसे थोड़ा समय चाहिए ताकि वे मुझसे कुछ प्रेरणा ले सकें! संसद में उनका कार्यकाल समाप्त होने के बाद, उन्होंने अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य के रूप में एक सुरक्षित पद हासिल कर लिया। एक बार वे खुद आए और मुझसे अपने घर पर रात के खाने पर आने की विनती की, और चरणजीत और उनकी पत्नी को भी आने के लिए मना लिया। हम सब गए।

अधिकांश लोगों की तरह, मुझे भी राजनेताओं के वादों पर ज़्यादा भरोसा नहीं था। पंजाब में उनके बलिदानों के पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए, मुझे फिर भी यह भ्रम था कि अकाली उनसे अलग होंगे। लेकिन गुरुद्वारों और उनकी आमदनी पर आधे सदी से भी अधिक समय तक नियंत्रण रखने से उनकी अंतरात्मा खोखली हो गई थी। उन्हें बस गहरे नीले रंग की पगड़ी पहननी थी और लंबी, लहराती दाढ़ी रखनी थी, ताकि वे अपने समुदाय के प्रवक्ता के रूप में स्वीकार्य हो सकें। एक बार परजीवीवाद की लत लग जाने के बाद, वे इस आदत को छोड़ नहीं पाए। उनके द्वारा शुरू किए गए मोर्चों का उद्देश्य गुरुद्वारों के खजाने पर अपना कब्ज़ा बनाए रखना और राजनीतिक सत्ता हथियाना था। इसमें कोई कष्ट या बलिदान शामिल नहीं था। स्वयंसेवकों को जेल में रहते हुए भी नियमित वेतन दिया जाता था। जेल जाना उनके लिए कोई मुश्किल काम नहीं था, और वे एक उद्देश्य के लिए लड़ने वाले नायकों की तरह बाहर आए। अंततः, भोली-भाली जनता नहीं, बल्कि वे आतंकवादी समझदार हुए, जिन्हें लगा कि पंथ को बहुत लंबे समय तक धोखा दिया गया है। उन्होंने तलवंडी और तोहरा को जान से मारने की कोशिश की, लेकिन उन्हें केवल घायल करने में सफल रहे। बलवंत सिंह को मारने में वे कामयाब रहे। संत लोंगोवाल और बीबी राजिंदर कौर जैसे कुछ निर्दोष पुरुष और महिलाएं गोलियों का शिकार हो गए। पार्टी नाममात्र की रह गई। असली सत्ता उग्रवादियों के हाथों में चली गई, जिन्होंने अपने आदर्श सिमरनजीत सिंह मान को शीर्ष पद पर बिठा दिया। मान की बातों और उनके कार्यों को सुनकर ही पता चल जाता था कि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक किंवदंती रहे अकाली दल की जगह अब दाढ़ी वाले मूर्खों का एक समूह आ गया है, जिनमें सोचने-समझने और दूरदृष्टि की कमी है। ज्ञानी ज़ैल सिंह उनके नाम पर व्यंग्य करते हुए कहते थे, 'अकाली अक्ल से खाली'।

14 पाकिस्तान

मैं उन कुछ भाग्यशाली भारतीयों में से हूं जिन्हें कई बार पाकिस्तान जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। केवल एक बार ही मुझे अपने प्रति शत्रुता का अनुभव हुआ। यह विभाजन के तुरंत बाद की बात है, जब भारतीयों, विशेषकर सिखों के प्रति शत्रुता की भावनाएँ चरम पर थीं।

मैं लंदन जाते समय कराची से गुज़र रहा था। मेरे पास कुछ घंटे का समय था, इसलिए मैंने शहर के उन दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए एक टैक्सी किराए पर ली, जहाँ मैं पहले कभी नहीं गया था। मैंने ड्राइवर से मुझे श्री जिन्ना की कब्र पर ले जाने के लिए कहा। जैसे ही मैं टैक्सी से उतरा, भीड़ जमा होने लगी। मैंने किसी को चिल्लाते हुए सुना, 'इन लोगों को पाकिस्तान आने का क्या काम है?' टैक्सी ड्राइवर ने मेरा हाथ पकड़ा, मुझे अपनी टैक्सी में बिठाया और चला गया।

मुस्लिम जगत में सिख-विरोधी भावनाएँ फैल चुकी थीं, जहाँ सिखों द्वारा मुसलमानों के नरसंहार की अतिरंजित कहानियाँ प्रचारित की जा रही थीं। काहिरा में जब मैं अपने होटल से टहलने के लिए बाहर निकला तो मुझे इसका एहसास हुआ। मैंने लोगों को 'सिख' चिल्लाते सुना और यह समझकर कि उनका इरादा दोस्ताना नहीं था, मैं वापस होटल की ओर लौट गया। पाकिस्तान में सिखों के प्रति इस तरह की दुश्मनी का सामना मैंने फिर कभी नहीं किया। अपनी अगली यात्राओं में मेरा विशेष स्वागत किया गया। तांगेवालों और टैक्सी चालकों ने मुझसे पैसे लेने से इनकार कर दिया, दुकानदारों ने मुझे मुफ्त में चीजें दीं, चाय और ठंडे पेय पिलाए। मुझे मुरी की अपनी यात्रा याद है, जो मैंने तत्कालीन पाकिस्तान के विदेश मंत्री मंजूर कादिर के साथ की थी। हम संयोग से एक छड़ी बेचने वाली दुकान के पास से गुजरे। मंजूर अपने लिए एक छड़ी चाहते थे, मैंने सोचा कि मैं एक यादगार के तौर पर ले लूँ। अपनी पसंद की छड़ी चुनने के बाद, मंजूर ने कीमत पूछी। कीमत सुनकर मैंने मंजूर से अंग्रेजी में कहा कि शिमला में ये सस्ती मिल जाती हैं। मंजूर ने दुकानदार को मेरी बात का अनुवाद करके बताया। दुकानदार ने जवाब दिया, 'आप दुरुस्त फरमाते हैं।' 'यह छड़ी हमारे सिख मेहमान के लिए मेरी ओर से उपहार है; दूसरी छड़ी की आधी कीमत आप मुझे दे दीजिए।' मैंने उससे पूछा कि क्या वह जानता है कि मेरे साथ कौन है। उसने जवाब दिया, 'हाँ, मैं जानता हूँ। मैं अखबारों में उसकी तस्वीरें देखता हूँ।' वह हमारे विदेश मंत्री हैं। वह जो कुछ भी खरीदते हैं, उसका भुगतान खुद करते हैं; पाकिस्तान में आपको किसी भी चीज के लिए भुगतान नहीं करना पड़ता।'

सिखों के प्रति आम सद्भावना के अलावा, जिनसे वे कभी नफरत करते थे, शिक्षित पाकिस्तानी यह भी जानते थे कि मैंने कितनी बार उनके समर्थन में खुलकर अपनी बात रखी थी। जिन्ना की जन्म शताब्दी समारोह के लिए उन्होंने अपने सेमिनार में दो भारतीयों को शोधपत्र पढ़ने के लिए आमंत्रित किया था। दूसरा प्रतिनिधि नहीं आया। भारत-पाकिस्तान मामलों के यूरोपीय और अमेरिकी विद्वानों के बीच मैं अकेला भारतीय था। जब बोलने की मेरी बारी आई, तो मैंने अपने पिता की उनके

क़ायद के साथ मित्रता और मेरी शादी में उनके मुख्य अतिथि होने का जिक्र किया। मैंने पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल के रूप में जिन्ना के पहले भाषण का हवाला दिया, जिसमें उन्होंने हिंदू और सिख अल्पसंख्यकों को समान व्यवहार का आश्वासन दिया था और उनसे पाकिस्तान को अपनी मातृभूमि मानने का आग्रह किया था। वे कभी भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के दोतरफा पलायन के पक्षधर नहीं थे। मैंने स्पष्ट रूप से कहा कि भारतीय पाकिस्तान के एक संप्रभु, स्वतंत्र राज्य होने के अधिकार को स्वीकार करते हैं; हम जो स्वीकार नहीं करते थे, और न ही कभी करेंगे, वह मुसलमानों को हिंदुओं और सिखों से अलग एक राष्ट्र मानने का दो-राष्ट्र सिद्धांत था। मेरे भाषण की सराहना हुई। लेकिन जल्द ही पाकिस्तानी प्रतिनिधियों ने मुझे टोकना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, 'अगर आप दो-राष्ट्र सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते, तो आप पाकिस्तान को भी स्वीकार नहीं करते।' मैं अपनी बात पर अड़ा रहा और तर्क दिया कि हमने पाकिस्तान को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि संबंधित क्षेत्रों की अधिकांश आबादी स्वतंत्र राज्य चाहती थी, न कि इसलिए कि वे मुसलमान थे। अगर हम दो-राष्ट्र सिद्धांत को स्वीकार कर लेते, तो भारत में बचे 9 करोड़ मुसलमानों का क्या करते? मुझे श्रोताओं में मौजूद कॉलेज के छात्रों से एक बार फिर तालियाँ मिलीं। उन्होंने मुझे अपने परिसर में भारत-पाकिस्तान मामलों पर कुछ चुनिंदा छात्रों से बात करने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने मुझसे पूछा, 'आप पाकिस्तान के बारे में अच्छी-अच्छी बातें कहते रहे हैं, अब सच बताइए। क्या आपको सच में लगता है कि पाकिस्तान सही रास्ते पर चल रहा है और भारत जितना अच्छा प्रदर्शन कर रहा है?'

मैंने उनसे कहा, 'पाकिस्तान का मानक समय भारत से 30 मिनट पीछे है। विकास में आप हमसे 30 साल पीछे हैं।' मैंने सड़क पर कई महंगी गाड़ियां देखीं, सभी जापान, जर्मनी, इंग्लैंड या अमेरिका से आयातित थीं—उनमें से एक भी पाकिस्तान में नहीं बनी थी। भारत में विदेशी गाड़ियां बहुत कम दिखती थीं। मैंने बड़े गर्व से कहा, 'हमारी गाड़ियां चाहे कितनी भी खटारा क्यों न हों, वे भारत में बनी हैं।' मेरे होटल के कमरे में माचिस और टॉयलेट पेपर भी चीन से आए थे। वे रंगीन टीवी की बात कर रहे थे, जबकि वे अपने ही देश में साइकिल जैसी साधारण चीजें भी नहीं बना सकते थे।

उन्होंने पूछा, 'आपको ऐसा क्यों लगता है?'

मैंने जवाब दिया, 'या तो नई मस्जिदें बनाओ या फिर मोटरगाड़ियाँ।' 'दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते।' मैंने उन्हें इस्लामाबाद के हर नए इलाके में बन रही दर्जनों आधुनिक मस्जिदों के बारे में बताया। बेशक, मेरी बात थोड़ी अतिशयोक्तिपूर्ण थी, लेकिन वे समझ गए कि मैं अपनी बात समझाने के लिए ऐसा कर रहा था। और वे जानते थे कि मैं उनका दोस्त हूँ।

एक बार मैं कराची इंटरनेशनल होटल में था। मैं देर रात खाना खाकर लौटा था और सुबह बॉम्बे जाने वाली फ्लाइट पकड़ने से पहले थोड़ी नींद लेना चाहता था। लिफ्ट की ओर जाते समय एक लंबा, सांवला नौजवान मेरे पास आया। उसने हंसते हुए मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा, 'कहीं से आए सरदारजी!' 'आओ, मेरे साथ एक ड्रिंक लो।' मैंने मना किया कि मैंने काफी पी

लिया है और अब सोना चाहता हूं। उसने मुझे बार में खींचते हुए कहा, 'जाने से पहले मेरे साथ एक ड्रिंक जरूर लो।' वह बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था। उससे बचना नामुमकिन था। मैंने एक ड्राम्बुई ऑर्डर की। उसने पूछा, 'क्या आप कोई व्यापारी हैं? ईरान या अफगानिस्तान से?' मैंने बताया कि मैं बॉम्बे से हूं और एक अखबार का संपादक हूं। उसने जोर देकर कहा, 'तो फिर आपको एक और पीनी होगी,' और दूसरी ड्राम्बुई ऑर्डर कर दी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं उसकी पकड़ से कैसे निकलूं। हर बार जब मैंने उठने की कोशिश की, उसने मुझे वापस कुर्सी पर खींच लिया। 'तुम शायद कोई संपादक या इससे भी बड़ी हस्ती होगे,' उसने आक्रामक लहजे में कहा, 'मैं तुम्हारे जैसे लोगों के नाम अपने लिंग पर लिखता हूँ।' मैं खुद को रोक नहीं पाया और उससे पूछा, 'क्या तुम उन्हें बॉलपॉइंट पेन से लिखते हो?' उसे मेरी बात समझ नहीं आई। सौभाग्य से, उसका मूत्राशय भरा हुआ था और उसे शौचालय जाना था। 'जब मैं पेशाब कर रहा हूँ तो भाग मत जाना,' उसने लड़खड़ाते हुए बाहर निकलते हुए मुझे चेतावनी दी। मैंने ठीक वही किया। लिफ्ट लेने के बजाय, मैं सीढ़ियों से दौड़कर अपने कमरे की सुरक्षा में पहुँच गया।

पिछले कई वर्षों से मैं लगभग हर दूसरे वर्ष पाकिस्तान जाता रहा हूँ। एक बार मैं विशेष रूप से अपने मित्र एम.ए. रहमान के बेटे की शादी में शामिल होने गया था, और एक बार मंजूर कादिर स्मृति व्याख्यान देने के लिए। मैं लाहौर की गलियों में बिना किसी सुरक्षा के स्वतंत्र रूप से घूमा। मैंने अपने दिवंगत मित्रों, मंजूर कादिर, उनके चाचा स्लीम और मोहम्मद अनवर की कब्रों पर श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना कर्तव्य समझा। मेरा संबंध केवल अतीत तक ही सीमित नहीं था: हर बार जब मैं गया, तो मैंने नए दोस्त बनाए, नए घरों में आमंत्रित किया गया; जब वे दिल्ली में होते हैं तो वे मेरे घर आते हैं। मेरे नवीनतम परिचितों में प्रकाशक-पुस्तक विक्रेता नज़म सेठी और उनकी सुंदर पत्नी, जो 'फ्राइडे' पत्रिका का संपादन करती हैं, उनकी चचेरी बहन कवयित्री हिना फैसल इमाम और उनकी बहन के पति हकीम परिवार के एजाजुद्दीन शामिल हैं, ये तीनों महाराजा रणजीत सिंह के सबसे करीबी सलाहकारों में से थे।

कई वर्षों बाद, मुझे इस्लामाबाद में भारत-पाकिस्तान संबंधों पर एक मीडिया सेमिनार में आमंत्रित किया गया। अन्य आमंत्रितों में द ट्रिब्यून के संपादक प्रेम भाटिया और कुलदीप नैयर शामिल थे। दोनों देशों के बीच व्याप्त तनाव के बावजूद, सेमिनार का माहौल अत्यंत सौहार्दपूर्ण था। मुझे इस बात का जरा भी अंदाजा नहीं था कि मुझे भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में माना जा रहा है, जब तक कि उनके विदेश सचिव नवाबजादा याकूब खान द्वारा आयोजित दोपहर के भोजन में मैं उनके दाहिनी ओर नहीं बैठा। दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने भारत-पाकिस्तान तनावों का विश्लेषण करते हुए एक लंबा और स्पष्ट भाषण दिया और भविष्य में अच्छे संबंधों के लिए (सादे पानी से) टोस्ट प्रस्तावित किया। मुझसे जवाब देने की अपेक्षा की गई थी। मैंने जोर देकर कहा कि प्रेम भाटिया, हम सब में सबसे वरिष्ठ होने के नाते, जवाब दें। मुझे केवल पानी का गिलास उठाकर पाकिस्तान की समृद्धि की कामना करनी थी। भाटिया ने एक संक्षिप्त, नीरस भाषण दिया।

उस शाम हमारे ठहरने वाले होटल में हमारे लिए विदाई भोज था। हमारे मेज़बान पाकिस्तान के सूचना एवं प्रसारण मंत्री थे। पिछली शाम मैंने उन्हें टीवी पर एक पैनल चर्चा में देखा था। तीन मौलवी जैसे दिखने वाले लोग और एक बुर्का पहने महिला, जिसका पर्दा पीछे की ओर खुला था और जिससे उसका गंभीर चेहरा दिख रहा था, उन्हें परेशान कर रहे थे। वे शिकायत कर रहे थे कि पाकिस्तानी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इस्लाम की खूबियों और दो-राष्ट्र सिद्धांत की वैधता के बारे में लोगों को पर्याप्त जानकारी नहीं दे रहा है। उन्हें यह समझाने में मुश्किल हो रही थी कि वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर रहे हैं। मैं स्कॉच पीकर भोज में पहुँचा था। उस समय पाकिस्तान में शराब पर सख्त प्रतिबंध था। एक बार फिर मैं मेज़बान के दाहिनी ओर बैठा था। भाटिया ने मुझसे कहा, 'बेटा, इस बार तुम्हें अपना भाषण देना है।' मंत्री के भाषण की एक मुद्रित प्रति हमें सौंपी गई। मुझे ज़रा भी समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या जवाब दूं। इससे मेरी भूख ही खत्म हो गई और मेरे अंदर की व्हिस्की का नशा भी उतर गया। जब मैं बोलने के लिए खड़ा हुआ, तो मैंने पिछली शाम टीवी पर मंत्री जी की जमकर आलोचना का जिक्र किया। मैंने श्रोताओं से कहा कि शराबबंदी के बावजूद, मेरे पास स्कॉच की मेरी तय मात्रा है और अगर वे इसके बारे में कुछ करना चाहते हैं तो उन्हें जल्दी करना चाहिए क्योंकि कुछ ही घंटों में मैं भारत वापस जा रहा हूँ। मैंने कहा कि पाकिस्तान छोड़ने से पहले मैं मंत्री जी को एक उर्दू शेर भेंट करूँगा, जो अगली बार इस्लाम के ठेकेदारों का सामना करते समय उनके काम आ सकता है। शेर इस प्रकार था:

Mullah, gar asar hai dua mein
मैंने मस्जिद की ओर देखा
Gar nahin, to do ghoont pee
Aur Masjid ko hilta deykh

(मुल्ला, अगर आपकी प्रार्थना में शक्ति है)
मुझे दिखाओ कि तुम मस्जिद को कैसे हिलाते हो!
अगर नहीं, तो शराब के कुछ घूंट पी लें।
और देखो मस्जिद अपने आप हिलने लगती है।

दर्शक ज़ोर-ज़ोर से हंस पड़े। मेरे मेज़बान को बहुत मज़ा आया और उन्होंने वह दोहा लिख लिया। फिर उन्होंने मुझे बताया कि वे प्रचलित कट्टरता और धार्मिक उन्माद से कितने तंग आ चुके हैं। 'आपको पता है, उन्होंने चीनी महिला टेबल-टेनिस टीम को टी-शर्ट और बहुत छोटे शॉर्ट्स में खेलते हुए दिखाने पर आपत्ति जताई थी। अगर उनकी चलती तो वे हमारी महिला हॉकी टीम को बुर्का पहनकर खेलने पर ज़ोर देते।'

मुझे नहीं पता कि पाकिस्तानी प्रेस ने मेरे भाषण को कैसे रिपोर्ट किया, क्योंकि मैं सुबह तड़के ही इस्लामाबाद से लाहौर के लिए निकला था, जहाँ से मुझे दिल्ली जाना था। लाहौर हवाई अड्डे पर मैंने पाकिस्तानियों को करारा जवाब दिया। कस्टम और इमिग्रेशन से गुज़रने के बाद मुझे सुरक्षाकर्मियों का सामना करना पड़ा। उस व्यक्ति ने मेरे पगड़ी और शरीर पर मेटल डिटेक्टर चलाया। जैसे ही वह मेरे पेट के ऊपर से गुज़रा, एक ज़ोरदार बीप की आवाज़ आई। वह रुक गया। मैं अपने पेट के आगे क्या छिपा रहा हूँ? उसने फिर कोशिश की। फिर एक ज़ोरदार बीप। 'जनाब, फौलादी है' - महोदय, यह स्टील का बना है, मैंने उसे बताया। दरअसल, मेरी ज़िप का बटन स्टील का बना था, लेकिन वह समझ गया कि मैं क्या कहना चाह रहा हूँ और दौड़कर अपने साथी सुरक्षाकर्मियों को बताने लगा कि मैंने क्या कहा था। वे मुस्कुराते हुए मेरे पास आए और मुझसे हाथ मिलाया।

अप्रैल 1994 में मुझे पाकिस्तान फोरम से कश्मीर विषय पर एक सेमिनार का निमंत्रण पत्र मिला। इस विषय पर मेरे पास कहने के लिए कुछ नया नहीं था, फिर भी मैंने निमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया। मुझे लगा कि पाकिस्तान जाने और अपने उन पुराने दोस्तों से मिलने का यह शायद मेरा आखिरी मौका होगा जो मेरे रिश्तेदारों से भी ज़्यादा प्यारे थे। इस्लामाबाद में लगभग 85 वर्ष की असगरी कादिर (मंज़ूर की विधवा) थीं। उनकी दो बड़ी सर्जरी हो चुकी थीं। उनके दो बेटे, बशारत और असगर, अपने परिवारों के साथ वहाँ मौजूद थे। लाहौर में एम.ए. रहमान थे, जिन्होंने मंज़ूर के लंदन में कुछ साल पहले निधन के बाद मेरी दोस्ती को आगे बढ़ाया था। वहाँ जमीला अनवर और उनकी हाल ही में विवाहित बेटी नाहेद भी थीं। लाहौर में नून परिवार जैसे अन्य लोग भी थे, जो मेरी पत्नी के माता-पिता के करीबी दोस्त थे।

इसलिए मैंने दिल्ली से लाहौर के लिए पी.आई.ए. की फ्लाइट ली। लाहौर हवाई अड्डे पर मेरे पास इस्लामाबाद जाने वाली कनेक्टिंग फ्लाइट पकड़ने के लिए मुश्किल से एक घंटा था। स्वास्थ्य, सीमा शुल्क और आव्रजन की जाँच पूरी होने तक मेरी अगली फ्लाइट की घोषणा हो चुकी थी। रहमान और बापसी सिधवा से मिलने के लिए मेरे पास बस कुछ ही सेकंड थे। दोनों ने कुली को किराया देने के लिए मेरे हाथों में नोट थमा दिए। एक ही पल में नमस्कार और अलविदा। आधे घंटे बाद मैं इस्लामाबाद में था। मुर्री ब्रुअरीज के मालिक मिनू भंडारा (बापसी के भाई) और मंज़ूर के बड़े बेटे बशारत मेरा स्वागत करने के लिए वहाँ मौजूद थे। मिनू द्वारा दिए गए देर रात के भोजन के बाद, मैं रात को सोने चला गया। मैंने अगला दिन कादिरों के लिए आरक्षित रखा था।

अगली सुबह मिनू के ड्राइवर ने मुझे इस्लामाबाद में असगर कादिर के घर छोड़ दिया। असगर, जिन्हें मैं लाहौर में उनके जन्म के दिन से जानता था, पाकिस्तान के शीर्ष भौतिक विज्ञानी और गणितज्ञ बन चुके हैं। ऑस्टिन विश्वविद्यालय (टेक्सास) में भौतिकी पढ़ाने वाले सुलादेश महाजन ने मुझे बताया कि डॉ. अब्दुस सलाम के बाद, उन्हें उम्मीद है कि नोबेल पुरस्कार जीतने वाले अगले पाकिस्तानी असगर कादिर होंगे। असगर वर्तमान में इस्लामाबाद विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष हैं। अपनी

शैक्षणिक गतिविधियों के अलावा, उन्हें फूलों से बेहद लगाव है। दिल्ली में मैंने इतने बड़े और सुगंधित गुलाब नहीं देखे। उनका बगीचा हाथीदांत जैसे सफेद, गुलाबी और लाल रंग के विभिन्न प्रकार के गुलाबों से भरा हुआ था, उनके कमरे सुगंध से महक रहे थे। प्रोफेसर और उनकी पत्नी अपने-अपने काम पर थे, उनके बच्चे स्कूल में थे। मुझे असगर के साथ तीन घंटे बिताने का मौका मिला। वह एक बेहद भावुक आलिंगन था, जिसमें ऐसा लगा मानो हमारे बीच बीते पचास साल से भी अधिक का रिश्ता समा गया हो। मैं भावनाओं से इतना अभिभूत हो गया था कि कुछ मिनटों तक कुछ बोल नहीं पाया। ऐसी परिस्थितियों में मुझसे अक्सर बेवकूफी भरी बातें हो जाती हैं।

बशारत चाय पर हमारे साथ शामिल हुए और फिर मुझे खरीदारी के लिए ले गए। ओनेक्स को छोड़कर, पाकिस्तान में उपहार के रूप में ऐसी बहुत कम चीज़ें मिलती हैं जो भारत में बेहतर कारीगरी के साथ न मिल सकें। मैंने कुरान की आयतों से खुदी हुई कुछ थालियाँ और प्याले, वनस्पति रंगों से रंगे हुए पैटर्न वाले हाथ से बुने हुए कुछ वस्त्र और ओनेक्स के दो कटोरे खरीदे। बशारत ने मुझे पैसे नहीं देने दिए। वह मुझे शहर के दो सबसे प्रसिद्ध किताबों की दुकानों, लंदन बुकशॉप और मिस्टर बुकशॉप ले गए। दोनों ही दिल्ली, बॉम्बे या कलकत्ता की दुकानों से बड़ी और बेहतर किताबों से भरी हुई थीं। मुझे नहीं पता कि बशारत ने उन्हें पहले से बता दिया था या उन्होंने अखबारों में मेरा नाम देखा था, लेकिन मेरी किताबें दोनों दुकानों के प्रवेश द्वार के पास प्रमुखता से प्रदर्शित थीं। पाकिस्तानी प्रकाशनों की तुलना में भारतीय प्रकाशनों की संख्या कहीं अधिक थी। इस्लामाबाद के शॉपिंग सेंटरों में बिताए कुछ घंटों के दौरान, मुझे बुर्का पहने एक भी महिला नहीं दिखी। पाकिस्तान की महिलाओं के बारे में मुझे एक और दिलचस्प बात पता चली। भारत की तुलना में वहां के उच्च वर्गों में तलाक और पुनर्विवाह कहीं अधिक आम हैं। हालांकि किसी दूसरे पुरुष की पत्नी पर बुरी नज़र रखना या उसके साथ शारीरिक संबंध बनाना गलत माना जाता है, लेकिन उसे अपने पति को छोड़कर अपनी पत्नी बनने के लिए राजी करना अब कोई दुर्लभ घटना नहीं है। यह भी आश्चर्यजनक है कि इस्लामी गणराज्य पाकिस्तान में, जहां शराब पीने पर कोड़े मारे जा सकते हैं, मेरे पुराने रचनाकार मित्र जैसे कवि फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और चित्रकार सदक़ैन खूब शराब पीते थे। आज के मेरे मित्र, कवि अहमद फ़राज़ और क़तील शिफ़ाई भी ऐसा ही करते हैं। जब उनकी शराब की कमी हो जाती है, तो वे कुछ दिनों के लिए भारत आते हैं और रेगिस्तान की लंबी, शुष्क यात्रा पर निकले ऊंटों की तरह शराब पीते हैं। वे अपने शरीर को इतना भर लेते हैं कि अपने वतन में रहने के दौरान उनका पेट भर जाए।

पाकिस्तान फोरम द्वारा आयोजित कश्मीर सेमिनार में मेरा एकमात्र योगदान यह था कि मैंने आधिकारिक भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने या पाकिस्तानियों के विचारों का खंडन करने के बजाय कश्मीरी मुसलमानों का पक्ष रखा, जिनका भविष्य ही भारत और पाकिस्तान के बीच विवाद का मुख्य कारण है। पाकिस्तानी प्रेस ने मेरे भाषण को व्यापक कवरेज दिया और एक

अखबार ने तो मेरे समर्थन में संपादकीय भी लिखा। पाकिस्तान टीवी ने मुझे सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए अपने प्रस्तावों को स्पष्ट करने के लिए आधा घंटा दिया। भारतीय प्रेस ने मुझे पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया।

अपने सबसे करीबी पाकिस्तानी परिवार को विदाई देने के बाद, मैं दोपहर की फ्लाइट से लाहौर के लिए रवाना हुआ ताकि रहमान परिवार के साथ तीन दिन बिता सकूँ। रहमान को कुछ महीने पहले दिल का दौरा पड़ा था, लेकिन फिर भी वे मुझे लेने एयरपोर्ट पर मौजूद थे। उनके घर पहुँचकर रहमान मुझे उस बेडरूम में ले गए जो उनके बेटे ने मेरे लिए खाली किया था। बिस्तर पर सूती अवामी सूट के चार सेट रखे थे जो नए सिले हुए थे और कालीन पर पेशावरी चप्पलों का एक जोड़ा रखा था। रहमान ने कहा, 'तुम्हारा और मेरा नाप एक जैसा है; मुझे लगता है हमारे पैर भी एक ही नाप के हैं। मैंने ये तुम्हारे लिए सिलवाए हैं। चप्पलें पहनकर देखो और बाथरूम में टंगा हुआ अवामी सूट भी पहन लो। हम मेरी बेटी समीना और उसके पति औरंगजेब के साथ खाना खाएँगे।' मैं अवाक रह गया। मैं रहमान परिवार के लिए सिर्फ काजू के पैकेट, चाय का एक पैकेट और अपनी दो किताबें ही लाया था। इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, उन्होंने बात बदलते हुए मुझे परिवार में हाल ही में हुई घटनाओं के बारे में बताया। मेरे आने से दो हफ्ते पहले उनके घर में एक सशस्त्र डकैती हुई थी। रहमान परिवार रात 11 बजे खाना खाकर लौट रहा था। जब उनका बूढ़ा चौकीदार अपनी पत्नी के लिए गाड़ी अंदर लाने के लिए गेट खोल रहा था, रहमान गाड़ी से बाहर निकला। एक आदमी उसके पास आया और ड्राइवर की नौकरी मांगने लगा। रहमान ने जवाब दिया, 'मेरे पास ड्राइवर है, और यह लोगों के घरों में जाकर नौकरी मांगने का समय नहीं है।' उस आदमी ने बंदूक निकाली और रहमान के सिर पर तान दी। तीन और हथियारबंद आदमी उनके पीछे आए और उन्हें चेतावनी दी कि अगर उन्होंने मदद के लिए चिल्लाने की कोशिश की तो उन्हें गोली मार दी जाएगी। गिरोह के सरगना ने कहा, 'अब घर में जो कुछ भी है, दे दो।' रहमान ने उस सुबह 10,000 रुपये का चेक भुनाया था। उसने नोटों का बंडल सौंप दिया। उसने अपनी पत्नी से सोने की चूड़ियाँ और अंगूठियाँ उतारकर देने को कहा। गुंडे इतने से संतुष्ट नहीं हुए और रहमान परिवार को घर का दरवाजा खोलने का आदेश दिया। उन्होंने दरवाजा खोल दिया। गुंडों ने उनके दोनों बेटों और बहुओं को जगाया। उन्होंने अपना सारा पैसा और गहने सौंप दिए। रहमान के बांग्ला नौकर, जो बाहरी कमरे में रहता था, को घर के अंदर कुछ गड़बड़ होने का आभास हुआ। वह भागकर पास के एक घर में गया जहाँ पुलिस पहरा दे रही थी। चार बंदूकधारी आदमी रहमान के घर आए। बदमाशों को समझ आ गया कि उनका खेल खत्म हो गया है। उन्होंने भागने की कोशिश की। गिरोह का सरगना नहर पार करने के लिए उसमें कूद गया। तब तक नहर के दूसरी तरफ कुछ लोग उसे पकड़ने के लिए जमा हो चुके थे। गिरोह के सरगना को पकड़ लिया गया और पुलिस के हवाले करने से पहले उसकी जमकर पिटाई की गई। उसके पास से नकदी और गहने बरामद किए गए। उसने अपने साथियों के नाम बताए। तीन को गुजरांवाला में गिरफ्तार कर लिया गया। चौथा अभी भी फरार है।

समीना और औरंगजेब के साथ रात के खाने पर, हमारी बातचीत का एकमात्र विषय लाहौर में बढ़ती हिंसक घटनाओं का ही था। औसतन हर रात छह या सात डकैतियाँ होती थीं। उन्होंने मुझे बताया कि कराची में स्थिति और भी बदतर है। अगली सुबह जब मैं नून अखबार से मिलने गया तो मुझे इसका एक नमूना देखने को मिला।

अकबर हयात नून, सर फ़िरोज़ खान नून के छोटे भाई थे। वे छह फीट से भी अधिक लंबे, किसी फिल्म स्टार की तरह आकर्षक और विभाजन से पहले अखिल भारतीय एथलीट थे। इंग्लैंड से इंजीनियरिंग की डिग्री लेने के बाद उन्होंने केंद्रीय लोक निर्माण विभाग में नौकरी कर ली। उन्होंने असगरी की छोटी बहन अख्तरी (दोनों मियां सर फ़ज़ल-ए-हुसैन की बेटियाँ) से विवाह किया और दिल्ली में बस गए। वे मेरे ससुर सर तेजा सिंह मलिक के चहेते बन गए। पंजाब के हमारे हिस्से से होने के कारण, मेरे माता-पिता उन्हें अक्सर भोजन पर आमंत्रित करते थे। अपने समय में अकबर और अख्तरी दिल्ली के सबसे आकर्षक दंपत्ति माने जाते थे।

विभाजन के कारण नून्स परिवार पाकिस्तान चला गया। अकबर जब पुलिस विभाग से सेवानिवृत्त हुए, तो दंपति कराची में बस गए। एक रात हथियारबंद लुटेरे उनके घर में घुस आए। सारा सामान लूटने के बाद, उन्होंने अकबर को अपनी कार की चाबियां सौंपने का आदेश दिया। उन्होंने ऐसा किया। वे दरवाजा नहीं खोल पाए और उन्हें शक हुआ कि अकबर ने जानबूझकर उन्हें गलत चाबियां दी हैं। उन्होंने अकबर को कार खोलने का आदेश दिया। अकबर के हाथ कांप रहे थे और वह चाबी को ताले में नहीं डाल पाए। एक बदमाश ने उनकी बांह में गोली मार दी, जिससे उनकी बांह की हड्डियां चकनाचूर हो गईं। बदमाशों का कभी पता नहीं चला। कुछ महीने अस्पताल में रहने के बाद नून्स परिवार लाहौर चला गया। परिवार के सभी सदस्यों से मिलते ही अख्तरी मुझे एक तरफ ले गईं और मुझसे विनती की कि मैं उनके घर में या रहमान के घर पर डकैती का जिक्र न करूं। उन्होंने मुझसे कहा, 'वह डर से पागल हो गए हैं। अंधेरा होते ही उन्हें डकैतों के घूमने के बुरे सपने आने लगते हैं। वह रात भर टीवी चलाते रहते हैं और टेनिस, क्रिकेट या हॉकी देखते हैं।' किसी न किसी को हर समय उसके साथ रहना होगा।'

मेरे जाने से पहले अख्तरी ने मुझे अपने बेटे द्वारा बनाई गई एक बड़ी पेंटिंग भेंट की। तभी अकबर के चचेरे भाई, अता मोहम्मद नून, जो सरकारी कॉलेज में मेरे ही सहपाठी थे, अचानक आ गए। वे पुलिस में भर्ती हो चुके थे और लाहौर में सेवानिवृत्ति का जीवन व्यतीत कर रहे थे। हालांकि उनकी सेहत खराब थी, फिर भी वे पहले की तरह दुबले-पतले और कमजोर दिख रहे थे, अब उन्होंने छोटी-छोटी भूरी दाढ़ी बढ़ा ली थी। हम 61 साल बाद मिल रहे थे।

सुबह का एक और सामाजिक कार्यक्रम बाकी था: जमीला अनवर और उनकी नवविवाहित बेटी। जमीला के पति मोहम्मद अनवर विभाजन से पहले मेरे दोस्त और शराब पीने के साथी थे। जब भी मैं मंजूर के साथ कुछ दिन बिताने लाहौर आता था, वे शाम को हमारे साथ शामिल हो जाते थे। विभाजन के बाद, हम तीनों, जमीला और वे लंदन से कराची तक एक ही

पोलिश नाव, बटोरी, से यात्रा कर चुके थे। हम हर समय साथ रहते थे। अनवर, जेड.ए. भुट्टो के विरोधी हो गए थे और उनके हाथों उत्पीड़न सहा था। उन्होंने अपना पक्ष डटकर रखा। फिर अचानक उनका निधन हो गया। वे केवल पचास वर्ष के थे। पिछली बार जब मैं उनसे मिलने गया था, जमीला मुझे उनकी कब्र पर ले गई थीं और फातिहा पढ़ी थी। उनकी अपनी कोई संतान नहीं थी और उन्होंने अनवर की भतीजी को गोद लिया था। उसने अपने से काफी बड़े एक विवाहित व्यक्ति से शादी करने के लिए सहमति दी थी, जो वाडेरो का एक जमींदार था और सिंधी राजनीति में सक्रिय था। जमीला और उनकी बेटी ने मुझे गर्मजोशी से गले लगाया। कुछ मिनट बाद, उसका दामाद बाथरूम से बाहर आया, जहाँ वह पुलिसवालों के डर से छिपा हुआ था। अपहरण के किसी मामले में वांछित होने के कारण वह सिंध पुलिस से भागा हुआ था। एक कर्तव्यनिष्ठ दामाद की तरह उसने मेरा आशीर्वाद पाने के लिए मेरे पैर छुए। मेरे जाने से पहले, जमीला ने हरे गोमेद से बना एक भारी कलम-स्याही रखने वाला डिब्बा मेरे हाथ में थमा दिया। उसने कहा, 'अनवर ने इसे जीवन भर इस्तेमाल किया। मुझे पता है कि अगर यह तुम्हारे पास होता तो वह खुश होता।' दरअसल, अनवर से मेरी आखिरी मुलाकात के दौरान उसने मुझे सबसे महंगी किस्म के गोमेद से बना एक बड़ा कटोरा भेंट किया था।

दोपहर में रहमान की बेटी सबीना मुझे खरीदारी के लिए ले गई। मैंने कई किताबें, संगीत टेप और पुराने कपड़े खरीदे। उसने मुझे पैसे नहीं देने दिए। शाम को मैं रहमान के साथ एक डिपार्टमेंटल स्टोर गया, जहाँ से उन्हें रात के खाने का सामान लेना था। वह स्टोर हमारे बड़े शहरों के किसी भी स्टोर से बड़ा था और उसमें विदेशी पनीर, बिस्कुट, सॉस, जैम, सौंदर्य प्रसाधन और दवाइयाँ भरी पड़ी थीं। मैंने सोचा कि मैं अपनी पोती के लिए कुछ इंग्लिश और स्विस चॉकलेट ले लूँ। मैंने उन्हें काउंटर पर रखा और बिल माँगा। एक युवक आया, उसने वह कागज़ का टुकड़ा लिया जिस पर दुकानदार मेरा बिल जोड़ रहा था और उसे अपनी जेब में रख लिया। उसने दुकानदार को आदेश दिया, 'इन्हें सरदार साहब के लिए पैक कर दो।' वह स्टोर का मालिक था। वह मुझे नहीं जानता था। मैं भारत से आया हुआ एक पर्यटक था, यह बात उसके लिए काफ़ी थी। मुझे पता चला कि उनका परिवार, चौधरी, 1947 में अंबाला से पलायन कर गया था। इससे मुझे ग्लासगो के उस स्पोर्ट्स स्टोर की याद आ गई जहाँ मैंने 35 पाउंड कीमत के स्नीकर्स खरीदे थे। दुकानदार ने मुझे पैसे देने से मना कर दिया था। मैं वहाँ बिल्कुल अजनबी था, लेकिन जाहिर तौर पर भारत से था। वह एक पाकिस्तानी पंजाबी था।

मैंने अपने पूरे जीवन में पंजाबी मुसलमानों जितनी उदारता कभी नहीं देखी। यह गुण पंजाबी हिंदुओं या सिखों में नहीं पाया जाता, न ही सीमावर्ती प्रांतों या सिंध के पाकिस्तानी लोगों में इतना अधिक। यह सिंधु और सतलुज के बीच, पंजाब की पाँच नदियों के संगम तक बसे लोगों में ही अनोखा है। उनमें और भी कई विशिष्ट गुण हैं। वे विनम्र नहीं हैं और अधिकांश पंजाबियों की तरह उनमें भी गर्व की भावना भरपूर है। मुसलमान होने से उनका आत्मसम्मान और भी बढ़ जाता है। उनका तर्क सीधा-सादा है: पंजाबी दुनिया के कुलीन वर्ग हैं; इस्लाम सभी धर्मों में श्रेष्ठ है। इन दोनों को मिला दें तो दुनिया के

सर्वश्रेष्ठ लोग मिलते हैं। जब वे कट्टरपंथी होते हैं, तो वे असहनीय रूप से संकीर्ण सोच वाले और धर्मांध हो सकते हैं। जिहाद का आह्वान उनके अंदर की सारी मर्दाना, उग्रवादी भावना को जगा देता है, वे जान देने या जान देने को तैयार हो जाते हैं। ऐसे में उनसे दूर रहना ही बेहतर है। मेरा एक सीधा-सा नियम है: ऐसे पंजाबी पाकिस्तानी से दोस्ती करने से बचें जो दिन में पांच बार नमाज पढ़ता हो, रमजान के दौरान रोजा रखता हो और शराब न पीता हो।

रहमान पहले खूब शराब पीते थे: दिल की बीमारी होने के बाद अब वो कभी-कभार दूसरों का साथ देने के लिए व्हिस्की का आधा पेग पी लेते हैं। हमारे एक दोस्त, एजाज बटालवी, वैसे तो ज्यादा शराब नहीं पीते और शाम भर अपने पहले गिलास स्कॉच को बड़े चाव से पीते रहते हैं। धर्म के प्रति भी उनके विचार अलग-अलग हैं। रहमान वैसे तो बहुत उदार हैं, लेकिन वोबियों की सादगी भरी परंपराओं का पालन करते हैं और सूफीवाद या संतों की कब्रों पर श्रद्धांजलि देने में उनकी कोई रुचि नहीं है। वहीं दूसरी ओर, बटालवी का मानना है कि इस्लामी सहिष्णुता की सच्ची भावना सूफी संतों की शिक्षाओं में सबसे अच्छी तरह देखी जा सकती है। लाहौर में मेरी आखिरी दोपहर उन्होंने हजरत मियां मीर की दरगाहों के दर्शन के लिए आरक्षित की थी, जिनके बारे में अधिकांश सिखों का मानना है कि उन्होंने अमृतसर में उनके हरिमंदिर की नींव रखी थी, और शालीमार बागों के पास बागबानपुरा में माधो लाल हुसैन की कब्रों के दर्शन के लिए भी। जब मैं लाहौर में छात्र और वकील के रूप में रहता था, तब मैंने कभी इन जगहों का दौरा नहीं किया था।

मियां मीर के छोटे आकार के मकबरे के चारों ओर फैले विशाल प्रांगण में एक विचित्र, अलौकिक शांति व्याप्त है। जब मैं वहां गया था, तब वह लगभग सुनसान था। चबूतरे के एक कोने पर कुछ महिलाएं और बच्चे एक साथ बैठे थे।

कुछ दूरी पर बैठे दो भिखारी कुछ बुदबुदा रहे थे, जो मुझे समझ नहीं आया। एजाज़ ने पीर की कब्र पर गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखेरने के लिए पत्तों का कटोरा खरीदा। दो बुज़ुर्ग नमाज़ पढ़ रहे थे। एजाज़ ने फातिहा पढ़ी, बाहर आया और भिखारियों को पैसे दिए। हम बागबानपुरा के बाज़ारों से गुज़रे और माधो लाल हुसैन के मज़ार से काफ़ी दूर अपनी कार खड़ी की। गलियाँ संकरी, घुमावदार और बदबूदार थीं। एक बार फिर मैंने देखा कि बुर्का पहने महिलाएँ बहुत कम थीं। हम मज़ार पहुँचे। एक आदमी जिसके पैरों और हाथों में घंटियाँ बंधी थीं, नाच-गा रहा था। बच्चों का एक समूह उसके पीछे-पीछे गोल-गोल नाच रहा था। उनकी माताएँ उन्हें देख रही थीं। मकबरा बहुत प्रभावशाली नहीं था: बस दो मकबरे अगल-बगल थे। एक मुस्लिम हुसैन का था, दूसरा हिंदू माधो लाल का। वे कवि थे जिन्होंने एक सामूहिक व्यक्तित्व, माधो लाल हुसैन का निर्माण किया। महाराजा रणजीत सिंह हर बसंत पंचमी के दिन पीले रेशमी वस्त्र पहनकर और अपने साथ पीले रेशमी वस्त्रों में सजी कश्मीरी महिलाओं के अंगरक्षकों के साथ उनकी समाधियों पर श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। मेरे लिए, समाधि से कहीं अधिक रोचक उसके चारों ओर फैला कब्रिस्तान था। कब्रों में से एक पंजाबी कवि चिराग दीन की थी, जिन्हें उस्ताद दामन के नाम से जाना जाता था। उन्हें मार्शल लॉ शासन द्वारा एक कविता पढ़ने के लिए जेल में डाल दिया गया था।

Pakistan deeyan maujaun ee maujaun

सबसे महत्वपूर्ण बात खुश रहना है।

(पाकिस्तान का समय बहुत अच्छा चल रहा है)

आप जिस भी तरफ देखें, सेना वहीं है।

दिल्ली की यात्रा के दौरान उन्होंने देश के विभाजन पर खेद व्यक्त करते हुए एक और कविता का पाठ किया।

अखियां दी लाली पे दासदी

तुसी वी रोए हो, रोए आसी वी हान

(हमारी आंखों की लालिमा में कोई रहस्य नहीं छिपा है)

अगर आप रोए हैं, तो हम भी रोए हैं।

दामन का निधन लगभग दस वर्ष पहले हुआ था और उन्होंने स्वयं अपनी समाधि पर लिखे शब्द खुद लिखे थे, जो उनकी कब्र के संगमरमर के पत्थर पर खुदे हुए हैं। एजाज ने उन्हें मेरे लिए एक कागज पर उतार कर दिया:

सरसरी नजर मारी जहां अंदर

Zindgi varg utthalya main,

दामन कोई ना मिलिया रफीक मैनू

लेकिन ताबूत छल्लिया मेन के मुंह में है।

(मैंने दुनिया पर सरसरी नजर डाली,)

मैंने अपने जीवन की किताब के कुछ पन्ने पलटे।

दामन को कोई साथी नहीं मिल सका — इसलिए

मैंने अपना कफ़न अपने कंधे पर डाला और मैं चल पड़ी।

15 विचित्र और सनकी लोग

सार्वजनिक जीवन में रहने वाला हर व्यक्ति तरह-तरह के अजीबोगरीब लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। मुझे तो ऐसे लोगों का भरपूर सामना करना पड़ा है, क्योंकि मैं धैर्य से सुनने वाला व्यक्ति हूँ। मुझमें कुछ ऐसा है कि अजनबी भी मुझसे खुलकर अपने निजी जीवन की बातें साझा कर देते हैं, इस विश्वास के साथ कि मैं उनकी बातें गुप्त रखूँगा। हालाँकि मैं सलाह देने में माहिर हूँ, फिर भी मैं लोगों के राज़ कभी छुपा नहीं पाया। इसके विपरीत, मैं अक्सर अपने ऊपर रखे गए भरोसे को तोड़ देता हूँ और उन्हें सुनने में रुचि रखने वाले हर किसी को बता देता हूँ। मैं उन लोगों का मज़ाक उड़ाता हूँ जो मुझ पर भरोसा करते हैं और जब मुझसे पूछा जाता है, तो मैं ऐसा करने से साफ इनकार कर देता हूँ। परिणामस्वरूप, मैंने बहुत से लोगों को दुख पहुँचाया है।

मेरे जीवन में आए विचित्र लोगों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है: अत्यधिक बोलने वाले, वे महिलाएं जो अपने अंतर्मन के रहस्यों को उजागर करना चाहती हैं, और वे लोग जो मानसिक विक्षिप्तता और विवेक के बीच की सीमा रेखा पर हैं।

जैसा कि मैंने कहा, मैं एक धैर्यवान श्रोता हूँ, इसलिए मुझे बहुत से लगातार बोलने वालों को सहना पड़ा है। मुझे उन्हें सुनना अच्छा नहीं लगता और अक्सर मेरा ध्यान अधिक रोचक विषयों की ओर भटक जाता है, फिर भी मैं ध्यान से सुनता हूँ कि कहीं कोई ऐसा प्रश्न न हो जिसका उत्तर मुझे देना पड़े। अधिकतर समय मैं गहरी रुचि दिखाने का दिखावा करता हूँ, बीच-बीच में 'हाँ' या 'मैं समझ गया' जैसे एक-एक शब्द बोलकर या बस सिर हिलाकर। मैं कभी भी लंबे-चौड़े बोलने वालों को चुप नहीं करा पाया। मेरे लिए सबसे अच्छा यही है कि मैं उनसे बचूँ। कई बार ऐसा करने की कोशिश में मुझे बहुत असहजता भी हुई है। लाहौर की एक बहुत गर्म गर्मी की शाम को, जब मैं अपने पहले माले के अपार्टमेंट में लौटा, तो मैंने अपने चचेरे भाई को सड़क पार करके मुझसे मिलने आते देखा। मैं रसोई में भागा और रसोइए से कहा कि वह उसे बता दे कि मैं क्लब से नहीं लौटा हूँ। फिर मैंने खुद को शौचालय में बंद कर लिया, इस उम्मीद में कि वह चला जाएगा। लेकिन, मैंने उसे रसोइए से यह कहते सुना कि वह मेरे लौटने तक इंतजार करेगा; वह सुबह का अखबार पढ़ने के लिए मेरे बैठक कक्ष में बैठ गया, जबकि मैं शौचालय की सीट पर बैठी रही, मेरे पास पढ़ने या करने के लिए कुछ नहीं था। अंधेरा हो गया था, लेकिन मैं बत्ती नहीं जला सकी, कहीं किसी को पता न चल जाए। मुझे एक घंटे से अधिक समय तक बेचैनी झेलनी पड़ी, जब तक कि मेरे रसोइए को सूझबूझ नहीं आई और उसने उसे बताया कि मैं अक्सर बहुत देर से घर आती हूँ।

मेरे कम्युनिस्ट मित्र दानियाल लतीफी, जिन्हें मैं पसंद करता था और सम्मान करता था, एक और बेहद बातूनी और उबाऊ व्यक्ति थे। वे कभी अपनी आवाज़ में उतार-चढ़ाव नहीं लाते थे और तब तक बोलते रहते थे जब तक मुझे लगभग नींद न आ

जाए। उनमें हास्यबोध भी नहीं था। एक बार मैंने उन्हें बताया कि कैसे मुंबई में चौपाटी पर टहलते हुए उनकी पत्नी सरम्मा से मुलाकात हुई। समुद्र तट पर अखिल भारतीय गौ संरक्षण समिति की बैठक चल रही थी। मैंने सरम्मा से कहा कि बीसवीं सदी में यह सब कितना बेतुका लगता है। उन्होंने जवाब दिया कि अमेरिकी मांस उद्योग गौ संरक्षण के लिए धन दे रहा है ताकि वह भारत को डिब्बाबंद गोमांस बेच सके। अपनी पत्नी की नासमझी पर हंसने के बजाय, दानियाल ने बड़ी गंभीरता से कहा, 'जानती हो, इसमें कुछ सच्चाई हो सकती है। मैं चालाक अमेरिकी पूंजीपतियों के अलावा किसी और बात पर भरोसा नहीं करता।'

दानियाल और सरम्मा कुछ समय के लिए दिल्ली के सुजान सिंह पार्क स्थित एक अपार्टमेंट में रहने चले गए। दानियाल से बचना मुश्किल हो गया था। जब मैं उसे अपनी खिड़की से अपने फ्लैट की ओर आते हुए देखती, तो उससे बचना आसान था। मैं पर्दे खींच देती और अपने रसोइए या नौकर को पीछे के दरवाजे से साहब को यह बताने के लिए कहती कि मैं घर पर नहीं हूँ और कई घंटों तक वापस नहीं आऊँगी। लेकिन जब मैंने खुद दरवाजे की घंटी खोली और दानियाल को वहाँ खड़ा पाया, तो बचने का कोई रास्ता नहीं था। मैंने उसे बताया कि मेरे घर में बहुत सारे बिन बुलाए मेहमान आ रहे हैं और मुझे समझ नहीं आ रहा कि उनसे कैसे निपटा जाए। उसने पूछा, 'अपने दरवाजे में दूरबीन क्यों नहीं लगवा लेती?' उसने समझाया, 'सभी मुंबई अपार्टमेंट में दूरबीन लगी होती है। आप अपनी तरफ से आने वाले को देख सकती हैं, बिना उसके आपको देखे।' दयालु दानियाल ने मेरे लिए मुंबई से एक दूरबीन मंगवाई। हमने उसे अपने दरवाजे में लगवा लिया। उस यंत्र का पहला शिकार दानियाल ही था। जब दरवाज़े की घंटी बजी, तो मैंने शीशे से झाँका, उसे बाहर खड़ा देखा और दबे पांव वापस लौट गई। मैंने दरवाज़ा खोलने वाले से कहा कि साहब को बता दे कि मैं घर पर नहीं हूँ। मुझे लगता है दानियाल को आहत हो गया था कि मैं घर पर हूँ, लेकिन वह मुझसे मिलना नहीं चाहता था। उसके बाद वह मुझे फ़ोन किए बिना कभी नहीं आया। हालाँकि, इससे पार्टियों में मुझे घेरने और मुझे इतना परेशान करने की उसकी ज़िद में कोई बदलाव नहीं आया। आखिरी बार मैंने उसे फ्रांसीसी दूतावास में एक रिसेप्शन में देखा था। अपनी प्लेट भरने के बाद, मैं बैठने के लिए कोई जगह ढूँढ़ रही थी (यह एक स्टैंडिंग बुफ़े था) और ब्री, कैमेम्बर्ट और एक गिलास वाइन का आनंद लेना चाहती थी। तभी मेरी नज़र दानियाल पर पड़ी, जिसके हाथ में व्हिस्की का गिलास था। मैंने उसे कभी शराब पीते नहीं देखा था और इतनी मूर्खता की कि उससे पूछ लिया कि उसने मुसलमानों के लिए वर्जित चीज़ का सेवन कैसे शुरू कर दिया। दानियाल ने कुरान और हदीस के अध्याय और आयतें उद्धृत करते हुए साबित किया कि शराब को तिरस्कृत किया जाता है, लेकिन हराम नहीं। जब वह पवित्र कानून का उपदेश दे रहा था, तब लोग आकर मुझसे परिचय करने लगे, मुझसे हाथ मिलाने लगे और मुझसे सवाल पूछने लगे। इन बाधाओं से विचलित हुए बिना, दानियाल ने खलीफाओं द्वारा जारी किए गए फतवों और धर्मशास्त्रियों और मुस्लिम न्यायविदों द्वारा शराब के सेवन को उचित ठहराने वाले विचारों का हवाला देना जारी रखा।

मेरी मुलाकात सबसे ज्यादा बकबक करने वाले और लगातार बोलते रहने वाले व्यक्ति डूंगरपुर के रिटायर्ड लेफ्टिनेंट-जनरल नत्थू सिंह से हुई। वे अक्सर मेरे माता-पिता के घर आते-जाते रहते थे। चूंकि मेरे माता-पिता के घर अक्सर मेहमान आते रहते थे, इसलिए उन्हें अपने लंबे भाषणों के लिए शिकार ढूंढने में कोई परेशानी नहीं होती थी। और अगर कोई आसपास नहीं होता, तो वे दिल्ली या दूर-दराज के शहरों में लोगों को फोन कर देते थे। जब तक वे वहां रहते, लाइन हमेशा व्यस्त रहती थी; दफ्तर का काम (केवल एक ही लाइन थी) बाधित हो जाता था और लंबी दूरी की कॉलों के बिल बढ़ते जाते थे। कुछ मुलाकातों के बाद, जब भी जनरल डूंगरपुर से पत्र लिखकर पूछते कि क्या वे उनके साथ रह सकते हैं, तो मेरे पिता को उन लोगों के नाम गढ़ने पड़ते थे जिनके आने की उन्हें उसी समय उम्मीद होती थी। मेरे माता-पिता के निधन के बाद, नत्थू सिंह ने मेरे बड़े भाई के घर को अपना मानकर उसे सम्मान देने का फैसला किया। उन्हें बहाने बनाकर बाहर जाना पड़ता था और अपना फोन उनके भरोसे छोड़ना पड़ता था। वे मुझे फोन पर पकड़ लेते और पूछते कि क्या वे आ सकते हैं। परिवार के बाकी सदस्यों की तरह, मुझे भी इस बहादुर, बूढ़े राजपूत योद्धा के लिए सम्मान और स्नेह था, जिनकी मूंछें लंबी थीं और जिनका अंदाज़ फौजी था। अस्सी वर्ष की आयु में भी वे एकदम सीधे खड़े रहते थे और एक सिपाही की तरह चलते थे। मैं उस समय राज्यसभा का सदस्य था और सुबह का समय संसदीय दस्तावेजों को पढ़ने में बिताता था। नाथू सिंह पूरा ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते थे। उनके भाषणों में कई विषय शामिल होते थे: सैंडहर्स्ट में बिताए दिन, ब्रिटिश रेजिमेंटों में तैनाती, उनके द्वारा लड़ी गई लड़ाइयाँ, उनके साथ संबंध, देश की स्थिति पर उनके विचार, राजनीति और राजनेताओं के प्रति उनकी घृणा, और यदि वे भारत के प्रधानमंत्री होते तो क्या करते। उनके भाषणों में मुझे यह कहने का मौका भी नहीं मिलता था कि मुझे और भी काम हैं। उनकी पहली मुलाकात के बाद मैंने अपने भाई की पत्नी अमरजीत को फोन करके शिकायत की कि मैंने उनके घर आए मेहमान को विनम्रता से सुनने में लगभग दो घंटे बर्बाद कर दिए। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया, 'बराबर-बराबर बाँट लो। वे पारिवारिक मित्र हैं और हमें बराबर ज़िम्मेदारी उठानी चाहिए।' लेकिन उसके बाद उन्होंने मुझे चेतावनी देते हुए कहा, 'जनरल नाथू सिंह शहर में हैं। इसलिए सावधान रहना।'

मेरे भाई ने भी जल्द ही बहाने बनाने शुरू कर दिए कि जनरल उनके साथ क्यों नहीं रह सकते। बूढ़े नाथू को मजबूरन अपने बेटे (या शायद दामाद) के साथ रहना पड़ा। वे सुजान सिंह पार्क के पास ही रहते थे। जनरल मुझसे कुछ मिनट बिताने के बहाने मेरे अपार्टमेंट तक आते थे। मिनट घंटों में बदल जाते थे। मैं उनके बार-बार आने से तंग आ गया था और यहाँ तक कि उनके रिश्तेदारों को पत्र लिखकर उन्हें घर पर ही रखने के लिए कहने का भी सोचा। एक सुबह जब मैं संसद के लिए निकल रहा था, तो उन्होंने मुझे रोक लिया। मुझे झूठ बोलकर उन्हें टालना पड़ा कि मुझे एक प्रश्न प्रस्तुत करना है और समय पर पहुँचना है। उन्होंने कहा, 'एक दिन मुझे राज्यसभा क्यों नहीं ले चलते? मैं जानना चाहता हूँ कि आप लोग दिन भर क्या बातें करते हैं।' मैंने उन्हें अगले दिन का पास दिलवाने का वादा किया और उन्हें खुद लेने जाने पर जोर दिया क्योंकि मैं समय से

पहले उनके आने का जोखिम नहीं उठाना चाहता था। उन्होंने आगंतुक दीर्घा में एक घंटा बिताया। उन्हें अपने आस-पास के लोगों से बात करने की अनुमति नहीं थी और उन्हें सांसदों की बातें सुननी पड़ीं। जब मैं तय समय पर लॉबी में उनसे मिला तो वे बहुत उदास लग रहे थे। उन्होंने कहा, 'तुम लोग कितनी बकवास बातें करते हो! इस सब फालतू की बातों के बजाय कुछ सकारात्मक क्यों नहीं करते?'

मैंने अपने 'मैलीस' कॉलम में लगातार बोलने वालों के बारे में एक छोटा सा तीखा लेख लिखा था, जिसमें मैंने कहा था कि वे बेहद उबाऊ होते हैं। जनरल नत्थू सिंह को वह संदेश मिल गया और उन्होंने मुझे फिर कभी परेशान नहीं किया।

दूसरे नंबर पर, और शायद मेरी निजी सूची में सबसे ऊपर, लगातार बोलने वालों में नज़र हयात तिवाना थे, जो सर खिज़र हयात तिवाना के बेटे थे। सर खिज़र हयात तिवाना विभाजन-पूर्व पंजाब के एक समय के मुख्यमंत्री और सबसे धनी ज़मींदार थे। नज़र का अपने पिता से मतभेद हो गया था, उन्होंने एक हिंदू महिला से शादी की और अमेरिका चले गए। उन्हें शिकागो विश्वविद्यालय में सहायक लाइब्रेरियन की नौकरी मिली और वे अच्छी पेंशन के साथ सेवानिवृत्त हुए। उनका जुनून भारत और पाकिस्तान के बीच मित्रता और भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध था। जब वे पहली बार मुझसे मिलने दिल्ली आए, तो मैंने उनका और उनके परिवार का बहुत गर्मजोशी से स्वागत किया। मुझे तुरंत एहसास हो गया कि नज़र को बोलने का चस्का लग गया है। 'मेरी पत्नी कहती है कि मैं बहुत ज्यादा बोलता हूँ,' उन्होंने अपने अंतहीन भाषण के दौरान कई बार दोहराया। और वे लगातार आधे-अधूरे वाक्य बोलते रहे, फिर बीच में ही आधे-अधूरे वाक्य दोहराते रहे और फिर भारत में अंतर-सामुदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने के लिए एक भारत-पाकिस्तान मैत्री समिति की स्थापना की आवश्यकता पर जोर देते रहे। यह सब उनके पिता की आत्मा की शांति के लिए था, जिन्होंने भारत के विभाजन का विरोध किया था। सौभाग्य से, दिल्ली या लाहौर में (जहाँ वे मेरे द्वारा दिए गए मंजूर कादिर स्मृति व्याख्यान में भाग लेने आए थे) नज़र जिनसे भी मिले, सभी को यह एहसास हो गया कि नज़र अपनी वाचालता पर नियंत्रण नहीं रख सकते थे और उन्हें 'बस वी कर!' कहकर चुप रहने की भी परवाह नहीं थी।

अगर आपको पता चले कि कोई व्यक्ति बहुत ज्यादा बोलता है, तो उससे निपटने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि जैसे ही आप उसे समझें, उससे निपट लें। अगर आप उससे बच नहीं सकते, तो उसका डटकर सामना करें। मैंने मॉडर्न स्कूल के प्रिंसिपल महिंदर कपूर के साथ ऐसा ही किया, जो कई सालों तक प्रिंसिपल रहे। मैंने उन्हें अपने अमेरिकी छात्रों को दिल्ली और हरिद्वार घुमाने और उनके लिए व्याख्यान आयोजित करने के लिए नियुक्त किया था। मैंने पाया कि जो बात दो मिनट में कही जा सकती थी, उसे कपूर को समझाने में बीस मिनट लग जाते थे। जब भी उनका फोन आता, वे एक बेतुकी बात से दूसरी बेतुकी बात पर उलझते रहते थे। मुझे आश्चर्य होता था कि वे अपना स्कूल कैसे चलाते हैं: उनकी स्कूल चलाने की

प्रतिष्ठा तो बहुत अच्छी थी। उनसे निपटना आसान था। हर बार जब वे फोन करते, मैं उनसे कहता कि मेरे पास ठीक पाँच मिनट का समय है और क्या वे कम से कम शब्दों में अपनी बात रख सकते हैं? उन्हें बात समझ आ गई।

मुझे नहीं पता कि बार-बार बोलने की आदत कोई मानसिक, जन्मजात, वंशानुगत या अर्जित बीमारी है। यह उम्र के साथ बढ़ती जाती है और अंत में बुढ़ापे की कमजोरी का कारण बनती है। यह एक ऐसी समस्या है जिसे अनियंत्रित रूप से बढ़ने दिया गया है। इसे गंभीरता से लेने की जरूरत है।

जो महिलाएं मुझ पर भरोसा करती हैं, उनके बारे में मैं बस इतना ही कहूँगी कि मुझे समझ नहीं आता कि वे मुझसे संबंध बनाने की ज़रा भी इच्छा रखे बिना ऐसा क्यों करती हैं। मैंने कई अजनबियों को फ़ोन करके अपनी निजी समस्याओं पर चर्चा करते देखा है। वे मुझे अपनी झिझक, प्रेम प्रसंग, विवाहेतर संबंध आदि के बारे में बताती हैं। महिलाओं की बात करें तो मैं धैर्यपूर्वक और रुचि से सुनती हूँ क्योंकि मुझे वैवाहिक कलह की कहानियाँ, विवाहित जोड़ों के बीच यौन संबंध की संख्या, उनकी मुलाकात कैसे और कहाँ हुई, उनके विवाहित प्रेमियों और पकड़े जाने और गर्भवती होने से बचने के लिए बरती जाने वाली सावधानियों के बारे में सुनना अच्छा लगता है। मैं उन्हें और अधिक बताने के लिए प्रोत्साहित करती हूँ। कई बार युवा, अविवाहित लड़कियों ने मुझे विवाहित पुरुषों के साथ अपने गुप्त प्रसंगों और उनकी पत्नियों के घर से बाहर रहने पर उनके साथ रातें बिताने के बारे में बताया है। एक बार एक अविवाहित महिला, जिसे मैं कभी नहीं जानती थी, अपने सामान के साथ मेरे दरवाजे पर आ गई। उसने मुझे एक नोट भेजा जिसमें लिखा था कि उसे उम्मीद है कि उसका बच्चा अगले तीन दिनों के भीतर पैदा हो जाएगा और वह चाहती है कि उसका जन्म मेरे अपार्टमेंट में हो ताकि नवोदित मेरी 'सौहार्दपूर्ण उपस्थिति' में दुनिया को देख सके।

मुझे हमेशा से ही पागलों और थोड़े-बहुत पागलों में दिलचस्पी रही है। जब भी मौका मिलता, मैं लाहौर, रांची, आगरा और पुणे के मानसिक अस्पतालों में जाता था। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता था कि वहाँ कितने ही ऐसे लोग थे जिन्हें मैं पहले से जानता था और जिनका इलाज चल रहा था। उनसे बात करना मुश्किल होता था। लेकिन थोड़े-बहुत पागल लोग कुछ देर तक तो समझदारी से बात करते थे, फिर अचानक ही बेकाबू हो जाते थे और मैं उनकी बात समझ नहीं पाता था।

द इलस्ट्रेटेड वीकली के संपादक के रूप में, मैं कभी-कभी ऐसे लेख प्रकाशित करता था जिनसे अनजाने में ही कुछ लोगों को ठेस पहुँचती थी। मैंने पारसियों के बारे में कुछ लिखा था, जो आमतौर पर बातों को सहजता से लेते हैं। लेकिन सभी नहीं। एक दिन एक पारसी ने अपना विजिटिंग कार्ड भेजा और मुझसे एक ज़रूरी काम से मिलना चाहा। विजिटिंग कार्ड पर 'एटम बम' लिखा था, साथ ही आगंतुक का पदनाम, पता और फ़ोन नंबर भी था। मैंने उसे बुलवाया। वह दुबला-पतला, लेकिन गुस्सैल स्वभाव का व्यक्ति था। 'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई पारसियों का मज़ाक उड़ाने की?' वह गरज उठा। 'जानते हो मैं

कौन हूँ? मैं एटम बम हूँ। मेरी एक नज़र से ही मैं तुम्हें भस्म बना सकता हूँ।' मुझे लगा कि माफ़ी माँगना ही बेहतर होगा ताकि मैं असमय मृत्यु से बच सकूँ।

राहेजा नाम के एक व्यक्ति से मेरी मुलाकात और भी मजेदार रही। अपने स्पष्ट पत्रों में उन्होंने खुद को हरियाणा में कहीं एक गैस स्टेशन चलाने वाला सेवानिवृत्त सेना अधिकारी बताया था। उनका दावा था कि उन्होंने एक ऐसा आंतरिक टीवी बनाया है जिसके जरिए कोई व्यक्ति अतीत और भविष्य की घटनाओं को देख सकता है। मुझे इसमें दिलचस्पी हुई। आविष्कारकों को प्रोत्साहित करने की आदत होने के कारण, मैंने उन्हें पत्र लिखकर मिलने और अपना आविष्कार साथ लाने के लिए कहा।

राहेजा एक सीधे-सादे, शांत और मधुर आवाज वाले व्यक्ति निकले। मैं उनके भीतर का टीवी नहीं देख सका क्योंकि वह वास्तव में उनके अंदर ही था। उन्होंने खराब स्वास्थ्य के कारण समय से पहले सेवानिवृत्ति लेने और अपने आविष्कार के लिए मान्यता प्राप्त करने की इच्छा के बारे में बात की। उन्होंने कहा, 'मैं कोई भी फालतू नौकरी स्वीकार नहीं करने वाला। कम से कम मैं हरियाणा का मुख्यमंत्री बनने या केंद्रीय मंत्रिमंडल में वरिष्ठ मंत्री बनने का हकदार हूं।'

मैंने पूछा, 'हरियाणा विधानसभा या लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए बिना आप इनमें से कोई एक पद कैसे प्राप्त करने का प्रस्ताव रखते हैं?'

उन्होंने मुझे तिरस्कारपूर्ण मुस्कान दी, मानो वे यह दर्शा रहे हों कि मैं भाग्य के रहस्यमय खेल को नहीं समझता। उन्होंने कहा, 'मैंने पंडितजी [नेहरू] से सलाह ली थी। उन्होंने मुझे आपसे मिलने की सलाह दी, क्योंकि आप ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो मुझे मुख्यमंत्री या केंद्रीय मंत्रिमंडल में नियुक्त करवा सकते थे।'

‘पंडितजी?’ मैंने आश्चर्य से पूछा। ‘लेकिन पंडितजी को मरे हुए बीस साल से अधिक हो गए हैं।’

राहेजा ने मुझे एक और समझदारी भरी मुस्कान दी और कहा,

‘तो क्या हुआ? यह मेरा आंतरिक टीवी है जिसके माध्यम से मैं उससे संवाद करता हूं।’

मैंने पूछा, ‘आपने पंडितजी से कब और कहाँ संपर्क स्थापित किया?’

‘आज दोपहर ही, जब मैं अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान के मनोरोग वार्ड से निकल रहा था।’

मुझे एहसास हुआ कि मुझे रहेजा के साथ नरमी और समझदारी से पेश आना होगा। मैंने उसे एक घंटे या उससे अधिक समय तक बोलने दिया; मैंने उससे वादा किया कि मैं उसे हरियाणा का मुख्यमंत्री या केंद्र सरकार में सूचना एवं प्रसारण मंत्री बनवाने के लिए अपनी पूरी कोशिश करूंगा।

मैंने उसे दरवाजे तक पहुंचाया और उसे शुभकामनाएं दीं। मैंने अपने सुरक्षा गार्ड से कहा कि अगर वह दोबारा आए तो उसे बता दिया जाए कि मैं घर पर नहीं हूं।

मैं रहेजा के बारे में भूल ही गया था; उसका नाम भी मेरी स्मृति से मिट गया था। छह महीने बाद उसने फोन किया और कहा कि उसके पास कुछ बहुत महत्वपूर्ण जानकारी है जो पूरे देश को हिला देगी। एक पत्रकार किसी सनसनीखेज खबर के लिए उतना ही भूखा होता है जितना कि आदमखोर शार्क किसी मांस के रसदार टुकड़े के लिए। मैंने उसे तुरंत आने को कहा। उसके बैठने के बाद ही मुझे एहसास हुआ कि वह रहेजा था, आंतरिक टीवी का आविष्कारक। इस बार मैं उससे ज्यादा धैर्य से पेश नहीं आया और उससे पूछा कि वह मुझे क्या बताना चाहता है।

उन्होंने पूछा, 'आप संजय गांधी के घनिष्ठ मित्र थे, है ना?'

मैंने जवाब दिया, 'मैं उनसे कई बार मिला था, लेकिन मैं उन्हें घनिष्ठ मित्र नहीं कह सकता।'

'कोई बात नहीं!' उसने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा, 'आज तक किसी को नहीं पता कि उसकी मौत कैसे हुई।'

'उनकी विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गई। और उनके साथ कैप्टन सक्सेना भी थे।'

'यह तो सबको पता है! विमान दुर्घटना में दोनों की मौत हो गई। लेकिन दुर्घटना का कारण कौन था?'

मुझे नहीं पता। पायलट की गलती या मशीन में कोई खराबी।

'नहीं,' उन्होंने दृढ़ता से कहा। 'यह दुर्घटना जानबूझकर रची गई थी।'

'किसके द्वारा?'

चर्चिल।

'चर्चिल? वो तो संजय से बहुत पहले ही मर गए थे। वैसे भी, चर्चिल संजय को क्यों मारना चाहेंगे?'

'मैं आपको बताता हूँ क्यों,' उन्होंने धैर्यपूर्वक मुस्कुराते हुए उत्तर दिया। 'आप जानते हैं कि संजय को औरतें पसंद थीं। उन्हें विशेष रूप से श्वेत स्त्रियाँ पसंद थीं। चर्चिल को इससे कोई खास आपत्ति नहीं थी, लेकिन जब संजय ने इंग्लैंड की रानी पर नज़र डाली, तो चर्चिल बहुत नाराज़ हो गए। उन्होंने उससे कहा, "संजय, मुझे परवाह नहीं कि तुम कितनी अंग्रेज़ लड़कियों के साथ सोते हो, लेकिन तुम्हें हमारी रानी से दूर रहना होगा। यह उचित नहीं है।" लेकिन संजय ने चर्चिल की बात नहीं मानी और रानी को बहकाने ही वाले थे कि चर्चिल ने अपने जासूसों से संजय के विमान में छेड़छाड़ करवा दी ताकि वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाए।'

राहेजा ने मुझे काफी देर तक देखा, इस उम्मीद में कि मैं उनके अंदरूनी ज्ञान से बहुत प्रभावित हो जाऊँगा। मैंने सोचने का नाटक किया और अपने कॉलम में इसके बारे में लिखने का वादा किया। इस बार राहेजा का नाम मेरे मन में बस गया। मैंने

उनके पत्रों और फोन कॉल्स का जवाब देना बंद कर दिया। एक साल बाद मैंने हिंदुस्तान टाइम्स में पढ़ा कि राहेजा 'अपने स्वर्गलोक' चले गए हैं, जैसा कि भारत में अक्सर मृत्यु को कहा जाता है।

एक युवा सिख का मामला भी उतना ही दिलचस्प और पेचीदा था। उसने मुझे अंग्रेज़ी में एक साफ-सुथरा टाइप किया हुआ पत्र भेजा, जिसमें उसने मुझसे जर्मन बैंक में जमा अपनी कुछ विदेशी मुद्रा को भारतीय रिज़र्व बैंक से क्लियर करवाने में मदद मांगी थी। उसने बताया कि वह ईरान में जन्मा एक सिख है और पश्चिम जर्मनी के साथ उसका बड़ा निर्यात-आयात का कारोबार है। इराक-ईरान युद्ध शुरू होने पर वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ भारत आ गया था। उसने फिर बताया कि जर्मन बैंकों में उसके कई मिलियन ड्यूशमार्क जमा हैं, लेकिन वह उन्हें भारत में ट्रांसफर नहीं करवा पा रहा है। यह बात मुझे समझ में नहीं आई क्योंकि भारत तो ड्यूशमार्क का स्वागत करेगा; शायद जर्मन पक्ष में कोई अड़चन थी। मैंने उसे मुझसे मिलने के लिए कहा।

वह लंबा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा आदमी निकला, जिसकी अंग्रेज़ी पर ज़बरदस्त पकड़ थी। जब मैंने उससे पूछा कि उसे अपनी जेब से पैसे निकालने से कौन रोक रहा है, तो उसने मेरे सवाल को टाल दिया और अपनी घरेलू समस्याओं के बारे में बताने लगा। उसने कहा, 'मेरी पत्नी ने जालंधर के एक व्यापारी के यहाँ स्टेनोग्राफर की नौकरी कर ली है।' उसने पूछा, 'क्या मेरे जैसे रुतबे वाले आदमी की पत्नी का स्टेनोग्राफर का काम करना सही है?'

‘नहीं,’ मैंने स्वीकार किया। ‘लेकिन क्या आप उसे ज़रूरत के हिसाब से पैसे दे रहे हैं?’

‘मैं कैसे कर सकता हूँ? यह जर्मनी में अटका हुआ है।’

‘फिर वह खुद कुछ कमाए बिना कैसे गुजारा करेगी?’

वह अपनी पत्नी की दुविधा को समझता हुआ प्रतीत हुआ। 'अगर वह कुछ कमाती है तो ठीक है; लेकिन वह अपने मालिक के साथ भी सो रही है।'

मुझे लगा कि उसकी पत्नी की बेवफाई ने उस नौजवान को उन लाखों रुपयों से कहीं ज्यादा परेशान कर दिया था, जो उसके ख्याल से जर्मन बैंकों में फंसे हुए थे। 'क्या आप सहमत नहीं हैं कि नेहरू की पत्नी का सिर्फ एक स्टेनोग्राफर के रूप में काम करना और अपने बॉस के साथ सोना शर्मनाक है?'

‘नेहरू? वह नेहरू कैसे बन जाती है?’

उन्होंने समझाया, 'आपने मेरा पत्र ध्यान से नहीं पढ़ा। शायद आपने पत्र के अंत में मेरा नाम नहीं देखा।'

मैंने उनके पत्र पर सरसरी नज़र डाली। उन्होंने वाकई अपने हस्ताक्षर सिंह नेहरू के रूप में किए थे।

‘क्या आपका नेहरू परिवार से कोई रिश्ता है? मुझे तो पता ही नहीं था कि कोई सिख नेहरू भी होते हैं।’

उन्होंने कहा, 'मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू का पुत्र हूं।'

‘अरे! मुझे तो पता ही नहीं था कि उनका एक बेटा भी है,’ मैंने जवाब दिया। ‘आपके पास क्या सबूत है कि वह आपके पिता थे?’

मैंने स्वर्ण मंदिर के अभिलेखागारों से परामर्श किया। वहां यह दर्ज है कि मैं पंडितजी का पुत्र हूं।

क्या इंदिरा गांधी को इस बारे में पता है? क्या आप उनसे मिले हैं?

'हां,' उसने पुष्टि की। 'मैं उससे मिलने गया था। उसे पूरा यकीन था कि मैं उसका भाई हूं। लेकिन उसने मुझसे कहा कि सही समय आने तक मैं इसके बारे में किसी और को न बताऊं।'

मैंने उस युवक से वादा किया कि मैं जर्मनी में उसके बैंक खाते के बारे में जर्मन राजदूत से बात करूंगा। 'जी हां, कृपया ऐसा करें। मैं आज दोपहर ज्ञानी ज़ैल सिंह और चरणजीत सिंह से भी उनकी मदद लेने के लिए मिल रहा हूं।'

मुझे नहीं पता कि ज्ञानी ज़ैल सिंह ने उस युवक को कैसे संभाला। मैंने चरणजीत से पूछा, जो उस शाम ड्रिंक के लिए आया था। चरणजीत ने जवाब दिया, 'वह पागल है। मैंने उसे दो मिनट के अंदर ही दफ्तर से बाहर निकाल दिया। मेरे पास तुम्हारे जितना समय बर्बाद करने का समय नहीं है।'

मैंने चरणजीत को आगाह किया था कि जो व्यक्ति ऊपर से हानिरहित और सनकी लगता है, वह असल में सिज़ोफ्रेनिया का एक खतरनाक मामला हो सकता है, जो आसानी से हिंसा के लिए उकसाया जा सकता है। ऐसे सनकी और दिमागी रूप से अस्थिर लोगों से व्यवहार करते समय नरमी बरतनी चाहिए।

16 सर्वशक्तिमान से कुश्ती

बचपन में हमें धर्म के बारे में ज़्यादा सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। अंतिम गुरु ने आदेश दिया था कि सिखों को अपने शरीर के किसी भी हिस्से के बाल नहीं काटने चाहिए, हलाल मांस नहीं खाना चाहिए, धूम्रपान नहीं करना चाहिए या किसी भी रूप में तंबाकू का सेवन नहीं करना चाहिए। बस यही नियम था। जो पुरुष अपनी दाढ़ी या मूंछें काटते थे, उन्हें तुरंत पतित (धर्मत्यागी) मानकर बहिष्कृत कर दिया जाता था। धार्मिक अनुष्ठान और प्रार्थना का पालन भी अनिवार्य था। यदि आप पाँच निर्धारित प्रार्थनाएँ (नितनेयम) पढ़ते थे, तो आप अच्छे बालक माने जाते थे; यदि आप नहीं पढ़ते थे, तो आप आवारा माने जाते थे। चूंकि मैं सुबह और शाम की प्रार्थनाएँ बिना देखे सुना सकता था और कभी-कभी गुरुद्वारे में एक-दो शबद गाता था, इसलिए मैं अपनी नानी का लाडला पोता था।

पंद्रह साल की उम्र तक मुझे लंबे बाल रखना पसंद था। इसमें स्त्रीत्व जैसी कोई बात नहीं थी। खालसा का हमारा पंथ मर्दाना था और हमारे योद्धा गुरु ने लंबे बालों को पवित्र माना था। जब मेरे चेहरे और जननांगों पर बाल उगने लगे तो मैंने उनकी पवित्रता पर सवाल उठाना शुरू कर दिया। मैं जननांगों के बाल हटाने के लिए हेयर रिमूवल क्रीम का इस्तेमाल करती थी और सोचती थी कि संगमरमर की मूर्तियों में दिखाई गई बिना बालों वाली और बगल में बाल वाली महिलाएं, गंदी तस्वीरों में जांघों के बीच घने बालों वाली महिलाओं से कहीं अधिक आकर्षक लगती हैं। इस प्रकार, मैंने जिन पहले सिद्धांतों पर सवाल उठाना शुरू किया, वे सिख अलगाव के ये बाहरी प्रतीक थे: ये मुझे शरीर पर अनावश्यक बालों की तरह ही फालतू लगते थे; इनमें कोई आध्यात्मिक सार नहीं था। मैंने खालसा के बाहरी प्रतीकों को किसी दृढ़ विश्वास के कारण नहीं, बल्कि खालसा बिरादरी का हिस्सा बने रहने की इच्छा से बनाए रखा। अपनेपन की भावना ने मुझे सामाजिक सुरक्षा का एहसास दिलाया, जैसा कि आज भी है।

जैसा कि पहले बताया गया है, मुस्लिम-विरोधी पूर्वाग्रह भी हमारी धार्मिक परवरिश का हिस्सा थे। विभिन्न प्रकार के मांस खाने, खतना के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण आदि के अलावा, हमें सिखों के विरुद्ध मुस्लिम अत्याचारों की कहानियाँ सुनाई जाती थीं: हमारे दो गुरुओं ने इस्लाम धर्म अपनाने के बजाय अपने प्राण त्याग दिए; हमारे अंतिम गुरु के चार पुत्रों को मुसलमानों ने मार डाला: दो ने उनसे लड़ते हुए, दो को जिंदा दफनाकर। उनके पिता ने अपने अनुयायियों को मुसलमानों पर कभी भरोसा न करने की सलाह दी थी: 'तुर्क मीट तब कीजेये, जब और जात मर जाए' - मुसलमानों से तभी मित्रता करो जब दूसरी जातियाँ मर जाएँ। परिणामस्वरूप, भले ही हम अपने गाँव के मुस्लिम बुजुर्गों को चाचा और उनकी महिलाओं को चाची कहकर संबोधित करते थे, फिर भी हमारे भीतर गहरे बैठे पूर्वाग्रहों से हम मुक्त नहीं हो पाए। वर्षों में मैंने कई मुस्लिम मित्र बनाए, लेकिन सबसे बढ़कर मंजूर कादिर थे, जिनका मैं किसी भी अन्य व्यक्ति से अधिक सम्मान और आदर करता

था, जिन्होंने मुझे मुस्लिम प्रेमी बना दिया। जब तक मेरी बंबई में ज़कारिया परिवार से दोस्ती हुई, तब तक मेरे मन से मुस्लिम विरोधी पूर्वाग्रह पूरी तरह से दूर हो चुके थे और मैं इस भोले विश्वास पर आ गया था कि मुसलमान कोई गलती नहीं कर सकते।

पूर्वाग्रहों को जड़ से उखाड़ फेंकना, रीति-रिवाजों और प्रार्थना की आदत को छोड़ने से कहीं ज़्यादा आसान था। मैंने प्रार्थना को बीच-बीच में छोड़ दिया, लेकिन शारीरिक पीड़ा, भय, भावनात्मक तनाव या मदद की ज़रूरत पड़ने पर मैं फिर से प्रार्थना करने लगा। एक बार जब मेरी पत्नी के साथ मेरे रिश्ते टूटने की कगार पर आ गए और उसने साफ़-साफ़ कह दिया कि वह मुझे छोड़कर जाना चाहती है, तो मैंने पूरी रात गुरुद्वारा बंगला साहिब में प्रार्थना की ताकि इस संकट का सामना करने की शक्ति मिल सके। टोक्यो में कई बार, जब मैं गुरु नानक के भजनों के अनुवाद पर काम करने के लिए सुबह 3 बजे उठता था, तो मुझे अपने कंधे पर गुरु का हाथ महसूस होता था। मैं जानता था कि यह सब कल्पना मात्र थी, लेकिन इससे मुझे बहुत सुकून मिलता था। अंततः मुझे रीति-रिवाजों से विमुख करने वाली बात अखंड पाठ थे - अलग-अलग दरों पर नियुक्त ग्रंथों के समूह द्वारा लगातार ग्रंथ साहिब का पाठ। पाठ पूरी रात चलता रहता था, जबकि पाठ आयोजित करने वाले परिवार के सदस्य सो जाते थे। मुझे इससे भी ज़्यादा परेशान करने वाली बात यह थी कि पवित्र ग्रंथ को मूर्ति की तरह माना जाने लगा था। सुबह इसे जगाया जाता था (प्रकाश) और शाम को सुलाया जाता था (संतोख)। मेरी पत्नी के माता-पिता, जो हद से ज़्यादा धार्मिक थे, उनके घर में जिस प्रार्थना कक्ष में ग्रंथ रखा जाता था, वहाँ गर्मियों के महीनों में लगातार एयर कंडीशनर चलता रहता था। एक सिख, जो अचानक धनवान हो गया, उसने तो और भी आगे बढ़कर अपने प्रार्थना कक्ष (बाबाजी दा कमरा) के बगल में सफेद संगमरमर का शौचालय बनवा लिया - भारतीय शैली का था या यूरोपीय शैली का, यह मुझे नहीं पता। कीर्तन, जिसे मैं बहुत पसंद करता था, उसका भी व्यवसायीकरण हो गया: रागी अपनी लोकप्रियता के अनुसार प्रति घंटे कुछ सौ से लेकर कुछ हज़ार तक अलग-अलग शुल्क लेने लगे। ग्रंथी, रागी और जत्थेदार अनुष्ठानों के ठेकेदार बन गए, जिनका स्वार्थ उन्हें कायम रखने में था। यह स्थिति हिंदू मंदिरों से बेहतर नहीं थी, जहाँ देवी-देवताओं के दर्शन के लिए अलग-अलग शुल्क निर्धारित थे। हरिद्वार, वाराणसी, जगन्नाथ पुरी, गुवाहाटी में कामाख्या मंदिर, मदुरै और दक्षिण भारत के अन्य स्थानों जैसे हिंदू तीर्थ स्थलों में मैंने जो देखा और अनुभव किया, वह किसी को भी उनके खिलाफ करने के लिए काफी था। लेकिन सिखों ने भी अपने धर्म का व्यवसायीकरण करने में यही रास्ता अपनाया था।

धार्मिक अनुष्ठानों का त्याग करना उतना कष्टदायक नहीं था; धर्म के मूलभूत सिद्धांतों का त्याग करना अधिक कठिन सिद्ध हुआ क्योंकि इसके लिए मुझे अपने भीतर झाँकना पड़ा और उन मान्यताओं पर प्रश्न उठाना पड़ा जिन पर मेरा पालन-पोषण हुआ था। मैंने स्वयं से पूछा, क्या ईश्वर वास्तव में विद्यमान है? क्या उनके पैगंबर, मसीहा, दूत और अवतार ईश्वर के समान माने जाने और पूजे जाने योग्य हैं? क्या शास्त्रोक्त ग्रंथ वास्तव में ईश्वरीय प्रेरणा से लिखे गए हैं? क्या पूजा स्थलों को वह

पवित्रता प्राप्त है जो हम उन्हें देते हैं? क्या प्रार्थना वास्तव में मनुष्य का सुधार करती है? यदि मैं धर्म के इन पाँच स्तंभों को अस्वीकार कर दूँ, तो मैं इस खालीपन को कैसे भरूँगा? ब्रह्मांड, पृथ्वी पर जीवन और प्रकृति के नियमों की व्याख्या कैसे करूँ? तर्क और बुद्धि ने मुझे उन कई बातों को ध्वस्त करने में मदद की जिन पर मेरा पालन-पोषण हुआ था, लेकिन उन्होंने मुझे वे सभी उत्तर नहीं दिए जिनकी मुझे तलाश थी। इस प्रकार व्यक्तिगत धर्म की खोज शुरू हुई। इकबाल ने भी मेरी भावनाओं को व्यक्त किया:

Dhoondta phirta hoon main, ai Iqbal, apney aap ko
aap hee goya musaafir, aap hee manzil hoon main.

(ओ इकबाल, मैं हर जगह खुद को ढूंढता फिरता हूँ)
(जैसे कि मैं ही मुसाफिर था और मंजिल भी।)

इस प्रक्रिया की शुरुआत मंज़ूर कादिर के साथ लंबी चर्चाओं से हुई। उन्होंने मेरी बात से सहमति जताते हुए कहा कि हम नहीं जानते कि हम कहाँ से आए हैं, पृथ्वी पर हमारे अस्तित्व का उद्देश्य क्या है और मरने के बाद हमारा क्या होता है। हमारे पास ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने के कोई ठोस कारण नहीं हैं। हालांकि, मंज़ूर ने ब्रह्मांड को संचालित करने वाली किसी दैवीय शक्ति की संभावना को सिरे से खारिज नहीं किया। इन्हीं चर्चाओं के दौरान लाल गेंद वाली घटना घटी। मैंने इसे 'अज्ञेयवादी' नामक एक लघु कहानी में रूपांतरित किया। हम लाहौर के लॉरेंस गार्डन (अब बाग-ए-जिन्ना) में अपने बच्चों के साथ खेल रहे थे, तभी मैंने एक लाल गेंद पेड़ पर उछाली और वह उसकी शाखाओं में फंस गई। हमने पत्थरों और डंडों से उसे गिराने की व्यर्थ कोशिश की। हमने हार मानकर अपने बच्चों को आइसक्रीम खिलाने के लिए क्लब की ओर चल दिए। वापस आते समय हमने देखा कि गेंद अभी भी वहीं फंसी हुई है। मैंने कुछ जल्दबाजी में कहा, 'अगर वह गेंद नीचे गिर जाती है, तो मैं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास कर लूंगा।' हल्की हवा से डालियाँ हिल गईं और गेंद सीधे मेरे हाथों में आ गिरी। मंज़ूर ने कहा, 'इससे तुम्हें सबक मिलेगा! तुम्हें ईश्वर के अस्तित्व जैसे विषयों को इतनी हल्के में नहीं लेना चाहिए।' हालाँकि इस घटना ने मुझे झकझोर दिया, लेकिन इससे मुझे कोई सबक नहीं मिला। मेरे लिए यह महज़ एक संयोग था।
किसी ने ईश्वर को नहीं देखा है। अनगिनत गुणों से सुसज्जित करने के अलावा कोई भी ईश्वर को परिभाषित नहीं कर पाया है। उन्हें सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक; दयालु और सहायक; पिता, माता आदि के रूप में देखा जाता है। क्रोधी और न्यायप्रिय भी। उपनिषद 'नेति, नेति' (यह नहीं, यह नहीं) के सूत्र का सहारा लेकर उनका सकारात्मक वर्णन करने से बचते हैं। एक उर्दू कवि ने अपनी हार स्वीकार कर ली।

Too dil mein to aataa hai

Samach mein nahin aata

Bas jaan gayaa teyree pahchaan yahee hai

(तुम मेरे दिल में आते हो,)
लेकिन मेरा दिमाग आपको समझ नहीं पा रहा है।
मुझे पता है कि आपको जानने का यही एकमात्र तरीका है।

वोल्टेरियन के इस तर्क से मैं कुछ खास प्रभावित नहीं हुआ कि अगर घड़ी है तो घड़ी बनाने वाला भी जरूर होगा। मैं कुछ घड़ी बनाने वालों को जानता था। लेकिन मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जिसने दुनिया बनाई हो। इस सरल प्रश्न का सरल उत्तर क्यों नहीं है—अगर ईश्वर ने दुनिया बनाई है, तो ईश्वर को किसने बनाया? जब तक सृष्टि का मूल कारण अज्ञात है, तब तक यह स्वीकार करना अधिक ईमानदार है कि हम नहीं जानते, बजाय इसके कि हम ईश्वर द्वारा छह दिनों में या जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के एक स्वतःस्फूर्त, अंतहीन चक्र में दुनिया बनाने की काल्पनिक कहानियों को स्वीकार करें। शाद अजीमाबादी ने इस दुविधा को एक दोहे में व्यक्त किया है:

सुनी हिकायत-ए-हस्ती तो दरमियान कहो सुनी
Na ibtida kee khabar hai, na intiha maaloom

(हमने जीवन की कहानी के बारे में अब तक केवल उसका मध्य भाग ही सुना है;)
हमें न तो इसकी शुरुआत का पता है, न ही इसके अंत का।

मुझे धर्मशाला में परम पावन दलाई लामा के साथ पुनर्जन्म पर विस्तार से चर्चा करने का अवसर मिला। उन्होंने स्वीकार किया कि बौद्ध होने के नाते ईश्वर के अस्तित्व के प्रति उनका दृष्टिकोण खुला है, फिर भी वे मृत्यु के बाद पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। जब मैंने उनसे अपने इस विश्वास को प्रमाणित करने के लिए प्रमाण मांगा, तो उन्होंने मुझे उन बच्चों के उदाहरण दिए जिन्हें अपने पिछले जन्मों की घटनाएं याद थीं। मैंने आपत्ति जताते हुए कहा, 'परम पावन, आप इन बचकानी कल्पनाओं को ठोस प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते! ऐसा कैसे हो सकता है कि पिछले जन्मों की कहानियां केवल हिंदुओं, जैनियों, बौद्धों और सिखों में ही प्रचलित हैं, जो इन्हीं मान्यताओं के साथ पले-बढ़े हैं? क्या आपने कभी किसी मुस्लिम बच्चे को अपने पिछले जीवन के बारे में बात करते सुना है? और हमारे यहां भी, ज्यादातर किशोरवय से पहले के बच्चे ही अपने माता-पिता या जीवनसाथी को पिछले जन्मों में पहचानने के उदाहरण के रूप में बताए जाते हैं। बड़े होने पर वे सब कुछ भूल जाते हैं।'

दलाई लामा जोर से हँसे - वे हँसते हुए बुद्ध का अवतार हैं - और स्पष्ट रूप से उत्तर दिया, 'अगर मैं पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता तो मेरा धंधा चौपट हो जाता।'

ईश्वर के अस्तित्व पर मेरे सवालों का एक दिलचस्प जवाब राजमोहन गांधी की बारह वर्षीय बेटी सुप्रिया से मिला। मैंने ईश्वर और धार्मिक मान्यताओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए एक लेख लिखा था। यह लेख 13 दिसंबर 1987 को द इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित हुआ था। उस समय सुप्रिया के पिता मद्रास में इसके रेजिडेंट एडिटर थे। मैं वाशिंगटन में था। सुप्रिया ने मुझे लिखा: 'प्रिय अंकल, मैंने पापा के अखबार में आपका लेख पढ़ा। तो आप ईश्वर में विश्वास नहीं करते? आप गलत हैं! मैं आपको बताती हूँ कि ईश्वर का अस्तित्व है। वह हर दिन हमारे बगीचे में आते हैं। वह मेरी मम्मी और पापा से बात करते हैं। वह मुझसे और मेरे छोटे भाई से भी बात करते हैं। बस!' मैं बच्ची के इस उत्साह से प्रभावित हुआ और उसे जवाब में लिखा: 'प्रिय सुप्रिया, यह जानकर मुझे खुशी हुई कि ईश्वर हर दिन तुम्हारे घर आते हैं। और वह तुम्हारी मम्मी, पापा, तुमसे और तुम्हारे छोटे भाई से बात करते हैं। लेकिन वह मुझसे बात नहीं करते। कृपया मुझे उनका फ़ोन नंबर भेज दो।' सुप्रिया ने कोई जवाब नहीं दिया। तीन साल बाद दिल्ली में मेरी मुलाकात उसके माता-पिता से हुई। उन्होंने बड़े दुख के साथ मुझसे कहा: 'सुप्रिया अब ईश्वर में विश्वास नहीं करती।' मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि मैंने महात्मा गांधी और सी. राजगोपालाचारी जैसे दो महान ईश्वर भक्तों की परपोती को ईश्वर में परिवर्तित कर दिया था।

कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में 'अदृश्य शक्ति' का हवाला देते हैं। अधिकांश लोग चमत्कारिक रूप से बचने की घटनाओं से परिचित होंगे—जैसे बाल-बाल विमान दुर्घटना से बचना, या भूकंप के दौरान घर की छत गिरने से घर के अन्य सदस्यों की मौत हो जाना। इस तरह के संयोग मन को चकित तो करते हैं, लेकिन इन्हें इस बात का पुख्ता सबूत नहीं माना जा सकता कि अदृश्य शक्ति ही ईश्वर की शक्ति थी।

ईश्वर के बारे में बहस को अंततः इस बात से ही बल मिलता है कि उनके अस्तित्व में विश्वास करने से विश्वासी बेहतर इंसान नहीं बन जाता और न ही अविश्वासी बदमाश। आंकड़ों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि अधिकांश कालाबाजारी करने वाले, कर चोरी करने वाले, झूठे और गुंडे ईश्वर में विश्वास करते हैं, जबकि अविश्वासियों का एक अच्छा-खासा हिस्सा संत स्वभाव का होता है, दूसरों को चोट पहुंचाने से बचने की कोशिश करता है और झूठ या धोखाधड़ी नहीं करता।

पोठोहार (अब पाकिस्तान में) में कभी बसे सिख व्यापारी समुदाय से जुड़ी एक रोचक कहावत है, जो धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अपने कठोर पालन के साथ-साथ अपनी तीक्ष्ण व्यापारिक प्रथाओं के लिए भी जाना जाता था:

Jhooth vee aseen bolney aan

Ghut vee aseen tolney aan;

सच्चे बादशाह द्वारा

वे सभी बहुत अच्छे हैं।

(हम स्वीकार करते हैं कि हम झूठ बोलते हैं,)
हम छोटे माप भी देते हैं;
लेकिन हे सच्चे राजाओं के राजा,
हम आपका नाम भी लेते हैं।)

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ईश्वर की अवधारणा एक गैस के गुब्बारे की तरह है जो सत्य की सुई से टकराते ही फट जाएगा। या शायद यह विभिन्न रंगों के गैस के गुब्बारों का एक समूह है जिन्हें विभिन्न धर्मों द्वारा अलग-अलग नाम दिए गए हैं। इन रंगीन गुब्बारों में एक ही बात समान है कि उनमें गर्म हवा के सिवा कुछ नहीं है। जिस धर्म को मैंने स्वयं के लिए विकसित किया है और जिसे मैं अपने पाठकों को सुझाता हूँ, उसमें ईश्वर का कोई स्थान नहीं है।
पवित्र कुरान में ईश्वर के अस्तित्व पर सवाल उठाने वालों के लिए भयानक परिणामों का वादा किया गया है। "निःसंदेह, जो लोग ईश्वर के चिन्हों को नकारते हैं, उनके लिए अत्यंत कठोर दंड है; और ईश्वर प्रतिशोध लेने में महान है" (सूरह इमरान 2-7)। ऐसा ही हो।
ईश्वर में आस्था रखने वालों के पास भी उन्हें सर्वशक्तिमान और न्यायप्रिय बताने का कोई ठोस औचित्य नहीं है। हमारे पास जो भी प्रमाण हैं, वे इसके विपरीत ही हैं। कुछ बच्चे जन्म से ही अंधे, विकृत या मानसिक रूप से मंद होते हैं; ईश्वर से डरने वाले माता-पिता, जिन्होंने अपने जीवन में कभी किसी को हानि नहीं पहुंचाई, उन्हें अपने निर्दोष बच्चों को खोने का दंड भुगतना पड़ता है।
अब मैं विभिन्न धर्मों के संस्थापकों की बात करता हूँ। मैंने पाया है कि जहाँ कई लोग ईश्वर के अस्तित्व के प्रति खुले विचारों वाले हैं, वहीं कुछ ही लोग अपने धर्म के संस्थापक की दिव्यता पर सवाल उठाने को तैयार होते हैं। यह बात समझ में आती है, क्योंकि जहाँ हम ईश्वर के बारे में कुछ नहीं जानते, वहीं हम विभिन्न धर्मों के संस्थापकों के बारे में जानने का दावा करते हैं। वे स्त्री से जन्मे मनुष्य थे; वे खाते-पीते थे, शौच करते थे; वे बीमार पड़ते थे और मरते थे। या उनकी हत्या कर दी जाती थी या उन्हें फाँसी दे दी जाती थी। निःसंदेह वे असाधारण शक्तियों वाले अद्भुत पुरुष थे, जिन्होंने जनमानस को प्रभावित किया और इतिहास की दिशा बदल दी। इतिहास में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए यह पर्याप्त है, लेकिन यह हमें उन्हें उन जादुई शक्तियों से नवाजने का औचित्य नहीं देता जो हम किसी अज्ञात ईश्वर को देते हैं। हमसे यह मानने को कहा जाता है कि पृथ्वी पर ईश्वर के ये प्रतिनिधि मृतकों को जीवित कर सकते थे, अपने हाथों के स्पर्श से बीमारों को ठीक कर सकते थे, पलक झपकते ही स्वर्ग जाकर वापस आ सकते थे, अपने हाथों को फैलाकर हिमस्खलन को रोक सकते थे और पानी पर चल सकते थे। और, निश्चित रूप से, उन सभी का सर्वशक्तिमान से सीधा संपर्क था। उनमें से अधिकांश निरक्षर या अर्ध-

साक्षर थे, लेकिन शब्दों का जादू उनमें था और वे अपने अनुयायियों में गहरी भावनाएँ जगाने में सक्षम थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग अपने मानव देवताओं की दिव्यता पर सवाल उठाने वालों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं: 'बा खुदा दीवाना बाशो, बा मोहम्मद होशियार' - अल्लाह के बारे में जो चाहो कहो, लेकिन मोहम्मद के बारे में कहने से सावधान रहो - यह बात सभी धार्मिक समुदायों पर लागू होती है। अब समय आ गया है कि हम अपने धर्मों के संस्थापकों की भूमिका का अधिक परिपक्व मूल्यांकन करें: उन्हें जनमत को आकार देने वाले के रूप में उनका उचित सम्मान दें, लेकिन उनकी पूजा करना न तो उनके प्रति और न ही हमारे प्रति उचित है।

और विभिन्न धर्मग्रंथों के बारे में क्या? हम उन्हें गद्य या पद्य रचनाओं के समान मापदंड से नहीं आंकते। इसके बजाय, हम उन्हें पवित्र मानते हैं और उनमें जादुई शक्तियां निहित कर देते हैं। उनका अध्ययन धार्मिक दर्शन के ग्रंथों के रूप में नहीं, बल्कि जप या पाठ के रूप में किया जाना चाहिए। हम उनके अर्थ को जितना कम समझते हैं, हम उन्हें उतनी ही अधिक शक्ति प्रदान करते हैं। पाली, संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी या संतभाषा जैसी प्राचीन भाषाओं में लिखे धर्मग्रंथ अधिक आकर्षक होते हैं क्योंकि उनके अर्थ बहुत कम लोग जानते हैं। उनका अनुवाद उन भाषाओं में करने से जिन्हें हम समझ सकते हैं, उनकी शक्ति काफी हद तक कम हो जाती है। अनुवादित रूप में पढ़ने पर, गायत्री मंत्र, भजन, कुरान की आयतें जैसे आयतुल कुर्सी या सूरह यासीन, और सिखों का सोहिला, भय को दूर करने और उपचार करने की अपनी प्रसिद्ध शक्तियों को खोते हुए प्रतीत होते हैं। सभी धर्मग्रंथों में कुछ अंश अच्छे गद्य या पद्य हैं, लेकिन कुल मिलाकर वे दोहराव वाले, नीरस और अक्सर अतार्किक होते हैं। व्यक्तिगत रूप से, मैं किसी भी धार्मिक ग्रंथ की तुलना में महान लेखकों, कवियों और नाटककारों - कालिदास, शेक्सपियर, गोएथे, टॉल्स्टॉय, टैगोर, इकबाल, एलियट और फैज - की रचनाएँ पढ़ना अधिक पसंद करूँगा। धर्मनिरपेक्ष गद्य और कविता को आनंदपूर्वक पढ़ा जा सकता है और वे शिक्षाप्रद सिद्ध होते हैं; धार्मिक गद्य और कविता काफी हद तक आत्म-सम्मोहन का अभ्यास है।

पूजा स्थलों के बचाव में कुछ कहा नहीं जा सकता। बिना किसी अपवाद के, ये स्थल व्यापार के केंद्र बन गए हैं, जहाँ पुजारी, पंडित, मुल्ला, मुजावर, ग्रंथी और रागी जैसे परजीवी अपना जीवन यापन करते हैं। अपने संरक्षण में आने वाले इन स्थलों पर चढ़ावे के बदले वे भक्तों द्वारा दिए गए प्रसाद के रूप में मुट्ठी भर प्रसाद ही देते हैं। जब लोग पूजा स्थलों में स्वार्थ साधने लगते हैं, तो ये स्थल विवाद का केंद्र बन जाते हैं, मुकदमों का विषय बन जाते हैं और अक्सर इन्हें बलपूर्वक हथियाने के प्रयास किए जाते हैं। काबा ने कई खूनी लड़ाइयाँ देखी हैं। सिखों के स्वर्ण मंदिर ने भी। अधिकांश हिंदू मंदिरों और आश्रमों के प्रबंधन समय-समय पर अदालतों के समक्ष पेश होते हैं। इस बात पर शायद ही कोई विवाद हो सकता है कि पूजा और प्रार्थना का एकमात्र वैध स्थान अपना घर है। इस्लाम जैसे कुछ धर्म मस्जिदों में सामूहिक प्रार्थना का आदेश देते हैं ताकि अनुयायियों में भाईचारे की भावना पैदा हो सके, लेकिन किसी भी धार्मिक समूह के लिए सार्वजनिक स्थानों पर सभाएं

आयोजित करके, जुलूस निकालकर और लाउडस्पीकरों के माध्यम से अपने विश्वासों का प्रचार करके दूसरों पर अपना प्रभाव थोपना उचित नहीं ठहराया जा सकता। रात भर चलने वाले जागरण एक बढ़ती हुई समस्या है जो बीमारों और बुजुर्गों सहित पूरे इलाके की नींद में खलल डालती है।

अंत में, मैं प्रार्थना और ध्यान की बात करता हूँ, जो हर धर्म का मूल आधार हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि हम भारतीय, चाहे हिंदू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, सिख हों, जैन हों या पारसी हों, दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना में प्रार्थना, तीर्थयात्रा और धार्मिक अनुष्ठानों में अधिक समय व्यतीत करते हैं। हिंदी कहावत 'सात वार और आठ त्योहार' - सप्ताह में सात दिन होते हैं लेकिन आठ धार्मिक त्यौहार - कोई अतिशयोक्ति नहीं है। धार्मिक त्योहारों की संख्या और प्रार्थना करने, तीर्थ स्थलों की यात्रा करने, सत्संगों में भाग लेने, प्रवचन, कीर्तन, भजन, कव्वाली आदि सुनने में बिताए गए घंटों की संख्या गिनिए - यह चौंका देने वाला योग होगा। फिर खुद से पूछिए, क्या हमारे जैसे गरीब, संघर्षरत राष्ट्र के लिए इतना समय उन कार्यों पर खर्च करना उचित है जिनसे कोई भौतिक लाभ नहीं मिलता? यह भी सोचिए, क्या नियमित प्रार्थना करना या माला जपना किसी व्यक्ति को बेहतर इंसान बनाता है? ये कार्य हमेशा अच्छे उद्देश्यों के लिए नहीं किए जाते। लुटेरे, डाकू और बदमाश अपने कुख्यात कृत्यों को अंजाम देने से पहले प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना, हालांकि बाहरी तौर पर ईश्वर, देवता, पैगंबर या गुरु को संबोधित की जाती है, लेकिन असल में यह स्वयं को संबोधित होती है ताकि आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति को बढ़ाया जा सके।

आजकल पढ़े-लिखे भारतीयों में ध्यान का बहुत चलन है। वे बड़े गर्व से कहेंगे, “मैं मंदिर-वंदी नहीं जाता, ध्यान करता हूँ।” इस अभ्यास में पद्मासन में बैठना, श्वास को नियंत्रित करना और मन को शांत करना शामिल है ताकि वह एक विचार से दूसरे विचार पर बंदर की तरह न भटके। वे बड़े-बड़े दावे करते हैं कि इससे कुंडलिनी प्राणों को रीढ़ की हड्डी के निचले भाग से चक्रों के माध्यम से खोपड़ी तक जागृत किया जा सकता है, जिससे भीतर की नागात्मा पूरी तरह जागृत हो जाती है और साधक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। वे कहते हैं कि इससे उन्हें मन की शांति मिलती है। अगर आप उनसे पूछें कि “मन की शांति से क्या मिलता है?” तो आपको कोई जवाब नहीं मिलेगा क्योंकि इसका कोई जवाब है ही नहीं। मन की शांति एक खोखली अवधारणा है जिससे मन की शांति के सिवा कुछ नहीं मिलता, और इसे केवल उच्च रक्तचाप और अशांत मन के उपचार के रूप में ही उचित ठहराया जा सकता है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इससे रचनात्मकता बढ़ती है। इसके विपरीत, यह सिद्ध किया जा सकता है कि कला और साहित्य की अधिकांश महान कृतियाँ, विज्ञान की सभी महान खोजें, अत्यंत उत्तेजित मन द्वारा की गई थीं। अल्लामा इकबाल ने प्रार्थना की:

Khuda tujhey kisee toofaan say aashna kar day
Keh teyrey beher kee maujon men iztirab naheen

ईश्वर आपके जीवन में तूफान लाए।
आपके जीवन के सागर की लहरों में कोई हलचल नहीं है।

वह अक्सर 'तलातुम' शब्द का प्रयोग करते थे, जिसका अर्थ है मन की बेचैनी, जिसे वे रचनात्मकता की अनिवार्य शर्त मानते थे।
बहुत दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर मैंने प्रार्थना और उपासना का त्याग किया। मैंने यह नारा गढ़ा, 'काम ही उपासना है, उपासना काम नहीं है।'
सभी स्वीकृत धर्मों के आधारों को नकारने के बाद, मुझे लगा कि इस खालीपन को भरना आवश्यक है क्योंकि लोगों को किसी न किसी धर्म की आवश्यकता तो होती ही है। सबसे समझदारी भरा समझौता जो मैं सुझा सकता हूँ वह यह है कि हम नाममात्र के लिए उन धर्मों का पालन करें जिनमें हम पले-बढ़े हैं क्योंकि वे हमारे गहरे भावनात्मक जुड़ाव का हिस्सा हैं, लेकिन उनमें जो स्पष्ट रूप से तर्कहीन या अनावश्यक है, उसे त्याग दें। हममें से अधिकांश ने अपने धर्मों को इस बात तक सीमित कर दिया है कि हमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए। कई हिंदुओं के लिए शाकाहार आस्था का विषय है। शाकाहार के अनगिनत रूप हैं, जिनमें वीगनवाद भी शामिल है जो जानवरों, पक्षियों और कीड़ों द्वारा उत्पादित किसी भी चीज को खाने से मना करता है: दूध या दूध से बने उत्पाद नहीं; अंडे या शहद नहीं। कुछ लोग बिना निषेचित अंडे खा लेते हैं लेकिन गाजर, मूली, आलू या लहसुन जैसी जमीन के नीचे उगने वाली सब्जियां खाने से इनकार करते हैं। यह उतना ही बेतुका है जितना चुनिंदा मांसाहार। हिंदू और सिख धर्म में गोमांस वर्जित है लेकिन सूअर का मांस ठीक है। यहूदियों और मुसलमानों के लिए सूअर का मांस खाना हराम है लेकिन गाय का मांस खाना ठीक है। अधिकांश धार्मिक संहिताएं शराब या तंबाकू के सेवन को वर्जित करती हैं। खुद से पूछिए, खाने-पीने का धर्म से क्या लेना-देना है? आहार स्वास्थ्य का विषय है, आस्था का नहीं।
भारत का नया धर्म कर्मठता पर आधारित होना चाहिए। इसमें ऊर्जा पुनः प्राप्त करने और कार्य में लौटने के लिए अवकाश का समय होना चाहिए, लेकिन निरर्थक शौक को हतोत्साहित करना चाहिए। हमें समय बर्बाद नहीं करना चाहिए। पैगंबर मोहम्मद की एक हदीस है: 'ला तसबुद्धरा; हू वल्लाहू' - समय बर्बाद मत करो; समय ही ईश्वर है। भौतिक धन उत्पन्न न करने वाले हर कार्य को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। वैराग्य, वानप्रस्थ और संन्यास को दी गई धार्मिक मान्यता वापस ले लेनी चाहिए। यदि लोग पुण्य कमाना चाहते हैं, तो वे गुफाओं के एकांत में या गंगा के किनारे बैठकर पुण्य नहीं कमाएँगे, बल्कि गरीबों और विकलांगों के बीच काम करके ही पुण्य कमाएँगे। मेरे लिए, मदर टेरेसा, भगत पूरन सिंह, एला भट्ट और पी.के. माधवन सौ शंकराचार्यों, चिन्मयानंदों और अन्य धर्मगुरुओं से कहीं अधिक मूल्यवान हैं। मैं ध्यान का केवल एक ही

तरीका सुझाता हूँ, और वह यह है कि सोने से पहले हर रात दर्पण में अपना चेहरा देखें - अपनी ही आँखों में देखना बहुत मुश्किल काम है - और खुद से पूछें, 'क्या मैंने आज किसी के साथ कोई अन्याय किया है?'

मैं केवल अहिंसा को ही धार्मिक सिद्धांत मानता हूँ। यही वास्तव में परमधर्म है, सर्वोच्च आस्था। बाकी सब गौण हैं।

कई अन्य अतार्किक मान्यताएं भी हैं जिन्हें धार्मिक संरक्षण प्राप्त है। मेरी सूची में सबसे ऊपर ज्योतिष, हस्तरेखा विज्ञान, अंकशास्त्र और भृगु संहिता जैसे प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से भविष्यवाणियां करना है। सभी हिंदू बच्चों की कुंडली बनाई जाती है। विवाह कुंडली मिलान के आधार पर तय किए जाते हैं। सदियों के अनुभव के बावजूद कि सांसारिक घटनाओं को तारों की गति से जोड़ने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, ज्योतिष में हमारा विश्वास अटूट बना हुआ है। पानीपत का तीसरा युद्ध मराठों ने हार लिया, जबकि उनकी सेनापति की संख्या अफगान शत्रुओं से दस गुना अधिक थी, क्योंकि उन्होंने अपने राज्य ज्योतिषी की बात मानी और अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं किया। 1962 में जब आठ ग्रह एक साथ थे (अष्टग्रह), तब हमारे ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि 3 फरवरी को शाम 5:30 बजे दुनिया का अंत हो जाएगा। ट्रेनें, विमान और बसें खाली हो गईं। लोग अपने परिवारों के साथ घरों में ही रहे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए टन घी जलाया गया। कुछ नहीं हुआ, लेकिन दुनिया की नज़रों में भारत बेहद मूर्ख और पिछड़ा हुआ साबित हुआ। किसी भी ज्योतिषी ने इंदिरा गांधी या उनके बेटे राजीव गांधी की हत्या की भविष्यवाणी नहीं की थी। कई ज्योतिषियों ने, अपनी आदत के अनुसार, घटना के बाद भविष्यवाणी करने का दावा किया। मेरे मित्र चरणजीत सिंह ने अपने लिए जो भी जन्म कुंडली बनवाई थी, उन सभी ने उन्हें सत्तर साल से अधिक जीने का वादा किया था। उनकी मृत्यु इक्यावन वर्ष की आयु में हो गई। एक प्रसिद्ध ज्योतिषी, जिनकी भविष्यवाणियाँ मैंने हिंदुस्तान टाइम्स में प्रकाशित की थीं और जिनसे प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्य सलाह लेते हैं, उनकी बेटी की शादी उनके होने वाले पति से कुंडली मिलाने के बाद तय की गई थी। शादी एक महीने के भीतर ही टूट गई। तंत्र-मंत्र में विश्वास आज भी कायम है। श्रीमती गांधी ने बुरी शक्तियों से लड़ने के लिए अपने घर में तांत्रिक अनुष्ठान करवाए थे; गृह मंत्री बूटा सिंह और स्पीकर बलराम जाखड़ ने राजीव गांधी को देवराहा बाबा का आशीर्वाद लेने के लिए राजी किया था, जो नग्न अवस्था में एक पेड़ पर बैठे थे। उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से उनके माथे को छुआ था! कुछ सप्ताह बाद राजीव गांधी प्रधानमंत्री पद से हट गए, बूटा सिंह और जाखड़ संसदीय चुनावों में हार गए। उड़ीसा के मुख्यमंत्री जानकी बल्लभ पटनायक और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव सहित कई मुख्यमंत्री काला जादू का अभ्यास करते हैं। तमिलनाडु की जयललिता प्रतिदिन ज्योतिषी से सलाह लेती हैं। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव सहित अधिकांश भारतीय राजनेता राहु काल (अशुभ मुहूर्त) में विश्वास रखते हैं। ज्योतिषीय पत्रिकाओं का व्यापक प्रसार है और शीर्ष ज्योतिषी भारी आमदनी कमाते हैं। भोले-भाले लोगों के लालच का फायदा उठाकर की गई कमाई से बढ़कर कोई और चीज हराम की कमाई नहीं हो सकती। मैं ज्योतिष के अभ्यास के खिलाफ धार्मिक निंदा की सिफारिश करता हूं।

हर धर्म अपने समय की उपज है और उस समय की सामाजिक और आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विकसित हुआ है। उन्हें शाश्वत सत्य कहना सरासर बकवास है। जब दुनिया में जनसंख्या बहुत कम थी और युद्धों, अकाल और महामारियों ने आबादी के बड़े हिस्से को खत्म कर दिया था, तब धार्मिक शिक्षकों के लिए लोगों को आगे बढ़कर संतानोत्पत्ति करने के लिए कहना उचित था। जब युद्ध में पुरुषों के मारे जाने के कारण महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक हो गई थी, तब बहुविवाह को मान्यता देना उचित था। आज दुनिया के कई हिस्से, विशेष रूप से भारत, अत्यधिक जनसंख्या से ग्रस्त हैं और पुरुष-महिला अनुपात लगभग समान है। द्विविवाह और एक से अधिक संतान रखने वाले दंपतियों को प्रतिबंधित करने के लिए धार्मिक मान्यता होनी चाहिए। एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने की प्रतिज्ञा लेने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है उनसे यह शपथ लेना कि वे अपने पहले बच्चे के जन्म पर स्वेच्छा से नसबंदी करवाएंगे। उन धार्मिक समुदायों को कोई रियायत नहीं दी जानी चाहिए जो गर्भनिरोध को अधार्मिक मानते हैं। अपने देश के भविष्य की परवाह किए बिना भारतीय अपने धार्मिक जुड़ाव की परवाह किए बिना बड़े परिवार रखते हैं। राष्ट्रपति गिरि के सोलह बच्चे थे, प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के आठ बच्चे हैं; बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव, जो आज भी उतने ही चुस्त-दुरुस्त हैं, उनके नौ बच्चे हैं। इनमें से कोई भी कैथोलिक या मुस्लिम नहीं था और न ही है, जिन पर अंधाधुंध संतानोत्पत्ति का आरोप लगाया गया हो।

मैं न केवल एक संतान के नियम को विवाह प्रतिज्ञाओं का अभिन्न अंग बनाऊंगा, बल्कि दुल्हन के माता-पिता को प्रोत्साहित करूंगा कि वे कंडोम की आपूर्ति को उसके दहेज का हिस्सा बनाएं और विवाह अनुष्ठान संपन्न करने वाले पुजारी द्वारा इसे आशीर्वादित करवाएं।

एक और परंपरा जिसे धर्म का समर्थन प्राप्त है और जिसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है, वह है हिंदू, सिख, जैन और बौद्ध धर्म में मृतकों के अंतिम संस्कार का तरीका। पुराने समय में दो प्रकार के अंतिम संस्कार प्रचलित थे: शवों को लकड़ी से जलाना और उन्हें नदियों में बहाना (जल परवाह)। अधजले शवों को नदियों में बहाना आज भी चोरी-छिपे किया जाता है। लेकिन सबसे आम तरीका है शवों को चिता पर जलाना। कुछ ही बड़े शहरों में गैस या बिजली से चलने वाले श्मशान घाट हैं। इनका उपयोग लगभग पूरी तरह से शिक्षित धनी लोग या भिखारियों के लावारिस शवों के अंतिम संस्कार के लिए किया जाता है। औसतन, प्रत्येक शव के अंतिम संस्कार के लिए दो क्विंटल लकड़ी की आवश्यकता होती है। दिल्ली में प्रतिदिन सौ से अधिक हिंदू-सिख-जैन या बौद्ध मृत होते हैं। मुंबई और कोलकाता जैसे अन्य बड़े शहरों में मृत्यु दर कहीं अधिक है। यह अनुमान लगाया गया है कि मानव शवों के अंतिम संस्कार के लिए प्रतिवर्ष दो करोड़ क्विंटल लकड़ी नष्ट हो जाती है। एक ऐसे देश में जहां पहले से ही वन क्षेत्र खतरनाक रूप से कम है और इसलिए मिट्टी का कटाव और बांधों में गाद जमा होने की समस्या है, वहां हर दिन पूरे जंगल आग की चपेट में आ जाते हैं। इसका समाधान अधिक गैस या बिजली से चलने वाले श्मशान घाट बनाना नहीं है - हमारे पास उन्हें बनाने के साधन नहीं हैं - बल्कि हर गांव, कस्बे और

शहर के पास हिंदू-सिख-जैन-बौद्ध कब्रिस्तान बनाना है। इन धर्मों में लकड़ी से दाह संस्कार करने की कोई अनिवार्यता नहीं है। दक्षिण भारत में कई हिंदू समुदाय अपने मृतकों को दफनाते हैं। अन्नादोराई और सी. रामचंद्रन को दफनाया गया था। सांसद और गीता के महान प्रतिपादक स्वामी चिन्मयानंद को उनकी कुर्सी पर बैठाकर दफनाया गया था। कई जैन मुनियों को भी दफनाया गया है। ये कब्रिस्तान मुस्लिम या ईसाई कब्रिस्तानों की तरह पक्के मकबरे नहीं होने चाहिए। जगह बचाने के लिए मृतकों को जमीन में खड़ा करके दफनाया जाना चाहिए और उनके ऊपर कोई स्मारक पट्टिका नहीं लगाई जानी चाहिए। इसके बजाय, उस स्थान पर एक पेड़ लगाया जाना चाहिए, या हर पांच साल में जमीन को खेती के लिए जोत दिया जाना चाहिए। समुद्र तट पर रहने वाले लोगों को अपने मृतकों को समुद्र तट से कुछ दूरी पर समुद्र में विसर्जित करना चाहिए।

मैंने अपनी वसीयत में लिखा है कि मुझे बिना किसी धार्मिक अनुष्ठान के बहाई कब्रिस्तान में दफनाया जाए। बहाई समुदाय ने मेरी यह इच्छा मान ली है, बशर्ते वे मेरी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना कर सकें। चूंकि मैं आत्मा में विश्वास नहीं करता, इसलिए मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

हमें वृक्षों की पूजा को पुनर्जीवित करना होगा - धार्मिक आराधना की वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित किए जाने योग्य वस्तुओं के रूप में। चिपको आंदोलन को धार्मिक समर्थन दिया जाना चाहिए, और फर्नीचर या भवन निर्माण में लकड़ी के उपयोग पर प्रतिबंध लगाकर उसकी जगह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कृत्रिम सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए। हरियाणा और राजस्थान के बिश्नोई जैसे समुदाय वृक्षों की कटाई और पशुओं की हत्या को वर्जित करते हैं। उनकी इस प्रथा को सार्वभौमिक बनाया जाना चाहिए। खेल के लिए पशुओं की हत्या के विरुद्ध धार्मिक मान्यता होनी चाहिए। पशु एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं, लेकिन मनुष्यों के पास भोजन के अन्य स्रोत हैं, इसलिए उन्हें अपने शरीर को पशुओं का मकबरा बनाने से रोका जाना चाहिए।

वृक्षारोपण को धार्मिक अनुष्ठानों और हमारी शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक मुंडन, जनेऊ संस्कार या विवाह समारोह में एक निश्चित संख्या में वृक्षारोपण अनिवार्य होना चाहिए। छात्रों को उनकी डिग्री या डिप्लोमा तब तक नहीं दिए जाने चाहिए जब तक वे एक निश्चित संख्या में वृक्षारोपण और उनकी देखभाल करके उन्हें स्वस्थ न कर लें। मृतकों द्वारा छोड़ी गई दान-पुण्य की वस्तुओं में वृक्षारोपण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए - मंदिरों, मस्जिदों, स्कूलों या अस्पतालों के निर्माण से भी ऊपर। वृक्षारोपण को राष्ट्रव्यापी जन आंदोलन बनाना होगा। तभी हम अपने देश को उतना ही हरा-भरा, स्वस्थ और खुशहाल बना पाएंगे जितना कि हमारे पूर्वजों के समय में था। केवल राज्य यह कार्य नहीं कर सकता। यदि आज के समय में धर्म का कोई अर्थ होना है, तो उसे ऐसे आंदोलनों को अपना नैतिक समर्थन देना होगा।

इस अध्याय में मैंने जो कुछ लिखा है, वह ज्यादातर उन बातों का सारांश है जो मैंने दर्जनों लेखों और सार्वजनिक भाषणों में लिखी और कही हैं। हालांकि, मुझे लगा कि जब तक मैं अपने विश्वासों को और अधिक विस्तार से नहीं बताता, तब तक मेरी जीवन कहानी अधूरी रहेगी।

17 लेखन और लेखकों पर

मैं पहले ही उन परिस्थितियों का जिक्र कर चुका हूँ जिन्होंने मुझे कानून से जनसंपर्क, अध्यापन और अंततः पत्रकारिता एवं लेखन की ओर मोड़ा। मुझे उन लेखकों के बारे में कुछ कहने के लिए प्रेरित किया गया है जिनसे मैं मिला, जिन्होंने मुझे प्रभावित किया, लेखक बनने के लिए क्या आवश्यक है, क्या लेखन आनंददायक है और क्या इससे अच्छी आजीविका कमाई जा सकती है।

स्कूल और कॉलेज में पढ़ाई में कमज़ोर प्रदर्शन के बावजूद, बचपन से ही मेरे मन में लेखक बनने की ख्वाहिश थी। जूनियर स्कूल में पढ़ते समय भी, मैंने एक बार उपन्यास लिखने के लिए नोटबुक खरीदी थी। पहले पन्ने पर मैंने मोटे अक्षरों में उसका शीर्षक लिखा: 'शीला', लेखक: खुशवंत सिंह। उस उम्र में शीला नाम मुझे अति आधुनिक और आम शीला से कहीं ज़्यादा प्रभावशाली लगता था, जिसमें सिर्फ़ एक 'ल' होता था। मैं उन एथलेटिक लड़कियों से बहुत प्रभावित थी जो लाल रिबन से बंधी चोटी बनाती थीं, शॉर्ट्स पहनती थीं और लड़कों से चतुराई भरी बातें करती थीं। मैं कई दिनों तक नोटबुक अपने साथ रखती रही और शायद अपनी नायिका के बारे में कुछ पंक्तियाँ भी लिख डालीं। 'शीला' कभी लिखी नहीं जा सकी।

इंग्लैंड में कॉलेज और इन्स ऑफ कोर्ट में बिताए अपने पाँच वर्षों के दौरान लेखन में हाथ आजमाने की मेरी इच्छा और भी ठोस रूप लेने लगी। मुझे कानून की किताबें उबाऊ लगती थीं, लेकिन कथा साहित्य और कविताएँ पढ़ना मुझे अच्छा लगता था। सौभाग्य से, मेरी याददाश्त अच्छी होने के कारण, मैंने भारत में सीखी कविताओं के भंडार में और कविताएँ जोड़ लीं। मुझे यह भी हल्का-सा आभास हुआ कि जहाँ कविता कवि के भीतर से स्वतः निकल आती है, वहीं गद्य लेखन के लिए व्यापक पठन-पाठन और एक विस्तृत शब्दावली की आवश्यकता होती है। मैंने हमेशा अपने पास एक शब्दकोश रखना शुरू कर दिया और हर उस शब्द को चिह्नित करने लगा जिसे मैं नहीं समझता था। मैं बाइबिल की ओर वापस लौटा, जिससे मेरा परिचय सेंट स्टीफंस कॉलेज में हुआ था। मुझे नया नियम कुछ हद तक पांडित्यपूर्ण लगा, जबकि पुराना नियम अधिक काव्यात्मक। मैंने सुलैमान का गीत, भजन संहिता, नीतिवचन और अय्यूब की पुस्तक को बार-बार पढ़ा और उनके अंशों को याद किया, जिनमें से कुछ आज भी मुझे याद हैं। उसी समय, मैंने बहुत सारी निरर्थक कविताएँ भी पढ़ीं; लिमरिक्स, क्लेरीह्यूज़, नर्सरी राइम्स, लुईस कैरोल और गिल्बर्ट और सुलिवन के ओपेरा। एक पंजाबी देहाती से मैंने खुद को एक मध्यमवर्गीय अंग्रेज सज्जन बनाने की कोशिश की। मैंने द टाइम्स के क्रॉसवर्ड भी हल करना शुरू कर दिया, एक ऐसी लत जिस पर मैंने अपने जीवन के कई अनमोल घंटे बर्बाद कर दिए। मैंने जितने भी उपन्यास पढ़े, उनमें से एल्डस हक्सले और समरसेट मॉघम ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया। काश मैं हक्सले की तरह शब्दों का प्रयोग और व्यंग्यात्मक हास्य विकसित कर पाता, साथ ही मॉघम की तरह पाठक का ध्यान खींचने की क्षमता भी। लेकिन, सच कहूँ तो, मुझे लिखने की

प्रेरणा महान लेखकों से नहीं, बल्कि उन औसत दर्जे के लेखकों से मिली, जो मुख्य रूप से भारतीय थे और इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रकाशित हो चुके थे। मैंने मुल्क राज आनंद, राजा राव और आर.के. नारायण को पढ़ा। मुझे लगा कि मैं भी उनके जितना अच्छा लिख सकता हूँ, और अगर वे विदेशों में प्रकाशित हो सकते हैं, तो मैं भी हो सकता हूँ। मेरा यह आत्म-आकलन काफी हद तक गलत नहीं था।

इंग्लैंड में अपनी दूसरी पोस्टिंग के दौरान मैंने लेखन को करियर बनाने के बारे में गंभीरता से सोचा। कई महत्वाकांक्षी लेखकों की तरह, मैंने भी प्रसिद्ध साहित्यकारों से दोस्ती करने और उनसे अपनी किताबों पर हस्ताक्षर करवाने की कोशिश की। मुझे फ्रांकोइस मौरियाक के उपन्यासों की हस्ताक्षरित प्रतियां और उनकी तस्वीर मिली। मुझे आंद्रे गिडे द्वारा उनकी महिला सचिव के लिए लिखा गया एक हस्तलिखित पत्र मिला; मैंने स्टीफन स्पेंडर, मैरी मैकार्थी, नॉर्मन मेलर, कॉम्पटन मैकेंज़ी, सैशेवरेल सिटवेल, डायलन थॉमस, रोज़ामंड लेहमैन, सैमुअल बेकेट और कुछ अन्य लेखकों से हाथ मिलाया। लेखकों के प्रति यह बचकाना श्रद्धा कुछ वर्षों तक चली, फिर मुझे एहसास हुआ कि लेखकों को जानने से कोई लेखक नहीं बन सकता। लेखन एक एकाकी पेशा है जिसमें आपके अलावा कोई आपकी मदद नहीं कर सकता। लेखन की दुनिया में गुरु-शिष्य, मार्गदर्शक-संरक्षक जैसा कोई संबंध नहीं होता। एक लेखक को अपना मार्गदर्शक और अंतिम निर्णायक स्वयं ही बनना पड़ता है।

लंदन में मेरी दूसरी पोस्टिंग के दौरान सिखों का संक्षिप्त इतिहास और गुरु नानक की सुबह की प्रार्थना का पद्य अनुवाद प्रकाशित हुआ। दिल्ली लौटने तक मेरे उपन्यास 'मनो-मजरा' (पाकिस्तान की ट्रेन) का आधा से अधिक भाग मेरे सामान में था। इसे पूरा करने में मुझे भोपाल में अकेले एक और महीना लग गया। इन सब बातों का जिक्र मैं पहले ही एक अध्याय में कर चुका हूँ।

अगले दो वर्षों में, ऑल इंडिया रेडियो की बाह्य सेवा में काम करते हुए, मेरी मुलाकात नीरद सी. चौधरी, रूथ झबवाला और मनोहर मालगांवकर से हुई। तीनों मेरे घनिष्ठ मित्र बन गए। नीरद बाबू की आत्मकथा 'एक अज्ञात भारतीय' अभी-अभी प्रकाशित हुई थी। इसने भारतीय सरकारी हलकों में हलचल मचा दी थी क्योंकि यह ब्रिटिश साम्राज्य को समर्पित थी, जिसके लिए नीरद बाबू ने भारत की हर अच्छी चीज़ को जिम्मेदार ठहराया था। मैं अंग्रेजी भाषा पर उनकी पकड़, बंगाल के ग्रामीण इलाकों के उनके वर्णन और देश की समस्याओं के उनके अनूठे विश्लेषण से मुग्ध हो गया था। मैंने उनसे उस समय मित्रता मांगी जब उन्हें समाज से बहिष्कृत घोषित कर दिया गया था। उन्हें मित्रों की आवश्यकता थी और उन्होंने मेरी मित्रता का हाथ सहर्ष स्वीकार किया।

नीराद बाबू कद में छोटे थे, सूट और टाई पहनते थे और एक बड़ी खाकी सोल टोपी लगाते थे जो उनके साइज से थोड़ी बड़ी होती थी। वे देखने में हास्यास्पद लगते थे। जब वे घर से बाहर निकलते, तो गली के बच्चे उनके पीछे-पीछे 'जॉनी वॉकर, जॉनी वॉकर' चिल्लाते हुए चलते थे। उनका गुस्सा भी बहुत तेज था। एक बार दफ्तर में उनके रूममेट ने उन पर अंग्रेजों की चापलूसी करने का आरोप लगाया। नीराद बाबू को बहुत गुस्सा आया और वे चिल्लाए, 'अरे कमीने, अपनी बात वापस ले वरना मैं तेरा सिर फोड़ दूंगा।' उस आदमी ने अपनी बात वापस लेने से इनकार कर दिया। इस पर नीराद बाबू उसकी मेज के पास गए और एक भारी कांच के पेपरवेट से उसे तब तक बेरहमी से मारा जब तक खून नहीं निकल आया। दोनों शिकायत दर्ज कराने विभाग की प्रमुख मेहरा मसानी के पास गए। बेचारी मेहरा उन्हें बच्चों जैसा व्यवहार करने के लिए डांटने के अलावा कुछ नहीं कर सकीं। नीराद चौधरी के लिए उनके दिल में एक खास जगह थी और ज्यादातर खुले विचारों वाले भारतीयों की तरह, वे उनके साहस और विद्वत्ता की प्रशंसा करती थीं। सूचना एवं प्रसारण मंत्री केसकर उनमें से एक नहीं थे। जब उनका ध्यान इस समर्पण की ओर गया, तो उन्होंने नीरद चौधरी को सेवा से बर्खास्त करने का आदेश दिया और नीरद के लेख प्रकाशित करने वाले अखबारों को ब्लैकलिस्ट करने की धमकी दी। नीरद, जिनके पास कोई निजी संपत्ति नहीं थी और परिवार का भरण-पोषण करना था, अत्यंत संकट में थे। मेहरा मसानी, रूथ झबवाला, उनके पति और मैं सहित कुछ मित्र उनके साथ खड़े रहे। हमने उन्हें और उनकी पत्नी को अपने घर आमंत्रित करना अनिवार्य कर दिया। वहाँ उनकी मुलाकात कई विदेशी प्रशंसकों से हुई। एक पुस्तक ने उन्हें प्रसिद्धि दिलाई। उनके प्रशंसकों में मेरे पिता शोभा सिंह भी थे, जिन्होंने उन्हें पढ़ा तो नहीं था, लेकिन उनके बारे में केवल मुझसे ही सुना था। जब भी वे हमारे घर आते, मेरे पिता उन्हें अपने बगीचे में ले जाकर गुलाब की अपनी अनूठी किस्में दिखाते थे। नीरद ब्रिटिश उपाधियों वाले लोगों के प्रति अत्यधिक सम्मान रखते थे, और मेरे पिता एक नाइट थे। मेरे पिता ने महसूस किया कि नीरद बाबू अपने अंग्रेज मित्रों के बीच बहुत लोकप्रिय थे और हर पार्टी में आकर्षण का केंद्र थे। उनके बीच बहुत अच्छे संबंध थे।

नीराद का स्वभाव काफी उत्तेजक था। एक बार जब वह झबवई परिवार के साथ भोजन कर रहा था, तो उसने झब की माँ से कहा कि भारतीय पारसियों को अपना साथी भारतीय नहीं मानते। मम्मा झबवला, जिनके पति मेरठ षड्यंत्र मामले में जेल में थे, अपना आपा खो बैठीं और भड़क उठीं: 'अरे अंग्रेजों के चाटुकार, हमारी देशभक्ति पर सवाल उठाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?' वह अपने कमरे में जाने के लिए पार्टी छोड़कर चली गई। नीराद अविचलित रहा और उसने अपनी बात दोहराई। नीराद बाबू की खासियत यह थी कि उन्हें हर विषय का इतना ज्ञान था जितना मैंने आज तक किसी और को नहीं देखा था। उनका ज्ञान किसी विश्वकोश जैसा था। चाहे इतिहास हो, साहित्य हो, विज्ञान हो, प्राकृतिक घटनाएँ हों या कुछ भी, उन्हें सब कुछ पता था। एक बार ब्रिटिश काउंसिल के प्रमुख हेनरी क्रूम जॉनसन के घर पर एक पार्टी में, मैंने हेनरी की पत्नी जेन से कहा कि मैंने सुबह विटजेनस्टाइन नाम के किसी व्यक्ति और उनके जल-विज्ञान के सिद्धांत पर एक विद्वतापूर्ण व्याख्यान

सुना। मैंने कहा, 'मुझे नहीं लगता कि श्रोताओं में से किसी ने भी विटजेनस्टाइन का नाम सुना होगा,' मुझे यह एहसास नहीं था कि विटजेनस्टाइन दार्शनिक जगत में एक महान हस्ती थे। मैंने कुछ बेबाकी से आगे कहा, 'मैं शर्त लगाता हूँ कि चौधरी के अलावा इस कमरे में कोई भी उन्हें नहीं जानता होगा।' मेरी शर्त मान ली गई।

जेन ने अपने सभी मेहमानों को यह बात बताई, जो सभी विद्वान थे। किसी ने भी विटजेनस्टाइन के बारे में नहीं सुना था, लेकिन नीरद बाबू ने विटजेनस्टाइन के सिद्धांत पर अपने विचार व्यक्त किए। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक मेरे घर में एक और घटना हुई। मैंने आइसलैंड के नोबेल पुरस्कार विजेता सिलानपी को अपने साथ रात्रिभोज के लिए आमंत्रित किया था और कुछ भारतीय लेखकों को उनसे मिलने के लिए बुलाया था। नीरद चौधरी ने शाम को नोबेल पुरस्कार विजेता को आइसलैंडिक साहित्य पर व्याख्यान देकर अपना समय और प्रभाव जमा लिया।

नीराद बाबू की अपनी कुछ अनोखी आदतें थीं। अपनी छत पर बने बगीचे में वे कई तरह के कैक्टस उगाते थे, जो सूर्योदय के समय एक-दो घंटे के लिए खिलते थे। वे दूर स्थित मोरी गेट स्थित अपने फ्लैट में लोगों को यह अद्भुत नजारा देखने के लिए आमंत्रित करते थे। उस मनमोहक समय को देखने के लिए गाड़ियों का काफिला शहर भर से होकर गुजरता था। वे शायद ही कभी किसी को खाने पर बुलाते थे क्योंकि खाना उनकी पत्नी को ही बनाना पड़ता था। लेकिन जब भी बुलाते थे, वह एक अविस्मरणीय अनुभव होता था। घर पर वे हमेशा बंगाली कुर्ता-धोती पहनते थे और फर्श पर पालथी मारकर बैठकर लिखते थे। हर रात के खाने में वे चुनिंदा पुरानी वाइन रखते थे। पहले वे अपने मेहमानों को उस क्षेत्र के बारे में बताते थे जहाँ से वह वाइन आती थी, सबसे अच्छे वाइन वर्ष और उसकी खास सुगंध के बारे में जानकारी देते थे। फिर वे छोटे-छोटे गिलासों में थोड़ी-थोड़ी वाइन परोसते हुए यूरोप के कांच उद्योग के बारे में और भी जानकारी देते थे। गिलास भरने के लिए कभी भी पर्याप्त वाइन नहीं होती थी। परोसा जाने वाला भोजन बंगाली होता था। चौधरी परिवार को गोमांस या सूअर का मांस खाने में कोई झिझक नहीं थी, लेकिन उन्हें मछली की करी (माछेर झोले) ज्यादा पसंद थी।

नीराद बाबू के साथ मेरी दोस्ती एकतरफा थी। वो मेरे गुरु थे, मैं उनका विनम्र शिष्य। जब भी वो मुझसे असहमत होते, मुझे मूर्ख कह देते। उनकी पत्नी अक्सर कहती थीं, 'अगर तुम ऐसे ही बर्ताव करोगे तो अपना इकलौता दोस्त भी खो दोगे।' मेरा उन्हें खोने का कोई इरादा नहीं था। मुझे पूरा यकीन है कि उनका भी नहीं था। उनकी कई किताबों में मेरा ज़िक्र है, उनके किसी और भारतीय प्रशंसक का नहीं। मैं जानता था कि वो भारत से प्यार करते थे, लेकिन भारतीयों को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। जब वो मैक्स मुलर की जीवनी लिखने इंग्लैंड गए, तो मुझे लगा कि वो कभी वापस नहीं लौटेंगे। वो पूरी ज़िंदगी ऑक्सफोर्ड में ही रहे।

रूथ प्रावर झबवाला के साथ शुरुआत में सब कुछ बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ा। वह पोलिश यहूदी मूल की एक शर्मीली और शांत स्वभाव की युवती थीं। जब वह दुल्हन बनकर भारत आईं, तो उन्हें हर भारतीय चीज़ से लगाव हो गया, जिसमें उनके

वास्तुकार पति भी शामिल थे। उनके विवाह को लेकर उनकी मां की घोर असहमति की कहानी प्रचलित थी। जब रूथ ने इंग्लैंड में वास्तुकला के एक युवा पारसी छात्र से प्रेम संबंध शुरू किया, तो उनकी मां चिंतित हो गईं। जब रूथ ने उनसे शादी करने का फैसला सुनाया, तो कहा जाता है कि उनकी मां ने कहा, 'लेकिन वह तो गोये भी नहीं हैं!' वे एक-दूसरे से बहुत प्यार करते थे। इसका एक प्रमाण यह था कि रूथ हर दूसरे साल गर्भवती हो जाती थीं: उनकी तीन प्यारी बेटियां थीं।

ऑल इंडिया रेडियो के बाह्य सेवा विभाग के अंग्रेजी अनुभाग का प्रभारी रहते हुए मेरी मुलाकात रूथ से हुई। मैंने उन्हें हमारे लिए वार्ता रिकॉर्ड करने के लिए आमंत्रित किया। उनकी स्क्रिप्ट अच्छी होती थी और उन्हें रिकॉर्ड किए गए अंशों को शायद ही कभी दोहराना पड़ता था। स्टूडियो जाने के लिए और एक कप कॉफी के लिए जब वह कुछ मिनटों के लिए मेरे कमरे में आईं, तो मैं उनका विश्वास जीतने में कामयाब रहा। वह बेहद कम बोलने वाली थीं। मुझे लगता है कि मेरी इजरायल समर्थक भावनाएँ (मैंने भारत-इजरायल मैत्री समिति की स्थापना की थी) ही थीं जिन्होंने उन्हें मेरे प्रति नरम बनाया। वह एक कट्टर ज़ायोनिस्ट थीं।

पहली बार जब वह और उनके पति चौधरी परिवार और मेहरा मसानी के साथ डिनर पर आए, तो वे दोनों लगभग पूरी शाम एक-दूसरे से चिपके रहे। उनके पति थोड़े चिड़चिड़े स्वभाव के थे और केवल अपने परिचितों के साथ ही सहज महसूस करते थे। उसके बाद, जब भी हम उन्हें डिनर पर आमंत्रित करते, हमें अपने अन्य मेहमानों का ध्यान रखना पड़ता था। रूथ के शुरुआती कुछ उपन्यासों ने उन्हें कई विदेशी प्रशंसक दिलाए थे और दिल्ली में दूतावासों के लोग उनसे मिलना चाहते थे। मैंने पाया कि कोई जर्मन कितना भी नाज़ी-विरोधी क्यों न हो, रूथ को उससे बात करने में कठिनाई होती थी। जब भी झबवाला परिवार मौजूद होता था, हमारी अधिकांश पार्टियाँ करीबी दोस्तों के एक छोटे समूह तक ही सीमित रहती थीं: मेहरा मसानी, नीरद चौधरी परिवार और बाद में, ब्रिटिश उच्चायुक्त की पत्नी कैथरीन फ्रीमैन।

रूथ की नज़र बहुत कमज़ोर थी और दिल्ली में कई साल रहने के बाद भी उनकी हिंदुस्तानी भाषा बहुत ही शुरुआती स्तर की थी। उनके पाठक हैरान होते थे कि वे भारतीय पात्रों का इतना सटीक चित्रण और संवाद कैसे लिख पाती थीं। जिन निम्न मध्यमवर्गीय भारतीयों के बारे में वे लिखती थीं, उनमें से कई को वे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानती थीं। उनके पति एक अच्छे कहानीकार और बेहतरीन नकलची थे। वे भारतीयों को उनकी नज़रों से देखती थीं और उनकी बातें सुनती थीं।

कई गर्मियों में झबवाला परिवार कसौली आता था और हमारे बंगले राज विला से कुछ ही दूरी पर स्थित अलासिया होटल में ठहरता था। वे लगभग हर दूसरे दिन हमारे घर आते-जाते रहते थे। एक बार मैं उनकी बड़ी सी स्टेशन वैगन में उनके साथ दिल्ली तक गया। रास्ते भर एक लड़की बीमार रही और गाड़ी में खराबी आने लगी। झब ने गाड़ी ठीक करवाने के लिए पानीपत बाजार में एक मैकेनिक की दुकान पर गाड़ी रोकी। देखते ही देखते हम उत्सुक लोगों से घिर गए। झब एक आकर्षक और मिलनसार युवक था। उसकी माँ और तीन सुंदर लड़कियाँ किसी खूबसूरत पारिवारिक तस्वीर की तरह लग

रही थीं। शायद मुझे उनका ड्राइवर समझ लिया गया था। झब भीड़ से चिढ़ने लगा और बोला, 'भाई, ये कोई तमाशा है?' - भाइयों, क्या ये कोई तमाशा है? - कुछ लोग मुँह फेरकर खड़े हो गए, कुछ अपनी जगह पर खड़े हो गए। झब की आवाज़ तेज़ होती गई। तभी किसी ने कहा, 'कोई अभिनेता मालूम होता है' - लगता है ये कोई अभिनेता है। इस बात से झब को गहरा सदमा लगा और वह भड़क उठे, 'एक्टर तेरा बाप, एक्टर तेरी मां, एक्टर तेरी बहन, एक्टर तेरी बेटी' — यानी अपने पिता, माता, बहन और बेटी, सबका अभिनय करो। इसका असर हुआ और भीड़ तितर-बितर हो गई।

रूथ झबवाला के उपन्यासों को कालानुक्रमिक क्रम में पढ़ने पर पाठक को भारत और भारतीयों के प्रति उनकी बढ़ती हुई निराशा का अहसास होगा। यह प्रक्रिया उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'हीट एंड डस्ट' के साथ पूरी होती है, जिसके लिए उन्हें बुकर पुरस्कार मिला। मुझे आभास हुआ कि एक दिन नीरद चौधरी की तरह वह भी भारत छोड़कर यूरोप या संयुक्त राज्य अमेरिका में बस जाएंगी। जब उन्हें निर्णय लेने का समय आया, तब तक उनके कुछ उपन्यासों पर मर्चेंट-आइवरी टीम द्वारा फिल्में बन चुकी थीं। और भी कई उपन्यास निर्माणधीन थे। उनके फिल्म निर्माता न्यूयॉर्क में रहते थे। इसलिए रूथ ने न्यूयॉर्क को चुना। तब तक उनके पति को पता चल गया था कि वे इमारतों के डिजाइन के साथ-साथ चित्र भी बना सकते हैं। दिल्ली के प्राचीन स्मारकों के उनके रेखाचित्र तुरंत लोकप्रिय हो गए।

रूथ ने मेरी मुलाकात अनीता देसाई से कराई, जो एक व्यवसायी की आधी यहूदी और आधी बंगाली पत्नी थीं। वह दुबली-पतली, सुंदर महिला थीं और उनके दो छोटे बच्चे थे। मुझे लगता है कि वह रूथ से प्रेरित थीं और उनके यहूदी होने ने उन्हें करीब ला दिया था। उनकी लेखन शैली में एक खास समानता थी और अनीता को भी अपने देशवासियों की तुलना में विदेशियों के बीच अधिक सम्मान प्राप्त था। उन्होंने एक ग्रीष्मकाल कसौली में बिताया। उस वर्ष एक भयानक जंगल की आग लगी जिसने ज्वलनशील चीड़ की पत्तियों से ढकी पूरी पहाड़ी को तबाह कर दिया। कुछ घर भी जलकर राख हो गए। अनीता का उपन्यास 'फायर ऑन द माउंटेन' इसी अनुभव पर आधारित था। रूथ की तरह, अनीता भी अपनी यहूदी विरासत के प्रति सचेत रहीं। उनका उपन्यास 'बॉमगार्टनर बॉम्बे' एक यहूदी परिवार की कहानी है।

ऑल इंडिया रेडियो में अपने दो वर्षों के दौरान, मुझे एक ऐसे व्यक्ति के लेखन के प्रति लगाव को पोषित करने का अवसर मिला, जिन्हें बाद में भारत का जॉन मास्टर्स कहा जाने लगा। मास्टर्स की तरह, मनोहर (मैक) मालगांवकर भी सेना में सेवा कर चुके थे। वे एक कुशल शिकारी थे और विदेशी पर्यटकों को बाघों के शिकार पर ले जाने के लिए ट्रैवल एजेंसियों से असाइनमेंट लेते थे। जल्द ही वे इन खूबसूरत जानवरों के नरसंहार से व्याकुल हो गए और उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी। उन्होंने मुझे अपनी लिखी एक लघु कहानी सुनाई, जिसमें उन्होंने बताया था कि कैसे उन्होंने एक विशाल, सुंदर लेकिन मूर्ख युवा बाघ की जान बचाई थी, जो सड़क के बीचोंबीच लेटने की आदत रखता था। राइफल लिए किसी भी व्यक्ति के लिए वह एक आसान शिकार हो सकता था। मैक ने उसके पास गोलियां चलाईं ताकि उसे चेतावनी दी जा सके कि मनुष्य खतरनाक

जानवर हैं और उनसे दूरी बनाए रखनी चाहिए। बाघ ने ऐसा करना बंद कर दिया। मैंने कहानी प्रसारित करवाई। इसके बाद मैक मालगांवकर को कोई रोक नहीं सका। उनकी कलम से उपन्यासों की एक श्रृंखला निकली - तेज गति वाले, मर्दाना और नाटकीयता से भरपूर। इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका में उन्हें खूब सराहा गया। महाराष्ट्रियन होने के नाते, उन्होंने मराठा नायकों पर कई ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। किताबें लिखने के दौरान, मैक को पता चला कि उनके हाथ में सोने की खान है; गोवा से कुछ ही दूरी पर स्थित उनकी पैतृक संपत्ति में मैंगनीज मौजूद है। अब वे एक बड़े बगीचे और निजी स्विमिंग पूल वाले विशाल घर में एक अंग्रेज़ शिष्ट व्यक्ति की तरह रहते हैं। किताबें और अखबारों के लिए लेख लिखते समय वे स्कॉच, फेनी और वाइन का आनंद लेते हैं।

मैं उस समय जीवन के उस दौर में था जब मेरा मानना था कि जो भी अच्छा लिखता है, उससे मिलना चाहिए। इसलिए मैंने सास्थी ब्रता से दोस्ती करने की पूरी कोशिश की। यह उनका असली नाम नहीं था, बल्कि बंगाली ब्राह्मण नाम भट्टाचार्य का संक्षिप्त रूप था। मैंने ब्रता का आत्मकथात्मक उपन्यास 'कन्फेशंस ऑफ एन इंडियन वुमन-ईटर' पढ़ा, जो इंग्लैंड में प्रकाशित हुआ था। मैंने इससे पहले इतना स्पष्ट रूप से कामुक और बेहतरीन ढंग से लिखा हुआ कुछ नहीं पढ़ा था जितना कि एक बेकाबू कैसानोवा के कारनामों का वर्णन। मैंने 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' में अपने लेखों में इसकी खूब प्रशंसा की। मैंने 'द स्पेक्टेटर' और 'द न्यू स्टेट्समैन' जैसी प्रतिष्ठित अंग्रेजी पत्रिकाओं में उनके लिखे लेख भी पढ़े - जो बहुत ही स्पष्ट और सुस्पष्ट थे। बाद में मुझे पता चला कि सास्थी ब्रता 'द स्टेट्समैन' (कलकत्ता और दिल्ली) के लिए काम करते थे और जिन लड़कियों के बारे में उन्होंने लिखा था, उनमें से अधिकांश दिल्ली के कॉफी हाउस के लोगों के बीच जानी-मानी थीं और आसानी से पहचानी जा सकती थीं। स्वाभाविक रूप से, वे ब्रता के 'कन्फेशंस' से बहुत नाराज थीं। उस समय वह लंदन में रह रहा था, किसी इंजीनियरिंग या रसायन कंपनी में काम कर रहा था और संभवतः किसी अंग्रेज लड़की से शादीशुदा था या उसके साथ रह रहा था।

सस्थी ब्रता ने मुझे लंदन से फोन करके बताया कि वह भारत आने की योजना बना रहे हैं और अगर मैं उन्हें द इलस्ट्रेटेड वीकली के लिए लेखों की एक श्रृंखला लिखने का काम सौंप दूं, तो वह भारत में अपने रहने का खर्च उठा सकेंगे। मैंने तुरंत सहमति दे दी। उन्होंने मुझसे ताज महल होटल में एक सप्ताह के लिए उनके लिए एक कमरा बुक करने को कहा। मैंने ऐसा कर दिया।

उनके आने की शाम मैंने उन्हें अपने अपार्टमेंट में ड्रिंक के लिए बुलाया। मैंने अपने बेटे राहुल और एक आकर्षक पारसी लड़की, दीना वकील को भी आमंत्रित किया, जो टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के समाचार पत्रों में से एक में काम करती थी।

सास्थी कद में छोटे थे, दाढ़ी छोटी थी और वे बहुत वाचाल थे—एक बहुत ही दिलचस्प वार्ताकार। जब हम एक-दूसरे को जानने की कोशिश कर रहे थे, तभी उन्होंने अचानक दीना वकील की ओर मुड़कर पूछा, 'क्या तुम कुंवारी हो?'
दीना शर्म से लाल नहीं हुई। उसने पलक भी नहीं झपकाई और मुस्कुराते हुए जवाब दिया, 'ये तो मर्दों को ही पता चलेगा।'
मुझे पता चला कि सास्थी लोगों को चौंकाकर ध्यान आकर्षित करना चाहती थी।
सास्थी ने ताज होटल में एक सप्ताह से अधिक समय बिताया और अपने दोस्तों की जमकर दावत दी। अपने प्रवास के अंत में उन्होंने बिल पर हस्ताक्षर करते हुए लिखा कि इसे 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के संपादक को भेजा जाए। मैंने बिल का भुगतान करने से इनकार कर दिया क्योंकि सास्थी ने मुझे कोई लेख नहीं दिया था और मैंने केवल उनके नाम पर कमरा बुक किया था, न कि पत्रिका के नाम पर। होटल, सास्थी और मेरे बीच कई महीनों तक पत्र-व्यवहार चलता रहा। अंततः होटल की निदेशक कैमेलिया पंजाबी ने बिल माफ कर दिया।
लगभग एक साल बाद सास्थी फिर से भारत आया। मैंने उससे मिलने से इनकार कर दिया। वह कुछ दिन मेरे बेटे के साथ रुका, उससे पैसे उधार लिए और जहाँ तक मुझे पता है, उसने कभी लौटाए नहीं।
मैंने कई वर्षों से सास्थी ब्रता द्वारा लिखित कोई और पुस्तक या लेख नहीं देखा है। यह बड़े दुख की बात है, क्योंकि उनमें बहुत प्रतिभा थी।
समकालीन लेखकों में मैं वी.एस. नायपॉल को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। उनका पहला उपन्यास जो मैंने पढ़ा, वह था 'अ हाउस फॉर मिस्टर बिस्वास'। हालाँकि मैं कभी कैरिबियन नहीं गया, फिर भी मैं समझ गया कि यह वहाँ बसे भारतीय मूल के समुदाय का एक प्रामाणिक वर्णन है। सभी पात्र जीवंत थे और उनके संवाद बेहद हास्यपूर्ण थे। अंग्रेजी साहित्य जगत में उभरते सितारे के रूप में ख्याति प्राप्त करने के कुछ समय बाद, नायपॉल अपने पूर्वजों की भूमि पर आए। उनके साथ उनकी पत्नी भी थीं, जो बेहद दुखी दिख रही थीं। दिल्ली पहुँचते-पहुँचते दोनों वहाँ के नायपॉल से काफी निराश हो चुके थे। नायपॉल को उम्मीद थी कि उन्हें भारत के पुत्र के रूप में सम्मान मिलेगा और शायद वे अपनी पत्नी को यह दिखा पाएंगे कि वे कितने प्रशंसित हैं। उस समय केवल कुछ गिने-चुने लोग ही नायपॉल को पढ़ते थे - जो कि बहुत कम संख्या में थे।
मैं उनका मार्गदर्शक बन गया। मैं उन्हें अपने मित्रों के घर ले गया: उनमें से कुछ ही लोगों ने उन्हें पढ़ा था। उनका आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए मैं उन्हें स्थानीय किताबों की दुकानों पर ले गया ताकि उन्हें दिखा सकूँ कि उनके उपन्यासों की कितनी मांग है। मैं उस दंपत्ति को सूरज कुंड ले गया। फरवरी का अंत था और दिल्ली के इस प्राचीन शहर के खंडहरों के पास की घाटी में 'जंगल की ज्वाला' (केसर) पूरी तरह खिले हुए थे। हमने तुगलकाबाद किले की विशाल दीवारों के नीचे सैंडविच और गर्म कॉफी का नाश्ता किया। पास के एक गाँव के बच्चे हमें देखने आ गए। उनके कपड़े फटे हुए थे, नाक बह रही थी और मक्खियाँ उनकी गंदी आँखों पर चिपकी हुई थीं। अपनी रचना 'अंधकार का क्षेत्र' में नाइपॉल ने सूरज कुंड के

शानदार दृश्य को केवल चार शब्दों में ही खारिज कर दिया, लेकिन गंदे गाँव के बच्चों का विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने कश्मीर के केसर के खेतों का वर्णन करते हुए भी ऐसा ही किया - शरद ऋतु में खिले केसर के फूलों का संक्षिप्त उल्लेख किया, लेकिन कश्मीरी महिलाओं द्वारा शौच के लिए अपने लंबे फिरन उठाने का विस्तृत वर्णन किया। नाइपॉल को गंदगी और बदहाली से एक तरह का जुनून सवार था।

वह बहुत ही चिड़चिड़े स्वभाव के थे। वे शारीरिक संपर्क से कतराते थे और जो भी उन्हें गले लगाना चाहता, उसे ठुकरा देते थे। उन्हें फोटो खिंचवाने से भी एलर्जी थी। अपनी अगली यात्राओं में उन्हें वह सारी प्रशंसा मिली जिसके वे हकदार थे। वे बाहर आमंत्रित किए जाने के लिए काफी उत्सुक थे: इससे उन्हें अपनी किताब के लिए सामग्री मिल जाती थी। मैं उन्हें मोदी परिवार के एक सदस्य द्वारा आमंत्रित एक पार्टी में ले गया। हम सबसे पहले पहुंचने वालों में से थे। दीवार के किनारे कई आकर्षक युवतियां खड़ी थीं। हम सीधे उनकी ओर बढ़े, लेकिन पता चला कि वे अंग्रेजी नहीं बोलती थीं और ऊबे हुए व्यापारियों का मनोरंजन करने के लिए बुलाई गई वेश्याएं थीं। लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता था। मैं उन्हें और उनके साथी को अनीस जंग के यहाँ ले गया, जहाँ मंत्रिमंडल मंत्री राम निवास मिर्धा मौजूद थे। मिर्धा ने नाइपॉल की हर किताब पढ़ी थी। शाम बहुत ही सहजता से गुजरी।

कम से कम दो बार मुझे न्यूयॉर्क टाइम्स के साहित्यिक संपादक का फोन आया, जिन्होंने मुझे वी.एस. नायपॉल पर एक लेख लिखने की तैयारी करने को कहा, क्योंकि उन्हें उम्मीद थी कि उस वर्ष नायपॉल को साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिलेगा। मैंने अपने नोट्स को फिर से तैयार किया। प्रतिष्ठित और बेहद योग्य यह पुरस्कार नायपॉल को नहीं मिला। उस समय ऐसा लगता था कि अंग्रेजी में लिखने वाले किसी अश्वेत व्यक्ति को यह पुरस्कार कभी नहीं दिया जाएगा। ब्रिटिश सरकार ने नायपॉल को नाइटहुड की उपाधि देकर इसकी भरपाई की, लेकिन यह नोबेल पुरस्कार मिलने के बराबर नहीं था। नायपॉल अपने नाम के आगे कभी 'सर' नहीं लगाते थे। और हैरानी की बात यह है कि जैसे ही उन्हें एहसास हुआ कि उन्हें नोबेल पुरस्कार नहीं मिलेगा, उनके लेखन की गुणवत्ता में गिरावट आ गई।

विद्या नाइपॉल के ज़रिए मुझे उनकी माँ और उनके छोटे भाई शिव से मिलने का मौका मिला। मुझे एहसास हुआ कि वी.एस. नाइपॉल के पास दोनों के लिए ज़्यादा समय नहीं था। हमने कई बार उनकी माँ को खाने पर बुलाया। यह साफ़ था कि शिव उनकी लाडली थीं। मैं उन्हें दिल्ली की कुछ किताबों की दुकानों पर ले गई। वहाँ वी.एस. नाइपॉल की किताबों की कतारें लगी रहती थीं, लेकिन शिव की किताब बहुत कम ही दिखती थी। वह दुकानदारों से पूछती थीं, 'मेरे शिव की किताबें आपके पास ज़्यादा क्यों नहीं हैं?' उनके बहुत कम दोस्त थे और मुझे लगता है कि उन्हें भारत की अपनी यात्रा ज़्यादा पसंद नहीं आई।

हालांकि मैं शिव से कुछ बार मिली (मेरे बेटे ने उससे कहीं ज़्यादा मुलाकात की), फिर भी वह अपने भाई या माँ की तुलना में भारतीय परिवेश में ज़्यादा सहज लगता था। वह ज़्यादा मिलनसार था और आसानी से दोस्त बना लेता था। मुझे लगता था कि वह लंदन या त्रिनिदाद के बजाय भारत में ही अपना घर बसाना पसंद करेगा।

एक क्रिसमस पर मेरे अमेरिकी प्रकाशक बार्नी रॉसेट (ग्रोव प्रेस) ने मुझे उपहार में गिन्सबर्ग की कविता 'द हाउल' भेजी। मैं इसकी प्रबल शक्ति से प्रभावित हुआ और धन्यवाद पत्र में मैंने कवि के बारे में और अधिक जानकारी मांगी। कुछ महीनों बाद मैं न्यूयॉर्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन हैज़र्ड और उनकी पत्नी सुसान के साथ ठहरा हुआ था। रॉसेट ने मुझे ग्रीनविच विलेज के एक रेस्तरां में अपने साथ रात्रिभोज करने के लिए आमंत्रित किया। एलन गिन्सबर्ग भी उनके अतिथि थे।

गिन्सबर्ग एक बेहद यहूदी किस्म का आदमी था, जिसने जानबूझकर खुद को अस्त-व्यस्त और गंदा दिखाने के लिए मेकअप किया था। उसने मुझे चौंकाने की कोशिश की। 'क्या तुम हस्तमैथुन करते हो? क्या तुम समलैंगिक हो? क्या तुम गांजा पीते हो?' मुझे ये सब बहुत बचकाना लगा। उसने खुद एक सिगरेट बनाई, तंबाकू में थोड़ा सफेद पाउडर डाला और कुछ लंबे कश लेकर नाक से धुआं बाहर निकाला। 'क्या तुम इसे आजमाना चाहोगे?' उसने पूछा। 'मैं आजमाना तो चाहता हूं,' मैंने जवाब दिया, 'लेकिन मुझे धुआं अंदर लेना नहीं आता। मुझे थोड़ा दे दो, मैं रात को सोने से पहले इसे आजमाऊंगा।'

घर लौटकर मैंने गिन्सबर्ग द्वारा दी गई हशीश मिली सिगरेट को आज़माया। इससे मुझे सिर्फ़ ज़ोरदार खांसी का दौरा पड़ा - किसी भी तरह का मतिभ्रम नहीं हुआ। मुझे धुआं अंदर खींचना नहीं आता था।

कुछ साल बाद गिन्सबर्ग और उनके प्रेमी पीटर ओर्लोव्स्की दिल्ली में मेरे घर आए — दोनों खादी की कमीज़, लुंगी और चप्पल पहने हुए थे, दोनों की दाढ़ी नहीं बनी थी, बाल बिखरे हुए थे और वे बेहद अस्त-व्यस्त दिख रहे थे। गिन्सबर्ग कद में छोटे और सांवले थे, इसलिए वे भारतीय लग रहे थे; ओर्लोव्स्की लंबे और सुनहरे बालों वाले थे और भारतीय वेश में वे किसी स्कैंडिनेवियाई ही लग रहे थे। कई महीनों तक मेरी उनसे कोई मुलाक़ात नहीं हुई क्योंकि वे वाराणसी, पटना, कलकत्ता की यात्रा करते रहे और जहाँ तक संभव हो सके उतने हिंदू तीर्थ स्थलों का दर्शन करते रहे। वे साधुओं के साथ रहे, चिलम में गांजा पीते रहे, नदी किनारे घाटों पर खुले में सोते रहे जहाँ पास में ही शव जल रहे थे, कविताएँ लिखते रहे और एक-दूसरे के साथ शारीरिक संबंध बनाते रहे। भारत से उनका मन नहीं भरा था और उनके वीज़ा की अवधि समाप्त होने वाली थी। वे अपने वीज़ा की अवधि बढ़ाने के लिए अमेरिकी दूतावास पहुँचे। दूतावास के अधिकारी ने उन्हें किसी भारतीय नागरिक से उनके अच्छे चरित्र का प्रमाण पत्र लाने की सलाह दी। फिर वे मेरे पास आए। अब तक गिन्सबर्ग के बाल पहले से कहीं अधिक घने हो गए थे, उनके बाल बहुत लंबे थे, दाढ़ी बेतरतीब थी और शरीर पर काफी बाल उग आए थे। ओर्लोव्स्की अपने दोस्त का गोरा रूप लग रहा था। उन्होंने मुझे अपने देखे और किए गए सभी अनुभवों के बारे में बताया - इनमें से कोई भी

बात अच्छे चरित्र प्रमाण पत्र के योग्य नहीं थी। फिर भी, उन्होंने जो कुछ भी लिखने को कहा, मैंने लिख लिया। भारतीय सरकार ने उनके वीजा की अवधि बढ़ा दी। मैंने गिन्सबर्ग और ओर्लोव्स्की को फिर कभी नहीं देखा।

जब मैं प्रिंसटन में पढ़ा रहा था, तब गिन्सबर्ग वहाँ आए थे। तब तक वे एक प्रतिष्ठित हस्ती बन चुके थे और उनके पाठों को सुनने के लिए बड़ी संख्या में छात्र आते थे। मैंने उन्हें उनके होटल में फोन किया। उन्होंने बड़े उत्साह से मेरा अभिवादन किया, लेकिन मुझे महसूस हुआ कि वे मुझे पहचान नहीं पाए थे।

हाल ही में, भारत में लिखी गई उनकी कविताएँ पेंगुइन (भारत) को भेंट की गईं। मेरे सहकर्मी डेविड डेविडार और ज़मीर अंसारी उन्हें स्वीकार करने के पक्ष में थे क्योंकि गिन्सबर्ग के अमेरिकी प्रकाशक उन्हें बहुत कम कीमत पर दे रहे थे। उन्होंने अनुमोदन के लिए अमेरिकी संस्करण मुझे दिया। संयोगवश (और सौभाग्य से) मेरी नज़र कालीघाट में लिखे गए एक अंश पर पड़ी। गिन्सबर्ग ने हिंदू देवियों के बारे में बड़े उत्साह से लिखा था कि 'वे सब वेश्याएँ हैं'। मैंने अपने सहकर्मियों को फोन किया। 'हे भगवान!' वे चौंक गए। 'हमें इस अंश को तुरंत हटाना होगा।' हमने हटा दिया। यह उस समय की बात है जब 'द सैटेनिक वर्सेज़' के प्रकाशन के लिए पेंगुइन-वाइकिंग के खिलाफ मुस्लिम कट्टरपंथियों का गुस्सा चरम पर था। हिंदू देवियों के बारे में गिन्सबर्ग के संदर्भ रशदी द्वारा पैगंबर मोहम्मद की पत्नियों के बारे में किए गए संदर्भों से कहीं अधिक आपत्तिजनक थे। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि हमने भारत पर लिखी गिन्सबर्ग की कविताओं के बिना संपादित छंद प्रकाशित किए होते, तो पेंगुइन इंडिया, इसके भारतीय मालिक आनंद बाजार पत्रिका के सरकार परिवार, डेविड डेविडर, जमीर अंसारी और मेरा अंत हो गया होता।

कसौली में ज़्यादा लेखक नहीं आते। लेकिन एक गर्मी के मौसम में कल्याण होटल में ठहरे दो प्रसिद्ध हिंदी उपन्यासकार, उपेंद्र नाथ अश्क और राजेंद्र यादव, मुझसे मिलने आए। मैं उनके नाम तो जानता था, लेकिन उनकी कोई रचना नहीं पढ़ी थी। दोनों ही हिंदी साहित्य में अपनी उपलब्धियों के बारे में मुझे बताने के लिए उत्सुक थे। यादव अपनी प्रशंसा करने में कुछ संकोच कर रहे थे और अपनी पत्नी मनु भंडारी का ज़िक्र कर रहे थे, जो लेखन के क्षेत्र में भी सक्रिय थीं। मनु ने अपने एक उपन्यास 'महाभोज' से प्रसिद्धि प्राप्त की। यह उपन्यास बेस्टसेलर बना और इस पर फिल्म भी बनी। एक सुबह नाश्ते के समय अश्क ने मेरी पत्नी को बताया कि जब वे केवल सात वर्ष के थे, तभी उन्हें यह अहसास हो गया था कि वे एक महान लेखक बनने के लिए ही पैदा हुए हैं। वे एक कुशल कहानीकार थे; अपनी पहली पत्नी, जिससे वे छुटकारा पाना चाहते थे, के साथ उनके झगड़े जितने क्रूर थे, उतने ही हास्यपूर्ण भी थे। अश्क ने कई उपन्यास लिखे और इलाहाबाद में अपना प्रकाशन गृह स्थापित किया। अपनी प्रसिद्धि के बावजूद, उन्हें हमेशा पैसों की सख्त ज़रूरत रहती थी। एक बार उन्होंने नाटकीय ढंग से घोषणा की कि वे लेखन छोड़ देंगे क्योंकि इसमें कोई पैसा नहीं है, और इसके बजाय वे एक सब्जी की

दुकान लगाएंगे क्योंकि उपन्यास लिखने की तुलना में आलू और फूलगोभी बेचने में अधिक पैसा है। इस हथकंडे ने उन्हें खूब प्रसिद्धि दिलाई।

लेखन जगत में विनम्रता का बहुत कम प्रचलन है। भारतीय लेखक, शायद इसलिए कि उनमें से कई यूरोपीय लेखकों की तुलना में कम परिष्कृत हैं, आत्म-प्रशंसा को अश्लीलता नहीं मानते। क्षेत्रीय भाषाओं के लेखक अपनी उपलब्धियों की खुलकर प्रशंसा कर सकते हैं। उर्दू भाषा के महानतम कवि ग़ालिब ने गर्व से कहा था कि जहाँ दर्जनों अन्य कवियों ने कविताएँ लिखीं, वहीं उनकी शैली और विचार ने उन्हें अद्वितीय बना दिया। आधुनिक लेखक अपने जन्मदिन पर समारोह आयोजित करते हैं, अपने मित्रों से अपनी प्रशंसा करवाते हैं और अभिनंदन ग्रंथ (प्रशंसा के स्मारक ग्रंथ) प्रकाशित और वितरित करवाते हैं।

अंग्रेजी में लिखने वाले कुछ भारतीय लेखक भी आत्म-प्रशंसा करने से पीछे नहीं हटते। चूंकि बहुत कम लोग किताबें पढ़ते हैं, खासकर राजनेता और सरकारी अधिकारी, और जनता की याददाश्त भी कमज़ोर होती है, इसलिए अपनी प्रशंसा करना खूब फलदायी होता है। घटिया लेखकों को ऐसे साहित्यिक पुरस्कार मिलते हैं जिनका निर्णय उन लोगों द्वारा किया जाता है जिन्होंने उनकी रचनाएँ पढ़ी तक नहीं होतीं। उन्हें राजनयिक पद मिलते हैं और संसद के उच्च सदन के लिए नामांकित किया जाता है। घटिया लेखकों को मान्यता मिलने का विरोध करने वालों को ईर्ष्यालु बताकर खारिज कर दिया जाता है। पुरस्कारों के लिए पैरवी करना आम बात हो गई है। इससे भी अजीब बात यह है कि भारतीय लेखक समय-समय पर दावा करते हैं कि उन्हें साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए शॉर्टलिस्ट किया गया है। इस सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार के लिए सबसे पहले आकांक्षा व्यक्त करने वाले मेरे मित्र गोविंद देसानी थे। उन्होंने केवल एक उपन्यास, ऑल अबाउट एच. हैटर, और एक लघु नाटक, हाली लिखा था। हैटर निस्संदेह एक अद्भुत रचना थी, लेकिन देसानी की तरह इतनी कम रचनाओं के आधार पर नोबेल पुरस्कार की आकांक्षा रखने वाले किसी के बारे में मैं सोच भी नहीं सकता। फिर भी, प्रिय गोविंद ने मुझे (मैं उस समय लंदन में प्रेस अटैची था) भारतीय सरकार के उम्मीदवार के रूप में चयन समिति को उनके नाम की सिफारिश करने के लिए मना लिया। मामला डॉ. राधाकृष्णन को भेजा गया, जो उस समय मॉस्को में राजदूत थे। उन्होंने मुझे खूब खरी-खोटी सुनाई।

एक साल दिल्ली के सभी अखबारों के पहले पन्ने पर यह खबर छपी कि हिंदी लेखक वत्स्यायन, जो अज्ञेय उपनाम से लिखते थे, को सूचित किया गया है कि उन्हें उस वर्ष का नोबेल पुरस्कार दिया जाएगा। अगले कुछ दिनों तक अखबार हिंदी को मिले इस महान सम्मान और उनकी तत्कालीन पत्नी कपिला के साक्षात्कारों से भरे रहे। कुछ दिनों बाद घोषणा हुई कि पुरस्कार इजरायली लेखक अग्नोन को मिला है। जब उनसे पूछा गया कि यह गलत सूचना कैसे फैली, तो वत्स्यायन ने भोलेपन से

जवाब दिया कि टेलीग्राफ क्लर्क ने अज्ञेय को अग्नोन समझ लिया था। कौन सा टेलीग्राफ क्लर्क, कौन सा डाकघर, यह किसी को स्पष्ट नहीं था।

अपनी छवि को मजबूत करने का सबसे बेशर्म प्रयास डॉ. गोपाल सिंह दर्दी ने किया था। मैंने पहले ही उनके द्वारा अपने बारे में फैलाई गई झूठी अफवाह और उससे प्राप्त लाभों के बारे में लिखा है।

कुछ साल बाद खबरें आईं कि मलयालम कवयित्री कमला दास का नाम पुरस्कार के लिए चुना गया है। यह खबर सभी अखबारों के पहले पन्ने पर छपी। कमला अपनी भाषा में एक प्रसिद्ध कवयित्री हैं और उन्होंने अपने वैवाहिक यौन जीवन का स्पष्ट चित्रण करते हुए एक आत्मकथात्मक उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उतना अच्छा नहीं था, लेकिन इसे खूब प्रचार मिला। मैंने कमला के बारे में लिखा कि उन्होंने चुने जाने की खबर फैलाई और मुझे खेद है कि उनके जैसी अच्छी महिला को इस तरह अपनी बड़ाई करने के लालच में पड़ना पड़ा। वह बहुत क्रोधित हुई। उन्होंने मुझे फोन किया और रोने लगीं। उनके बेटे ने मुझे कानूनी नोटिस भेजकर माफी मांगने की मांग की। अन्यथा। इसके बाद कुछ नहीं हुआ।

विभिन्न पत्रिकाओं, समाचार पत्रों के संपादक और भारत में पेंगुइन-वाइकिंग के मानद संपादक के रूप में मैंने युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी ओर से हर संभव प्रयास किया है। जिनमें थोड़ी भी प्रतिभा थी, वे सफल हुए; उनमें से एक हैं एम.जे. अकबर, जो कलकत्ता के द टेलीग्राफ के संपादक बने, फिर सांसद बने और राजनीति एवं सामाजिक मामलों पर कई पुस्तकें लिखीं। एक अन्य हैं बाची करकारिया, जिन्हें मैंने बॉम्बे डाइंग के वाडिया परिवार पर लिखी एक पुस्तक के लिए सहयोगी के रूप में चुना था। (वाडिया परिवार को यह पुस्तक पसंद नहीं आई और प्रकाशित नहीं हुई।) मैंने होटल व्यवसायी एम.एस. ओबेरॉय की जीवनी के लिए उनका नाम सुझाया, जिसे पेंगुइन-वाइकिंग ने प्रकाशित किया। पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी के लिए पुस्तकों की समीक्षा करते हुए मैं अमिताव घोष, उपमन्यु चटर्जी, गीता हरिहरन, शमा फुटेहल्ली, एलन सीली, रुकन आडवाणी, रमेश मेनन, मुकुल केशवन और विशेष रूप से विक्रम सेठ जैसे कई उभरते लेखकों को आगे लाने में सक्षम रहा हूँ। द गोल्डन गेट की अपनी समीक्षा में मैंने लिखा था कि आखिरकार भारत ने एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का लेखक पैदा किया है जो अपने देश के लिए सर्वोच्च सम्मान हासिल करेगा। उनके उपन्यास ए सूटेबल बॉय की सफलता ने मेरी भविष्यवाणी को सही साबित कर दिया।

युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने में जोखिम भी होते हैं। जिन लोगों को मैंने लेखन की दुनिया में लाया और जिनके घातक परिणाम हुए, उनमें इंद्राणी ऐकाथ-ग्यालत्सेन भी थीं - बिहार की एक बंगाली लड़की, जिनकी शादी दार्जिलिंग के पास एक चाय बागान चलाने वाले तिब्बती चाय बागान मालिक से हुई थी। हमारी मुलाकात जर्मन राजदूत की पत्नी ने करवाई थी, जो ग्लेन बर्न चाय बागान में उनके साथ रुकी थीं। हमने एक-दूसरे को पत्र लिखना शुरू किया। उन्होंने मुझे अपनी कुछ कविताएँ भेजीं। मैंने उन्हें पत्र लिखकर स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि मुझे कविता के बारे में बहुत कम

जानकारी है, लेकिन अगर वह कोई उपन्यास या लघु कथाएँ लिखें तो मैं उनकी कुछ मदद कर सकता हूँ। उन्होंने अपने खर्च पर अपनी कविताएँ प्रकाशित करवाई और मुझे समर्पित कीं। मैं प्रसन्न हुआ और उन्हें कथा लेखन की ओर मुड़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने मुझे अपने उपन्यास 'डॉटर्स ऑफ द हाउस' के अध्याय भेजने शुरू किए, जिसे मेरे सहयोगी डेविड डेविडार ने पेंगुइन-वाइकिंग के लिए तुरंत स्वीकार कर लिया और इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रकाशकों को बेच दिया। इंद्राणी ने एक नए करियर की शुरुआत की। लेकिन वह उतावली और सफलता के लिए अधीर थीं; उन्हें तुरंत पहचान चाहिए थी। एक बार जब वह कलकत्ता पुस्तक मेले में मेरे साथ थीं, तो उन्होंने मुझसे पूछा, 'कोई मुझसे ऑटोग्राफ क्यों नहीं मांगता?' मैंने उन्हें भरोसा दिलाया कि कुछ और उपन्यास लिखने के बाद लोग ऐसा करने लगेंगे। पुस्तक मेले के आखिरी कुछ दिनों में ही उनका दूसरा उपन्यास 'क्रेन्स मॉर्निंग' (जो मुझे ही समर्पित था) प्रकाशित हुआ। भारत में इसकी खूब समीक्षाएं हुईं और विदेशी प्रकाशकों ने भी इसे स्वीकार कर लिया। लेकिन यह उनके लिए काफी नहीं था; वह पहचान बनाना चाहती थीं और चाहती थीं कि उनके बारे में चर्चा हो। उन्हें कलकत्ता के 'द स्टेट्समैन' अखबार में साप्ताहिक कॉलम लिखने का काम मिला। वह इस काम से बहुत उत्साहित थीं क्योंकि उनके ज्यादातर दोस्त 'द स्टेट्समैन' पढ़ते थे। उन्होंने एक कॉलमनिस्ट के लिए जरूरी मेहनत नहीं की। मैंने उन्हें कई बार आगाह किया कि मन में जो भी आए उसे लिख देना काफी नहीं है। कुछ महीनों बाद 'द स्टेट्समैन' ने उनका कॉलम छापना बंद कर दिया। इससे उनके आत्मसम्मान को गहरा आघात पहुंचा। उसी समय उनके परिवार के सदस्यों से भी उनके रिश्ते खराब होने लगे। वह दार्जिलिंग छोड़कर बिहार के चाईबासा में अपने बीमार पिता के पास रहने चली गईं। उन्हें स्ट्रोक आया था और वे लकवाग्रस्त हो गए थे। जब उनकी मृत्यु हुई, तब वह उनके बिस्तर के पास ही थीं। उनके अपनी माँ और बहन से कभी अच्छे संबंध नहीं थे। उनके पिता की खनन संपत्तियों और चाईबासा स्थित घर के बंटवारे को लेकर उनके बीच मतभेद थे। लेकिन इससे कहीं अधिक गंभीर बात उन्हें अंदर ही अंदर खा रही थी। मुझे लिखे उनके पत्र छोटे होते गए और वे गहरे अवसाद में होने की शिकायत करती रहीं। पेंगुइन-वाइकिंग ने उनका तीसरा उपन्यास स्वीकार कर लिया था, लेकिन इससे उनकी निराशा की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ। अजीब संयोग से, इस तीसरे उपन्यास का शीर्षक था 'होल्ड माई हैंड आई एम डाइंग'। एक सुबह वह अपने बिस्तर के पास फर्श पर बेहोश पड़ी मिलीं। डॉक्टर को बुलाया गया। उनके पति को कलकत्ता से बुलवाया गया। अगले दिन उनकी मृत्यु हो गई, उस समय उनका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं था।

इंद्राणी ने अपनी मृत्यु से एक दिन पहले मुझे एक छोटा सा पत्र लिखा था। वह पत्र मुझे दो दिन बाद मिला। उससे संकेत मिला कि वह किसी बात से परेशान थी। मुझे शक था कि उसने आत्महत्या की है। जब सब कुछ उसके पक्ष में चल रहा था, तो वह अपने करियर को क्यों समाप्त करेगी?

कुछ महीनों बाद एक संभावित जवाब मिला जब पेंगुइन-वाइकिंग को एक कानूनी नोटिस मिला कि 'क्रेन्स मॉर्निंग' के कुछ अंश बीस साल पहले प्रकाशित एक अमेरिकी उपन्यास से लिए गए हैं। मुझे संदेह है कि अमेरिकी उपन्यास के प्रकाशक का ध्यान इस ओर जाने से पहले ही इंद्राणी को पाठकों से साहित्यिक चोरी के आरोप वाले पत्र मिल चुके थे। इंद्राणी को लगा होगा कि साहित्यिक चोरी का मामला कभी न कभी उनके सामने उजागर हो जाएगा और एक प्रसिद्ध लेखिका बनने का उनका सपना चकनाचूर हो जाएगा। मैंने दोनों उपन्यासों के संबंधित अंशों की जांच की। इसमें कोई संदेह नहीं था कि उन्होंने मामूली बदलावों के साथ उन्हें दूसरे उपन्यास से लिया था। यह भी स्पष्ट था कि उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वह भाषा पर किसी से कम नहीं थीं। उपन्यास को पूरा करने की उनकी बेचैनी और अधीरता ने ही उन्हें यह मूर्खतापूर्ण जोखिम उठाने पर मजबूर किया। मैं खुद को माफ नहीं कर सकता कि मैंने उन पर दबाव बनाए रखा क्योंकि मैं उनसे बहुत प्यार करता था। वह मेरी शिष्या, मेरी बेटी और मेरी प्रेमिका, सब कुछ एक ही में थीं। मैंने उनकी फ्रेम की हुई तस्वीर अपने अध्ययन कक्ष में रखी हुई है।

लेखक बनने के लिए क्या चाहिए? सबसे पहले, लेखक बनने का प्रबल जुनून। प्रेरणा शक्ति पैसा नहीं है (खाने-पीने की दुकान, पान की दुकान, पेट्रोल पंप या कानून व चिकित्सा में इससे कहीं अधिक पैसा है), न ही पहचान या प्रसिद्धि की चाहत: राजनीति या फिल्मों में यह आसानी से मिल जाती है। वास्तव में, अधिकांश लेखकों को यह स्पष्ट रूप से पता नहीं होता कि उन्होंने लेखन क्यों चुना, सिवाय किसी आंतरिक प्रेरणा के जो उन्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। ज्यादातर मामलों में, यह प्रेरणा तब कम हो जाती है जब उन्हें पता चलता है कि लेखक बनने की इच्छा को वास्तविकता में बदलने के लिए बहुत अधिक मेहनत करनी पड़ती है। यह प्रेरणा बार-बार उठती है, कुछ लोग छोटे लेख, अधूरी लघु कथाएँ या उपन्यास लिखकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं, फिर हार मानकर स्वीकार कर लेते हैं कि उनमें लेखक बनने की क्षमता नहीं है। अधिकांश संवेदनशील लोगों के भीतर कविता का भंडार होता है जो किशोरावस्था में उमड़ पड़ता है। यह बाद के वर्षों में धीरे-धीरे कम हो जाता है। गद्य लेखन कहीं अधिक कठिन है। इसके लिए शास्त्रीय और आधुनिक साहित्य का व्यापक अध्ययन, एक विस्तृत शब्दावली और सबसे बढ़कर, कार्य पूरा होने तक दृढ़ रहने की क्षमता की आवश्यकता होती है। संक्षेप में कहें तो, कड़ी मेहनत करने की क्षमता, जरूरत पड़ने पर घंटों खाली कागज के सामने बैठे रहने की क्षमता, और जब तक कागज लेखन से भर न जाए तब तक न उठने का दृढ़ संकल्प। आप कागज पर जो कुछ भी लिखें, शायद वह बहुत कुछ बेकार हो, लेकिन यह अनुशासन सार्थक साबित होगा। जल्द ही लेखन में सुधार होगा, जल्द ही एक लेखक के भीतर छिपी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा सामने आएगी। मेरा मानना है कि दैनिक डायरी लिखना एक उपयोगी अभ्यास है। मित्रों को लंबे पत्र लिखना भी अच्छा अभ्यास है। समाचार पत्रों के लिए नियमित कॉलम लिखना और निर्धारित समय सीमा का

पालन करना अच्छा अनुशासन है। कुछ दिनों के लिए भी लेखन छोड़ दें, तो इसे फिर से शुरू करना थोड़ा कष्टदायक हो जाता है।

लेखन से मुझे क्या मिला है? अखबारों और पत्रिकाओं से, जिनमें मेरे लेख छपते हैं, काफी पैसा मिला है। किताबों से उतना नहीं। लेकिन इन दोनों से होने वाली आय मुझे करदाताओं के उच्च वर्ग में रखती है। मेरी समस्या आय नहीं, बल्कि आयकर है। पैसे से कहीं अधिक संतोष इस बात से मिलता है कि बहुत से लोग मुझे पढ़ते हैं और भारत में मैं जहाँ भी होता हूँ, मुझसे मिलने आते हैं। प्रशंसा मिलना एक बहुत ही रोमांचक अनुभव हो सकता है। लेकिन पैसे या पहचान से कहीं अधिक, मुझे लेखन से मिलने वाली संतुष्टि का अहसास होता है। यह संतुष्टि मुझे वकालत, कूटनीति या अध्यापन से नहीं मिली; यह मुझे हर दिन लिखते-लिखते भरपूर मात्रा में मिलती है। मैं आशा करता हूँ कि कलम मेरे हाथ से छूटने तक मैं लिखता रहूँगा।

18 अंतिम से एक पहले का अध्याय

इस आत्मकथा के पहले अध्याय में मैंने उन कारणों को बताया है जिनकी वजह से मुझे इसे लिखना शुरू करना चाहिए था। मैं इसे आराम से लिख रहा था, तभी मुझसे छोटे तीन दोस्तों की अचानक मौत ने मुझे आगाह किया कि मुझे इसे जल्दी लिखना चाहिए, वरना यह अधूरी ही रह जाएगी। चूंकि मैं भी खालिस्तानी आतंकवादियों की हिट लिस्ट में हूं, इसलिए मेरी मौत मेरी उम्मीद से पहले आ सकती है। वैसे भी, मैं हरजिंदर सिंह जिंदा से दो बार बाल-बाल बचा। पुणे में जनरल वैद्य की हत्या करने के बाद, वह मुझे पकड़ने के लिए दिल्ली लौटा। वह मेरे अपार्टमेंट में आया, मेरे रसोइए से एक गिलास पानी मांगा और मेरे बैठक कक्ष का जायजा लिया। फिर वह मेरे पीछे कसौली तक आया। वहां उसे लगा कि कोई उसका पीछा कर रहा है, इसलिए वह वापस लौट आया और दिल्ली लौटने का इंतजार करने लगा। उसे पकड़ लिया गया और बाद में वैद्य की हत्या के आरोप में फांसी दे दी गई। उसके पास से मेरे अपार्टमेंट का नक्शा मिला। पूछताछ में उसने कबूल किया कि उसे खालिस्तान का दुश्मन होने के नाते मुझे मारने का निर्देश दिया गया था। मैं एक आसान निशाना था और मुझे मारने से आतंकवादियों को वह प्रचार मिल जाता जिसकी उन्हें सख्त जरूरत थी। ग़ालिब ने जीवन की अनिश्चितता को एक सुंदर दोहे में व्यक्त किया है:

Row mein hai raks oer umar
मुझे खेद है,
Na haath baagh par hai
कम से कम मेरा

(मेरी जिंदगी बहुत तेज रफ्तार से चल रही है)
कौन जाने यह कहाँ जाकर रुकेगी
सत्ता की बागडोर मेरे हाथों में नहीं है।
मेरे पैर रकाब में नहीं हैं।

तीनों दोस्तों की मृत्यु 1990 में हुई। पहले थे सतेंद्र सिंह। जैसा कि कहावत है, वे हर मायने में एक असाधारण व्यक्तित्व वाले इंसान थे। छह फुट लंबे, फूले हुए, कम दाढ़ी वाले गालों से लेकर कमर तक उनका शरीर गठीला था। उनकी आवाज़ बहुत बुलंद थी और वे अश्लील चुटकुलों से भरे रहते थे। तथ्यों, तारीखों और आंकड़ों के लिए उनकी स्मृति किसी कंप्यूटर जैसी थी, और उर्दू कविताओं का उनका विशाल भंडार था। वे खूब शराब पीते थे, और अगर उनके कारनामों पर यकीन किया जाए, तो वे एक माहिर यौनकर्मी भी थे। मैं उनकी शराब पीने की आदत की गवाही दे सकता हूँ; वे कुछ ही घंटों में डेढ़

बोतल रम पी जाते थे। उनके यौन संबंधों के बारे में, मेरे पास केवल उन्हीं के कहे अनुसार ही जानकारी है। वे ज़ोर से बोलने वाले, बातूनी, झगड़ालू और हिंसा के प्रति प्रवृत्त थे। साथ ही बेहद कोमल हृदय और भावुक भी थे। ये सभी लक्षण तब और भी बढ़ गए जब उनकी पत्नी, जो एक बेहद खूबसूरत महिला थीं, उनके द्वारा पिटाई किए जाने के बाद अपनी दो बेटियों के साथ उन्हें छोड़कर चली गईं। वे पूरी तरह टूट गए। वे उदास और प्रतिशोधी हो गए। मुझे उसे तलाक देने के लिए मनाना पड़ा। लेकिन मैं उसे शराब कम करने के लिए राजी नहीं कर पाई। मैंने उसे अन्य संबंधों के लिए प्रोत्साहित किया और खुद को पहुँचाए दर्द को कम करने के लिए कुछ संबंधों में उसका साथ भी दिया। आखिरी बार मैंने उसे रोली बुक्स द्वारा मेरी किताब 'नेचर वॉच' के विमोचन के अवसर पर आयोजित पार्टी में देखा था। वह होटल जाने के लिए मेरे घर लिफ्ट लेने आया था। उससे शराब की बदबू आ रही थी। मुझे एयर कंडीशनर बंद करना पड़ा और ताज़ी हवा लेने के लिए कार की खिड़कियों के शीशे नीचे करने पड़े। पार्टी में मैंने उसे एक समूह से दूसरे समूह में जाते, स्कॉच के गिलास खाली करते और जान-पहचान की महिलाओं को गले लगाते देखा। जब हमारे जाने का समय हुआ, तो मैंने उससे साथ चलने को कहा। उसने साफ-साफ कहा, 'नहीं, मैं रवि और माला से लिफ्ट ले लूँगा।'

अगले दिन हम सुबह की ट्रेन से कसौली के लिए रवाना हो गए। और उसके अगले दिन मैंने चंडीगढ़ के ट्रिब्यून अखबार में उनकी मृत्यु की खबर पढ़ी। दिल्ली लौटने पर मैंने अपनी बेटी माला से सारी जानकारी ली। पार्टी के बाद, वह इतने नशे में थे कि खुद चलकर बाहर नहीं निकल पा रहे थे। माला और रवि को उन्हें उनके अपार्टमेंट तक ले जाने में मदद करनी पड़ी। अगली सुबह, जब उनके नौकर ने चाय का प्याला लेकर उनके बेडरूम का दरवाजा खटखटाया, तो कोई जवाब नहीं मिला। दरवाजा अंदर से बंद था। उसने दो-तीन बार कोशिश की और घबरा गया। उनके मालिक के जिन दोस्तों को वह जानता था, वे सिर्फ हम ही थे। वह हमारे अपार्टमेंट में पहुंचा, और सौभाग्य से उसे मेरी बेटी वहां मिल गई। उसने सतिंद्रा के बहनोई, इंदर मल्होत्रा को फोन किया। दोनों ने पुलिस को बुलाया और सतिंद्रा के बेडरूम का दरवाजा तुड़वाया। वह मृत पड़े थे। उनके बिस्तर के नीचे रम की आधी खाली बोतल पड़ी थी। सतिंद्रा ने हमारे जीवन में एक गहरा सन्नाटा छोड़ दिया।

चरणजीत एक बिलकुल अलग तरह के व्यक्तित्व के धनी थे। उन्हें अपने पिता से एक बड़ी संपत्ति विरासत में मिली थी, जो फर्नीचर निर्माता, बिल्डर थे और भारत में कोका-कोला की फ्रेंचाइजी के मालिक थे। चरणजीत कद में छोटे थे, लंदन में सिले महंगे सूट पहनने और इत्र लगाने के शौकीन थे। उनके पास कई कारें थीं - टोयोटा, मर्सिडीज और रोल्स रॉयस। उनके दोस्त उन्हें बेबी कहकर बुलाते थे। उन्होंने बेहद खूबसूरत लड़की हरजीत कौर से शादी की। उन्हें बबल्स उपनाम दिया गया था क्योंकि वह हमेशा खिलखिलाती रहती थीं। उनके कोई संतान नहीं थी। हालांकि वे अपने पिता के दो बेटों में छोटे थे, लेकिन पारिवारिक व्यवसाय की बागडोर उन्होंने ही संभाली और उसका विस्तार करना शुरू किया। उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं भी थीं। नई दिल्ली नगर समिति के अध्यक्ष बनने के बाद, उन्होंने श्रीमती गांधी और उनके परिवार से दोस्ती

कर ली। जब भी और जिस भी काम के लिए उन्हें जरूरत होती, वे उन्हें कारें और नकद पैसे मुहैया कराते थे। उन्हें दक्षिण दिल्ली संसदीय सीट से कांग्रेस का टिकट मिला और वे सांसद बन गए। हमारे परिवार दिल्ली में बसने के बाद से एक-दूसरे को जानते थे। हम उन्हें नवोदित मानते थे, वे हमें तुच्छ समझते थे क्योंकि उन्होंने पैसा कमाने में हमें मात दे दी थी।

श्रीमती गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में हुए सिख विरोधी दंगों के बाद 1984 की शरद ऋतु में चरणजीत परिवार से मेरा व्यक्तिगत संबंध शुरू हुआ। सबसे ज्यादा नुकसान चरणजीत को हुआ: उनके कैम्पा कोला के तीन बोतल बनाने वाले कारखाने हिंसक हिंदू भीड़ ने तहस-नहस कर दिए। इस बात के स्पष्ट सबूत थे कि तोड़फोड़ करने वालों को शीतल पेय बनाने वाली एक प्रतिद्वंद्वी कंपनी ने किराए पर लिया था। चरणजीत को सब कुछ नए सिरे से शुरू करना पड़ा। उन्होंने नई मशीनरी आयात करने के लाइसेंस प्राप्त किए। जब मशीनरी बॉम्बे पहुंची, तो सीमा शुल्क अधिकारियों ने एक के बाद एक तकनीकी आपत्तियां उठाकर उसकी रिहाई में देरी की। एक बार फिर, यह उनका प्रतिद्वंद्वी ही था जिसने अधिकारियों को रिश्वत देकर मंजूरी में देरी करवाई ताकि उसे कैम्पा कोला से उत्तरी भारतीय बाजार पर कब्जा करने का समय मिल सके। नए प्रधानमंत्री राजीव गांधी से मंजूरी का आदेश दिलवाने के चरणजीत के प्रयास सफल नहीं हुए। संयोग से, वह राज्यसभा में मौजूद थे जब नवंबर 1984 के दंगों के पीड़ितों के परिवारों के लिए विदेशों में रहने वाले सिख समुदायों द्वारा भेजे गए कंबल, स्वेटर और अन्य गर्म कपड़ों की रिहाई का मुद्दा उठा। मैंने पिछले अध्याय में बताया है कि ये वस्तुएं कैसे जारी की गईं।

बहस के बाद चरणजीत लॉबी में मुझसे बात करने आया। उसने पूछा, 'आप मेरी मशीनरी छुड़वाने में मेरी मदद क्यों नहीं करते?' मैंने उसे अपनी पूरी कोशिश करने का वादा किया।

संयोगवश, कुछ दिनों बाद प्रधानमंत्री ने हिंसा के सिख पीड़ितों के पुनर्वास के लिए उठाए गए कदमों की समीक्षा करने के लिए अपने मंत्रिमंडल के वरिष्ठ सदस्यों, कुछ सांसदों और विपक्षी दलों के नेताओं की एक बैठक बुलाई। चरणजीत के मित्र माने जाने वाले उन्नीकृष्णन समेत अन्य लोगों द्वारा व्यवस्थाओं पर संतोष व्यक्त करने के बाद, मैंने अपनी बात रखने की मांग की। मैंने गृह मंत्री बूटा सिंह के हर कथन का खंडन किया और चरणजीत को न्याय मिलने में बाधा डालने में सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत को दर्शाने वाले दस्तावेज़ प्रस्तुत किए। उसी दोपहर चरणजीत को अपनी मशीनरी के लिए मंजूरी मिल गई। शाम को वह मुझसे मिलने आए और अपने साथ ग्लेडियोली फूलों का एक बड़ा गुलदस्ता लाए। मैंने कहा, 'मुझे बताया गया है कि आप अन्य सांसदों को अपना काम करवाने के लिए मोटी रकम देते हैं, लेकिन मुझे फूलों का एक गुच्छा देकर टाल देते हैं।' उन्होंने जवाब दिया, 'अगर मुझे पता होता कि आप पैसे लेते हैं, तो मैं आपको बहुत पहले ही दे देता।'

उसके बाद चरनजीत परिवार हमारे घर नियमित रूप से आने लगा। उन्हें अच्छा खाना-पीना पसंद था; मेरे घर में उन्हें दोनों ही चीजें मिल जाती थीं। वे हमें अपने घर या अपने नए होटल, ले मेरिडियन, में पार्टियों में बुलाकर हमारी मेहमाननवाजी का बदला चुकाते थे। वे उपहार देने में बहुत उदार थे: कैरियर पेन, सोने की घड़ियाँ और हमारे नाम खुदे हुए हाथ से बने कांच के गिलास। वे थोड़े नखरेबाज़ थे: जब भी वे हमारे साथ खाना खाने आते, वे उसी कुर्सी पर बैठते थे। वह कुर्सी बाथरूम की ओर थी, और अगर दरवाजा खुला होता और शौचालय दिखाई देता, तो वे दरवाजा बंद होने तक पानी नहीं पीते थे। मैं उनके लिए एक तरह से पिता समान बन गया था (वे मुझसे पच्चीस साल छोटे थे): जब भी वे किसी परेशानी में होते, वे मुझसे सलाह लेते थे। हालाँकि मुझे होटल व्यवसाय, वित्त या कंपनी कानून के बारे में कुछ भी नहीं पता था, फिर भी उन्होंने मुझे ले मेरिडियन के निदेशक मंडल में शामिल कर लिया।

उनके जीवन के अंतिम वर्ष में ही मैंने देखा कि वे चिड़चिड़े और गुस्सैल होते जा रहे थे। मैंने उन्हें यह बात बताई भी। छतरपुर के पास स्थित उनके फार्महाउस में सप्ताहांत बिताते हुए मैंने गौर किया कि वे रक्तचाप, मधुमेह और यूरिक एसिड की कितनी दवाइयाँ लेते थे, साथ ही कई तरह की मल्टीविटामिन गोलियाँ भी। एक बार मैंने उनसे पूछा, 'आप किताबें क्यों नहीं पढ़ते?' उन्होंने जवाब दिया, 'किताबें पढ़ने के लिए मन की शांति चाहिए। मेरे पास तो है ही नहीं।' यह बात सच थी; वे एक बेचैन इंसान थे। जब भी वे परेशान होते, ज्योतिषियों और हस्तरेखा विशेषज्ञों से सलाह लेते और शुभ रत्न पहनते। वे धार्मिक अनुष्ठानों में भी शांति पाते थे और लुधियाना के पास स्थित अपने प्रिय संत के दर्शन के लिए नियमित रूप से जाते थे। उनके अतार्किक विश्वासों पर मेरे मज़ाक का उन पर ज़रा भी असर नहीं हुआ।

1989 की गर्मियों में चरणजीत को स्ट्रोक आया। उनकी जान बाल-बाल बच गई। मैं उनसे एस्कॉर्ट्स अस्पताल में मिलने गया। डॉक्टरों ने मुझे भरोसा दिलाया कि उनके दिल की ओर बढ़ रहा खून का थक्का जानलेवा स्थिति तक पहुँचने से पहले ही घुल गया था। यह जानकर कि वे खतरे से बाहर हैं, मैं ग्लासगो में एक साहित्यिक संगोष्ठी में भाग लेने के लिए रवाना हो गया। तीन हफ्ते बाद जब मैं लौटा, तो चरणजीत घर पर थे, लेकिन उन्हें सलाह दी गई थी कि वे किसी से न मिलें। हम ही एकमात्र अपवाद थे और हमें हर शाम उनसे मिलने की अनुमति थी। अपने बगीचे में टहलने के बाद वे बिस्तर पर लेटकर वीडियो कैसेट देखते थे। आखिरी शाम उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं दोबारा विदेश कब जाने का इरादा रखता हूँ। मैंने उन्हें बताया कि मेरी कोई योजना नहीं है। 'अगली गर्मियों में मेरे साथ आइए। इंग्लैंड से हम अमेरिका चलेंगे: मैं वहाँ अपना दूसरा चेक-अप करवाऊँगा। यहाँ के ये लोग दिल के बारे में ज्यादा नहीं जानते।'

अगली सुबह, जब मैं टेनिस खेलकर लौटा, तो मेरी पत्नी ने चुपचाप मुझे बताया, 'मुझे अभी-अभी चरणजीत के घर से फोन आया था। उसकी मौत हो गई है।'

संयोगवश उस दिन मेरे बेटे का पचासवां जन्मदिन था (4 अक्टूबर 1990)। चरणजीत की उम्र मात्र इक्यावन वर्ष थी।

तीसरी मौत मेरी पत्नी के चचेरे भाई उज्ज्वल की हुई। वो दोस्त से ज़्यादा रिश्तेदार थे। हमारी आपस में ज़्यादा समानता नहीं थी। उन्हें गोल्फ़ का बहुत शौक था। उन्होंने दिल्ली चैंपियनशिप जीती थी। उनके बेटे विक्रमजीत ने अठारह साल की उम्र में एशियाई शौकिया गोल्फ़ खिताब जीता था। उज्ज्वल हमेशा विश्व के दिग्गजों के साथ खेले गए मैचों और अपने शानदार स्विंग और सटीक पुटिंग के लिए मिली तारीफों के अलावा और कुछ नहीं बोलते थे। मुझे उनके आने से डर लगता था क्योंकि वो मुझे बेहद उबाऊ लगते थे। वैसे वो अच्छे इंसान थे और उनकी पसंद भी लाजवाब थी। उन्होंने कुतुब मीनार के पास एक सुंदर सा फार्महाउस बनवाया था और मुझे दिल्ली से दूर जाने के लिए कभी भी वहाँ आने का न्योता दिया था। मैंने उनका न्योता स्वीकार कर लिया और कहा कि कोलकाता से लौटने के बाद हम एक वीकेंड वहाँ बिताएँगे। जैसे ही हम एयरपोर्ट जाने के लिए कार में बैठने वाले थे, उज्ज्वल की बेटी का फोन आया कि उनके पिता का नींद में ही निधन हो गया है। मेरी पत्नी ने अपना आना रद्द कर दिया।

कलकत्ता में बिताए तीन दिनों के दौरान मुझे बहुत कुछ सोचने-विचारने को मिला। क्या मैं भी बिना किसी पूर्व सूचना के इन तीनों व्यक्तियों की तरह ही इस राह पर चल पड़ूंगा?

महाभारत में एक ऐसा अंश है जिसमें कहा गया है कि जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि यद्यपि हम जानते हैं कि मृत्यु अपरिहार्य है, फिर भी कोई वास्तव में यह विश्वास नहीं करता कि वह भी एक दिन मरेगा। मृत्यु दूसरों को आती है; हम तो अनंत काल तक जीवित रहने की आशा रखते हैं।

मृत्यु और मरने की चिंता हमेशा से ही मनुष्य का जुनून रही है। मैंने इससे निपटने की कोशिश की, लेकिन धम्मपद के अनुसार, मैंने खुद को सूखी ज़मीन पर फेंकी गई मछली की तरह पाया, जो मृत्यु के बंधन से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी। जब मैं बंबई में आचार्य रजनीश से मिला, तो मैंने उन्हें अपने डर के बारे में बताया। उन्होंने मुझे अपने भय से उबरने के लिए केवल एक ही उपाय बताया - मरने वालों और मृतकों के बीच रहना। मैं कई वर्षों से यह स्वयं ही करता आ रहा था। मैं अपने मृत रिश्तेदारों के पास बैठता, अंत्येष्टि में शामिल होता (मैं शादियों में बहुत कम जाता था), और अक्सर निगमबोध घाट के श्मशान घाट जाकर शवों को जलते हुए देखता था। यह मेरे लिए एक तरह से शुद्धिकरण का काम करता था: इसने मुझे छोटी-मोटी व्यथाओं से मुक्त किया, जीवन की असफलताओं को सहजता से स्वीकार करने में मदद की। मैं मन की शांति के साथ घर लौटा। लेकिन इससे मुझे मरने के भय से उबरने में मदद नहीं मिली। इसके विपरीत, जो कुछ मैंने देखा था, उससे उत्पन्न बुरे सपनों के कारण मेरी रातों की नींद अक्सर खराब हो जाती थी।

मृत्यु वास्तव में क्या है? मुझे इसका कोई अंदाजा नहीं है, सिवाय इसके कि जब से मुझे इसका एहसास हुआ है, तब से मुझे इससे डर लगता है। असल में, ऐसा इसलिए है क्योंकि मुझे नहीं पता कि इसके बाद मैं कहाँ होऊँगा। रिश्तेदारों की मृत्यु से मुझे कोई जवाब नहीं मिला। वे बस शून्य में विलीन हो गए। टॉम स्टॉपर्ड ने मेरी कुछ निराशा को व्यक्त करते हुए लिखा,

'मृत्यु उपस्थिति की अनुपस्थिति है, इससे अधिक कुछ नहीं... कभी वापस न आने का अंतहीन समय... एक ऐसा खालीपन जिसे आप देख नहीं सकते। और जब हवा उसमें से गुजरती है, तो कोई आवाज नहीं होती।' या, जैसा कि पॉल वैलेरी ने कहा, 'मृत्यु हमसे गहरी आवाज में बात करती है, लेकिन उसके पास कहने के लिए कुछ नहीं होता।'

मृत्यु के बारे में बोलने का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को है जिन्होंने इसे अनुभव किया है। मैंने इसे अनुभव नहीं किया है। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं इसे उस अंतिम विराम के रूप में स्वीकार करने को तैयार हूँ जिसके आगे एक ऐसा शून्य है जिसे कोई भेद नहीं पाया है। इसका कोई भविष्य नहीं है। एक आयरिश कहावत पूछती है, 'जब किसी पुरुष की पत्नी विधवा हो जाए तो उसके लिए दुनिया का क्या अर्थ?' मैं इस प्रश्न का यथासंभव सर्वोत्तम उत्तर देने का प्रयास करूँगा।

मृत्यु की प्रक्रिया जन्म से ही शुरू हो जाती है। यह हमें धीरे-धीरे अपने वश में कर लेती है और अंत में हमारे बचे-खुचे अंश को भी निगल जाती है। जैसा कि पवित्र शास्त्र में कहा गया है, हमने मृत्यु के साथ एक समझौता किया है और उसकी छाया हमारी पलकों पर मंडराती रहती है। तो फिर हम इससे इतना भयभीत क्यों होते हैं? क्या यह बेहतर होता अगर हमें ठीक-ठीक पता होता कि यह कब घटित होगी? मुझे नहीं लगता। जब असाध्य रोगों से पीड़ित या मृत्युदंड का सामना कर रहे लोगों को बताया जाता है कि उनके पास जीने के लिए कितना समय बचा है, तो वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते।

मेरे अधिकांश भय ईश्वर के अस्तित्व, परलोक या पुनर्जन्म की संभावना को स्वीकार न कर पाने के कारण हैं। भगवद् गीता हमें आश्वस्त करती है, 'जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है; इसलिए, जो अपरिहार्य है उस पर शोक न करो।' मैं आश्वासन के पहले भाग को स्वीकार करता हूँ क्योंकि मैं इसे सत्य मानता हूँ; मैं दूसरे भाग को स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है।

मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मुझे जीने के लिए केवल एक ही जीवन मिला है, और यह नहीं जानता कि यह कब समाप्त होगा, इसलिए मैं इससे भरपूर आनंद लेना चाहता हूँ। मैं अपनी सभी इंद्रियों को तृप्त करूँगा; दुनिया की हर सुंदरता को देखूँगा; इसके पहाड़, झीलें, समुद्र तट और रेगिस्तान; मैं वर्षा के बादलों को विस्मय से निहारूँगा और क्षितिज पर फैले इंद्रधनुषों का आनंद लूँगा; मैं विभिन्न देशों के व्यंजनों का स्वाद लूँगा और उनकी पुरानी शराब का लुत्फ़ उठाऊँगा; मैं पश्चिमी और भारतीय, दोनों तरह का अच्छा संगीत सुनूँगा और मंच पर सुंदर बैले डांसरों को नृत्य करते हुए देखकर मंत्रमुग्ध हो जाऊँगा; मैं फूलों, जड़ी-बूटियों, इत्रों और सूखी धरती की सुगंध को महसूस करूँगा जब बारिश की पहली बूँदें उस पर गिरेंगी; मैं सुंदर स्त्रियों को निहारूँगा, उनसे प्रेम निवेदन करूँगा और यदि वे रुचि दिखाएँ तो उनसे प्रेम करूँगा।

मैं ऐसा सुखवादी नहीं हूँ जो केवल भोग-विलास के लिए इंद्रियों को सुख देता हो। जीवन के सुखों का आनंद केवल वही लोग उठा सकते हैं जिन्होंने दिनभर ईमानदारी से परिश्रम किया हो और जिससे उन्हें संतुष्टि मिली हो। मुझे पत्रकारिता और

रचनात्मक लेखन से संतुष्टि मिली। तभी मैंने प्रकृति की देन का सही अर्थ समझा, जो मेरे परिश्रम का उचित और न्यायसंगत पुरस्कार था।

मैं जीवन की क्षणभंगुरता से भलीभांति अवगत हूँ: करने को बहुत कुछ है और समय बहुत कम है। जीवन में काफी जल्दी ही मैंने प्रार्थना, ध्यान, धार्मिक अनुष्ठान, दोस्तों के साथ गपशप, कॉकटेल पार्टी और रात्रिभोज (जब तक कि स्कॉच और बढ़िया भोजन समय पर परोसे जाने का आश्वासन न हो) जैसे समय बर्बाद करने वाले शौक छोड़ दिए। मैंने धार्मिक ग्रंथों की तुलना में साहित्य की उत्कृष्ट कृतियों को अधिक महत्व देना शुरू कर दिया, क्योंकि मुझे वे हमेशा उबाऊ, दोहरावपूर्ण और प्रेरणाहीन लगते थे।

मुझे वे लोग समझ नहीं आते जो समय के बोझ तले दबे होने की शिकायत करते हैं। मुझे ऊब समझ नहीं आती; यह एक स्व-निर्मित, समय बर्बाद करने वाली बीमारी है जो जन्मजात आलसी लोगों को होती है। और फिर भी, यही लोग मृत्यु से उन लोगों की तुलना में अधिक भयभीत होते हैं जो इसके बारे में सोचने के लिए बहुत व्यस्त होते हैं। 'आप अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकते' वाली सोच रखने वाले लोग पूछ सकते हैं कि यदि आप मरने के बाद अपनी कमाई या अपनी कोई भी सांसारिक संपत्ति अपने साथ नहीं ले जा सकते, तो जीते जी मेहनत करने का क्या फायदा? यह सच है कि कफ़न में जेब नहीं होती, लेकिन कुछ चीजें मृत्यु के बाद भी बनी रहती हैं। पैसा बना रहता है। आपके बच्चे और धर्मार्थ संस्थाओं को दी गई आपकी वसीयत भी बनी रहती है। मनुष्य का ज्ञान, किताबों से अर्जित बुद्धिमत्ता उसके साथ ही मर जाती है, लेकिन जो कुछ वह कागज पर लिखता है वह उसके जाने के बाद भी जीवित रहता है। उसकी प्रतिष्ठा, अच्छी हो या बुरी, उसकी मृत्यु के बाद भी बनी रहती है।

तालमुद कहता है, ‘जब मृत्यु मनुष्य को सृष्टिकर्ता के समक्ष बुलाती है, तो उसके तीन मित्र होते हैं: पहला, जिसे वह सबसे अधिक प्रिय मानता है, धन। परन्तु धन उसके साथ एक कदम भी नहीं जा सकता। दूसरा, रिश्तेदार। परन्तु वे केवल उसके साथ कब्र तक जा सकते हैं, और न्यायाधीश के समक्ष उसका बचाव नहीं कर सकते। उसका तीसरा मित्र, जिसे वह अधिक महत्व नहीं देता, उसके अच्छे कर्म, उसके साथ जा सकते हैं, और राजा के समक्ष उपस्थित होकर उसे बरी करवा सकते हैं।’ इस प्रकार का तर्क केवल उन्हीं को समझ आता है जो मानते हैं कि शरीर के बाद भी कुछ निराकार अस्तित्व बना रहता है। अधिक सटीक शब्द के अभाव में, वे इसे आत्मा कहते हैं। वास्तव में आत्मा क्या है, इसका किसी को भी स्पष्ट ज्ञान नहीं है। मैं मानता हूँ कि मनुष्य अपने मांस, रक्त और हड्डियों से कहीं अधिक है। वह एक बोलने वाला, सोचने वाला प्राणी है जिसका अपना अनूठा चरित्र है। क्या उसके निराकार गुणों का संग्रह ही आत्मा कहलाता है? यदि ऐसा है, तो व्यक्ति की मृत्यु होते ही वह लुप्त हो जाती है। आत्मा भी मानव कल्पना की एक और उपज है, जिसे परलोक की धारणाओं को बल देने के लिए गढ़ा गया है। यही बात स्वर्ग के राज्य जैसी अवधारणाओं पर भी लागू होती है, जहाँ इंद्रधनुष कभी फीका नहीं

पड़ता। यह विचित्र है कि यद्यपि हर कोई स्वर्ग जाने की आकांक्षा रखता है, फिर भी कोई भी उस नरक को छोड़ने के लिए उत्सुक नहीं है जिसे वह पृथ्वी पर अपना जीवन मानता है।

मेरे लिए, अगर स्वर्ग कहीं है, तो वह धरती पर ही होना चाहिए। मैं कई जगहों पर जा चुका हूँ, जहाँ के अलग-अलग मौसमों में स्वर्ग की मेरी कल्पनाएँ पूरी तरह से साकार होती हैं। रॉकी पर्वत, थाउज़ेंड आइलैंड्स, मस्कॉका और नियाग्रा फॉल्स की अद्भुत भव्यता; इंग्लैंड में लेक डिस्ट्रिक्ट और कॉट्सवोल्ड्स; इटली की झीलें, गार्डा और मैगियोर; न्यूजीलैंड की अनगिनत जुगनुओं से जगमगाती भूमिगत गुफाएँ; ऑस्ट्रेलिया में आयर्स रॉक की प्रागैतिहासिक भव्यता; युगांडा से निकलने वाली नील नदी पर मर्चिसन फॉल्स में वन्यजीवों की भरमार; रियो डी जनेरियो, कोवलम और गोवा के समुद्र तट; कश्मीर के पहाड़ और नदियाँ; ताजमहल की अलौकिक सुंदरता हर पल - भोर में गुलाबी रंगत, दोपहर के सूरज में इसकी चकाचौंध, गोधूलि बेला में कोमल सुनहरी चमक और चाँदनी में इसकी शीतल, रेशमी सुंदरता। दुनिया भर में सैकड़ों अन्य स्वर्ग बिखरे पड़े हैं। निर्मल जल की तेज बहती धाराओं और कौमार्य को पुनः प्राप्त करने में सक्षम अप्सराओं के उन उन्मादी सपनों के बजाय मैं उनकी सांसारिक वास्तविकता को सहर्ष स्वीकार कर लूंगा। वैसे भी कुंवारी लड़कियों की किसे ज़रूरत है? अनुभव, जीवंतता और बुद्धिमत्ता से भरपूर खूबसूरत महिलाएं कहीं बेहतर प्रेमिका और साथी साबित होती हैं।

इन सब बातों का क्या मतलब है? कुछ खास नहीं। मुझे नहीं पता कि मैं कहाँ से आया हूँ, मुझे अपने जीवन का उद्देश्य नहीं पता; मुझे नहीं पता कि मरने के बाद मैं कहाँ जाऊँगा। क्योंकि मुझे अपनी जन्मतिथि नहीं पता, इसलिए मैं अपनी कुंडली भी नहीं बनवा सकता जिससे पता चले कि मैं कितने दिन जीवित रहूँगा। एक बार बंबई में, भृगु संहिता की एक प्रति रखने वाले एक स्वामीजी मुझसे मिलने आए। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास एक पृष्ठ है जिस पर मेरा नाम और भविष्य लिखा है। साथ ही वह तिथि और समय भी लिखा है जब मैं उनसे मिलूँगा। वह कुछ इस प्रकार था: 'समुद्र के किनारे बसे एक शहर में, जिसका पहला अक्षर 'बी' है, विक्कमी युग के पाँचवें महीने के पाँचवें दिन सुबह 11 बजे, खुशवंत केसरी (यानी सिंह) नाम का एक व्यक्ति अपने बारे में प्रश्न पूछेगा।' आगे लिखा था कि पिछले जन्म में मैं तंत्र-मंत्र में विश्वास नहीं करता था और इसी विश्वासहीनता के कारण कष्ट भोगा था। उस विश्वासहीनता का कुछ अंश मेरे वर्तमान जीवन में भी बना हुआ है। ऋषि भृगु ने मुझे अपनी गलती पर अडिग रहने की चेतावनी दी थी। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की थी कि मेरे जीवन का अधिकांश भाग कलम और कागज से जुड़ा होगा। उन्होंने मेरी मृत्यु का सटीक समय, दिन, महीना और वर्ष बताया था। उनके अनुसार मैं 1999 तक जीवित रहूंगा और शताब्दी के अंत से कुछ महीने पहले मर जाऊंगा। ऐसा नहीं हुआ। यह विचित्र है कि नोस्ट्राडेमस ने भी भविष्यवाणी की थी कि पृथ्वी पर जीवन 31 जुलाई, 1999 को समाप्त हो जाएगा। यदि उनकी भविष्यवाणी सच होती, तो आप, मेरे पाठक, भी लगभग उसी समय इस दुनिया से विदा हो जाते।

मुझे डर है कि मृत्यु के समय मैं मूर्ख साबित हो जाऊँगा—अधिकांश लोग ऐसा ही महसूस करते हैं। मैं मदद के लिए गुहार नहीं लगाना चाहता, न ही ईश्वर से अपने पापों की क्षमा माँगना चाहता हूँ और न ही अपनी कमजोरी दिखाना चाहता हूँ। अपने पिता की तरह, जिनकी मृत्यु शाम को स्कॉच पीने के कुछ ही मिनटों बाद हुई थी, मैं भी इस लंबी यात्रा पर निकलने से पहले एक स्कॉच पीना चाहता हूँ। मैं अल्लामा इकबाल के बताए मार्ग पर चलना चाहता हूँ, जिस मार्ग पर चलने के लिए उन्होंने बलवान पुरुषों को प्रेरित किया था।

क्या निशान-ए-मर्द-ए मोमिन भी गोयम है?

choon marg aayad, tabassum bar lab-e-ost

(आप मुझसे आस्थावान व्यक्ति के लक्षण पूछते हैं?)
जब मृत्यु उसके पास आएगी
उसके होठों पर मुस्कान है।

परिशिष्ट: नवंबर 2001: फसल कटाई के वर्ष

मैंने इस आत्मकथा को छह साल पहले लिखना पूरा किया और पांडुलिपि अपने प्रकाशक को सौंप दी। रवि दयाल ने इसकी टाइपसेटिंग करवाई, कवर डिज़ाइन तैयार करवाया और इसे छपवाने की तैयारी में जुट गए। प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने इंडिया टुडे, द टेलीग्राफ और द हिंदू को एक-एक अध्याय प्रकाशित करने का प्रस्ताव दिया। 31 अक्टूबर 1995 के अंक में इंडिया टुडे ने वह अध्याय प्रकाशित किया जिसमें मेनका गांधी को उनकी सास इंदिरा गांधी के घर से निकाले जाने की घटना का वर्णन था, जब इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री थीं। मैंने इसे इंडिया टुडे में घटना के समय प्रकाशित जानकारी और पुपुल जयकार और वेद मेहता द्वारा लिखित श्रीमती गांधी की जीवनियों पर आधारित किया था, साथ ही मेनका गांधी और उनकी बहन अंबिका द्वारा दी गई अतिरिक्त जानकारियों का भी उपयोग किया था, जो उस घटना के समय मौजूद थीं। फिर भी, मेनका ने मुझ पर और मेरे प्रकाशक पर मुकदमा कर दिया, लेकिन इंडिया टुडे को इसमें शामिल नहीं किया। 12 दिसंबर 1995 को उन्होंने दिल्ली उच्च न्यायालय से एकतरफा निषेधाज्ञा प्राप्त कर पुस्तक के प्रकाशन पर रोक लगा दी। हमने इस आदेश के खिलाफ तुरंत अपील की। दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के. राममूर्ति ने कई महीनों बाद दोनों पक्षों की दलीलें सुनीं। लगभग डेढ़ साल बाद उन्होंने फैसला सुनाया कि मैंने मेनका के निजता के अधिकार का उल्लंघन किया है और पुस्तक के प्रकाशन पर रोक को बरकरार रखा। हमने एक बार फिर अपील दायर की। उच्च न्यायालय में उस पर सुनवाई होने में चार साल से अधिक का समय लग गया।

इस लंबी देरी का पूरा दोष हमारी कानूनी व्यवस्था की सुस्ती पर नहीं डाला जा सकता। पहले, मेरे वरिष्ठ वकील सोली सोराबजी को अटॉर्नी जनरल बना दिया गया: वे अब मेरी ओर से पेश नहीं हो सकते थे। फिर उनके सहायक एम. मुद्गल को न्यायाधीश बना दिया गया: वे अब मेरी ओर से पेश नहीं हो सकते थे। कपिल सिबल ने मेरा केस लेने के लिए सहमति दी। वे राज्यसभा के लिए चुने गए और उनके पास वकालत के लिए बहुत कम समय बचा था। अपील को संभालने के लिए केवल श्रीधर चिताले ही बचे थे, जो पहले हमारे कनिष्ठ वकील थे। हमारे केस की पैरवी सी.ए. सुंदरम ने की, जिसमें चिताले ने उनकी सहायता की। मेरी बेटी और मैं न्यायमूर्ति देवेंद्र गुप्ता और संजय कृष्ण कौल की खंडपीठ में चल रही बहसों में उपस्थित रहे। हमने मेनिका के वकील राज पंजवानी को घंटों तक उबाऊ ढंग से बहस करते सुना, वे वही बातें दोहरा रहे थे जो उन्होंने न्यायमूर्ति राममूर्ति के समक्ष कही थीं। हमारे वकील सी.ए. सुंदरम दो बार आधे घंटे से ज्यादा नहीं बोले। मैंने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में शायद ही कभी इतने सशक्त तर्क सुने हों। शायद मैं पक्षपाती थी क्योंकि वे मेरी ओर से बोल रहे थे। मुझे ऐसा लग रहा था कि वे न्यायाधीशों को अपने साथ ले जा रहे थे। तीन सप्ताह बाद फैसला सुनाया गया। मेरी बेटी और दामाद रानीखेत में थे। मेरे साथ मेरा बेटा राहुल और मेरी पोती थीं। फैसला न्यायमूर्ति कौल ने सुनाया। मेरी

आत्मकथा के प्रकाशन पर लगी रोक हटा दी गई और मेनका को हमें 10,000 रुपये का हर्जाना देने का आदेश दिया गया। मेनका के इस आरोप के खिलाफ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को साबित करने के लिए हमने इससे कहीं अधिक खर्च किया था कि मैंने उनकी निजता के अधिकार का उल्लंघन किया है। अब आप खुद ही फैसला कर लीजिए। फैसले की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। हर कुछ मिनट में मेरा फोन बजता रहा, लोग मुझे बधाई देने के लिए फोन कर रहे थे। टीवी टीमों समेत मीडियाकर्मी मेरी प्रतिक्रिया जानने के लिए मेरी निजता में घुसपैठ करने लगे। मेरी पोती ने इस खुशी में मुझे आइसक्रीम खिलाई।

मेनिका ने उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की है और मानहानि के आरोप में मुझ पर मुकदमा भी कर सकती है। ऐसे में प्रधानमंत्री आवास से निकाले जाने के बाद उसे खुद भी विस्तृत पूछताछ का सामना करना पड़ेगा। यह उसके लिए शर्मनाक साबित हो सकता है। खैर, जब तक इस मामले का फैसला आएगा, तब तक शायद मैं उसकी पहुंच से बहुत दूर हो चुका होऊंगा। अब मेरी उम्र अस्सी-आठ के करीब है।

न्यायमूर्ति राममूर्ति द्वारा मेरे विरुद्ध दिए गए फैसले पर मेरी मुख्य आपत्ति लेखकों को दी गई उनकी अनावश्यक सलाह है। उन्होंने कहा: '... सर्वविदित है कि मैं (यानी मैं) एक विद्वान और अनुभवी व्यक्ति हूँ, जिन्होंने भारत और विदेश में कई महान हस्तियों के साथ समय बिताया है। उनसे हर कोई समाज के लिए उपयोगी सामग्री की अपेक्षा करता है जो युवा पीढ़ी को प्रेरित करे...। सामान्यतः, लोग महान लेखकों से उच्च विचार, उच्च जीवन शैली और उच्च ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। भारत में कानून व्यक्तियों द्वारा केवल व्यक्तिगत द्वेष से उत्पन्न आवेगों को संतुष्ट करने के उद्देश्य से की गई बेतरतीब लेखन की अनुमति नहीं देता है।' न्यायमूर्ति राममूर्ति, मुझे यह बताने के लिए धन्यवाद कि मुझे किस विषय पर और कैसे लिखना चाहिए। मैं आपकी सलाह को अनदेखा करना चुनता हूँ, जैसा कि कोई भी योग्य लेखक करेगा, होठों पर मुस्कान और मन में तिरस्कार के साथ।

जब मैंने यह आत्मकथा लिखना शुरू किया, तो मुझे लगा था कि यह मेरे जीवन की आखिरी किताब होगी। मैं गलत था। पिछले छह सालों में मैंने इतनी किताबें लिखी हैं जितनी पहले कभी किसी छह साल में नहीं लिखीं। इनमें से ज़्यादातर मेरे पाठकों द्वारा सहेजे गए लेखों की प्रतियां और चुटकुलों के संग्रह हैं जिन्हें मैं अपने हर लेख के अंत में जोड़ता हूं। अब बाज़ार में चुटकुलों के ऐसे छह संग्रह मौजूद हैं, जिनमें से हर एक के एक दर्जन से ज़्यादा पुनर्मुद्रण हो चुके हैं। इनकी रॉयल्टी से मुझे स्कॉच व्हिस्की के प्रीमियम ब्रांड मिलते हैं, जो बुढ़ापे में मेरे लिए सबसे कीमती चीज़ है। मैंने एक उपन्यास भी लिखा, 'द कंपनी ऑफ वुमन' (पेंगुइन-वाइकिंग)। मैं इसे प्रकाशित करवाने के लिए बहुत उत्सुक नहीं था क्योंकि यह एक अस्सी वर्षीय व्यक्ति (यानी मैं खुद) की यौन कल्पनाओं के बारे में था। लेकिन पेंगुइन-वाइकिंग के रवि सिंह ने कसौली में मेरे साथ एक हफ़्ता बिताया ताकि बिखरे हुए हिस्सों को जोड़कर एक किताब का रूप दे सकें। सभी आलोचकों ने बिना किसी

अपवाद के उपन्यास की कड़ी आलोचना की। फिर भी, यह बेस्टसेलर बन गई और छह महीने से अधिक समय तक भारत की बेस्टसेलर सूची में शीर्ष पर बनी रही। इसने मुझे मेरी अन्य सभी पुस्तकों की तुलना में अधिक रॉयल्टी दिलाई। आलोचकों को बस इतना ही कहना है! वे अपनी ही बातों में उलझे रहें।

मेरी कुछ अन्य पुस्तकें भी बेस्टसेलर सूची में शामिल हुईं: अनफॉरगेटेबल विमेन (पेंगुइन); महाराजा रणजीत सिंह की मेरी जीवनी का पुनर्मुद्रण (पेंगुइन); और रघु राय द्वारा उत्कृष्ट तस्वीरों से सजी मेरी कॉफी टेबल बुक द सिख्स (रोली बुक्स)। शारदा कौशिक के साथ प्रकाशित मेरी प्रेम कविताओं के अनुवादों का संग्रह, डिक्लेरिंग लव इन फोर लैंग्वेजेस (पेंगुइन), भी प्रकाशित हुआ। मेरी दो और पुस्तकें प्रकाशन के लिए तैयार हैं: वाशिंगटन डी.सी. की डॉ. सुरजीत कौर के साथ 'अमंग द सिख्स', जो विदेशों में सिख समुदायों और उनके उन पुरुषों और महिलाओं के बारे में होगी जिन्होंने धन और प्रसिद्धि अर्जित की है। इसके रोली बुक्स द्वारा प्रकाशित होने की संभावना है। रीमा आनंद के सहयोग से सिखों की संध्या प्रार्थना, रेहरास का अनुवाद पेंगुइन के पास है। मुझे शिकायत करने का कोई कारण नहीं है।

पिछले छह वर्षों में मैंने धर्म और ईश्वर के प्रति अपने दृष्टिकोण को भी नया रूप दिया है। नास्तिकता से कोई समझौता किए बिना, मैंने प्रतिदिन स्वर्ण मंदिर से प्रसारित होने वाली सुबह की प्रार्थना 'आसा दी वार' सुनना शुरू किया। मुझे यह बहुत सुकून देने वाली लगी और मुझे लगा कि इसे सुनने से मेरी बीमार पत्नी को आराम मिलेगा, जो कभी बहुत धर्मनिष्ठ थीं। हर शाम मैं शाम की प्रार्थना 'रेहरास' सुनता हूँ। इससे मुझे रीमा आनंद की मदद से इसका अनुवाद करने में काफी सहायता मिली। हमने इसे 'इवनसॉन्ग' नाम दिया। धार्मिक ग्रंथों में रुचि के पुनरुद्धार से कहीं अधिक, सिख समुदाय से जुड़ाव की मेरी भावना को बल मिला, जिसे मैं इसके नियमों का पालन करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। खालसा पंथ की स्थापना की 300 वीं वर्षगांठ पर मुझे निशान-ए-खालसा से सम्मानित किया गया। फिर गुरु नानक देव विश्वविद्यालय ने समुदाय के प्रति मेरी सेवाओं के लिए मुझे मानद डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की। मेरे घर की दीवारों पर मानद डॉक्टरेट की उपाधि का प्रशस्ति पत्र और सिख दरबार के सिक्कों से सजी तांबे की एक थाली की प्रतिकृति प्रदर्शित है, जिस पर 'निशान-ए-खालसा' लिखा हुआ है।

मुझे एक और पुरस्कार मिला, जो चंडीगढ़ में पंजाब कला परिषद द्वारा दिया गया था। दर्जनों पुरस्कार विजेताओं में भारतीय और पाकिस्तानी दोनों शामिल थे। दर्जनों लोगों ने लंबे-लंबे भाषण भी दिए। मुझे ज़ुकाम हो गया और मैं दिल्ली लौट आया। जैसे ही मैंने नोटों का पैकेट अपनी पोती की गोद में रखा, मेरा ज़ुकाम रहस्यमय तरीके से गायब हो गया। तब मुझे समझ आया कि पैसे को गंदा धन क्यों कहा जाता है।

पिछले छह वर्षों में मेरे लिए शायद सबसे महत्वपूर्ण घटना, और निश्चित रूप से सबसे अधिक लाभप्रद, सुलभ इंटरनेशनल द्वारा मुझे 'वर्ष का सबसे ईमानदार व्यक्ति' पुरस्कार से सम्मानित किया जाना था। अगर मैं सचमुच ईमानदार होता, तो मैं

पुरस्कार ठुकरा देता, लेकिन दस लाख रुपये की कर-मुक्त राशि इतनी बड़ी थी कि मैं अपनी ईमानदारी पर सवाल नहीं उठा सका। यह एक भव्य आयोजन था। दिल्ली का सबसे बड़ा ऑडिटोरियम, फिक्की ऑडिटोरियम, खचाखच भरा हुआ था। अपनी बेईमानी साबित करने के लिए, मैंने आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू, जिन्होंने मुझे चेक सौंपा, और विदेश मंत्री जसवंत सिंह, जिन्होंने समारोह की अध्यक्षता की, के पोर्टफोलियो से बॉलपॉइंट पेन चुरा लिए। मेरी इस चालाकी को वहाँ मौजूद सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के भाषणों से कहीं अधिक तालियाँ मिलीं।

अब मुझे कुछ और महत्वपूर्ण घटनाएँ याद आ रही हैं जो मेरे जीवन में मील के पत्थर साबित हुईं: मेरी उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' पर आखिरकार पामेला रूक्स ने फिल्म बनाई। उन्होंने बहुत कम बजट में यह फिल्म बनाई, लेकिन कमाल कर दिया। इसे पहले टीवी पर दिखाया गया और फिर कुछ महीनों तक देशभर के सिनेमाघरों में प्रदर्शित किया गया। इसकी बदौलत मुझे लंदन की मुफ्त यात्रा करने का मौका मिला और फिल्म को भारतीयों, पाकिस्तानियों, बांग्लादेशियों और अंग्रेजों सहित मिश्रित दर्शकों ने देखा। इससे प्राप्त धन पाकिस्तान के एक अस्पताल को दान किया गया।

मेरे उपन्यास 'दिल्ली' का जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ। मेरे जर्मन प्रकाशकों ने मुझे आमंत्रित किया और मुझे जर्मनी और ऑस्ट्रिया के विभिन्न शहरों में ले जाया गया, जहाँ मैंने अंग्रेजी और जर्मन में अंशों के पठन में भाग लिया। 'ट्रेन टू पाकिस्तान' को मोंडेलो पुरस्कार मिला। मुझे इटली की एक और निःशुल्क यात्रा मिली और मैं पालेर्मो के मेयर से 2 लाख रुपये का चेक लेने के लिए सिसिली गया।

और अंत में, रोटरी इंटरनेशनल के निमंत्रण पर मैंने कराची में चार दिन बिताए। मैं सम्मेलन में मुख्य वक्ता था। मैंने जो कहा, वह भारतीय और पाकिस्तानी दोनों प्रतिभागियों को बहुत पसंद आया। उन्होंने मुझे टीवी चैनलों पर लाइव दिखाया। मैंने बस इतना कहा कि अगर हम फिर से युद्ध में गए (कारगिल युद्ध के बाद), तो यह हमारा आखिरी युद्ध होगा। न तो आप बचेंगे और न ही हम, और इस क्षेत्र में सन्नाटा छा जाएगा।

इन वर्षों की छोटी-मोटी सफलताओं पर मेरी पत्नी के स्वास्थ्य में लगातार गिरावट हावी होती जा रही थी। वह हमेशा मुझसे बेहतर सेहतमंद रही थीं। उन्हें कभी भी पेट की समस्या नहीं होती थी और हर सुबह वह गर्व से कहती थीं, 'एकदम साफ़!' और अक्सर एक-दो घंटे बाद फ्रेंच में कहती थीं, 'दूसरी बार' - यानी दूसरी बार। दूसरी ओर, मुझे अपने सुस्त लिवर को जुलाब, ग्लिसरीन सपोसिटरी और एनीमा से संभालना पड़ता था। वह शायद ही कभी बीमार पड़ती थीं। मुझे लगातार सर्दी-जुकाम होता रहता था और अक्सर सिरदर्द रहता था। जब भी हम टहलने जाते, वह मुझसे आगे चलतीं और मुझे उन्हें याद दिलाना पड़ता था कि भारतीय महिलाएं अपने पतियों के पीछे चलती हैं, आगे नहीं। शादी के शुरुआती वर्षों में, वह बड़े चाव से टेनिस खेलती थीं। अधेड़ उम्र में हम गोल्फ़ खेलते थे; वह हमेशा मुझसे बेहतर साबित होती थीं। खेल छोड़ने के बाद,

उन्होंने पैदल चलना शुरू कर दिया। वह लोधी गार्डन तक गाड़ी चलाकर जाती थीं और बिना किसी से बात किए पार्क के चक्कर लगाती थीं। वहां आने वाले सभी लोग उन्हें पहचानते थे।

वह हमेशा अपने घर को लेकर बहुत सजग रहती थीं और नौकरों को तब तक आदेश देती रहती थीं जब तक सब कुछ एकदम साफ-सुथरा न हो जाए। वह मुझे किसी भी पांच सितारा होटल से ज़्यादा स्वादिष्ट खाना खिलाती थीं। हर सुबह वह खाना बनाने की किताबों से कुछ व्यंजन पढ़कर सुनातीं और हमारे रसोइए चंदन सिंह को बतातीं कि खाना कैसे बनाना है। इसलिए हमें फ्रेंच, चीनी, इतालवी और कभी-कभी देसी खाना मिलता था, जो हमेशा बेहतरीन होता था। वह हमारे छोटे से बगीचे की देखभाल करती थीं और मौसम बदलने पर सब्जियां लगाती थीं। वह उन पर बाज की तरह नज़र रखती थीं और बगीचे में पक रहे फल या सब्जियां चुराने आने वाले शरारती बच्चों को भगा देती थीं। वह नौकरों के बच्चों को एक-दो घंटे हिंदी और अंग्रेजी पढ़ाती थीं और स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद हमेशा उनके लिए नौकरी ढूंढ देती थीं।

उसमें जीवन के प्रति भरपूर उत्साह था; वह मुझसे ज़्यादा व्हिस्की पी सकती थी। दुर्भाग्य से, उसकी याददाश्त कमज़ोर थी और उसे जल्दी गुस्सा आ जाता था। उसे दिशाओं का कोई ज्ञान नहीं था। कई बार, मुझे जिमखाना क्लब छोड़ने के बाद, घर लौटते समय वह पालम हवाई अड्डे की ओर जाने वाली सड़क पर पहुँच जाती थी। हमारे वैवाहिक जीवन के वर्ष झगड़ों से भरे रहे, जिन्होंने हमारे अपेक्षाकृत खुशहाल वैवाहिक जीवन पर दाग लगा दिया। मुझे यह बड़ा लाभ था कि मेरा पेशा ऐसा था जिसमें मुझे दिन में कई घंटे अकेले रहने की आवश्यकता होती थी। वह मुझे अकेला छोड़ देती थी।

अचानक हालात बदलने लगे। उसने व्यायाम करना पूरी तरह छोड़ दिया। उसने शराब पीना और पढ़ना भी छोड़ दिया। मैं हमेशा शनिवार को अखबारों में छपने वाले अपने लेखों पर उसकी टिप्पणी की उम्मीद करता था। उसने उन्हें पढ़ना बंद कर दिया, न ही मेरी किताबों को पढ़ने की परवाह की, जो नियमित रूप से छपती रहती थीं। सबसे बढ़कर, वह एक नकारात्मक व्यक्तित्व में बदल गई। मेरे हर सुझाव पर उसका तुरंत जवाब 'ना' होता था। इससे मुझे बहुत चिढ़ होती थी क्योंकि मुझे एहसास नहीं था कि उसके अंदर कुछ बदल रहा है, जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। यह बात मुझे तब समझ आई जब वह बीमार पड़ने लगी। पहली बार कसौली में, जब वह अवसाद में चली गई और बात करना बंद कर दिया। मैंने अपनी छुट्टियां बीच में ही खत्म कर दीं और दिल्ली लौट आया। वह मुश्किल से चंडीगढ़ में ट्रेन में चढ़ पाई। अगले क्रिसमस पर गोवा में, हमारी छुट्टियों के तीसरे दिन वह बीमार पड़ गई। होटल की मैनेजर शिवानी रारकी ने उसके कमरे में खाना भिजवाया और उसकी देखभाल ऐसे की जैसे वह उसकी मां हो। मुझे यह छुट्टियां भी बीच में ही खत्म करनी पड़ीं और दिल्ली लौटना पड़ा। हमारे पारिवारिक डॉक्टर, आई.पी.एस. कालरा ने मुझे मनोचिकित्सक से परामर्श लेने और पूर्णकालिक नर्स रखने का सुझाव दिया। मेरी पत्नी को यह सुझाव पसंद नहीं आया और उन्होंने दोनों सुझाव ठुकरा दिए। उनके पैरों में अस्थिरता आ गई और उन्हें चक्कर आने लगे। दो बार बिस्तर से उठने की कोशिश में वे गिर गई और उनके माथे पर गहरी चोट लग गई।

घाव पर टांके लगाने पड़े और उन्हें टिटनेस रोधी इंजेक्शन दिया गया। उन्हें दर्द का एहसास नहीं होता था क्योंकि उनकी दर्द की अनुभूति खत्म हो चुकी थी। मुझे उनकी देखभाल के लिए दिन-रात नर्सें रखनी पड़ीं। मेरी बेटी ने अपने एक मित्र, डॉ. रवि नेहरू, जो एक आकर्षक कश्मीरी अविवाहित पुरुष हैं और ऐसी बीमारियों के विशेषज्ञ हैं, को मेरी पत्नी से मिलवाया। उन्होंने मेरी पत्नी से एक घंटा बात की और उन्हें अपने साथ कुछ कदम चलने के लिए कहा। जब मेरी पत्नी आराम कर रही थीं, तो उन्होंने मुझे साफ शब्दों में बताया: 'यह अल्जाइमर है। इसका कोई इलाज नहीं है। हम बस इतना कर सकते हैं कि उनकी हालत को स्थिर कर दें।' उन्होंने एक्सेलॉन दवा लिखी, जो पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन को भी दी जा रही है। यह दवा बहुत महंगी है। नर्सों और डॉक्टरों (रवि नेहरू डॉक्टर मुझसे कोई शुल्क नहीं लेते) का खर्च एक-एक पैसे से कहीं अधिक है। मेरे जीवन के साठ से अधिक वर्षों तक मेरे साथ रहने वाले व्यक्ति के लिए यह खर्च खुशी-खुशी करने को तैयार हूँ। लेकिन मेरे लिए दिन भर बैठकर उस व्यक्ति को देखना कठिन है जो कभी इतना जीवंत और जीवन के प्रति उत्साह से भरा हुआ था, अब निर्जीव होता जा रहा है। याददाश्त कमजोर होती जा रही है, बोलने में कठिनाई हो रही है, शरीर कंकाल जैसा हो गया है और धीरे-धीरे मुरझाता जा रहा है। मुझे हमेशा से यकीन था कि वह मुझसे कई साल अधिक जिएंगी। अब मुझे इतना यकीन नहीं है। लेकिन मुझे अंदर से यह आभास होता है कि अगर वह मुझसे पहले चली गईं, तो मैं कलम रख दूँगा और लिखना बंद कर दूँगा।

पेंगुइन बुक्स

पेंगुइन ग्रुप द्वारा प्रकाशित

पेंगुइन बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड। लिमिटेड, 11 कम्युनिटी सेंटर, पंचशील पार्क, नई दिल्ली 110 017, भारत

पेंगुइन ग्रुप (यूएसए) इंक., 375 हडसन स्ट्रीट, न्यूयॉर्क, न्यूयॉर्क 10014, यूएसए

पेंगुइन ग्रुप (कनाडा), 90 एग्लिंटन एवेन्यू ईस्ट, सुइट 700, टोरंटो, ओंटारियो M4P 2Y3, कनाडा (पियर्सन पेंगुइन कनाडा इंक. का एक प्रभाग)

पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, 80 स्ट्रैंड, लंदन WC2R 0RL, इंग्लैंड

पेंगुइन आयरलैंड, 25 सेंट स्टीफंस ग्रीन, डबलिन 2, आयरलैंड (पेंगुइन बुक्स लिमिटेड का एक प्रभाग)

पेंगुइन ग्रुप (ऑस्ट्रेलिया), 707 कॉलिन्स स्ट्रीट, मेलबर्न, विक्टोरिया 3008, ऑस्ट्रेलिया (पियर्सन ऑस्ट्रेलिया ग्रुप प्राइवेट लिमिटेड का एक प्रभाग) पेंगुइन ग्रुप (न्यूजीलैंड), 67 अपोलो ड्राइव, रोज़डेल, ऑकलैंड 0632, न्यूजीलैंड (पियर्सन न्यूजीलैंड लिमिटेड का एक प्रभाग) (प्राइवेट लिमिटेड), ब्लॉक डी, रोज़बैंक ऑफिस पार्क, 181 जान स्मट्स एवेन्यू, पार्कटाउन नॉर्थ, जोहान्सबर्ग 2193, दक्षिण अफ्रीका

पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, पंजीकृत कार्यालय: 80 स्ट्रैंड, लंदन WC2R 0RL, इंग्लैंड

यह पुस्तक पहली बार 2002 में रवि दयाल पब्लिशर और पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा प्रकाशित वाइकिंग पत्रिका में छपी थी। बाद में 2003 में पेंगुइन बुक्स द्वारा प्रकाशित हुई।

कॉपीराइट © खुशवंत सिंह 2002

कवर फोटो दिनेश खन्ना द्वारा ली गई है।

सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN: 978-01-4302-957-1

यह डिजिटल संस्करण 2013 में प्रकाशित हुआ।

ई-आईएसबीएन: 978-93-5118-135-4

यह पुस्तक इस शर्त के अधीन बेची जाती है कि इसे प्रकाशक की पूर्व लिखित सहमति के बिना, व्यापारिक रूप से या किसी अन्य तरीके से, उधार नहीं दिया जाएगा, पुनर्विक्रय नहीं किया जाएगा, किराए पर नहीं दिया जाएगा या किसी अन्य प्रकार

से प्रसारित नहीं किया जाएगा, सिवाय उस रूप में जिसमें यह प्रकाशित हुई है, और बाद के खरीदार पर भी इसी प्रकार की शर्त लागू होगी। ऊपर आरक्षित कॉपीराइट अधिकारों को सीमित किए बिना, इस प्रकाशन का कोई भी भाग कॉपीराइट स्वामी और इस पुस्तक के उपरोक्त प्रकाशक दोनों की पूर्व लिखित अनुमति के बिना पुनरुत्पादित, संग्रहीत या पुनर्प्राप्ति प्रणाली में शामिल नहीं किया जा सकता है, या किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या अन्य) प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

***** समाप्त *****

sjeet